

॥ सत्यनाम ॥

सद्गुरु कबीर साहेब का साखी-ग्रंथ ।

(उत्तम अवतरणिका तथा विरल टीका-टिप्पणी सहित)

अवतरणिकाकार :—

श्रीमान् पूज्य सा० वनमाली गुरुश्री अरविंद ।

बी. ए. एल्एल., बी.

शान्ति-कुटीर, नर्मदातट ।

विरल टीका-टिप्पणीकार :—

श्रीमान् १०८ पं. भू. महंतश्री विचारदासजी साहेब शास्त्री ।

प्रकाशक :—

श्रीमान् १०८ महंतश्री बालकदासजी साहेब ।

कबीर धर्मवर्धक कार्यालय, सीयाबाग ।

बड़ौदा ।

आवृत्ति पहली] संतकबीर सं० ५३८ [प्रत १०००
वि० सं० १९९१] [इ० सं० १९३५

सजिल्द मूल्य ३) तीन रुपैया ।

पोष्टेज पेकींग खर्च न॥) आठ आना अलग ।

प्रकाशक:-

श्रीमान् १०८ महंतश्री बालकदासजी गुरुश्री बल्लभदासजी साहेब
कन्नोर धर्मवर्धक कार्यालय, सीयावाग ।
बडौदा ।



स्वत्वाधिकार प्रकाशक के स्वधीन है ।



मुद्रक :-

रणछोडभाई किशोरभाई पटेल ।

मुद्रण स्थान :-

श्री “ प्रतापविजय प्रिन्टिंग प्रेस, मौदीखाना-बडौदा,
तारीख १८४८-१९३५।

विषयानुक्रमिका ।

विषय.	संख्या.	पृष्ठ.
साखी क्या है ?		९
अवतरणिका ।		१-७२
१ गुरुदेव को अंग ।	९१	३
२ सतगुरु को अंग ।	१०६	१७
३ गुरु पारख को अंग ।	६७	३१
४ गुरुशिष्यहेरा को अंग ।	६०	३९
५ निगुरा को अंग ।	६०	४६
६ साधु को अंग ।	२२१	६३
७ भेष को अंग ।	८१	७९
८ भीख को अंग ।	१५	८७
९ संगति को अंग ।	८९	८९
१० सेवक को अंग ।	३९	९९
११ दासासन को अंग ।	२७	१०३
१२ भक्ति को अंग ।	७३	१०७
१३ सुमिरन को अंग ।	१७९	११५
१४ परिचय को अंग ।	१३२	१३५
१५ प्रेम को अंग ।	९०	१५०
१६ विरह को अंग ।	१११	१५९

१७ चितावनी को अंग ।	२०१	१७२
१८ उपदेश को अंग ।	२४	१९३
१९ शब्द को अंग ।	७४	२०२
२० विश्वास को अंग ।	४०	२१०
२१ सती को अंग ।	२७	२१४
२२ पतिव्रता को अंग ।	५४	२१७.
२३ विभिचारिन को अंग ।	२६	२२३
२४ मूरमा को अंग ।	१५६	२२६
२५ स्वारथ को अंग ।	६	२४२
२६ परमारथ को अंग ।	८	२४३
२७ विपर्यय को अंग ।	६७	२४४
२८ रस को अंग ।	१९	२६२
२९ मन को अंग ।	१२२	२६४
३० माया को अंग ।	७८	२७७
३१ कनक कामिनी को अंग ।	६४	२८५
३२ काल को अंग ।	७९	२९२
३३ समरथ को अंग ।	५१	३०१
३४ चानक को अंग ।	२९	३०६
३५ आत्म अनुभव को अंग ।	२९	३०९
३६ सहज को अंग ।	८	३१३
३७ मध्य को अंग ।	२९	३१४
३८ भेद को अंग ।	४४	३१७.

३९	साक्षीभूत को अंग ।	६	३२२
४०	एकता को अंग ।	१८	३२३
४१	व्यापक को अंग ।	५१	३२५
४२	जीवतमृतक को अंग ।	४९	३३०
४३	सजीवन को अंग ।	१६	३३६
४४	बेहद को अंग ।	३६	३३७
४५	अविहद को अंग ।	६	३४१
४६	भ्रमविध्वंस को अंग ।	६८	३४२
४७	सारग्राही को अंग ।	११	३४९
४८	असारग्राही को अंग ।	१०	३५०
४९	पारख को अंग ।	६९	३५१
५०	बेली को अंग ।	१३	३५९
५१	कथनी को अंग ।	१८	३६०
५२	करनी को अंग ।	३३	३६२
५३	लगनी को अंग ।	३२	३६६
५४	निजकर्ता को अंग ।	४१	३६९
५५	कमौटी को अंग ।	९	३७३
५६	सूक्ष्ममार्ग को अंग ।	४१	३७४
५७	भाषा को अंग ।	७	३७९
५८	पंडित को अंग ।	३६	३८०
५९	निंदा को अंग ।	२७	३८४
६०	आनंदेश को अंग ।	६	३८७

६१ प्रकृतिगुन को अंग ।	११	३८७
६२ काम को अंग ।	२१	३८९
६३ क्रोध को अंग ।	६	३९१
६४ लोभ को अंग ।	५	३९२
६५ मोह को अंग ।	१६	३९३
६६ मद को अंग ।	१०	३९४
६७ मान को अंग ।	३६	३९६
६८ आशातृष्णा को अंग ।	२५	३९९
६९ कष्ट को अंग ।	२३	४०२
७० दुख को अंग ।	१९	४०६
७१ कर्म को अंग ।	३१	४०७
७२ स्वाद को अंग ।	१३	४१०
७३ मांसाहार को अंग ।	४७	४१२
७४ नशा को अंग ।	३२	४१७
७५ विवेक को अंग ।	१०	४२०
७६ विचार को अंग ।	२४	४२१
७७ धीरन को अंग ।	११	४२४
७८ क्षमा को अंग ।	९	४२५
७९ शील को अंग ।	११	४२६
८० सन्नोप को अंग ।	१२	४२८
८१ सौच को अंग ।	२२	४२९

८२	दया	को	अंग ।	२२	४३१
८३	दीनता	को	अंग ।	१६	४३४
८४	विनती	को	अंग ।	२५	४३६
	प्रश्नोत्तर	को	अंग ।	७४	४४०
	अनुक्रमणिका । (अकारादिक्रमसे)				१-१६३
	शुद्धिपत्र ।	१६४
	शुभनामावली	१६६

आत्मज्ञान में सहायक उत्तम ग्रंथ ।

नाम.

मूल्य.

साखी ग्रंथ (विस्तृत महत्वपूर्ण भूमिका, विरलटीका टिप्पणी सहित)	३—०—०
ब्रह्मनिरूपण सटीक ।	३—०—०
सत्यकवीर शब्दामृत (गुजराती दूसरी आवृत्ति)	१—६—०
कवीर साहेब का जीवन चरित्र	०—६—०
गुरु महिमा पूर्ण माहात्म्य (आ. तीसरी)	०—६—०
ज्ञान स्वरोदय ।	०—२—६
पन्न स्वरोदय ।	०—१—६
दुर्लभ योग—(तीसा जंत्र, तत्त्व स्वरोदय)	०—१—६
मोक्षसोपान (स० कवीर सा० सच्चे उपदेश भा० १)	१—८—०
निर्पक्षज्ञान प्रश्नोत्तर	२—८—०
गृहस्थाश्रम धर्म वर्णन	०—६—०
कवीर साहेबका बीजक (गुजराती रमैनी विभाग)	१—८—०
संन्यापाठ सटीक (गुजराती तथा हिंदी)	०—५—०
कवीर कल्पतरु भजनमाला (गुजराती)	०—८—०
कवीर सुधा (रेखता—झूलना) गुजराती टाइपमें...	०—१२—०
साखियो (गुजराती टीका साथे)	०—०—६
शंका—समाधान—मयंक सटीक	१—०—०
कवीरचरितमहिमा —), वंदगी विचार —), सत्यनाम —)	
सद्गुरु कवीर साहेब का बड़ा फोटू साखी के सहित —); छोटा —)	
पं. श्रीहजूर साहेब, कवीरचरित, धर्मदासजी, प्राकट्य; कवीरसाहेब और राजा बीरमिह । व्यवस्थापक—कवीर धर्मवर्धक कार्यालय	
सीयाबाग, बड़ौदा.	

साखी ग्रन्थ क्या है ?

‘ साखीग्रन्थ ’ इस शब्द के सुनते ही बहुतों के मन में तो यही आयगा कि क्या इस पुस्तक में गवाहों के वयान हैं ? । सचमुच उनकी यह धारणा किसी अंश में ठीक है; क्योंकि सहृदय कबीरने भी स्वयं गवाह बनकर जनता-जनार्दन के सामने बड़ी ही निर्भीकता से अनेकवार खुले वयान दिये हैं । उनके वयानों का संग्रह होने के कारण इसका नाम साखी ग्रन्थ है ।

साखी यह शब्द साक्षी का अपभ्रंश है । “ ब्राह्मणे सति तटस्थत्वं साक्षित्वम् ” अर्थात् झगड़े के मूल को जानते हुए भी वादी और प्रतिवादियों के पक्षपात से जो-रहित हो उसे साक्षी (साखी, गवाह) कहते हैं । सहृदय कबीर साम्प्रदायिक कलह के मूल (परस्पर की अज्ञानता) को जानते हुए भी साम्प्रदायिक पक्षपात की छत से को-सों दूर थे । एक सर्वहितैषी तटस्थ व्यक्ति की तरह वे सर्वों को हितोपदेश दिया करते थे , यही कारण था कि वे हिन्दुओं के गुरु और मुसलमानों के पीर बन सके थे । अपनी इस तटस्थता और सर्वहितैषिता का वर्णन उन्होंने कई जगह किया है ।

कविरा खड़ा बजार में, सबकी चाहें खैर ।

• ना काहू से दोसती, ना काहू से वैर ॥

(बीजक)

जो पक्षपात से रहित होता है वही साक्षी बनकर अनेक उलझनों को सुलझाने में समर्थ होता है । बिना साक्षी बने उलझनों का निपटारा कदापि नहीं हो सकता । सद्गुरु ने भी तात्कालिक साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिये ठीक साक्षी का काम किया था । इसका प्रभाव भी उस समय अपने २ दोन के दीवानों पर बहुत अच्छा पड़ा था । आइने अकबरी में इस बात का उल्लेख है कि 'कबीर साहेबके उपदेशों से प्रभावित होकर शाह अकबर ने सर्व धर्मों और मजहबों की एकता का मार्ग पकड़ा था । ऐतिहासिक लोग अकबर की इस प्रवृत्ति को चाहे जिस दृष्टि कोण से देखते हों; परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि सद्गुरु के उपदेशों से उस समय साम्प्रदायिक कलह मिट गया था । कवि जायसी के समय तक—जो कि सद्गुरु के पश्चात् एक शताब्दी बीतने पर हुए थे—हिन्दू और मुसलमानों का अपूर्व हृदय-मिलन बना हुआ था । इन पूर्व और पश्चिम के यात्रियों को एक रास्ते पर लानेवाले सद्गुरु के ये साक्षी वचन ही थे—

हिन्दू ध्यावै देहरा, मुसलमान मसीत ।

दास कबीर तहां ध्यावही, जहां दोनों की परतीत ।

(सा० पृ० ३१६-१९)

जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलक केहि केरा ।

तीरथ मूरति राम निवासी, दुइमें किनहुं न हेरा ॥'

पूरव दिसा हरी को वासा, पश्चिम अलह मुकामा ।

दिल मँह खोजु, दिलहि में खोजो, यही करीमा रामा ॥

(बीजक)

ऐसे साक्षिवचनों के बिना वह पुराना झगडा कटापि नहीं मिट सकता था ।

सद्गुरु कबीर की साखियाँ (गवाहियाँ) साम्प्रदायिक कलहों की तरह आध्यात्मिक झगडों को भी पिटाती हैं । साखी का अर्थ करने हुए सद्गुरुने इस विषय को स्वयं स्पष्ट कर दिया है ।

साखी आंखी ज्ञान की, समुझ देखु मन मांदि ।

बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नांदि ॥

(बीजक)

श्लेष के कारण साखी का अर्थ साक्षीचेतन और गवाह दोनों होते हैं, इसी प्रकार संसार के झगडे छुटने का अर्थ भी मुक्ति और कलहशान्ति दोनों हैं । संसार के बाहरी झगडों की तरह आध्यात्मिक (भीतरी, घरेलू) झगडों की शान्ति भी साक्षीस्वरूप की प्राप्ति के बिना नहीं हो सकती । जिस प्रकार जुवारियों की हार और जीत से अलग रहनेवाला दीपक उनको केवल प्रकाश देता है; इसी प्रकार साक्षी-कूटस्थ असंग चेतन . संघात (देह और इन्द्रियादिक) के धर्मों से असंग रहकर उनको प्रकाश मात्र देता है । जैसा कि पंचदशी के कूटस्थ दीप में लिखा है—

जो पक्षपात से रहित होता है वही साक्षी बनकर अनेक उलझनों को सुलझाने में समर्थ होता है । बिना साक्षी बने उलझनों का निपटारा कदापि नहीं हो सकता । सद्गुरु ने भी तात्कालिक साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिये ठीक साक्षी का काम किया था । इसका प्रभाव भी उस समय अपने २ दोन के दीवानों पर बहुत अच्छा पड़ा था । आइने अकबरी में इस बात का उल्लेख है कि 'कबीर साहेबके उपदेशों से प्रभावित होकर शाह अकबर ने सर्व धर्मों और मजहबों की एकता का मार्ग पकड़ा था । ऐतिहासिक लोग अकबर की इस प्रवृत्ति को चाहे जिस दृष्टि कोण से देखने हों; परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि सद्गुरु के उपदेशों से उस समय साम्प्रदायिक कलह मिट गया था । कवि जायसी के समय तक—जो कि सद्गुरु के पश्चात् एक शताब्दी बीतने पर हुए थे—हिन्दू और मुसलमानों का अपूर्व हृदय-मिलन बना हुआ था । इन पूर्व और पश्चिम के यात्रियों को एक रास्ते पर लानेवाले सद्गुरु के ये साक्षी वचन ही थे—

• • हिन्दू ध्यावैं देहरा, मुसलमान मसीत ।

। दास कबीर तहां ध्यावही, जहां दोनों की परतीत ।

(सा० पृ० ३१६-१९)

जो खुदाय मदजीद बसतु है, और मुलक केहि बेरा ।

तीगथ मूरति राम निवासी, दुइमें किनहुं न देरा ॥'

पूरव दिसा हरी को वासा, पश्चिम अलह मुकामा ।

दिल मँह खोजु, दिलहि में खोजो, यहीं करीपा रामा ॥

(बीजक)

ऐसे साक्षिवचनों के बिना वह पुराना झगडा कदापि नहीं मिट सकता था ।

सद्गुरु कबीर की साखियां (गवाडियां) साम्प्रदायिक कलहों की तरह आध्यात्मिक झगडों को भी पिटाती है । साखी का अर्थ करने हुए सद्गुरुने इस विषय को स्वयं स्पष्ट कर दिया है ।

साखी आंखी ज्ञान की, समुझ देखु मन मांदि ।

बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नांदि ॥

(बीजक)

श्लेष के कारण साखी का अर्थ साक्षीचेतन और गवाह दोनों होते हैं, इसी प्रकार संसार के झगडे छूटने का अर्थ भी मुक्ति और कलहशान्ति दोनों हैं । संसार के बाहरी झगडों की तरह आध्यात्मिक (भीतरी, घरेलू) झगडों की शान्ति भी साक्षीस्वरूप की प्राप्ति के बिना नहीं हो सकती । जिस प्रकार जुवारियों की हार और जीत से अलग रहनेवाला दीपक उनको केवल प्रकाश देता है; इसी प्रकार साक्षी-कूटस्थ असंग चेतन . संघात (देह और इन्द्रियादिक) के धर्मों से असंग रहकर उनको प्रकाश मात्र देता है । जैसा कि पंचदशी के कूटस्थ दीप में लिखा है—

सन्धयोऽखिलवृत्तीना ममावाश्चावभासिषाः ।

निर्विकारेण येनासौ कूटस्थ इति चोच्यते ॥

सम्पूर्ण वृत्तियों की सन्धि, और सुषुप्ति में उनका अभाव ये सब जिस निर्विकार चेतन से प्रकाशित होते हैं, उसको कूटस्थ कहते हैं । कूटस्थ की असंगता का विचार करनेवाला स्वयं उस पद को प्राप्त हो जाता है; इस लिये उसका विचार सदैव करना चाहिये ।

असद्ग एव कूटस्थः सर्वदा नास्य किञ्चन ।

भवत्यतिशय स्तेन मनस्येवं विचार्यताम् ॥

(पं० कृ० ७०)

कूटस्थ चेतन सदैव असंग है, इसके जन्मादिक अतिशय कुछ भी नहीं होते; अतः सुषुप्त को सदैव ऐसा ही विचार करना चाहिये ।

इसी कूटस्थ का नाम अन्तर्यामी है; क्यों कि वह सबों के भीतर रह कर सत्ता स्फूर्ति देता है । जैसा कि बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण में लिखा है ।

“अदृष्टो दृष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमृतो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता, नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टानान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽनोन्यदार्तम्” ।

जो किसीके देखने में नहीं आता हुआ भी स्वयं देखता है, किसी के सुनने में नहीं आता हुआ भी स्वयं

सुनता है, तथा मन और बुद्धि का विषय नहीं होता हुआ
 म्रयं उनको विषय करता है। इसके अतिरिक्त देखनेवाला
 सुननेवाला संकल्प करनेवाला और जाननेवाला कोई दूसरा
 नहीं है। यही अविनाशी आत्मा तुम्हारा अन्तर्यामी है।

“ असद्गो नहि सज्जते ” इत्यादिक श्रुतियों के अनु-
 सार सबों से भिन्न होने के कारण साक्षीचेतन किसी में
 सक्त नहीं होता। साक्षी की भिन्नता का वर्णन सद्गुरु ने
 भी कई स्थलों पर किया है।

सबका साखी मेरा साँई।

ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर लों औ अव्याकृत नाहीं।
 सुमति पचीस पांच से करले यह सब जग भरमाया।

अकार उकार मकार मात्रा इनके परे बताया ॥
 जाग्रत सुपन सुषोपत तुरिया इनते न्यारा होई।

रासज तामस सात्त्विक निर्गुन इनते आगे सोई।
 सुष्ठम थूल कारन महाकारन इन मिलि भोग बखाना ॥
 नेजस विश्व पराग आत्मा इनमें सार न जाना।

परा पसन्तो मधमा वैखरि चौवानी ना मानी।
 पांच कोप नीचे कर देखो इनमें सार न जानी ॥

पांच ज्ञान औ पांच कर्म की यह दश इन्द्री जानो।
 चित्र सोइ अन्तःकरण बखानों इनमें सार न मानों ॥

कुरम सेस किरकिका धनंजय, देवदत्त, कहँ देखो।
 चौदह इंद्री चौदह इंद्रा, इनमें अलख न पेखो ॥

तत् पद त्वंपद और भसीपद, वाच लच्छ पहिचाने ।

जहदलच्छना अजहद कहते, अजहद जहद बखाने ॥

सद्गुरु मिल सत शब्द लखानै, सार शब्द विलगावै ।

कहै कबीर सोई जन पूरा जो न्यारा करि गावै ॥

साक्षीपद प्राप्त होने पर ही मनुष्य संसार पर विजय प्राप्त कर सकता है; क्योंकि यह संसार काजल की कोठरी और काटों की बाढ़ है, जरासा चूका और गया ।

काजल केरी कोठरी, ऐसा यह संसार ।

बलिहारी वा दासकी, पैठिके निकसन द्वार ॥

काजर ही की कोठरी, काजर ही का कोट ।

तोटी कारी ना भई, रहा जो ओट हि ओट ॥

(साखी ग्रंथ पृ० १०४)

असंग ही का नाम साक्षी है; अतः साक्षीपद की प्राप्ति के बिना किसी प्रकार झगड़ों का अन्त नहीं हो सकता, और झगड़ों के निपटारे बिना निर्वाणपद भी नहीं मिल सकता, इस बात का भी सद्गुरु ने विशद रूप से वर्णन किया है ।

झगगा एरु बडो राजाराम, जो निरुवारै सो निरवान ।

ब्रह्म बड़ा की जहां से आया, वेद बड़ा की जिन्हि उपजाया ।

ई मन बड़ा कि जेहि मन माना, राम बड़ा की रामहि जाना ।

भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरै उदास, तीरथ बड़ा कि तीरथ-दास

(बीजक)

सद्गुरु ने अपनी वाणी में साक्षी के लिये वहीं २ गवी शब्द का भी प्रयोग किया है

हिन्दू कह तो हूँ नहीं, मुसलमान भी नाहिं ।

पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै पाहिं ।

गैबी आया गैब से, यहाँ लगाया ऐब ।

उलटि समाना गैब में, छटि गया सब ऐब ॥

(साखी प्र० पृ० ३१६)

स्वरूप (साक्षी) को प्राप्त होना ही गैब में उलट के समाना है ।

निजरूप की विशेषता ।

साक्षी का निजरूप इसमें भी आगे है; क्योंकि साक्षी तो किसी साक्ष्य की अपेक्षा से है, इस लिये साक्ष्य (संसार) के अभाव में साक्षीपन भी नहीं रहता । साक्ष्य (संसार) हृद है और साक्षी (द्रष्टा, चेतन) बेहृद है; परन्तु परमतत्त्व कुछ और ही है, जिसका सद्गुरु ने इस प्रकार वर्णन किया है ।

हृद बेहृद दोनों तर्जी, अवरन किया मिलान ।

कहँहि कवीर ता दास पर, वारों सकल जहान ॥

(मा० पृ० ३३७)

हृद और बेहृद से परे होने पर परमपद की प्राप्ति से अवर्णनीय आनन्द और प्रकाश का मिलन इस साखी से बोधित होता है । इसी भाव-सुधाशु को पकड़ने के लिये

उर्दू के एक कवि ने भी बड़ी लम्बी उडान मारी थी; परन्तु अन्त में विफल होकर आप अन्धेरे के खन्दक में गिरे गये । सुनिये—

“ न तो मैं रहा न तो तू रहा, रही सो बेखबरी रही ”

सत्यतः वह जीव और ईश्वर से परे का पद है; किन्तु प्रज्ञानघन होने के कारण अन्यकार नहीं प्रकाश है ।

उसी अवर्णनीय निम्नरूप को प्राप्त करनेवाले महात्मा भी दयालु होने के कारण साक्षी बनकर अपने निर्णायक वचनों के द्वारा अनेक जटिल समस्याओं को सुरझाया करते हैं । स्वरूप साक्षी के बोधक और निर्णायक होने के कारण सद्गुरु के वचन भी साक्षीवचन हैं । ऐस ही साखी वचनों का संग्रह होने के कारण इसका नाम साखीग्रन्थ है ।

साक्षी सुचेताश्चितिमात्ररूपः संवर्णितो येन निजात्मदेवः ।
अन्वर्थसंज्ञा गुणतस्ततोऽभूत् 'साखी' ति विद्वानिगुहं भजे तम ।

महन्त विचारदास शास्त्री ।

॥ सत्-कवीर ॥
साहेब कवीर
के
साखी-ग्रंथ
की
अवतरणिका ।



लेखक —

श्रीमान् पूज्य सा० बनमाली गुरुश्री अरविंद ।
बी ए. एलएल., बी.

शान्ति-कुटीर, नर्मदातट.

। सत्-नाम ॥

॥ अवतरणिका ॥

॥ खंड-पहला ॥

माधमी की इस अवस्था में ऐसा महत्व तथा सत्वपूर्ण विशाल-
काय साखी—ग्रन्थ की अवतरणिका अंकित करना मेरे लिये एक
अत्यन्त कठिन तथा सुदुस्तर समस्या है । पर श्रीमान् पंडित मोती-
दासजी साहेब, सम्पादक वो दीवान, कमीर मंदिर, सियावाग, बडोदा
की ऐसी प्रेम-प्रेरणा है कि बिना कुछ लिखे छुटका भी नहीं प्रतीत
होता । उक्त पंडित साहेब को उचित था कि किसी सुयोग्य तथा
प्रशिष्ट व्यक्ति को खोज ढूंढकर और उन पर इसका भार सौंप कर सर्वांग-
सुन्दर तथा पूर्ण मर्मभेदी अवतरणिका तैयार कराते । परन्तु जो
ढूंढने का कष्ट न उठावें, घर बैठ बैठ खाना खाना चाहें, तो उनको
नया उनके पाठशाला को सहज में जो कुछ खूखा सूखा मिल जाय,
उसी पर निर्राह तथा संतोष कर लेने के लिये, भी सदा तैयार रहना
चाहिये । क्योंकि,

“ जब आवे मंतोष-धन, सब धन धूलि समान । ”

(देखो साखी-ग्रन्थ, पृष्ठ ४२५)

“ प्रकृतिं स्वापधिष्ठाय संभवाभ्यारम्भमायया ”

संसार में जितने पदार्थ—चेतन अथवा जड (The conscious or the unconscious), जंगम वा स्थाय (The movables or the immovables),—विराजमान हैं, उनमें से प्रत्येक के बहिरंग की अपेक्षा अन्तरंग कई गुणा अधिक है। उसका प्रकटरूप, उसके गुणरूपों का केवल अंशमात्र है। उसका अव्यक्त, उसके व्यक्त से असंख्यगुणा भी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं। क्योंकि, व्यक्त सदा सान्त होता है और अव्यक्त सदा से अनन्त होता आया है। उदाहरणार्थ, सिनेमा (Cinematograph) के चित्र-पट (Screen) और फिल्म (Film) को ले लो। पट के ऊपर फिल्म का जितना भाग एक समय में दृष्टि-गोचर होता है, उसका अनेकगुणा भाग रील (Reel) में अदृश्यरूप से लिपटा पड़ा है, जो क्रम से उघड़ पट, पट पर अपना चित्र फेंकता जाता है। मानो, अव्यक्त क्रमशः व्यक्त होता हुआ भूतकाल के गाल में समाता जाता है। इसी प्रकार आत्मारूपी अनन्त रील (The infinite reel of the soul) में चोलाखूपी अपरिमित फिल्म (The infinite film of the surface personalities) लपेटा पड़ा है, जो अपने समयानुकूल ममर पट पर अवतरण होता रहता है। यही बात कबीर साहेब की वाणी में इस प्रकार कही जा सकती है कि आत्मारूपी अनन्त फिरफाँ (The infinite shuttle of the soul) में भग्नोरूपी अनन्त सूत (The infinite thread of the wool) लिपटा है, जो समय पाकर संसार रूपी तानी (Warp) पर अवतरण करता हुआ नाना प्रकार के शरीर रूपी वस्त्र बुनता रहता है। इसी बात का भगवान् कृष्ण ने गीता में इस प्रकार से गाया है:—

“वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।”

(गी० अ० २ श्लो० २२)

‘ जैसे मनुष्य पुराने बखों को त्याग कर दूसरे नये बखों को ग्रहण करता है । वैसे जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त करता है । ’

जिसको अपना पेहरान (Coat etc.) अपनी इच्छा के अनुसार बनाने की युक्ति नहीं मालूम है, उसको दर्जों के फेरे में जाने की आवश्यकता बराबर बनी रहती है । पर जिसको स्वयं ज्ञान हो गया है, वह अपना कार्य आपसे ही करके स्वावलम्बन (Self-reliance) का पाठ संसार को सिखाता है । इसी प्रकार जिसको आत्म-अनुभव सम्पूर्ण रीति से हो गया है, वह जिस प्रकार का शरीर जिस समय जिस रीति से ग्रहण करना चाहता है, कर लेता है । यथा,

“आत्मानं सृजामि अहम् ” (गीता अ० ४ श्लो० ७)

“ अपने रूप को रचना हूँ अर्थात् प्रकट करता हूँ । ” अन्यथा दर्जों रूपां काल या कर्म, भाग्य (Fate) वा प्रारब्ध के चक्र में पड़कर, उसके बनाये शरीर को विग्रह होकर धारण करना पड़ता है । अज्ञानी मदा अशक्त रहता है और सज्जानी अनुभवों से दमस्कृत है । वह काल के बश में रहता है और यह काल से ऊपर हो जाता है, जिसको कालातीत के नाम से पुकारते हैं । वह कर्म जन्य प्रारब्ध, संचित अथवा भाग्य को ठोकरें खाता रहता है और यह कामों के चोत्र में रह कर भी इन सभी से छु तक नहीं जान

—“ पद्मपत्रमित्राम्भसा ” (गी० अ० ५ श्लो० १०)

“ जल से कमल के पत्ते की सृष्टि ” । वह जन्म और मरण के फन्दे में पुनः पुनः आता रहता है, “ पुनः पुनः वशमापद्यते मे ” (कठोपनिषद्), और यह फन्दे से एकदम बाहर हो जाता है । इसकी नहीं इच्छा हो तो, नहीं शरीर धारण करे और यदि इच्छा हो तो, वर्तमान शरीर को कायाकल्प कर दे अथवा जैसा शरीर जिस रीति से धारण करना चाहे, कर सके । गर्भ में प्रवेश करके भी जन्म ले सके, यथा, राम, कृष्ण आदि और गर्भ में बिना प्रवेश किये भी, जैमे, ब्रह्मा, महादेव आदि । यह दोनों प्रकार में, योनिज औ अयो-निज, (Sexual & Asexual) जन्म लेने में समर्थ हो जाता है । जो प्राणी-विद्या (Biology) से अभिज्ञ हैं, वे जानते हैं कि ससार में मैथुनी तथा अमैथुनी, दोनों तरह की सृष्टि नित्यप्रति हो रही है । वर्षाकाल में असंख्य छोटे २ मेढकों (Toads, amphibian) की उत्पत्ति, जमे हुये जल में अगणित कीड़ियाँ, अन्नफलादि में नाना-प्रकार के कोटानुकोटि प्राणियाँ प्रतिक्षिप्त जन्म धारण करती हैं । अंडज, पिंडज, ऊष्मज, जलज, अन्नज प्राणियों की उत्पत्ति अहर्निश हो रही है । यह युक्तियुक्त नहीं कि अयोनिज स्रज के स्रज मुक्त होते हैं और योनिज स्रज के स्रज बद्ध होते हैं । अन्तर इतना ही है कि आम-अनुभवी जिस प्रकार चाहे उसी प्रकार से ससार में व्यक्त अर्थात् प्रकटरूप ले सकता है और अज्ञानों को प्रिय होकर प्रेरित प्रकार में संसार में जन्म लेना पड़ता है । भगवान् विष्णु क्षीर-मन्द में अक्षतरूप में पड़े हैं, उनकी नाभि से कमल निकलना है और कमल में ब्रह्मानी प्रकट होते हैं, और उनसे सृष्टि की रचना आरम्भ हो जाती है । जब यह भभव है, तो साहेब कगीर को क्षीर समुद्रग्न्य तरह तागव के कमनीय कमठ में प्रकट होने तथा पत्तों का सृष्टि करने में कौन सी बड़ी विस्मयास्पद तथा विमदास्पद की बात है ? जब महादेव भी

बिना मा-बाप के संसार में व्यक्तरूप ले सकते हैं तो, यदि कबीर साहेब ने भी बिना मा-बाप के संसार में प्रकट होकर, उनका अनुसरण कर, गांता के नीचे लिखे वचन को प्रमाणित कर दिखाया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? —

“ प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवामि आत्ममायया । ”

(गी० अ० ४ श्लो० ६)

“अपनी प्रकृति को आधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूँ।”

“ Brooding over nature, which is mine own, yet I am born through My own Power. *Maya*, the power of thought that produces form ” (The Bhagwad-Gita by Annie Besant & Bhagwandis. P. 74)

माया का अर्थ यहाँ पर वह विचार-शक्ति वा तपो-बल है जो रूप प्रकट करती है। जब अयोनिज जन्म-घटनायें भूतकाल में हुई और निर्यप्रति होती रहती हैं, तो ऐसी घटना यदि साहेब कबीर ने भी स्वसामर्थ्य से (By the form-producing power of thought or meditation) संसार में उपस्थित करी तो, इससे चकित होकर, असंभव ! असंभव !! महा असंभव !!! कहकर चिल्लाने से क्या मतलब ?

पक्षपात-रहित सनातनी भाइयों को तो स्पष्ट हो ही गया होगा, परं दलील की खीर निकालनेवाले आर्य भाई हास्यपूर्ण कटाक्ष करते ही जायेंगे कि, ‘ क्या कबीर साहेब मुनुगा (Insect) या जो फलों में उत्पन्न हुआ ? ’ कबीर साहेब क्या थे वह तो आगे माझम होगा, पर अपने यहाँ की मनुष्य बर्ण देखो है ? उठानों मयार्थ प्रकाश, निकालो सृष्टि प्रकरण, खोलो पत्र ४३ और पद्य प्रश्नोत्तरों को:—

“ (प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ? (उत्तर) अनेक; क्योंकि जिन जीवों के कर्म ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता, क्योंकि

“ मनुष्या ऋषयश्च ये । ततो मनुष्या अजायन्त ।”

यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है । इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मायाप के सन्तान है । (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में ? (उत्तर) युवा-वस्था में, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती, इस लिये युवावस्था में सृष्टि की है । (प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ हीचा नहीं? (उत्तर) नहीं ।” (मत्यार्य-प्रकाश पत्र १४२)

देखा न, एक ही बार सैकड़ों सहस्रों मनुष्य, युवा और युवतिया धड़ाधड़ आकाश से वर्षा-विन्दु की सदृश गिरे और फिर उन लोगों ने मैथुनी सृष्टि की । एक पुरुष को कमल में व्यक्त होने में कटाक्षपूर्ण हंसी उड़ाते हैं और अपने यहां के निराचार सहस्रों मनुष्यों की अमैथुनी उत्पत्ति को युक्तियुक्त बताते हैं ! विज्ञानवादियों तथा मानवसृष्टिवादियों (Evolutionists & Anthropologists) ने पूछ कर देखा कि वे युक्तियुक्त बताते हैं वा हंसी उड़ाते हैं । दूसरों की छोटी पुछी निहारनी और अपनी मोटी ढेवर की बात तक नहीं कहनी, कदा तक न्यायसंगत है ! चरन दूमे बड़नी को निम्न वहनार छेद ।

इनके अतिरिक्त, ईश ई, मुसलमान आदि अन्य धर्म-बन्धु ऐसे चमत्कारों को तो, अपने यहा अवश्य मानते हैं । यदि दूसरों के यहा न माने तो, कोरा दुराग्रह के सिनाय और कुल नहीं कहा जा सकता है । भाइ, सम्यक् आत्म-अनुभवी तो, इसी शरीर को ऐसी काया-कल्प कर सकता है कि पूर्ण ओर पर शरीर के रूप, वर्ण, आकृति आदि सब के सब में ऐसी भिन्नता आ जाती है कि पहचान तक में न आवे । दोनों समय के फोटो (चित्र) तक न मिले । और एक शरीर छोड़ कर दूसरा नया वाञ्छित शरीर लेना या अलग से खड़ा कर देना उनके लिये सरल वो सहज है । पुराने कोट (Coat) को नया बनाना, उसके प्रत्येक सूत्र को केवल स्वच्छ नहीं, बल्कि नये सूत्रगत दृढ़ बनाना अधिक कठिन है । दूसरा नया कपड़ा लेकर नया कोट बनाना आसान है । पर ये सब बातें मन से ऊपर की हैं । कैसे कहा जाय और कौन समझे ! यथा,

“क्या कहिये और नज़ीर आगे अब कौन समझनेवाला है ?”
 स्वयं अनुभव करने की वस्तु को प्रतीति दूसरों की कथनी से क्या कर हो सकती है ? हा, उसकी धुधली झलक (Shadowy reflection) कराने की चेष्टा की जा सकती है । इसमें सफलता की बात दूर रहती है । पर विषय इतना सूक्ष्म तथा गहन है कि, लिखने पढ़ने से यदि दूरस्थ झांकि (Distinct flash) का भी अनुमान हो जाय, तो बहुत समझना चाहिये । क्योंकि, इसका कहना सुनना, समझना समझाना, दोनों ही अत्यन्त कठिन तथा अति दुःसाध्य हैं । कहने सुनने में थोड़ा भी फेर पड़ा कि, कुछ का कुछ परिणाम निम्न पड़ता है । साखन ऐसा सरल पदार्थ गगला (वक Crane) जैसा टेढ़ा बन जाता है । सुनो,

एक था भिखमंगा (Beggar) जो जन्म का अंधा था । उस बेचारे ने अपनी जीवनी भर में कभी भी माखन (Butter) नहीं खाया था । मांगना मांगता किसी ऐसे सद्-गृहस्थ के द्वार पर पहुँचा जो दयालू तथा उदारहृदय का था । जिस समय भिखमंगे ने उसके द्वार पर आग्राज मारी उस समय उस गृहस्थ ने माखन खाने को हाथ में लिया ही था । उसने समझा कि अपने खाने के पहिले यदि इसमें से थोड़ा अपने अतिथि को खिला दें, तो बहुत अच्छा हो । चलो, जरा उससे पूछ तो सही । वस, झट से घर के बाहर निकल कर, द्वार पर खड़े भूखे भिखमंगे को पूछा—भाई, माखन खाओगे ? भिखमंगा—माखन कैसा होता है, दयालौ ? मैंने तो निन्दगी भर में कभी भी माखन नहीं खाया है ।

गृहस्थ—एकदम सुफेद, बकू जैसा ।

भिखमंगा—बकू कैसा होता है ?

गृहस्थ—ऐसा, हाथ को टेढ़ा करके बताया ।

भिखमंगा—(चोंक कर) मैं ऐसी टेढ़ी मेढ़ी चीज़ कदापि नहीं खाऊँगा ।

यह तो मेरे गले में अटक कर मेरे प्राणों को अकड़ ले लेगी ।

आपकी चीज़ आप को ही सुमारक हो । मैं अपना रास्ता लेता हूँ । ऐसा कहता हुआ और उस गृहस्थ को उल्टा पुल्टा सुनाता हुआ आगे चमत्ता बना । गृहस्थ के गारजाग पुकारने पर भी उनकी तरफ मुँह तक न फेरा ।

देखो, ज़रासा सुनने समझाने में परक पड़ा और माखन ऐसा कोमल, प्रिय, सुन्दर तथा प्राणनर्धक पदार्थ कठिन, कर्कश, भयकर तथा प्राणनाशक प्रतीत होने लगा । जब ऐसे साधारण विषय में इस प्रकार का अडचन समझने-समझाने में आ पड़ती है तो, जो सूक्ष्म विषय केवल स्वयं अनुभव-सिद्ध है, उसका क्या पूछना ? क्योंकि,

“ भाश्रयो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धः ” (वटोपनिषद्)

चेतना की साधारण स्थिति (Ordinary consciousness) में मनुष्य अपने आपको बहिष्करण तथा अन्तर्करण में लीन और आत्मसात् (Involved and identified) किये हुये इन्हीं पर निर्भर करता है । शरीर तथा इस छोटे बाहरी व्यक्तित्व (This external bit of his personality or this outer little self) को ही सब कुछ समझे हुये हैं । उसको ऐसी मान्यता सदा बनी रहती है कि, “ शरीर से वह जीता है, आँख से वह देखता है, कान से वह सुनता है, मन से वह विचारता है, इत्यादि इत्यादि । ” परन्तु यह भावना तथा अनुभव कि, “ उस से शरीर जीवन धारण करता है, उससे आँख देखता है (येन चक्षुषि पश्यति केन-उपनिषद्), उससे कान सुनता है (येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्-के० उ०), उससे मन विचारता है (येन आहु. मनो मतम्-के० उ०) इत्यादि इत्यादि ” कठिन साधना करने के उपरान्त साधक को कुछ कुछ प्रतीत होने लगते हैं । अभी तो साहेब कबीर की बानी में ‘ ओरी के पानी बरेड़िये जाय ’ की दशा हो रही है । पर्पाकाटमें खण्डेपोश (नडियावाले tiled) मकान पर जब पानी बरसता है तो ढालें छाननी के नीचले भाग से, जहाँ टोटी सी लगी रहती है, ऊपर का सब पानी सिमट सिमट कर निकलता है । छाननी के इस निचले भाग को “ ओरी ” (Eaves) कहते हैं और छाननी के सब से ऊपरवाले भाग को ‘ बरेड़ी ’ कहते हैं । नियम तो यह है कि, बरेड़ी का पानी ओरी द्वारा निकला करे, नकि ओरी का पानी बरेड़ी के ऊपर चढ़ा करे । पर साहेब कबीर उक्त सरल पर सम्यक्, प्रामाण्य पर सारगर्भावाणी द्वारा जन साधारण की चेतना-स्थिति का कैसा समुचित चित्र (Photo) खींच कर बताते हैं ! पर्पा को सत्-ज्ञान सत्-आदेश अथवा ब्रह्म-ज्ञान ब्रह्म-आदेश समझो, बरेड़ी को आत्मा अथवा ब्रह्म समझो, ओरी को कारण (अन्त-

तथा बहिः) ममज्ञो । पानी पडने को जगह संसार ममज्ञो । समुचिन तो यह था कि, आत्मा स्वच्छ जलद्वय सत्-ज्ञान वा सत्-आदेशों को ओररूप इन्द्रियों द्वारा संसार पट पर चरितार्थ करके इसको निर्मल करता । पर ऐसा न करके सासारिक विषय-वासना रूपा दुर्गेन्ध जल को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करके, ऊपर को चढ़ाकर आत्मा को कलुषित तथा मलिन आवरणों में आच्छादित कर रहा है । यही जनसमुदाय को विपरीत-करणो है, जिसको सद्गुरु साहेब देख कर बौल उठे “ ओरिया के पानी बरेड़िये जाय । ” सीधी और शुद्ध स्थिति का सरस तथा मर्ममैदो वर्णन तो, नीचे लिखी साखी में है, जो मननीय और माननीय भी है—

“ कबीर सीप समुद्र का, खारा जल नहि लेय ।

पानी पीवै स्वाति का, शोभा सागर देय ॥ ”

सा० प्र० पृ० २१८

जैसे सीप समुद्र में वास करते हुये भी समुद्र के खारे जल को न लेता, स्वाति नक्षत्र के वर्षा-वृन्द को अपने भीतर धारण कर, मोना तैयार करके सागर को शोभायुक्त करता है । वैसे ही सत्-धुरूप संसार में रहते हुये भी संसार के विषय वासना में लिस न होकर, अपने सत्-ज्ञान से संसार को शोभायमान करते हैं । कहा गये सिंह उपाध्याय जी, पोयाधारी गाली जी, अभिमानी दलीलमाल जी जो साहेब कबीर को उटपटांग बोलनेवाले, भुनुगा आदि घृणित नामों से पुकारते हैं ? ऐसे सत्-गुरु, मम-उपदेष्टा वो दिव्य-द्रष्टा को जो उटपटांग बोले उनको जो कुछ कहा जाय वही थोड़ा है । क्या, लूट-उछटे चोर कोतवाल को दंडे !

साधारण मानव-स्थिति में कर्ता-पुरुष (Creative soul) सोआ (Sleep-bound) रहता है, अथवा घर के झगड़ों के शान्त होने की बात देखता रहता है, अथवा प्रकृति के मोहिनीरूप में चकाचौंध होकर अपने आपको भूला हुआ रहता है। प्रकृति के स्वामी बनने के बदले इसीका दास बना हुआ रहता है। स्वामी होकर दासी का दास बना ! कैसा भृगुपतन है ! ! इस पतित अवस्था में पड़ा हुआ जीव यदि वेदव्यास, मुनि वाल्मीकि, योगेश्वर कृष्ण, आचार्य्य शंकर, स्वामी रामानन्द, साहेब कबीर आदि स्वराटों (Self-masters) और सम्राटों (World-masters) की शक्तियों तथा चमत्कारों पर आशंका करे तो, इसमें कोई आश्चर्य की बात ही नहीं। जो गीदड़ सूखे पत्तों की खरखराहट में भयभीत होता रहता है, वह वनराज केसरी के सामर्थ्य का अन्दाज़ा कैसे लगा सकता है ? भारतवर्ष के नामी पहिल्यान गामा की ताकत का पता संसार के नामी योद्धा (World-champion) जमिस्को को लगा, क्षयी-पीड़ित बांग्गालदेशियों को क्या लगना है ? सिंह के बल को भूधराकार वृक्ष उखाड़नेहार मदमस्त हस्ति ही जानता है, चूहा (Under Mouse) नहीं। वसन्त के गुण को कोकिल जानकर मस्त हो जाता है, काका क्या समझे ? " करी च सिंहस्य बल न मूपकः, पिको वसन्तस्य गुणं न वायसः । " इसी प्रकार साहेब कबीर की सचोट आध्यात्मिक कविता को (Where more is meant than meets the ear-Milton) जग-विख्यात कमीन्ड रवीन्द्रनाथ टागोर ने Kithi's Poem (कबीर साहेब की कविता) अंगरेजी भाषा में प्रकाशित कर साहेब के मूल्यों तथा प्रशंसक Underwood में मर्ममंशी भूमिका लिगाकर समुचित मान दिया। परन्तु चुनकर तो चपल

लेखक, पश्चिमीय साहित्य-सैनी माला (Men of Letters Series) के लकीर के फकीर लेखक, कविता के चोर वो कोर के रगड़नेवाले, पैमे पैमे पर कलम बसनेवाले (Penny-a-liner) कवीर साहेब की सहज कवि-शक्ति तथा रहस्यमय उक्तियों को क्या जाने, पहचानें और मान करें ! " गुणी गुण वेत्ति न च वेत्ति निर्गुणी " साहेब की सिद्धियों को बादशाह शिकंदर शाह लोटा और उनके गुरु गंजनकी ग्राह जाने । उनके आत्मबल का परिचय बलब बुखारे के बादशाह सुल्तान अहमद शाहको मिला, जो " बन्दीछोड " का पद उन्हें दिया । जड़-मूर्तियों पर उनके प्रभाव के बारे में धर्मदासजी तथा गोलकान्डा के बादशाह, यानाशाह के मन्त्री के जमाई गोयाना, भद्र-चालम के राममन्दिर के पुजारा को पता चला । कर्तापुरुष की बातें कर्तापुरुष ही जानें या जिनको वो जनावे वें जानें ।

“ यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः । ”

ऐसे कर्ता-पुरुषों (creative souls) के मनोमय कोष में भी चतृत्व-शक्ति (creative mind) भरी रहती है । ये महापुरुष संकल्पमात्र में कठिन में कठिन कार्य सम्पादन किये हैं और कर सकते हैं, जो निम्नस्थों के मस्तिष्क में समा नहीं सकते । इसमें इन विचारों का भी कुछ दोष नहीं । जैसी स्थिति, वैसा ज्ञान । जैसी समझ, वैसी वार्ता । आभा के ताजमहल की बूजियों (towers) पर से जो जमुना का विस्तृत और साहसना दृश्य दिखाई देता है वो नीचे के कमरों में से बैठ बैठ कैसे मालूम पड़ेगा ! कुछ ऊपर चढ़े तो ऊपर चढ़े की बात समझे । कुछ " गगन-मंडल " में उड़े तो उड़ेहुओं का तमाशा देखे । कुछ, उन्नत कार्य करे तो, उन्नतों का कार्य समझ में आवे । ध्यान धर के सुनो जो एक महान तत्त्ववेत्ता (जिन्होंने अपने

जोर्गे, जॉर्ज, काले कुचैले, शरीर के अंग प्रत्यंग को तपोबल द्वारा परिवर्तन कर—transforming the minutest cells of his body by tapas Shakti हृष्टपुष्ट, स्वस्थ रोगमुक्त—immune from disease—सुवांग—सुन्दर, काया-कल्प वो काया-कंचन बना चुके हैं) बल पूर्वक आत्म-अनुभव की बात कहते हैं :-

“ All these things we observe and reason of in terms of this embodiment of mind in matter; for these sheaths or koshas (कोष) are formations in a more and more subtle substance reposing on gross matter as their base. Let us imagine that there is a mental world in which mind and not matter is the base. There sense would be a quite different thing in its operation. It would feel mentally an image in mind and throw it out into form in more and more gross substance; and whatever physical formations there might already be in that world, would respond rapidly to the mind and obey its modifying suggestions. Mind would be masterful, creative, originative, not as either obedient to matter and merely reproductive or else in struggle with it.”

(Arya by Sri Aurobindo)

“ In more detail, particular forces, movements, powers, beings of a higher world can throw themselves on the lower to establish appropriate and corresponding forms which will connect them with the material domain and, as it were, reproduce or project their action here.”

(The Riddle of this world by Sri Aurobindo).

महान् तत्त्वज्ञा श्री अरविन्द के उक्त वाक्य का सारांश यह—
“महत्वा कि, माधारण मानव-स्थिति में मनोमय-कोष का आधारभूत

जड़ प्रकृति है । उच्च चेतना के मसर्ग से तब यह मन शुद्ध तथा

(Spiritualised) हो जाता है, तब यह जिस कल्पित रूप

का अपन में गड़ा कर जड़ जगत में फँसता है उस रूप को तब

प्रकृति स्थूल रूप में धारण कर जगत में चरितार्थ करती है। पसा सिद्धि

के मनोमय कोष में स्थापित, कर्तृत्व तथा मूलकत्व मड़ा विगनत हैं ।

अन्यथा वह प्रकृति का दास बना रहता है । सिंह हाकर, अज्ञान

में गोंदड़ को अपना बराबर समझ कर, उसी में लड़ना भीन्ता रहता

है । हम रहस्य को मर कोड़े कमें जान ना समझे । यथा—

“ नित लट सिंह सियार (Jaehal) में जूझे ।

कबीर के पद जन विरला जूझे ॥ ”

(साहेब कबीर)

आगे चलकर उक्त तन्त्रवेत्तानी और भी स्पष्ट कर दत है कि, उच्च

आत्मा या कर्तापुरुष अपने मूक्षम या सत्-लाभ से अपन तन का

इस प्रकार से स्थूल जगत अथवा भूलोक पर फँस सकता है कि

उसका एक प्रतिरूप जगत में माझम पड़ जो उसका कार्य्य वहा

पर किया करे । ऐसी अवस्था में यह अपन तेना, व्यक्त

तथा अव्यक्त, क्षर तथा अक्षर, (Mutable and immutable

personal impersonal selves) म्यों में मचेत विरानमान

रहता है । एक दूसरे में सम्यन्ध नेतार के तार (Radio Trans-

mitter and Radio Receiver) की तरह अदृश्यरूप में मड़ा

रहता है, जैसा के साहेब कबीर ने अपन शेर में मधुररूप में

सकेत किया है —

• रहता (Immutable), पुरुष कबीर है,

चलता (Projected mutable personality) हैमो मेख ।

कहाँ कहाँ ग़ाल कर स्पष्ट कर दिया है । यथा—

“अब हम अविगतसे चलि आये, काह भेद मरम नहिं पायें ।
ना हम जन्मे गर्भ वसेरा, बालक होय दिखलाये ।
काशी शहर जंगल विच हेरा, नहाँ जुलाहा पाये ।
ये विदेह देह धरि आये, काया कबीर कहाये ।”

माहेंब कबीर के इसी विलक्षण अवतरण तथा उनकी अनादि योग—
माया को कवीन्द्र रवींद्रनाथ टागोर इस प्रकार अंगरेजी में लिखते हैं:—

“Brahma did not hold the crown; the God Vishnu was not anointed as king; the power of Shiva was still unborn; when I was instructed in yoga. I became suddenly revealed in Benares.”

(Kabir's Poem by Ravindranath Tagore).

इस विषय को और विस्तार रूप दिया जा सकता है । पर
समक्षद्वार के लिये काफी है । नासमझ को कहा तक समझाना !
अन्त में, गरीब साहेंब के सत्य वचन को सामने रख कर, इस प्रकरण
को यहीं छोड़कर, आगे बढ़ना ही उचित प्रतीत होता है :—

“गगन मंडल से उतरे, सतगुरु, पुरुष कबीर ।

जलज मांझि पोदन किये, सब पीरन के पीर ॥”

[ग्रंथ साहेंब]

अर्थात् सत्-गुरु, सत्-पुरुष, सब पीरों के पीर, माहेंब कबीर,
(मध्वत् १४५५ के जेठ की पूर्णिमा के ब्राह्म मुहूर्त में) गगन
मंडल से उतर कर, (काशी के लहर तालाब में) कमल पुष्प पर
प्रकट हुये ।

॥ खंड-दूसरा ॥

“ गुणाः पूजाम्थान न च लिंगं न च वयः । ”

(भवभूति)

“ गुण पूज्य है, न कि, वर्ण, आश्रम अथवा उमर । ”

जो कोई अपने को कुलीन मान कर, दूसरों को कुट्टहीन समझ कर, वृणा को दृष्टि से देखता है, और जो कोई अपने को कुट्टहीन मानकर, दूसरों को कुलमान समझकर, आदर की दृष्टि में देखता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ (Deluded) हैं। एवं जो कोई अपने को उच्च वर्ण का समझ कर दूसरों को नीचा देखता है, और जो कोई अपने को नीच वर्ण का समझकर दूसरों को उचा देखता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। तथा जो कोई गेरुआ या भगवा बल धारण करने में अथवा घौल कपडा या तिलक छाप (Trade-mark व्यापार-चिन्ह) केवल लगाने से अपने आपको ब्रह्मनिष्ठ अथवा भक्तराज समझ कर, दूसरों को त्रिपय-लित अथवा समझता है, और जो कोई गृहस्थ माना शरीर पर सादा कपडे रखने में अपने को रोगे ब्राह्म की अपेक्षा निवृष्ट मानता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। इसी प्रकार जो कोई अपने को केवल बड़ी उमरवाला (Older in age) समझ कर, दूसरों को अपने से कमअरु समझता है, और जो कोई अपने को फलत छोटी उमरवाला समझ कर, दूसरों को अपने से अरुमंड समझता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। क्योंकि,

“ यत् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः । ” (श्रुति)

“ जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् भवेत् द्विजः । ” (स्मृति)

“ जन्मार्थस्य यतः । ” (वेदान्त)

“ पमैवांशो जीवल्लोके जीवभूतः सनातनः । ” (गीता)

माराश यह निकला कि धीर, स्थिर बुद्धिवाले धीमान लोग उस
 एक निम्न विभु के गर्भ से निकले हुये सभी को जानते हैं। जन्म से सब
 कोई गूढ़ पैदा होता है, संस्कार से श्रेष्ठ बनता है। इस जीवलोच
 में यह जीवात्मा उसी भगवान का ही सनातन अंग है। पुराण
 कुरान अथवा बाइबिल (Bible) के अनुसार भी सब मनुष्य व
 आदमी एक मनु अथवा आदम से पैदा हुये हैं। सब के कुल व
 मूल पुरुष तो, वही एक ही निकलना है। फिर कुलों कोन और
 कुलहीन कोन, ऊंचा कोन और नीचा कोन ? ऐसे गम्भीर ज्ञान
 माननीय प्रमाण तथा सार्वभौम इतिहास के सामने रहते हुये भी
 किसी के गुण की तरफ न देख कर, केवल “ जौलाहा ” “ जौलाहा ”
 पुकार कर, अपमानित करते जाना, कहा तक न्याय-संगत है ? पूजा
 गुण को करनी चाहिये, न कि, कुल और कपड़ों की। पिछले खंड में
 बताया जा चुका है कि साहेब कबीर कहा से आये।
 उनका कुल व मूल अक्षर पुरुष है। वह गीता की भाषा में
 साक्षात् ऊर्मूलः अधःशास्त्रः थे। परन्तु थोड़ी देर के लिये यदि
 मान भी लिया जाय कि साहेब कबीर जौलाहे के घर में हुये वा पले
 तो इसमें वृणा से नाक निकालने की कोनसी बात है ? सिलमिले
 चार घर बाहर दोनों की सुनो, —

वाल्मीकि मित्रात के घर पैदा होकर, राहगीर, बटमार और
 हथियारा के जीवन व्यतीत कर, पीछे सत्-संग से मुनि-पद को पाये।
 वशिष्ठ जी चेट्या के पुत्र होकर, अपने तपोबल से भगवान रामचन्द्र
 के गुरु बने। नारद दासी-पुत्र होकर, भक्ति के प्रभाव से देवर्षि
 कहाये। हजरत ईसा (Christ) बिना बाप के पैदा होकर भी एक
 महान धर्म (Christianity) का प्रवर्तक बने। अगस्त्य बिना मा

के घट से उत्पन्न होकर भी ऋषि पद को पाये । कृष्ण अहार (जिस को सामाजिक स्थिति जोलाहे को ऐसी है) के घर में होकर अथवा पल कर जगत्-गुरु बने । फिर साहेब कबीर के प्रति इतना रगडा झगडा क्यों ? उन पर आश्चर्य से आख फारने से क्या मतलब ? सत् चुलसी दासजी ने भी गुणग्राहकता को और ध्यान खींचते हुये, अपनी रामायण में इस प्रकार अंकित कर, प्रशमनीय उदारता का परिचय दिया है —

“मज्जन फल देखिय ततकाला । काक होहिं पिक बक्रइ मराछा ॥
मुनि आचरज करइ जनि कोई । संत-संगति-महिमा नहिं गोई ।
बालमीकि नारद घटयोनि । निज निज मुखन कही निज होनी ॥”

“सत्-सगरूपी तीर्थ में स्नान करने का फल तत्काल दिखाई देता है कि कौए कोयल और बगुले हस हो जाते हैं । यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्यों कि सत्संग की महिमा छिपी नहीं है । माल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपनी उत्पत्ति अपने मुखों से कही है ।”

जब नीच से नीच कुल में उत्पन्न होकर तथा घृणित से घृणित तरीके से जन्म लेकर भी सत् के सग से उच्च से उच्च पद तथा मान को मनुष्य प्राप्त कर लेता है, तो जा स्वयं सत् के अवतार साहेब कबीर थे उनका क्या पूछना ? विस्तार के भय से पुश्तली-पुत्र ऋषि जावाली, नियोग से उत्पन्न धर्मराज युधिष्ठिर आदि का उल्लेख करना ठीक नहीं प्रतीत होता । पर ऊपरी आडम्बर को छोड़कर सदा भीतरी गुण पर ध्यान देना चाहिये । व्यक्तित्व की कीमत होती है, न कि, जातीयता की । क्योंकि,

‘जातिमात्रेण न कश्चित् दन्यते पूज्यते कश्चित् ।’

राम क्षत्रिय वंश अथवा जाति के थे और रामण ब्राह्मण कुल अपना जाति का था । पर राम भगवान कहाये कि जिनका नाम आज

लम्बों वर्ष के बाद भी सत्र वर्षों के लोगों की जिह्वा से आदरपूर्वक निकलता है। और रावण राक्षस कहाया जो कि अब तक घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। फिर वही राम के कुत्र में लग्न हुआ। उनका कोन नाप करता है ? फिर लग्न हुआ के बाद में जो जो हुये उनके नाम तक लोग नहीं जानते। सदा तब की तरफ दृष्टि रखनी चाहिये, नकि ऊपर के आचरण के ऊपर। सहैत्र ने कैसा सचोटा उपाय—सहित सामी कही है।

“ जात न पूछा साध की, पूछ लीजिये ज्ञान ।

मोल करो तलवार की, पड़ी रहन दो म्यान ॥”

साधु की जाति पानि की कीमत नहीं, उसके ज्ञान की कामत है। तलवार क चमकिले म्यान (Sword-case) को बाहर हटा कर, तलवार की कीमत करनी चाहिये। भगवत—भक्त तथा तन्मयता प्राप्त हुये में जाति पाति का प्रश्न रहता ही नहा। वह भगवान का एक स्वरूप बन जाता अथवा बना रहता है। यथा,

“ वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।

ब्रह्मो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमा आगताः ॥ ”

(गीता)

“ राग, भय और क्रोध से रहित अनन्य भाव से मेरे में स्थितिगले मेरे शरण हुए बहुत से पुरुष ज्ञानरूप तप से परित्र हुए मेरे स्वरूप को प्राप्त होचुके हैं।” जब बल्लभ दुम्भारे के बादशाह सुल्तान अहमदशाह का साहज कबीर के आमंत्र का परित्रय मिला तब बंधे माधुलोग माहन को ‘ बन्दीछोड ’ कह कर चिन्ता उठ और खुद ‘ सुल्तान, साहज के पैरों पर गिर कर कातर स्वर से वितति करने लगा —

“ हमारी जान बक़रों, आप तो खुद खुदा की जात, पान धी साफ़ हो ”

कनाद रवीन्द्रनाथ टागोर ने भी इसी अभेद भाव को अंगरेजी में निम्न प्रकार दर्शाया है ।

“ It is needless to ask of a saint the caste to which he belongs

For the priest, the warrior, the tradesman, and all the thirty-six castes like are seeking for God

It is but folly to ask what the caste of a saint may be.

The barber has sought God, the washerwoman, and the carpenter Even Ravidas was a seeker after God The Rishi Swamicha was a tanner by caste Hindus & Moslems like have achieved that End where remains no mark of distinction

(Kabir's Poems by Ravindranath Tagore)

किसाने क्या ही सच कहा है ।

“ जान पान न पूछे कोई, दमि को भजे सो हर को होई । ”

॥ खंड-तीसरा ॥

“ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तं आहुः पंडितं बुधा ”

(गीता)

“ उस ज्ञानरूप अग्नि-द्वारा भस्म हुये कर्मों वाले पुरुष को बुद्धिमान जन पंडित कहते हैं । ”

बुद्धिमानों के पंडित और मूर्खों के पंडित में भेद है । बुद्धिमानों की दृष्टि में वह पंडित है जिसने अपने ज्ञान के प्रभाव से कर्म के बन्धन को छिन्न भिन्न कर डाला है । और मूर्खों की नजर में वह पंडित है जो मोटी मोटी प्रख्यात पुस्तकों (वेद, कितेब—The Vedas, the Bible, the Koran, श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण, रामायण, भागवत, महाभागवत, गीता आदि) को पाठ तथा क्या मनोहर रूप से किया करे । पाठ तथा क्या के ज्ञान में परे रहने अथवा विपरीत आचरण करने से भी पंडित नाम ज्यों का त्यों बना रहता है । फोनोग्राफ के रेकर्ड (Phonographic Record) की तरह दूसरों के मन को खुश किया करे, पर अपने तो अशान्त होकर उक्त रेकर्ड की सदृश चक्र में फिरा करे । तोते (पोपट) की तरह मोठों स्वर से “ सोऽहं ” का जाप सिखाया तथा किया भी करे, पर अपने सत्य-रूप से सदा भिन्न रह कर, विपरीत करनी करता हुआ, कर्म के बन्धन-रूप पंजरे में उक्त तोते की तरह ज़ुबरा भी रहे । ज्ञानी पंडित स्वर्गीय संकल्पों को किनारे करता हुआ, प्रमुग्धरित कर्मों को निष्काम तथा निःस्पृह भाव से संपादन करता हुआ भी कर्मों के फन्दे से सदैव अलग रहता है । पर मूर्ख-पंडित शास्त्र तथा ज्ञान

को बात चिन्ता चिन्ता कर पढ़ता अथवा सुनाता हुआ भी अपने को उससे सदैव वंचित रखता है । यथा,

“शास्त्राण्यधित्यापि भवन्ति मूर्खाः ।

यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ॥ ” (नीति)

“शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख होते हैं । जो शास्त्रज्ञान के अनुकूल आचरण करता है वही विद्वान् है । ”

एक-शास्त्री हो अथवा पद्मशास्त्री हो, द्विवेदी हो वा चतुर्वेदी, पर यदि जो वेदों, शास्त्रों के ज्ञान को आत्मसात् नहीं किया, जो ज्ञान को धूर्त दुकानदार की तरह केवल दूसरों के मन को आकर्षण कर, पैसा आदि ब्याचने के निमित्त दिखावा-गृह (Show-room) में रखे रहता है, जो शास्त्र-ज्ञान से तन्मयता न प्राप्त कर, अपने आचरण से उसको स्पष्ट नहीं करता है, वह शास्त्रा-मूर्ख है । और जो वेदान्त आदि शास्त्रों की मारा-मारी (Intellectual fights disputes and quarrels) से त्रिस्तुब्ध अनभिज्ञ रहकर भी, यदि अपने रूप में स्थित होकर अपना वर्तान तथा आचरण को शुद्ध रूप में प्रगट करता रहता है, वह अपठित-विद्वान् है । नीति के उक्त भाग को साहेब कबीर ने सरल ग्रामीण उपमा के साथ निम्न शास्त्री में कैसा सचोट स्पष्ट किया है !

“ करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिनरात ।

कूकर ज्यों भूकत फिरे, सुनी सुनाई बात ॥ ”

(सा० प्र० पृ० ३६१ सं. ४)

उक्त अर्थ में हम कहा करते हैं कि साहेब कबीर “ अपठित विद्वान् ” थे, और गीता के अनुसार “ बुद्धिमानों के पंडित ”

थे, अक्षर रूप में “ ऊर्ध्वमूल ” थे और शरीर रूप में “ अवः-शाख ” थे । यह बात बिल्कुल ठीक है कि साहेब व्याकरण, वेदान्त आदि ग्रन्थों के मूल, भाष्य अथवा महाभाष्य को रटे हुये नहीं थे, और न उनको ये सब रटने की जरूरत ही थी ! वह न्याय के “ अन्वय ” “ व्यतिरेक ” आदि के प्रपञ्च की रगड़ से अलग थे, और न उनको ये सब रगड़ में पड़ने की कुछ आवश्यकता ही थी । द्रव्य में गुण है कि गुण में द्रव्य है ऐसे निरर्थक शास्त्रार्थों अथवा वाद-विवादों से परे थे, और न उनको ये सब वादविवादों की आवश्यकता ही थी । उनको तो “ एके अनेके अनेके सो एके ” (Unity in diversity) का प्रत्यक्ष ज्ञान (Direct perception) था । फिर उनको बेकार झगड़ा से क्या मतलब ? व्याकरण पढ़ा जाता है लौकिक तथा वैदिक साहित्यों को समझने के लिये, और साहित्य पढ़े जाते हैं प्रकृति वी पुरुष के ज्ञान के लिये । परन्तु पुस्तकों से सदा परोक्ष (indirect) ज्ञान हुआ करता है । फिर जिस साहेब कबीर को प्रकृति वी पुरुष का सहज तथा प्रत्यक्ष ज्ञान था, उनको उक्त पगथियों (songs) पर माथापची करके परोक्ष ज्ञान लेने से क्या मतलब ? डंगर (mountain) खोद कर ऊँदर (mouse) निकालने से क्या प्रयोजन ? मुनी और समझोः—

एक था राजा जो पठिन था । उसके कोष में कोटानुकोट रुपये, बहुत सोने वी बहुमूल्य रत्न आदि पड़े रहते थे । उसकी आल्मारियों (Book-Shelves, almirahs) में वेद वेदान्त, इतिहास पुराण आदि अनेक ग्रन्थ भी भिराजमान थे । राजकीय कार्य से अनकाश बैठने पर ग्रन्थों को रस्य अनजोमान भी लिया करता था तथा कबको से इनकी कथा भी सुना करता था । उसकी रानी कुछ भी पढ़ी लिखी

नहीं थी। पर सांसारिक घटनाओं को विचार-पूर्वक देखा करती थी और आप ही आप कुछ मन्तव्य निकाल कर मनोमय कोष में एकत्रित किया करती थी। संसार के सब पदार्थों का एकमात्र स्वामी, भगवान को, दिल से समझती थी। राजा के पुरोहित तो खूब पड़े लिखे थे और अच्छे कथक्कड़ भी थे। मोटी मोटी पोथियां वो थैलियां घर में तयार साथ भी रखा करते थे। कथा का पूर्णाहृतियों के समय पर पोथियां फट्टों से तर हो जातीं और सिद्धुड़ी हुई थैलियां रुपों से भर कर फूट जातीं। कथा के आरम्भ करते ही पूर्णाहृति के दिन वो तिथि उनके ध्यान में उपस्थित होजाती थी। भार्यी (Coming) पूर्णाहृति की आमदनी का हिसाब दिनरात में कई बार जोड़ लिया करते थे। अभिष्ट से काम की आशंका मदैव लगी रहती थी। फिर दूसरी जगह कथा करने का प्रोग्राम (Programme) आपही आप रचकर मन को समझाते बुझाते। इसी उधेड़-धुन में जीवन का अधिक समय बीता करता था। निन्नावे का फेर ही ऐसा है। उमर तो साठ तक पहुंच कर शरीर को कुछ झुका चुकी थी पर तृष्णा तो वर्षाकाल के तरुण तरुण के ऐसा दिन दूना वो रात चौगुना सीधी ही बढ़ती जाती थी। जैसे राजा को दो तीन लड़के लड़कियां थीं वैसे पुरोहित जी को भी। एक दिन पुरोहित जी अपने घर के निकटवर्ती राजमहल में पधारे। राजा ने पुरोहित से कहा कि गीता का कुछ ज्ञान सुनाओ। पुरोहित ने एवमस्तु कहकर :-

अन्तवन्त इमे देश नित्यस्योक्ताः शरीरिणः—

के आधार पर शरीर को मरणशील, अन्तवाला तथा आत्मा को नित्य और अनन्त, अनेक प्रमाणों तथा रोचक उदाहरणों से सिद्ध कर दिखलाया। वार्ता के बीच बीच में राजा रानी को (जो कौंसा

दूसरे विचार में मग्न थी) पुकारा करते थे कि जिनमें वह भी इस
 ज्ञान को ग्रहण करें । वह एक बार आई और थोड़ी देर सुन कर
 चली गई । थोड़ी देर के बाद पुरोहित भी अपनी वक्तृता समाप्त कर
 राजा को खुश कर, दक्षिणा रूप नगद नारायण (Cash) पर हाथ
 रखते हुये अपने घर को सिधारे । दैन्ययोग से दो ही दिन के बाद
 राजा तथा पुरोहित के बच्चे लड़के महामारी (Cholera) रोग से
 ग्रस्त हुये ओ लाख दवादान्त करने पर भी दोनों ही के शरीर का
 अंत होही गया । इधर राजा आर्तनाद से रोते थे और उधर पुरोहित
 भी छाती पीट पीट कर चिल्ला रहे थे । रानी शान्त तथा प्रसन्न चित्त
 में बैठ रही थी । लोग विस्मय में आकर रानी से पूछने लगे । उसने
 यही कहा कि शरीर नागमान है, ऐसा तो मुझे अनेक मृत्यु-घटनाओं
 में प्रत्यक्ष ही था, पर आत्मा नित्य है यह पुरोहित के परसों के
 प्रवचन से सिद्ध ही होगया है । फिर रुदन करके शोर मचाने की
 कोन सी जगह है ? इसके अतिरिक्त सारा ससार का एकमात्र स्वामी
 भगवान है । वहीं न्यायानुसार सब को देता है और ले भी लेता है ।
 यह देवे, न देवे, दिया हुआ भी ले लेवे, इसमें किसी का क्या चारा
 है ? थोड़े ही सरल और सच्चे सब्दों में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, समर्पण
 आदि के मूल मंत्र बता दो और उन पर वर्त कर दिखादी । विचारो,
 तीनों के सामने एक ही घटना समानरूप से उपस्थित है । अपठित
 अवला ज्ञान्त है और पठित राजा तथा पोथाधारी पुरोहित व्याकुल
 है । साहज ने कैसा ठोक कहा है —

नजर नहीं आवत आत्म-ज्योति ।

कहत कवीर सुनो भाइ साधो, घर घर वांचत पोथी । न०

भाइ, आत्म-ज्योतिमाले को पोथा पोथी की आवश्यकता नहीं है ।
 परम-हंस रामकृष्ण जी क्या पढ़े थे ? उन्होंने कोन सा पोथा लिखा

हे ! परन्तु उच्च से उच्च कोटि के विद्वान् स्वामी विवेकानन्द जी ऐसे भी उनको अपने गुरु के नाम से पुकारने में फ़ख़र (Pride) समझते थे । उनके नाम पर सेवा-आश्रम आदि खोलने में कल्याण समझते थे । जगत में विख्यात फ़्रेंच लेखक रोमा रोलांड (Roman Rolland) ने उनका विस्मय-जनक जीवन लिखा है । हज़रत ईशा (Christ) अपना हस्ताक्षर (Signature) भी करना नहीं जानते थे । पर आज करीब दो हज़ार वर्ष के बाद भी उनकी उक्तिया प्रमाणरूप से कही जाती हैं । लोगों में उनकी प्रतिष्ठा ऐसी बढ़ी कि उनकी जन्मतियि से ईश्वरी सन् वा सम्बत का आधिभाव हुआ, जो आजतक चाछ है और आगे भी चाछ रहेगा । पोथा पोथियो को बहुत पढ़ने से तो किसी को सत्य-ज्ञान न होकर उल्टा भ्रम बढ़ जाता है और कभी कभी धुंवरारा भी बन जाता है । अनेकों को तो मिथ्या अभिमान का ऐसा गाढा रंग चढ़ जाता है जो जीवन के अंत तक साफ़ होता ही नहीं । बलके दिन प्रति दिन बढ़ता ही जाता है । " पयःपाने भुजंगाना केवलं त्रिष-वर्धनम् " की दशा होती जाती है । अप्रुतरूप दूधपान साप में त्रिष ही उत्पन्न करने का निमित्त बनता जाता है । मन में पांडित्य का अहंकाररूप मल ऐसा भर जाता है कि सत्-ज्ञानरूप ब्रह्म (सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म-उपनिषद्) में लीन होने की जगह भ्रम में चकर मारते रहते हैं । अभी थोड़े ही दिन की बात है कि गुजरात में एक प्रख्यात ब्रह्मनिष्ठ, गीता के ज्ञान के मन्दिर को रचानेवाले, अपने को विद्या के पंडित माननेवाले, भ्रमनिष्ठ मबूत हुये और इस प्रदेश से बाहर भुल छिपा कर भागे फिरते हैं । पहले बहुत दिन तक गुप्त रही । पर अब तो सर्व साधारण (Public) में एकदम प्रकट होगई । ननु नच अगर मगर को जगह भी नहीं रही । यथाः—

अविद्यायां अन्तेर वर्तमाना : स्वयं धीरा : पंडितं मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्येनैव नीयमाना यथान्धाः ॥

(उपनिषद्)

आत्मा असंग है (असंगोऽयं आत्मा) का उलटा पाठ पढ़ कर घार कुर्कर्म में रत होते हुये भी अपने को पंडित वो ब्रह्मनिष्ठ कहते ही जाते हैं । असत् पदार्थ वो विषयों से गला जोड़ते हैं और सत् ब्रह्म को अपना प्रीतम (Beloved) बनाना छोड़ बैठते हैं । कबीन्द्र रवीन्द्र ने साहेब के इसी भाव को अंग्रेजी में इस प्रकार व्यक्त किया है—

I have learned the Sanskrit language, so let all men call me wise; but where is the use of this, when I am floating adrift, and parched with thirst, and burning with the heat of desire ?

Kabir says : " To no purpose do you bear on your head this load of pride and vanity. Lay it down in the dust and go forth to meet the Beloved. Address Him as your Lord."

(Ravindranath Tagore).

केवल वेद कितेब के पठन पाठन से, शास्त्र पुराण की कथा करने कराने से, अहंश्रल वो शिवोऽहं अथवा राम राम और श्याम श्याम के चिल्लाने से, तिलक छाप करने कराने से, साहेब की साखी शब्दों का डोल मंजीरा पर गाने बजाने से भी (जैसा के साहेब स्वयं कहते हैं—

माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना ।

साखी-शब्द गायत, भूले, आत्म खबरि न जाना ॥

कबीर साहेब का बीजक, शब्द नं. ४

आत्मा को खबर नहीं पड़ती और कर्म के फास में नहा छूटत । हा, इनसे परोक्ष ज्ञान मिल सकता है । छिपी हुई अग्नि कुछ ऊपर खुलती हो सकती है । उत्सुकता उत्पन्न हो सकती है । परन्तु ये सब प्रत्येक को हो, यह निश्चय नहीं । और अभ्यासी को कुछ अधिक सहारा मिलता है । अनुभव मिलाने को जगह मिलती है (to compare spiritual experiences), दृढ़ता आती है । पर मचमुच में है यह गुरुगम्य बात । जब बाहरी अथवा भीतरी सत्-गुरु (External or internal true guide) से भेंट हो जाता है । तब इस सूक्ष्म आत्मज्ञान में कुछ गति भी होने लगती है और ज्ञानोदय से कर्म का बन्दा भी कट जाता है । यथा,

“कर्म फास छूटै नहीं, बँतो करो उपाय ।

सत्-गुरु मिलै तो ऊँचै, नहि तो यकी खाय ॥”

(सा० प्र० पृ० ४०)

न नरेण अवरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधाः चिन्तयमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति, अणीयान हि अतर्क्ये अणुप्रमाणतः

(कठ-उपनिषद्)

॥ खंड-चौथा ॥

• निवृत्त—रागम्य गृहं तपोवनं । ”

• वीतरागवाले का घर ही तपोवन है । ”

स्थान की विशेषता उसके बामी की विशेषता पर निर्भर है । इसमें कोई संदेह नहीं कि कृत्रिम अथवा स्वाभाविक द्वय (Artificial or natural scenes) का प्रभाव मरल चित्त के ऊपर अनस्य पड़ता है । पर्यदि चित्त की कोई भी वृत्ति वेग से जाग उठी हो तो, इन दोनों के प्रभाव को दूर फेंक कर अपनी ही स्थापित रखना है । कभी कभी तो उनके माने हुये परिणाम से विलकुल विपरीत फल देखाता है । जैसे, लोगों में ऐसी मान्यता है कि एकान्त स्थल में मन शान्त होजाता है और शुद्धता को भी प्राप्त करता है । ठीक है, कितने मनुष्यों को एकान्त भवन से उक्त दोनों तरह के लाभ मिले हैं और दूसरों को भी मिल सकते हैं । पर प्रत्येक को एकान्त से ऐसे लाभ मिले, यह कोई निश्चित नियम नहीं । क्योंकि घोर से घोर पाप की नींव एकान्त में ही डाली जाती है । हत्या भी निर्जन और नीरव स्थान में की जाती है । कामों को विषय-तृष्णा भी अकेले ही में अधिक सताती है । उठायो कवि कालीदास के मेघदूत को । विचार के साथ अध्ययन करो एकान्त स्थित यक्ष की भीतरी दशा को और उसके कामातुर उद्गार को । किसीने कैसा ठीक कहा है !

“ स्थानं विरिक्तं यतिनाम् विमुक्तये,

कामातुराणां अति कामकारणं । ”

यतियों के लिये एकान्त स्थान मुक्ति का साधन होता है और कामातुरों के लिये काम के वेग को अत्यन्त बढ़ानेवाला बन जाता है ।

अतः सब कुल अपने व्यक्तित्व पर अत्यन्त निर्भर रहता है । दूसरी चीज वा स्थिति एक प्रकार का शासित-बाजा है । राजा जनक अपने राजमहल में रहते हुये, राजकीय कार्यों को करते हुये, वा के साथ गृहस्थ आश्रम में स्थित होते हुये भी, इन सभी के दृषणों में एकलम परे रहे । जीवन-मुक्त के पद को पाये । ऋषियां मुनियों में उनका इतनी प्रतिष्ठा बढ़ी कि वे लोग अपने पुत्रों को उनके पास अतिम आत्म-शिक्षा अथवा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजा करते थे । परन्तु तपोवन में रहते हुये, कन्द मूल फल फल पर जीवन निर्वाह करते हुये, जप तप आचरते हुये त्रिधामित्रीजी कामाक्षी हो फरे और अनुत्तला की उत्पत्ति करी । फिर युक्ती होने पर उसी अनुत्तला को कन्ध-ऋषि के एकान्त तपोवन में राजा दुष्यन्त के साथ सहसा गर्भ भी ठहर गया । विचार कर देखो आजकाल के तीर्थ-स्थानों को और तीर्थो-भूमियों को । महात्माओं के प्रभाव से जल स्थल आदि जड़ पदार्थ भी तीर्थ बन गये । उनके वातावरण की धारा (Current of their personal magnetism) ऐसी चटनी है कि सरल चित्त-वाले मनुष्य को उस स्थान पर पहुँचते ही शान्ति मिलने लगती है । फिर वही स्थान अधम तथा लम्पट मनुष्यों के अधिकार तथा निरास में चले आने से पापरूप प्लेग-स्थान बन जाता है । हनुमान गढ़ी की रोमाञ्चकारी घटनाएँ सब पर विदित हैं और महाराजा लायबल केस (Maharaja Libel case) पुस्तक-रूप में प्रकट होकर धर्म की आड़ में शिकार करनेवाले का भंडा फोर डाला है । चन्द दिनों की बात है कि ब्रह्म सम्प्रदाय के एक महान् धर्मगुरु गणिका का पञ्चा गुलाम बन गये । जहाँ पर रामरनेही रहा करते थे वहाँ पर गडरनेही रहने लगे । जहाँ पर विरागी रहा करते थे वहाँ पर रागी तथा विध्वो

अतः सब कुछ अपने व्यक्तित्व पर अत्यन्त निर्भर रखता है । दूसरी चीज वा स्थिति एक प्रकार का शामिल-बाजा है । राजा जनक अपने राजमहल में रहते हुये, राजकीय कार्यों को करते हुये, ला व साथ गृहस्थ आश्रम में स्थित होते हुये भी, इन सभी के दृपणों में एकदम परे रहे । जीवन-मुक्त के पद को पाये । ऋषियों मुनियों में उनकी इतनी प्रतिष्ठा बढ़ी कि वे लोग अपने पुत्रों को उनके पास अनिम आत्म-शिक्षा अथवा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेना करते थे । परन्तु तपोवन में रहते हुये, कन्द मूल फल फल पर जीवन निर्वाह करते हुये, जप तप आचरते हुये विश्वामित्रजी कामातुर हो फसे और शकुन्तला की उत्पत्ति करी । फिर युवती होने पर उसी शकुन्तला को कन्व-ऋषि के एकान्त तपोवन में राजा दुष्यन्त के साथ सहसा गर्भ भी ठहर गया । विचार कर देखो आजकाल के तीर्थ-स्थानों को और तपो-भूमियों को । महात्माओं के प्रभाव से जल स्थल आदि जड पदार्थ भी तीर्थ बन गये । उनके वातावरण की धारा (Current of their personal magnetism) ऐसी चलती है कि सरल चित्त-वाले मनुष्य को उस स्थान पर पहुँचते ही शान्ति मिलने लगती है । फिर वही स्थान अधम तथा लम्पट मनुष्यों के अधिकार तथा नियाम में चले आने से पापरूप प्लेग-स्थान बन जाता है । हनुमान गढी की रोमाञ्चकारी घटनाएँ सब पर विदित हैं और महाराजा लायपट केस (Maharaja Lala case) पुस्तक-रूप में प्रकट होकर धर्म की आड़ में शिकार करनेवाले का मंडा फोर डाला है । चन्द दिनों की बात है कि बल्लभ सम्प्रदाय के एक महान् धर्मगुरु गणिका का पक्का मुल्ता बन गये । जहाँ पर रामस्नेही रहा करते थे वहाँ पर राइस्नेही रहने लगे । जहाँ पर विरागी रहा करते थे वहाँ पर रागी तथा विषया

जना का जहा वना । जहाँ धारणा, ध्यान का अभ्यास चलता था वहाँ गुरु शिष्य राग रग में मस्त हैं । व्यक्ति-गत आचरण से तपोभूमि रगभूमि बन जाती है और रगभूमि तपोभूमि बन जाती है, वैराग्य-आश्रम (Penance-house) रागमयन (pleasure-house) बन जाता है और गृहस्थों का घर तपस्यास्थल बन जाता है । इसमें घर बाहर की, मकान मंदिर की कोई बात नहीं । कितने वैरागी ब्रह्मचारी वास्तव में घरचारी हैं । और कितने गृहस्थ घरचारी असल में ब्रह्मचारी हैं । वम, इसी प्रकार के घरचारी-ब्रह्मचारी, त्यागी-गृही, जीवन-मुक्त साहेब कबीर, राजा जनक के ऐसा विदेही-देही थे । उन्होंने आत्म-परिचय में उद्घाटन भी किया है -

“ थे विदेह देह धरि आये, काया कबीर कहाये । ”

मान भी लिया जाय कि उनके घर में लोई और धोई नाम की दो लड़कियाँ रहती थीं और कमाल यो कमाली नाम के लड़का यो लड़की भी रहा करती थीं, तौभी साहेब के महत्व में कुछ अन्तर नहीं पड़ता, यदि राजा जनक रानी सहित घर में रहते हुये भी विदेही कहला सकते हैं, रामजी सती सीता के साथ सहवास करते हुये, लय कुदा लड़कों को उत्पन्न करते हुये भी भगवान का अवतार बन सकते हैं, कृष्णजी अपनी प्रेमस्वरूपा स्वकीया महिला तथा भक्ति-परायणा परकीया गोपा-गनाओं के मध्य में निराजते हुये भी योगारूढ और योगेश्वर बने रह सकते हैं तो, साहेब कबीर को सत्-पुरुष कहने और मानने में कौन सी अड़चन आ पड़ती है ? यहाँ पर साहेब की जीवन-घटनाओं से कुछ उल्लेख करना आनन्द्यक प्रतीत होता है । इनको विचार-पूर्वक पढ़ कर अपनी राय कायम करनी चाहिये । हठ वश न मानने से साहेब की सत्-पुरुषता में जरि भी कमी कदापि नहीं आने पावेगी ।

कुछ लोगों का ऐसा ज्वाल है कि, कपार तथा बमारी माह्व कपार के निज पुत्र तथा पुत्री था । पर नीची लिखी घटनाओं में कुछ अन्यथा ही बोध होता है । सुन लो, आगे जैसा मन में आवे वसा समझा करना और कहा करना । कोई किसी का मुह थोड़े ही गेक सकता है । किसीने ठीक कहा है—ससार का मुह भसार । तथा—जना विचित्रा अद्भुतभावभाञ्ज । अर्थात् खोपड़ी खोपड़ी को मति न्यारी ।

शाहनशाह सिकन्दर लोदी (Emperor Sikander Lodi) १५ वीं शताब्दी में दिल्ली के सम्राट्-सिंहासन पर अभ्यासमान थे । उनके पीर अपना गुरु शेखतकी शाह थे । यह राजगुरु शम्भजी का स्थान झुर्सी में इलाहाबाद (प्रयाग) के पास गया-जमुना के संगम पर था । अभी भी गायद उनकी धन मीगूद है । उक्त शम्भजी कपार माह्व के ज्वलन्त प्रभाव को देख सुन कर मन ही मन गूँघ जलभूता करते थे । कभी कभी यह भीतरी अग्नि हाल में बड़ोदा राजमहल के घेरे (Compound) में फूटे भूगडे के समान ऊपर जा जाया करती थी । समय समय पर ऐसी द्वेषाग्नि से पीड़ित होकर शम्भजी अपने शक्ति (सैयक) उक्त सिकन्दर बादशाह का उत्तेजित कर साहेब कपार को अनेक प्रकार की ऐसी क्रूर यातनायें दिलाया करते थे कि जिनको सुनकर कलेजा काप उठता है । पर चन्दन ज्यों ज्यों घिसा जाता है त्यों त्यों उसका सुगन्ध वो सुवास, फूटता वो फैलता जाता है, हेना (मेहदी) ज्यों ज्यों पोसी जाती है त्यों त्यों सूखी लाली निकलती आती है, सोना ज्यों ज्यों तपाया जाता है त्यों त्यों उसका रंग चञ्चल जाता है । अन्त में एक घटना ऐसी आ बनी कि शम्भजी को साहेब कपार के सामने सर झुकाना पड़ा और हमारे के डिये

मुक्तकठ से 'पारों के पीर' तथा 'गुरुओं के गुरु' कहना यो मानना पड़ा।

निष्पक्षभास से सुनो जो Rev. I. E. Kelly, D. Litt. of London (लन्दन के साहियाचार्य माननीय एफ० ई० काय साहेब अपन Kabir & His Followers (कबीर एन्ड हिज फॉलोअर्स) नामक पुस्तक में लिखते हैं —

One day, when Kabir was walking on the banks of the Ganges with a certain Shukh Taqqi the corpse of a child was seen floating by. Shukh Taqqi challenged Kabir to raise it to life. This he did, and taking it home he adopted it as his own son. The Shukh said, 'you have indeed shown great perfection (Kamal)' So the boy was named Kamal. The story of the coming of Kamal is similar. According to some accounts she was a child who had died in the house of a neighbour and Kabir raised her to life according to others, the daughter of Shukh Taqqi, who had already been eight days in the grave.

अर्थात् एक दिन जम गंगा की तट पर साहेब कबीर जखतका कमा टहल रहे थे एक बच्चे की लाश पानी में टहलता हुई नजदीक नजर आई। जखतकी ने साहेब कबीर को मुर्द को निन्दा कर देने को ग्लकारा। यह साहेब ने कर दिखाया, और बच्चे का घर पर ले जाकर अपना पुत्र बना लिया। इस पर शेख ने कहा, "आपने मजमुच में बड़ा कमाल (चमकार) दिवाई।" तब, उस बच्चे का नाम 'कमाल' रखा गया। इसी प्रकार 'कमाली' की भी कथा है।

काई कोई कहते हैं कि साहेब कबीर ने अपने किसी पड़ोसी की मरी लड़की को जिन्दा कर अपनी पुत्री बना ली और किसी के मनानुसार यह शखतकी हा की लड़की बी जा आठ दिन तक कमर में मरी पड़ी रही था । और साहेब ने उसको जिन्दा कर अपनी पुत्री बना ला । ”

समय है कि पिछली ही बात ठीक हो । यह शखतकी ही की लकड़ी होगी । क्योंकि, इन घटनाओं के पश्चात्, शखतकी शाह साहेब कबीर का परम प्रशसक तथा भावुक भक्त बन गया । ठीक है—

“सच्चाई या हरक आत्म में जाहरा हो ही जाता है ।

जो इसको देख पाता है या शेदा हो ही जाता है ॥ ”

मुझे को निन्दा होना अग्रा करना काई अत्यन्त असम्भव बात नही है । जिसने इस सम्बन्ध में मृत्यु-घटनाओं को विचार-पूर्वक अनलोकन किया है या प्रमाणिक पुरुषों से सुना है, अथवा जिसने शरीर-रचना-शास्त्र (Anatomy and Physiology) को ध्यान-पूर्वक अध्ययन किया है, अथवा जिसने प्रत्याहार (Self-attraction or self withdrawal) का थोड़ा भी अभ्यास किया है, उसको समझ अग्रा असम्भव की बातें समय में आ सकती हैं । विचार-शून्य निरक्षर भट्टाचार्य, नराग्रही, मूढ़ अथवा अनम्यासी कल्पि नही समझ सकता । अभी थोड़े ही दिन की बात है कि बंगाल के एक वैद्यराज की लड़की पन्द्रह सोलह घंटा (Fifteen or Sixteen hours) तक मरी रही डाक्टर वैद्य सभी न मृत मालाया । लोग स्मशान भूमि पर ल गये । उसके मृत शरीर पर जलाने के लिये जल लकड़ी रखा गई तब उसने आँखें खोलीं । कुछ लोग भयभात होकर भाग गये । उसका पतिने डाक्टर को बोलाया । यह औषध आदि के प्रयोग से जा ठीकी और

अभी तक जीवित हैं। मैं जानते में भी नीरंगों लाल पार्टीदार को भी इसी प्रकार की दशा हुई थी। ऐसी अनेक घटनायें (Cases) होती हैं। जो विचारता है उसको कुछ पता चलता है। शरीर-शास्त्र (Physiology) के अनुसार मृत्यु की दो अवस्थाएँ (stages) हैं। एक का नाम व्यापारिक-मृत्यु (Somatic or Constitutional death) और दूसरे का नाम आणविक-मृत्यु (molecular or cellular death) है। पहली अवस्था में प्राणी के बाहरी व्यापार नष्ट-प्रायः हो जाते हैं और वह सर्वथा निश्चेष्ट बन जाता है। फेफड़े तथा हृदय (Lungs and heart) की गति यन्त्रो (Stethoscope and pulsometer) से भी नहीं माप्यम पड़ती। पर पारदर्शी-प्रकाश (x rays) आदि के प्रयोग से हाल में एक हठयोगी पर अनुभव किया गया है कि इनमें अत्यन्त सूक्ष्म कंपन (Very slight vibrations) बने रहते हैं। दूसरी अवस्था में शरीर के अंग-प्रत्यंग के छोटे से छोटे अंश (Cells) जीवन-हीन हो जाते हैं और उनसे दुर्गंध (Putrefaction) निकलना आरम्भ हो जाता है। पहली अवस्था में कोई प्राणी अथवा मनुष्य चाहे कितने ही दिन पड़ा रहे फिर से जीवित हो सकता है। दूसरी अवस्था में कदापि नहीं। पहली अवस्था कभी कभी रोग के प्रभाव से अथवा साप आदि विषैले जन्तु के काटने से भी उपस्थित हो जाती है। इस अवस्था में पड़े मनुष्य को औषध अथवा आत्म-विद्युत् (Personal Magnetism) के प्रभाव से पुनः जीवित किया जा सकता है। इसी अवस्था में पड़े बमाल तथा कमाली को साहेब कबीर ने अपने आत्म-विद्युत् की धारा देकर, उनमें प्रसुप्त तथा प्रच्छन्न चेतना (Dormant and covered consciousness) को जागृत कर, पुनः जीवित किया। अपना पुत्र तथा पुत्री बनाई। इसमें शंका का संदेह

चरने का कोई जगह नहीं है। साहेब में उच्च से उच्च कौटि का आत्म-चल विद्यमान था, इसका परिचय तो अनेकानेक स्यातों में मिल चुका है। साधारण मनुष्यों के लिये ऐसा करना असम्भव है। साहेब के लिये यह सहज था। पर अन्यायी इस मृत-प्राय अवस्था में अपने आपको स्वेच्छापूर्वक (Voluntarily bringing the state of human hybernation or yogic trance) ला सकता है और आपही आप पुन जीवित हो सकता है। जिसको इस विषय में अधिक जानने का इच्छा हो उसको उचित है कि जाव्यात्मिक-अन्वेषण (Psychological Researches) असमय-अन्त्येष्टि (Premature Burial) नाडी विचार (Pulsation), हठ-याग (yog of self-abstraction or withdrawal) सम्बन्धी प्रमाणिकग्रन्थों को अध्ययन कर अथवा अनुभवी का संग करें। निस्तार के समय में केवल दो प्रमाणिक उदाहरण एक माननीय वैज्ञानिक ग्रन्थ से दिये जाते हैं।

‘ In Delhi 1889, Dr H E Sen and his brother, Mr Chandra Sen Municipal Secretary, examined a well-known yogi devotee in a self-induced trance in which he appears to have been sealed or sequestered in Buddhist fashion. They found that the pulse had ceased to beat altogether nor could the slightest heart-beat be detected by the stethoscope. The yogi was placed in a small sub-terraneous masonry cell and the door locked and sealed by the City-Magistrate. At the expiration of thirteen-three days the cell was opened and the devotee found just where he was placed but with a death like appearance,

the limbs having become stiff as in rigor mortis. He was brought from the vault and the mouth rubbed with honey and milk and the body massaged with oil. In the evening manifestations of life returned. He was fed with a spoonful of milk, and in three days was able to eat his normal diet, and was alive seven years after."

(Lyon's Medical Jurisprudence for India, by L. A. Waddell, C. B., C. I. E. LL. D., M. B., F. L. S., Seventh Edition 1921, page 79).

" We all three felt the pulse of colonel Townshend first; it was distinct though small and thready, and his heart had its usual beating. He composed himself on his back, and lay in a still posture some time; which I held his right hand, Dr. Baynard laid his hand on his heart, and Mr. Skrine, held a clean looking-glass to his mouth. I found his pulse sink gradually, till at last I could not feel any by the most exact and nice touch. Dr Baynard could not feel the least motion in his heart, nor Mr. Skrine discern the least soil of breath on the bright mirror he held to his mouth. Then each of us by turns examined his arm, heart and breath, but could not by the nicest scrutiny discover the least symptom of life in him. This continued about half an hour. As we were going away (thinking him dead),

we observed some motion about the body, and upon examination found his pulse and the motion of his heart gradually returning; he began to breath gently and speak softly."

(The said Medical Jurisprudence for India, page 81).

“ दिल्ली में डाक्टर एच. सी. मेन और उनके भाई, महाशय चन्द्रसेन, म्युनीसिपल (सुधार) मंत्री ने एक पद्मासन लगाये ममाधिरुप योगी की परीक्षा १८८९ ई. में की। उन लोगों ने देखा कि नाडा चलनी बिल्कुल बन्द हो गई और फेफसे तथा दिल की चाल जानने के यंत्र से भी दिल का जरासा भी धड़कना नहीं मालूम पडने लगा। योगी को एक पक्के तहखाने में रख दिया गया और नगर के मेजिस्ट्रेट साहेब ने दरवाजे बन्द करा दिये और ताले में मोहर लगा दिये। तेतीस (३३) दिन के व्यतीत होने के उपरान्त वह तहखाना खोला गया और वह योगी वहीं पर विराजमान था जहां पर गवा गया था, परन्तु मुख पर मुँहनी छाई हुई थी और हाथ पैर मृत पुरुष की भांति कड़े होगये थे। उसको तहखाने से बाहर लाया गया, मुख में दूध—और भव मले गये, और शरीर में तेल मालिश किया गया। सायंकाल में जीवन के चिन्ह छोटने दीख पडे। उसको खाने के लिये एक चमचा दूध दिया गया, और वह तीन दिन में अपना नैयिक भोजन करने के योग्य हो गया। तदुपरान्त वह सात वर्ष तक जीवित रहा। ”

(लीयन-कून मेडिकल जुरिस्पुडेन्स १९२१, पृ. ७९)

“ हम लोग तीनों ने कर्नेल टैनशेन्ट की नाटी देखी; लघु और क्षीण होने पर भी, वह प्रकट थी, और उनका हृदय यथारोति

धड़क रहा था । वह अपने पीठ के बल पड़ गये, और थोड़ी देर तक विलकुल चुपचाप लेटे रहे; मैंने उनका दहना हांथ धरा, डाक्टर वेनार्ड ने उनके हृदय-स्थल पर हांथ धरा, और महाशय स्क्राइन ने उनके मुख के पास एक स्वच्छ दर्पण (आरसी) रखा । मुझे उनकी नाड़ी शनैः शनैः दृक्ती मालूम पड़ी, अन्त में बहुत यत्न करने पर भी, उनकी नाड़ी विलकुल ही नहीं मालूम पडने लगी । डा० वेनर्ड को उनके दिल की धड़कन जरी भी नहीं मालूम पडने लगी, और न म० स्क्राइन ही को उनके मुख के पास रखे निर्मल दर्पण पर श्वास का दूषित धब्बा ही मालूम पडा । तब हम लोगों ने बाराबारी उनके बांह, दिल और श्वास की परीक्षा की, परन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म परीक्षा करने पर भी, उनमें जीवन का जरा सा भी चिन्ह नहीं पाया । यह अवस्था आधे घंटे तक वर्तमान रही । ज्योंहि हम लोग उठे (यह जानकर कि वह मर गये), उनके शरीर पर कुछ गति दीख पड़ी, और परीक्षा करने पर पता चला कि उनकी नाड़ी तथा दिल की धड़कन आहिस्ते आहिस्ते लौट रही हैं; वह धीरे धीरे श्वास लेने लगे और बोलने भी लगे ।

(उक्त पुस्तक, पृष्ठ ८१)

उक्त कथनों का सारांश यह निकला कि मनुष्य रोग वा विष के प्रभाव से तथा आत्म-संकोचन-प्रक्रिया (Process of self-withdrawal) से मृतवत् बन जा सकता है । पहले दोनों का प्रभाव समय पाकर आपही आप, अथवा औषध के प्रयोग से नष्ट हो सकता है । अथवा जैसा के साहेब कबीर ने कमाल कमाली को आत्म-प्रियुत (Personal magnetism) द्वारा पुनः जीवित किया, वैसा किया जा सकता है । यह कोई असंभव बात नहीं है । पर ऐसा

आत्म-निष्ठ अपने में उपस्थित चाहिये । अन्यथा केवल ढोंग से काम नहीं चलेगा । अच्छा, अब लोई घोई की बात बाकी रही ।

कुल लोगों की ऐसी मति है कि लोई नाम को एक साधु-सत्री तथा घोई नाम को एक वेश्या दोनों की दोनों साहेब कबीर की स्त्रियाँ थीं और लोई से कमाल वो कमाली नामी सन्तान पैदा हुई । पर विचार कर देखने से मालूम होगा कि जैसे साहेब कबीर, कमाल जो कमाली के धर्मपिता (Foster-father) थे, वैसे ही उक्त दोनों स्त्रियों के धर्म-गुरु तथा धर्मोद्धारक थे । पर जो लोग द्वेषाग्नि से पीड़ित हैं, अथवा नियम-यायु के झरोखे से क्षण क्षण में क्षत वो क्षुब्ध, भ्रष्ट वो भ्रष्ट होते रहते हैं, जो ऊपर में रामस्नेहों और भीतर में राडस्नेहों के मिश्रमचर (Mixture) बने हैं, वे क्या समझें कि साहेब कबीर किस पद पर आरुढ़ थे, किस देश के वासी थे, किस धाम में उनका मोकाम रहता था । किपीने सच कहा है “ विसो वसन्तस्य गुणं न चायसः । ” साहेब को समझने के लिये साधना की आवश्यकता है, कोरे क्लियाँ से तथा दन्तकथाओं से काम नहीं चलेगा । सुनो, जो एक माननीय अंगरेज ग्रन्थकार (An Englishman writer) लिखते हैं:—

“ When Kabir was about thirty years of age, he was once wandering in the forest and reached the hut of a certain sadhu (Saint), where he rested. He found there a girl of about twenty years of age who asked him who he was. He replied, ‘ Kabir ’. She then asked his caste, to which question again he replied ‘ Kabir ’. She asked his order, and again

received the answer, ' Kabir '. She then asked his name, and was told it was, ' Kabir ' The girl was much surprised and said she had seen many sadhus but never one who answered in this fashion, Kabir replied that all others had name and caste and order, but he had none. Meanwhile six sadhus had arrived, and the girl brought seven cups of milk and set one before each. Kabir did not drink his milk, but said he was keeping it for another sadhu who was on the further bank of the Ganges. Before long, to the astonishment of all, this sadhu appeared. In further conversation, it came out that once a sadhu had lived in this hut, who one day saw something in the middle of the Ganges wrapped in a woollen cloth and carried along by the stream, on getting hold of it he found a girl-child, whom he brought to his hut and reared with milk. Because he had found her wrapped in woollen cloth (Loi) he named her Loi. On his death-bed he had told her that one day a saint would come and be her guide. The end of it was that Loi became a disciple of Kabir and followed him to Benares (Kashi)."

अर्थात् "जब साहेब कबीर की आयु लगभग तीस (३०) वर्ष की थी, वह जंगलों में घूमते हुए एक साधु की कुटि पर पहुँचे और वहाँ विश्राम किया। वहाँ पर प्रायः बीस (२०) वर्ष की एक लड़की रहती थी, जिसने पूछा, " आप कौन हैं ? उन्होंने उत्तर दिया, "कबीर" उसने

तब उनकी जाति पूछी, जिसके उत्तर में उन्होंने पुनः वही कहा “कवीर” उसने उनका सम्प्रदाय पूछा और उसको फिर वही जवाब मिला “कवीर” तब उसने उनका नाम पूछा, जिसका उत्तर भी वही मिला, “कवीर” । वह लड़की अत्यन्त चकित हुई और बोल उठी, “मैंने अनेक साधु देखे, परन्तु किसीने इस प्रकार से उत्तर नहीं दिये ।” इस पर साहेब कवीर ने कहा, ‘अन्य साधुओं के नाम, जाति तथा सम्प्रदाय होते हैं, परन्तु मुझको ये सब कुछ नहीं ।’ इसी बीच में छे (६) साधु और पहुँचे और उस लड़की ने सात दूध के प्याले लाकर प्रत्येक के सामने एक एक रख दिया । साहेब कवीर ने अपने भाग का दूध नहीं पिया और कहा कि, इसे दूसरे साधु (जो गंगा की परली तट पर से इधर को आ रहा है) के लिये रख छोड़ा है । थोड़ी ही देर में वह साधु आ पहुँचा और सब के सब विस्मित हो गये । आगे बात चलने पर मालूम हुआ कि उक्त कुटि में पहले एक साधु रहा करते थे, जिन्होंने एक दिन गंगा की बीच धारा में बहती हुई तथा उनके कपड़े में लपेटी हुई किसी चीज़ को देखा । जब उन्होंने उसको बाहर निकाला, तो, देखा कि एक बच्ची है । उसको अपनी कुटि पर ले आये और दूध से पालन किया । क्यों कि वह ऊनी बह (लोई) में लपेटी हुई पाई गई थी, अतः उन्होंने उसका नाम लोई पुरा । जब वह मृत्यु-शय्या पर हुए तब उन्होंने लड़की (लोई) को कहा, ‘किसी दिन एक संत यहाँ आँगे और वही तुम्हारा मार्ग-दर्शक (गुरु) होंगे ’ निदान वह लोई गारुव, ब्रवीर की शिष्या बनी और उनके साथ बनारस (काशी) चली आई ।”

साहेब कवीर की नीची लिखी जीवन-घटना को लेकर जगत्-विख्यात कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर ने बंगला भाषा में ‘ मालिक का

दान' नाम की एक कविता करी है। उसका भावानुवाद 'कल्याण' मासिक-पत्र के भक्तांक में प्रकाशित हुआ है। कहीं कहीं मूल को उद्धृत करते हुए उसीके आधार पर लिखा जाता है कि:—

जब साहेब कवीर का प्रभाव लोगों पर पूरे तौर से पड़ने लगा। उनकी ख्याति दूर दूर तक फैलने लगी। लोगों में उनकी पूजा चलने लगी और नामस्मरण भी होने लगा, जैसा कि कवीन्द्र रवीन्द्र ने लिखा है:—

फैल गई यह ख्याति देश में, सिद्ध पुरुष हैं भक्त कवीर ।
नर नारी लाखों ने आकर, घेरी उनकी वन्य-कुटीर ॥
कोई कहता, 'मंत्र फूँक कर मेरा रोग दूर कर दो' ।
वांछ पुत्र के लिये बिलखती कहती 'संत गोद भर दो' ॥
कोई कहता 'इन आँखों से देव-शक्ति कुछ दिखलाओ ।
जग में जग निर्माता की सत्ता प्रमाण कर समझाओ ॥

जब छोटे बड़े सभी में उनका मान-सत्कार बढ़ने लगा इनके दर्शन के लिये लोग तरसने लगे। उनकी चरण-धूलि लोग अपने मस्तक पर धरने लगे, तब द्वेषाग्नि से वंचक ब्राह्मण, गुन्डे पन्डे, पाखंडी पुजारी, धर्मध्वजी मठधारी, नाथ टीकाधारी, ब्रह्मचारी बेपधारी, अभिमानी पोथाधारी आदि लोग, साहेब कवीर की फैलता ख्याति को सहन न कर, टिल ही टिल सूत्र जलने लगे और अंत में एक ऐसा पटवन्त्र रचा कि जिससे लोगों का ध्यान उनसे खिंच जाय, उनका प्रभाव का तारतम्य टूट जाय और दुनिया में उनकी नेकनामी की जगह बदनामी फैल जाय, जैसा कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोरने उक्त कविता में लिखा है:—

“ कहने लगे क्रोध भारी से भर नगरी के ब्राह्मण सत्त ।

पूरे चारों चरण हुये कलियुग के पाप छा गया अर ॥

चरण-धूलि के लिये, जुलाहे की सारी दुनिया मगती ।
अन प्रतिहार नहीं होगा तो हव जायगो सब धरती ॥
कर सबने पडयत्र एक कुलटा स्रो को तैयार किया ।
रुपयो मे राजी कर उसको गुाचुप सब सिमलाय दिया ॥ ’

मगर मनुष्य धारता है कुछ और होता है कुछ । क्योंकि,
“ Man proposes and God disposes ”

“ हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि दाय ” ।

अब कपट-ग्रन्थ की बात सुनो । धूर्त तथा द्वेषाग्नि में पीडित
उक्त लोगों ने एक नाजारी बेश्या (जो लोक परलोक के भय को
निलाभलि देकर खुल्लमखुल्ला व्यभिचारवृत्ति में रत थी) को कुछ
रुपये का लोभ देकर साहेब कबीर की प्रतिष्ठा भग करने पर उत्तान
किया । उसको मिला पडा कर ठीक किया कि जब साहेब कबीर कुछ
कार्येश वाजार मे आवें तो उनका पट्टा पकडकर, अपना
पुराना सम्बन्ध का ढोंग रचकर, ग्लून रोना धोना, गाली गलौज
करना और गाना-ज्वोराक (Maintenance) के लिये दावा
करना । फिर तो, हमलोग थपडिया लगायेंगे, ढोंगी कहकर उनको
पुकारेंगे, उनको पाखडी कहकर धुत्कारेंगे और भडतपत्नी की बात
पेला पैला कर लोगों में मान-हानि करावेंगे । बेश्या को तो पैसा
चाहिये, फिर तो जो चाहो करो या कराओ । वस, उस बेश्या ने
एक दिन बीच वाजार में साहेब कबीर को पकड हो लिया । और
वैसी ही बेइज्जती करने लगी जैसा कि उसको द्वेषी कपटी ब्राह्मणों ने
सिखलाया पढ़ाया था । पर साहेब ये सब को दृढ समता के साथ
सहर्ष सहते रहे और अन्त में,

“कवीर बोले, दोषी हूँ मैं, मेरे साथ चलो घर पर ।

घर में अनाज रहते क्यों, भूखों मरती, फिरती दर दर ॥”

उनकी धर्मपरायणता, सहनशीलता, समभाव, क्षमाभाव, नेक चरित्र, प्रेमपुञ्जता, करुणाकुञ्जता आदि को देख परेख कर वेदिया

“गोकर बोल उठी वह, मनमें उपजा भय-लज्जा-प रताप ।

मैंने पाप किया लालचयश, होगा मरण साधु के शाप ॥”

पर साहज ने उसको आन्वना दी और

“कहने लगे कवीर, जननि ! मत डर, कुछ दोष नहीं नेग ।

तू निन्दा-अपमान रूप मन्त्र-भूषण लाई मेरा ॥”

फिर तो साहेब ने उन अरणागत कुलटा को अपनी ज्ञानाग्नि में उलटा पुगटा (सेक) कर, पाप-पंक में मग्न गणिका को साफ सुथरा शुद्ध “घोड़े” (Whed) रूप में परिर्तन कर कामपरायण से रामपरायण, हरिद्रोही में हरिदासी बना दी, जैसा कि उक्त जगत्-श्रियान कविमम्राट् रत्नान्धनाथ टागोर ने अपनी निम्न कविता में स्पष्टतया दर्शाया है—

“दूर किया विकार मनका सब, उसको दिया ज्ञान का दान ।

मधुर बंट में भरा मनोहर उसके हरीनाम गुण-गान ॥”

मत् गुरु को नीयन सौपने का पट देखा न ? पापपंक को मत्गुरु साहज कर्पूर ने धो धो कर स्वच्छ धर्मगुरन्वर बना दिया, मनमयीन को ब्रह्मलीन बना दिया, पिष्टारुपी त्रिषय में लस काक को हरिनाम के गुणगान में मग्न कटकोफिल बना दिया । द्वापर-युग की रात-पिण्डा, जीवन्ती की-दूर रही, कल्युग में मत्युग ला दिया ।
क्योंकि,

सोद्वेग से सब होत हैं, वृद्धे में कलु नाहि ।

गई सौ परचत करे, परचत राई माहि ॥

उक्त दोनों घटनाओं ने साफ विदित होता है कि साहेब कर्षा ने एक को जननी कह कर पुकारी और दूसरे को पुत्रीयत ' शिष्या ' । फिर तीसरी तरह के सम्बन्ध जोड़ने की जगह कहा रखी । स्वामी विवेकानन्दजी के गुरु परमहंस रामकृष्णजी ने अपना ज़्याही ली को मा (जननी) कह कर पुकारी और यही सम्बन्ध आर्जवन निवाहते रहे । पर जो स्वयं पवित्र नहीं हैं, और न किसी पवित्र महात्मा के दर्शन ही किये है, जो विषयवासनाओं से कभी थोड़ा भी ऊपर नहीं उठे है, जो घर में रहते हुये बीतराग बनने की सृष्टा तक नहीं करते, जो मंसर्गज भोग ही को सब कुछ जानते तथा मानते है, जो कलक और कामिनी पर दिन-रात मूढ़-दृष्टि किये रहते है, जो कैनन्ध आनन्द (Unconditional Delight) की झलक भी नहीं देखे है, जो गीता के इस वचन " आत्मनि एव आत्मना तुष्ट " अथवा साहेब की इस वाणी " योगी आप आप में बृजे " (Self-existent bliss) को विचार-पूर्वक न पढ़ते हों है और न अनुभव में उतारने का प्रयास अथवा साधन ही करते हैं, जो कभी भी आत्मप्रसाद नहीं चखे और मदेव दूसरों के जूट खाते रहे हैं । जो सब से सुन्दर आत्मस्वरूप (The most beautiful unconditional soul) तथा आत्म-आनन्द (Self-existent delight) में अनभिज्ञ रह कर दूसरी जगह सुन्दरताई तथा आनन्द के लिये मांग मारे फिरते हैं, वे साहेब कर्षा को उक्त नियों के साज रहते हुए भी माता तथा पुत्री के सम्बन्ध रखने की बात " पद्मपत्रं इनाम्भसा " (कमलपत्र की तरह) समझ नहीं सकते और न उनके तथा अन्य द्वेषी को दुराग्रहियों के लिये उक्त प्रमाणिक घटनायें उपस्थित ही की गई हैं । क्योंकि,

“न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम् । न न तथा निन्दति नास्ति मंगयः ।

“ जो दूसरे के प्रकर्ष तथा उच्च गुण को नहीं जानता है, वह उसकी निन्दा ही करता है, इसमें कुछ संदेह की बात नहीं है । ”

॥ खंड-पांचवां ॥

“ यथोर्णनाभि स्रजते गृह्णेच । ” (श्रुति) .

“ As the spider produces the thread and absorbs it again

“ जैस मकरा तन्तु को अपने भीतर से बाहर निकालता है और फिर अपने भीतर समेट लेता है

ना मनुष्य, प्रकृति तथा पुरुष को पूरी पूरी पहचान चुका है, जो दोनों के सम्बन्ध का केवल कितानी ज्ञान नहीं, पर अपने अनुभव में उतार चुका है, जो अपने अक्षर रूप को क्षर रूप में सचेतन (Consciously) लाता रहता है, जो अपने अचल सत् स्वरूप (Immutable self) में प्रतिष्ठित रहता हुआ भा असत् अथवा चल रूपों को (Mutable surface personalities) जान बूझ कर धारण करता रहता है; जो सत्-लोक से भूलोक पर स्वेच्छा से आता जाना रहता है; जो कुकर्ष, अकर्ष अथवा सुकर्ष के बन्धनों से घसीटा जाकर भूलोक में जगंधार में पड़ा तृण के ऐसा मारा मारा फिरना (Like helpless straw drifting in the current) नहीं है; जो ज्ञानाग्नि में कर्म-कासों को भस्माभूत कर चुका है, जो शरीर रूपी गाड़ों को निकटना समेटना, बनाना बिगाडना, चलाना ठहराना आदि सब कुछ मनी भांति जानता है; जो अदृश्य वायवीय या वाष्प (In visible gaseous or ethereal stage) स्थिति से दृश्य तरल अथवा स्थूल (Visible Liquid or solid stage) में घन-निया से (By process of condensation) और दृश्य तरल अथवा स्थूल को अदृश्य वायवीय स्थिति में (By Process of evaporation

etc) खाना रहता है, वह कारण और सूक्ष्म शरीर का स्थूल में तथा स्थूल शरीर को सूक्ष्म और कारण शरीर में ले जान को अग्र्य समर्थ है। जो मक्करा (Spider करोडिया) अपने भीतर से तन्तुओं को बाहर निकाल कर नाना प्रकार की रचनाओं को रचना है, वह मक्करा उन तन्तुओं की भीतर समेट कर मग्न रचनाओं का समाप्त कर देने में भी समर्थ है। यम, इसी प्रकार साहेब कुमार ने अपने स्थूल शरीर का फूल द्वारा प्रकट कर फिर फूल हो द्वारा सूक्ष्म में गुप्त भी कर दिया, इसमें कोई सन्देह की बात ही नहीं है।

इसके अतिरिक्त साहेब कबीर के दोनों प्रकार के शिष्य-वर्ग और सेनक-जन हिन्दू तथा मुसलमान-य। एक उनको सत्गुरु मानत थे, तो दूसरा पौरन को पौर। दोनों ही को पूजा के अन्तिम चिन्ह कुछ न कुछ मिलना चाहिये था। योंही उन्होंने अपना स्थूल शरीर १५७५ सम्प्रत के मार्गसर मास के शुक्र पक्ष की ११ गी तिथि को सप्रलम्ब करने का विचार प्रकट किया और उस निमित्त गोरखपुर के पास उत्तरी जिला में मगहर नाम की ओर 'काशा-मरण स्वर्गआरोहण' की अव-परम्परा झूठी रूढ़ी को भगवन्मार्थ

“का कासी का मगहर ऊपर, हृदय राम बस मोरा ।

जो कासी तन नजड़ कबीरा, राखि कवन निहोरा ॥”

(सा० क० राजक शब्द १०३०)

प्रस्थान किया तो ही दोनों दलों के शिष्य-सेनक-वर्ग हजारों की सख्या में इकट्ठा होने लगे। उनमें राजा श्रीसिंह गधेला और नाना प्रिन्सीपल पठान प्रमुख थे। राजा जो हिंदू-रीति के अनुसार दाह-क्रिया करने का और नवाबजी मुसलमान रीति से दफन करने का आग्रह साहेब से प्रत्येक रूप में करने लगे। दोनों में झगड़ने की

नेवारी सी भी माटम पडने लगी । फिर राहेव ने झगडा मिटाने के लिये दोनों वर्गों के शिष्य-सेवकों को बाहर खड़े रहने को कहा और आप स्वयं एक कमरे में जाकर, चादर बिछान कर सो गये, जैसा के एक साहित्याचार्य अंगरेज (An Englishman) लिखता है —

“After this, Kabir lay down and spread the sheets over himself. He then told the people to close the door and leave him inside, which they did. When the door was closed, a sound came from the room; on hearing which all who were present were deeply moved, and shouted Jayjaykar (a cry of rejoicing and victory) ! because their guru had gone to the Satya-Loka”

“When the room was opened, nothing was to be seen except two sheets and some flowers in them. One sheet and half the flowers, Raja Bir Sinha took, and the other sheet and the remainder of the flowers, were taken by Nawab Bijli Khan. The body of Kabir was not seen. In fact, his followers say he never had a body but was only a manifestation of glory. Raja Bir Sinha took his portion to Benares, where he cremated it and buried the ashes at what is now the Kabir Chaura. Nawab Bijli Khan buried his portion at Maghar. Both Hindus and Muhammadians afterwards built a shrine at Maghar”

“ तत् पश्चात् साहज कर्त्तार लेट गये और अपन ऊपर चादरों को तान लिये । तब उन्होंने अपने शिष्य-सेवक माँ को द्वार बन्द करने तथा उनको भीतर पकड़ा रहने देने को आज्ञा करी । उन लोगोंने वैसा ही किया । जब द्वार बन्द हो गया, कमरे में से एक आवाज़ आई, जिसको सुनकर उसस्थित जनता अत्यन्त विचलित हुई और जयजयकार का घनि उठाई, क्योंकि उनके गुरु मलयलोक का पधार गये । ”

“ जब द्वार बंदा गया, सिनाय दो चादरों तथा उनमें कुछ फर्में के और कुछ न मिश्र । राजा गीरसिंह ने एक चादर और फर्में का आधा भाग ले लिये और नम्रात्र विनलीखा ने दूसरी चादर तथा बचे फर्में को ले लिया । माहेत्र कुमार का शरीर अदृश्य हो गया । सबभुच में, उनको गरीर न था, केवल एक ज्योति-का प्रकाश्य था जैसा व उनके अनुयायी कहते हैं । राजा गीरसिंह ने अपने भाग को बनारस ले जाकर दहन-क्रिया करी और उसकी राख एक जगह गाड़ी जो कनार चौरा के नाम से आजकाल प्रसिद्ध है । नम्रात्र विनलीखाने अपने भाग को मगहर में गाड़ दिया । तदुपरान्त हिन्दू और मुसलमान दोनों के दोनों, मगहर में मंदिर बनाये । ”

जिनके आदि में पुष्प उसके अन्त में पुष्प, जिसके अरोहण में फल उसके आरोहण में फल, जिसके आभिर्भाव में सुगन्ध उसके तिरोभाव में सुगन्ध, जिसके आगमन में सुवास उसके अन्तर्धान में सुवास क्यों न हो ? भक्ता मीरा ने मैले तन को भगवत् प्रेम में मग्न करके शुद्ध किया और अंत में सदेह भगवान में लीन होगई, राजा परिक्षित तथा सुखदे

ज्ञानाग्नि से अरौर कां विमल कर सदेह स्वर्गारोहण किये, पर साहेब कबीर तो ज्योतिमय उतरे औ ज्योति में लीन हो गये, उसमें शका तथा अकचक्राने का कौन सी बात है ? कैसा ठीक कहा है !

झीनी झीनी चढ़रिया बोनी ।

साहेब कबीर जतन से भोहो, जमके तस धरदानी चढ़रिया । झी०

कैसा निर्मल, पूर्ण तथा सचेतन देहाग्रसान (Pure, perfect and conscious withdrawal) है ! ज्योतिमय शरीर (Spiritualised body) का गुण महान है ! ! अन्त अन्त तक सद् शिक्षण का विधान है ! ! !

“ All is well that ends well. ”

“ अन्त भले का भला । ”

॥ खंड-छड़ा ॥

“ नहि सत्यात् परो धर्मः । ”

“ सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं । ”

साहेब करीर के जन्म-जाति-जीवन के थोड़ा कुछ वृत्तान्त के उपरान्त उनके सत्-उपदर्शों का दिग्दर्शन कराना अब समुचित प्रतीत होता है, क्यों कि, किसी व्यक्ति के आचार पर उसका विचार निर्भर रहता है। करनी और कथनी (Theory and practice) में धनिष्ठ सम्मन्व है। महात्माओं में दोनों में एकता रहती है। और दुरात्माओं में दोनों में विपरीतता रहता है। एक जो बन्गा मो करगा। दूसरा कहेगा कुछ और करेगा कुछ दूसरा ही। सदाचारी के वचन हृदय से निम्न होते हैं, अतः सुननेवाले के हृदय तक पहुँचते हैं, और दोगी वा मिथ्याचारी। Hypocrites के वचन केवल मुख से निम्न होते हैं अतः सुननेवाले के कान ही तक पहुँच कर रह जाते हैं। जो याणी रूप प्राण (Arrows), हृदयकी तंत (Cord) पर खींच कर छाड़ा जाना है, वही दूसरे के हृदय तक को खींच लेता है। मीरा के हृदय से निम्न हुआ अनन्य प्रेम तथा समर्पण के भजन—“ नैग तो गिरधर गापाल दूसरा न कोई—का प्रभाव हृदय पट पर प्रिलम्बण हा पड़ता है। और उन्हीं भजन को दूसरे के मुख से अथवा नाटक वा सिनेमा (Drama or Cinema) के जरूरी मीरा के मुख में सुनने से कुछ प्रभाव ही नहीं होता। जो अपनी याणी में आप नहीं पसीजता, वह दूसरे को कैसे पसीना सकता है? निमकी याणी भावान्वित होकर नहीं निकलती, वह दूसरों में उचित भाव कैसे उत्पन्न कर सकेगी? जो अपना

कहा आप ही नहीं मानता, जो अपना उपदेश आप ही नहीं सुनता तथा आचरता, वह दूसरे को क्या कहे और क्या सुनावे ? उसको अधिकार ही क्या है कि दूसरे को उपदेश करे ? नो सत्य को आचरता नहीं, उसको अधिकार ही नहीं है कि वह मत्य का उपदेश करे । सत्पुरुष ही सत्य के उपदेश करने की योग्यता तथा अधिकार रखते हैं, अन्यो के लिये केवल अनधिकार-चष्टा है तथा मिडम्बना-मात्र है । सत्-पुरुष ही को मत्य सदैव प्यारी रहती है । यही कारण है कि साहेब कबीर को जितना सत् शब्द सत् तत्व प्यारा है उतना कोई पद-पदार्थ नहीं ।

सत्-नाम, सत्-धाम, सत्-पुरुष, सत्य-लोक, सत्-गुरु, सत्-सुन्दर, सत्-शब्द, सत्-सग, सत्-विचार आदि उनकी वाणी में बहुधा पाये जाते हैं । सत् पर ही उनका सब कुछ आधार रखता है । सत्-नाम ही उनका बीज-मंत्र है । यथा,

“ सब मंत्रन का बीज है, सत्-नाम ततमार ।
जो को जन धिरदै धैर, सो जन उतरे पार ॥
कबीर मन निश्चल करो, सत्-नाम गुण गाय ।
निश्चल बिना न पाडिये, कोटिन करो उपाय ॥ ”

(देवी साखा-ग्रन्थ पृष्ठ १३२-१३३ संख्या १६०-१६६)

आत्मा अथवा परम-आत्मा के जितने सार्थक अथवा सगुण नाम हैं, उनमें सब से श्रेष्ठ 'सच्चिदानन्द' समझा गया है । यह बात ठीक है कि,

‘अविगति की गति काहु न जानी । एरु जीभ कित कर्गे बखानी ॥
जो मुख होय जीभ दस-लाखा । तो कोई आय महन्तो भाखा ॥
(बीजक-रमैनी नम्बर १)

क्योंकि, जो आत्म-तत्त्व अथवा ब्रह्म-तत्त्व अनन्त है, उसके गुण भी अनन्त है, उसके नाम भी अनन्त अथवा असंख्य हैं, उसके वर्णन भी अनन्त है — ' नास्ति अंतो मित्रस्य मे । ' (गीता) अनन्त मान्त शब्दों के घेर में कदापि नहीं आ सकता । तथापि सत्, चित् और आनन्द मिलकर ' मच्चिदानन्द ' नाम उत्तम चोक्त है, जैसा के ' मच्चिदानन्दरूपोऽहं ' तेजोविन्दु उपनिषद् में आता है । इसमें भी सत् पहले आया है । अतः सत्-नाम सब से श्रेष्ठ है । वेदोपनिषद् में भी " तन् सत् " " मयं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म " आते हैं ।

सत्-नाम की श्रेष्ठता मानते हुये भी यह लिखना अनुचित वा अयुक्त नहीं होगा कि सत्, चित्, और आनन्द एकही सत्ता (Existence) के तीन पहलू वा नज़र (Aspects) हैं । एक ही त्रिकोण के तीन भुजायें (Three sides of the one in the same triangle) हैं । एक ही प्रिज़म (Prism काच का त्रिपहलू टुकड़ा) के तीन सतह (Surfaces) हैं । एक ही होरा के तीन मुख (Three facets of the same diamond) हैं । एक ही सागर के तीन तरंगें (Three waves of the same ocean) हैं, जो ऊपर भिन्न भिन्न दिखाते पर भीतर मिले हैं । एक ही देव के तीन मस्तक हैं । इनमें किमको छोटा और किमको बड़ा, किमको श्रेष्ठ और किमको निकृष्ट कहा जाय । पर विचार कर देखने से मादम होगा कि जहां सत् है वहाँ पर शुद्ध चेतना (Pure consciousness) है, और वहाँ पर पवित्र आनन्द (Unmixed or unadulterated bliss) है । चेतना से सत् को हटा दो, मूढ़ा अमर्या आ जायगी । बूढ़ वृद्ध, पशु पक्षी, अनेक नर नारियों में चेतना तो विराजमान है, पर वे मल्य चेतना से विहीन होने ही से मूढ़ा (Sub-conscious or deluded)

अवस्था में पड़े हैं । इसी प्रकार आनन्द से सत्य को अलग कर दो, फिर मिथ्या-आनन्द, आनन्द-आभास, क्षणिक सुख, दुःखान्वित-सुख (Stress of transitory satisfaction besieged with physical pain and emotional suffering and sometimes mental derangement) आन उपस्थित होंगे । जो सत्-पुरुष है वही सम्पूर्ण चेतन है और वही सचा वो सहज सुखी है । इसलिये साहेब ने सत्-नाम को तत्त्व का भी सार बताया, सब मंत्रों का बीज फरमाया । इसीके गुण-गान तथा जाप से मन को निश्चल तथा शान्त करके भय-सागर से पार उतरने की शिक्षा प्रदान की । जाप से अभिप्राय केवल सत्-नाम सत्-नाम बहुत चिन्ता चिन्ता कर अथवा धीरे धीरे अथवा मन ही मन उच्चारण करने अथवा लेने का नहीं है । जैसा के पातञ्जल योग-पूत्र-तन्त्रपः तदर्थभावनम्—में बताया है कि नाम लेने के साथ साथ उत्तरी प्राप्ति की भावना लगी रहनी चाहिये । उक्त साखी में साहेब ने भी हृदय में धारण करने की शिक्षा दी है । सत्-नाम के जाप के साथ साथ सत्-प्राप्ति की भावना बनी रहनी चाहिये । सत्य को हृदय में धारण करने का ध्यान बंधा रहना चाहिये । सत्य को आत्म-सात् करने का लक्ष्य सदैव सामने रहना चाहिये । तब अंत में ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकता हो जाने से पुरुष सत्-पुरुष में परिवर्तन हो जाता है । हरदम सत्य चेतना में प्रतिष्ठित (Established in truth consciousness) सत्य-लोक का दास बन जाता है । सत्-धाम में पहुँच जाता है ।

सत्-धाम अथवा सत्-लोक कोई स्थान विशेष का नाम नहीं है । यह आत्म-चेतना की अन्तिम अथवा उच्चतम अवस्था (The last or the highest stage of the soul's consciousness or

enlightenment) है। वस्तुतः चेतना की दो ही अवस्थाएँ—सत् और असत्, अथवा शुद्ध और मिश्रित (Pure and mixed) —हैं। इसी मिश्रित अवस्था को भिन्न भिन्न भागों में और नामों में विभक्त किया गया है। कहीं पर ८ (६) भाग है, तो कहीं पर नौ। यदि कोई चाहे तो सौ (१००) भागों में भी विभक्त हो सकता है। वेद-पुराण में —भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक, जनगण तपलोक और मानवा शुद्ध-चेतन अवस्था का नाम मन्यलोक है। ८ मिश्रित और एक शुद्ध-चेतन अवस्था मिलकर सप्तलोक (७ planes of consciousness) के नाम से प्रसिद्ध हैं। साहजिक घर में —नमूत, मलकृत, जीरस्त, लूत, अचिन्त्यद्वाप, मोहद्वीप, ईच्छाद्वीप, ओंकारद्वीप, सहनद्वीप और दसवा शुद्ध-चेतन अवस्था का नाम सत्-लोक धरे गये हैं। नौ मिश्रित और एक शुद्ध-चेतन-अवस्था मिलकर जात्र के दस अवस्थाएँ (Ten stages of the soul's Enlightenment) बनती हैं। यदि दूसरा चाहे तो इसी मिश्रित अवस्था को सौ भागों अथवा असंख्य भागों में विभक्त कर सकता है। घी, शुद्ध अवस्था में, एक हो तब वह । अशुद्ध अवस्था (Adulterated condition) में अनक अथवा असंख्य तरह से रह सकता है। सौ भाग में ९९ भाग घी और एक भाग तेल अथवा वनस्पति तेल (Vegetable ghee) का मिश्रण (99 per cent ghee and one per cent vegetable ghee) तैयार हो सकता है। इसी प्रकार ९८ भाग घी और २ भाग तेल, ९७ भाग घी और ३ भाग तेल इत्यादि इत्यादि अनन्योन्य मिश्रण बन सकते हैं। फिर हजार भाग में ९९९ भाग घी और १ भाग तेल, ९९८ भाग घी और २ भाग तेल इत्यादि इत्यादि अनन्योन्य अलग अलग मिश्रण बन सकते हैं। तो

बीज-गणित (Algebra) में Permutation and combination (साथ-समात) के अध्याय का पढ़ चुके हैं, वे समझ सकते हैं कि भिन्न भिन्न प्रकार के मिश्रण असत्य (Innumerable varieties of different adulterations) रूप में तैयार किये जा सकते हैं । तापमान-यन्त्र (Thermometer) में किसीने बूझन और जमन अथवा Boiling and Freezing points के अन्तराय को १०० भाग (Centigrade thermometer) में और किसीने १८० (Fahrenheit thermometer) भाग में इसा अन्तराय को विभक्त किया है । यदि कोई चाहे तो इसे १००० अथवा ११८० भागों में भी बांट सकता है । अतः मिश्रित चेतना के इन कल्पित विभागों के फेर में न पडना चाहिये । शुद्ध मत्त-चेतना को मटेर लक्ष्य में रखकर आगे बढ़ते जाना चाहिये ।

पर एक मन अथवा सम्प्रदाय (A sect) ऐसा निकाला गया है, जो सय-ग्रेड के भी ऊपर दो डिग्री (Degree) और-अनामी तथा राधा-सोआमी-गाम मानता है । भाड़, सय के ऊपर अथवा नीचे दोनों असत्य हैं । आठ दूना सोलह ($8 \times 2 = 16$) एक सत्य है । इससे कोई ऊपर आठ दूना १७, १८, १९ इत्यादि अथवा इससे नीचे १५, १४, १३ इत्यादि बनाव, तो वे सब के सब असत्य हैं । किसी फल की पक्क (Ripe) अथवा एक होती है । उस अथवा के नीचे कच्ची और ऊपर सड़ी (Raw or over-ripe) अथवायें होती हैं । मनुष्य शरीर का नियमित ताप (Normal temperature) पौने निम्नाने डिग्री के करीब रहता है । उसके दो, तीन... डिग्री ऊपर अथवा दो, तीन..... डिग्री नीचे, सब के सब अशुद्ध तथा रूग्ण अथवायें (Diseased states) समझी जाती हैं । जितने

इसमें ज्ञान की बातें हैं व सब इस मनमाले के प्रवर्तक न करार
साहब की गणियों से ली हैं। गूँठे में राधा-माधामी धाम का
डकोसका नोडकर लोगों में अपना प्रत्यक्ष दिखाने के लिये, कबीर
साहब के मय-लाल की कुटिया अगले मनमाना धाम में नाच
बतलाने का अनर्गल तथा अनुचित प्रयास कर रहे हैं। सुना, जो
एक पक्षपात-रहित माननीय एफ़० टी० क्रिये, साहियाबाद,
उन्नीस-नियामी (Rev F E Key, D Litt, London)
लिखते हैं —

“The Radha Swami Satsang is a modern sect
which was founded about 1861 by Tulsi Ram
(1818-1879), an Agra banker, known as Siva
Dival Sahib, and has its head-quarters at Agra.
It seems to owe a great deal of its inspiration to
Kabir. In the daily meetings of the sect, portions
of their own Sacred books or of the writings of
Kabir and other Hindu devotees are read. A
Hindu couplet of Kabir (though evidently a
forgery) is quoted by them to show that Kabir
called God by the name of Radha Swami.”

“राधास्वामी सत्-संग एक नवीन सम्प्रदाय है, निम्नो १८६१
ई० सन् के लगभग आग्रा नगर का एक बनिया तुलसीराम (१८१८
-७८) ने चलाया है। पीछे से शिष्यार्थ साहित्य कहाया और मुख्य
स्थान आग्रा में बनाया। इसमें ज्ञान की बातें बहुधा कबीर से
ली गई हैं। दैनिक बैठक में अपने धर्म-पुस्तक के कुछ भाग अथवा
कबीर तथा अन्य हिन्दू भक्तों की गणियां पाठ करते हैं। कबीर की

‘एक * हिन्दी साखी, जो एकदम बनावटी या साफ जालसाजी है, वे लोग उद्धृत करते हैं, इस बात को समर्थन करने के लिये कि कबीर ने परमात्मा को राधा-स्वामी नाम करके पुकारा है ।’

देखो, सत्-लोक, सत्-धाम अथवा सत्-नाम से एक ऊपर धाम अथवा पद गढ़ने के लिये निन्दनीय जाल वो झूठ प्रपञ्च रचना पड़ा । यह एक धार्मिक संस्था के लिये अत्यन्त घृणित कार्य है । जिसे नांव झूठ फरेव पर पड़ी, उसमें आगे चलकर दो हजार साहेब (दो वर्तमान धर्मगुरु जो उनके सम्प्रदाय के नियम से विरुद्ध ह) निकल पड़े, माल मिलकीयत के लिये कचहरियों (Law-Courts) में फरियाद दाखिल करें, लड़े झगड़ें, मोकदमेबाजों वो जालसाजी करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

हा, जहा कहीं गीतादि उपनिषदों में त्वं अक्षरं सदसद् तत्पर यत् (गी० ११-३७)-पारब्रह्म परमात्मा अथवा सत्-पुरुष पुरुषोत्तम को सत् नया असत् से ऊपर अथवा परे बताया गया है, वहा पर ‘सत्’ का अर्थ वर्तमान (Being, present, होता हुआ) है और ‘असत्’ का अर्थ अर्न्तमान (Non-being i. e., past and

करीर धारा अगम की, सतगुरु दई बताय ।

नाहि उलटि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥

कबीर-साहित्य के ग्रंथों में इसका कहीं नामोनिगान भी नहीं मिलता । साहेब ने ठीक ही कहा है—

साखी लाय बनाय के, इत उत अक्षर काट ।

कहैं कबीर कबतक जिये, झूठी पत्तल चाट ॥

future) अर्थात् भूत और भविष्य हे । अतः परब्रह्म पुरुषोत्तम तीनों कालों से परे कालातीत, अक्षर, अनन्त, Timeless, Imperishable, Infinite) होने से सनातन सत्य (Eternal Truth) है । सत्य से ऊँचा या ऊपर उस परम सत्य परमात्मा का नाम ही नहीं हो सकता । और न चेतना को अवस्था ही बन सकती । अमेरिका के चिकागो (Chicago) नगर के १७ वीं अक्टूबर, १९३३ के द्वितीय विश्व-धर्म परिषद्में (At the Second World Parliament of the Religion at Chicago on the 17th October 1933) प्रमुख न कबीर साहब को मान्य दृष्टि से देखते हुये यही कहा—

‘ There is no God higher than Truth ’

“ सत् से बढ़कर कोई दूसरा परमात्मा है नहीं । ”

इसी सनातन सत्य तत्त्वसार सत्-नाम को हृदय में धारण करने के लिये साहब कबीर फरमाते हैं और प्रगट करने की शिक्षा प्रदान करते हैं, जैसा के स्वामी विवेकानन्दजी ने भी लिखा है —

“ Each soul is potentially divine

The goal is to manifest this divine within by controlling nature, external and internal

Do this either by work, or worship, or psychic control, or philosophy, by one or more, or all of these — and be free

This is the whole of religion. Doctrines or dogmas or rituals, or books, or temples or forms, are but secondary details’

‘एक * हिन्दी साखी, जो एकदम बनावटी या साफ जालसाजी है, वे लोग उद्धृत करते हैं, इस बात का समर्थन करने के लिये कि कबीर ने परमात्मा को राधा-स्वामी नाम करके पुकारा है ।”

देखो, सत्-लोक, सत्-धाम अथवा सत्-नाम से एक ऊपर धाम अथवा पद गढ़ने के लिये निन्दनीय जाल वो झूठ प्रपञ्च रचना पड़ा। यह एक धार्मिक संस्था के लिये अत्यन्त घृणित कार्य है। जिसमें नीच झूठ फरेब पर पड़ी, उसमें धामे चलकर दो हजार साहेब (दो वर्तमान धर्मगुरु जो उनके सम्प्रदाय के नियम से विरुद्ध ह) निकल पड़े, माल मिलकीयत के लिये कचहरियों (Law-Courts) में फरियाद दाखिल करें, लड़े झगड़ें, मोकदमेवाजी वो जालसाजी करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

हां, जहां कहीं गीतादि उपनिषदों में त्वं अक्षरं सदसद् तत्परं यत् (गी० ११-३७) — पारब्रह्म परमात्मा अथवा सत्-पुरुष पुरुषोत्तम को सत् तथा असत् से ऊपर अथवा परे बताया गया है, वहां पर ‘सत्’ का अर्थ वर्तमान (Being, present, होता हुआ) है और ‘असत्’ का अवर्तमान (Non-being i. e., past and

* कबीर धारा अगम को, सतगुरु दर्ई बताय ।

ताहि उलटि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥

कबीर-साहित्य के ग्रंथों में इसका कहीं नामोनिशान भी नहीं मिलता। साहेब ने ठीक ही कहा है—

• मारी लाय बनाय के, इत उत अक्षर काट ।

कहैं कबीर फव्वतक जिये, झूठी पत्तल चाट ॥

—[पं० मोतीदास]

future) अर्थात् भूत और भविष्य हैं । अतः पारब्रह्म पुरुषोत्तम तीनों कालों में परे कालातीत, अक्षर, अनन्त, Timeless, Imperishable, Infinite) होने से सनातन सत्य (Eternal Truth) है । सत्य से ऊंचा या ऊपर उस परम तत्त्व परमात्मा का नाम ही नहीं हो सकता । और न चेतना की अवस्था हो बन सकती । अमेरिका के चिकागो (Chicago) नगर के १७ वीं अक्टूबर, १९३३ के द्वितीय विश्व-धर्म परिषद्में (At the Second World Parliament of the Religion at Chicago on the 17th October, 1933) प्रमुख न कर्तार साहेब को मान्य दृष्टि से देखते हुये यही कहा—

“ There is no God higher than Truth.”

“ मनु में बढ़कर कोई दूसरा परमात्मा है नहीं । ”

इसी सनातन सत्य तत्त्वसार सत्-नाम को हृदय में धारण करने व लिये साहेब कर्तार फरमाते हैं और प्रगट करने की शिक्षा प्रदान करते हैं, जैसा के स्वामी विवेकानन्दजी ने भी लिखा है:-

“ Each soul is potentially divine.

The goal is to manifest this divine within, by controlling nature, external and internal.

Do this either by work, or worship, or psychic control, or philosophy, by one, or more, or all of these — and be free

This is the whole of religion. Doctrines, or dogmas, or rituals, or books, or temples, or forms, are but secondary details.”

is one of the 'most interesting' personalities in the history of Indian mysticism ' .

अर्थात् “ कवि कबीर, जिनके भजनों में से कुछ चुन कर यहाँ पर अंग्रेजी पाठकों के लिये रखे जाते हैं, भारतवर्ष के रहस्यवादियों की गणना (इतिहास) में एक अत्यंत चित्ताकर्षक व्यक्ति है । ”

साहेब की वाणियों के मर्म जानने के लिये उनके स्थल-विन्दु, लक्ष्य-विन्दु तथा दृष्टि-व्यक्ति (Stand-point, view point and the addressee) को सदैव ध्यान में रखना चाहिये । किस भूमि से वाणी निकल रही है, क्या उसका लक्ष्य है और किसकी प्रति प्रेरित हो रही है, इन सब बातों को जान कर ही पाठक वाणियों से पूरा लाभ तथा आनन्द उठा सकता है । अन्यथा, जहाँ पर विरोधाभास है वहाँ पर अत्यन्त विरोध मात्र में भड़कने लगेगा, जहाँ पर समता है वहाँ पर निमग्नता दृष्टिगोचर होने लगेगी । उक्त बातों पर न ध्यान देने ही से साहेब कबीर को कोई राम के माननेवाला कहने लगा तो कोई रहीम का, कोई अद्वैत तो कोई विशिष्टाद्वैत, कोई शुद्धाद्वैत तो कोई द्वैताद्वैतवादी समझने लगा । कोई कर्मयोग तो कोई भक्तयोग, कोई ज्ञानयोग तो कोई ध्यानयोग के माननेवाला उनको कहने लगा । विचार करने से माटूम होगा कि उक्त सब बातें और सब योग अस्थायी-विशेष तथा अधिकारी-विशेष के लिये अपने अपने स्थान पर उत्तम और अनिवार्य (Indispensable) है ।

‘ Each thing in its place is best ’

अतः इन सबों के बोधन करनेवाले पृथक् पृथक् वाणियों को परस्पर विरोधी दल न समझ कर, गिर चित्त से विचार कर, अपनी अस्थायी के अनुकूल शिक्षा तथा लाभ लेने चाहिये ।

पर सत्र ने अधिक लॉम साधियों से उठाने की युक्ति सद्देव ने
 स्वयं बना दी है। मरल या कठिन, मिट्टन या मिस्तुन टीका-टिप्पणी पढ़ो
 या न पढ़ो। पर जो साध्या जयया उनके मार्ग तुम्हारे दिष्ट पर सचोट
 लगे, जो केवल तुम्हारे मन को तृप्त (Mental recognition) न
 कर उनके हृदय को छेद देने, उनको आमसान करने (Spiritual
 Realisation) में प्रारम्भ दत्तचित रहो। फिर तो, उस साध्या के पूर
 भाव के अनिरिक्त जनेक साधियों के भाव आपही आप, बिना अभिन
 प्रयास के, भीतर उतरने लगगे और मुक्तकल से साहेब का गुणगान
 करने लगगे। उदाहरण के लिये इस साध्या —

ऊँची जाति पपीहरी, नैवे न नीची नीर ।

या मुरपति को जांचही, या दुख सहै सरीर ॥

१

साखोमय गृ० २२१ स० ४६

को ले लो। इसमें चार चरण हैं। किसी एक चरण को
 गानसोत् करने में लग जाओ, और देखो कि केषा गूढ़ और अपूर्व
 रिणाम पर पटुचर्त हो। पहिले चरण में, सत्य-अन्वषी (Truth-
 seeker) की जाति, संसृष्ट ही ऊँची (ऊँचेमूल) बताई गई है।
 दूसरे चरण में, विषय-प्रकार रूप दूषित-जल की तरफ झुकने तक को
 रना किया गया है। तीसरे चरण में, परापर पारस्पर, देवों के देव
 को उपासना करने की बताई गई है। और चौथे चरण में, कलौष
 नेपथ के नचिकेता के ऐसा दृष्ट सकल्प होकर, अपने गच्छित 'प्रणाय
 म' से विचलित न होकर प्रतीक्षा की तपस्या रूप दुःख सहने को
 बताई गई है। पहिले चरण में आत्मज्ञान की बात, दूसरे में विषय
 अनहेटना की बात, तीसरे में भक्ति तथा समर्पण की बात और चौथे
 में सयाग्रह की बात साहेब ने बताई है। इनमें किसी एक को,
 पहिले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे को हृदयगम कर आत्मसान्
 (Realisations) करो। जेध तीनों के साक्षात्कार के अलावे सब

साखी शब्दों का मर्म शनै शनै समझ में आने लगेगा । और अनेक-
नेक ग्रंथ पढ़ने की भी आवश्यकता, दिल से जाती रहेगी । साहेब ने
स्वयं सुंदर वी सरल कुंजी बना दी है,

आयी साखी सिंग कट्टी, जो निरुवारो जाय ।

वया पड़ित की पोथियां, रात दिन मिलि गाय ॥३॥

लिखने पढ़ने से भी संभव है कामी चित्त स्थिर हो जाय, श्रवण-
मनन से भी कामी शान्ति मिल जाय; पर वातराग सत्पुरुषों के गुण-
गान से भी-चित्त स्थिर होकर एक प्रकार की शान्ति मिलनी है, जो
अकल्पनीय है । इसलिये पतंजलि भगवान ने चित्तनिरोध के अनेक
उपायों में एक-वातरागस्य चित्तस्य वा-ग्रह भी-बताया है । बस, आओ,
अब हम संग मिलकर सत्पुरुष साहेब का गुणगान कीर्तन कर उनके
रहस्यमय वाणी में अवतरण कर सत् और शान्ति की तरफ धुके !

सतनाम का झंडा आलम में, गड़गा दिया सतगुरु कबीरने ।
अम भूत का भडा एकदम हि फडगा दिया, सतगुरु कबीरने ॥१॥
जो जड़ के पीछे पड़े हुये, चेतन से चित्त हटा करके ।
हो-परगट चेतन की महिमा, बतला दिया, सतगुरु कबीरने ॥२॥
धर्मदास को पत्थर पूजनमें, रे दोत गये बरसों बरसों ।
पर हाथ न आया कुछ उनको, दिखडा दिया सतगुरु कबीरने ॥३॥
फिये कैद हजारों सधुन को, चक्की पिसावे सुल्ताना ।
फिरवा कर चक्की चेतन बल, दिखला दिया सतगुरु कबीरने ॥४॥
अगनाथ का पडा अग्नि से, जलकर जत्र छटपट करता था ।
जल छाटा दूर से दे पीडा, हरना दिया सतगुरु कबीरने ॥५॥
अभिमानो पोथा-धारी को, करते थे पराजय पल भर में ।
धनमाली ज्ञान परम ज्योति, लाया है सतगुरु कबीरने ॥६॥

निवेदक,

सा० बनमाली गुरु श्री अरविन्द

शान्ति—कबीर नम्रदान

निवेदन ।

इस साखी प्रय को सांगोपाग सर्गो सुदर रीति से संपादन और संपादन कान का सारा श्रेय श्रीमान् पंडित मौनीदासजी साहेब, स्व-वद-संपादक, सस्कृत विशारद को है । उन्होंने अपनी शारीरिक स्थिति अंगुली न रहते हुये भी यह महान् कार्य अति परिश्रम से किया है । सतगुरु उनकी अभिप्रायों को पूर्ण करें ।

स्वसवद उनके परिश्रम का फल है और स्वसवद में वा सुनरानो भाषा में कवीरमन्तूर निकुञ्ज है सा उनका परिश्रम है । साखी प्रय में जितना सुदरता देखने में आती है सा सय उनका अति परिश्रम का फल है । कवीर धर्मार्थक कार्यालय से जितना पुस्तकें निकुञ्ज चुकी हैं और निम्नलेगो सो सय के संपादक श्रीमान् पंडितजी हैं । हमारी अंतर अभिप्राय यह है कि सतगुरु उनका ऐसे शुभ कार्य करने को सदा सुखी रखें ।

साखी प्रय की टीका-टिप्पणी और अन्तरणिका जो की गई है सो उनका की प्रेरणा से उन उन महात्माओं ने किया है । बाडे में सारा प्रय आदि से अंत तक सफल करने में जित जितने भाग लिया है उन सय के हम और सारा कवीरपथ कृतज्ञ हैं ।

२८ ३ ३५

महत बालकदासजी ।

श्री पूज्य स्वामाना का मैं अत्यंत श्रणी हू कि उन्होंने अनुग्रह कर यह उत्तम अन्तरणिका का अन्तरण करने की परम कृपा का है । एव श्रीमान् १०८ पं. भू. महंतश्री विचारदासजी साहेब साखी का भी मैं अत्यंत श्रणी हू कि उन्होंने मिल टीका-टिप्पणी कर साखी प्रय को उपादेय और सुगम बना दिया है ।

—प० मौनीदास ।

श्रीगणेशाय नमः अन्तरंगिका में नाच का भूल रह गई ह । सो ५ न

सुधारकर पड़े ।

पृष्ठांक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	२	bound	bound
"	१७	Mouse	Mouse
१४	८	कोष	कोष
"	२०	repro luctive	Repro luctive
"	२४	tower	lower
"	२५	corres ponding	Corresponding
"	२७	profect	project
१५	१	Jackal	Jackal
"	१	and	and
१७	८	अप का	अपने को
"	९	को	कौई
"	१६		मूढ़
२७	२२	मुख	मुख
"	२४	Public	Public
२८	८	अंगरेजी	अंगरेजी
२९	७	Exten	External
३०	६	Scens	Scenes

१ व्यवस्थापक, काशी चंद्रोदय कार्यालय,

मु०, हरफ, पो०, मतरिख जि०, बारांकी. (य. पी)

२ श्री. १०८ महंतश्री साविदासजी साहेब

टि० काशी साहेब का मंदिर, फलिया हनुमान के पास.

मु०, बामनगर (काठियावाड) •

३ श्रीशुभ महादेव रामचंद्र जागुटे

बुनासेलम एंड मन्मोहन, त्रणदराजा, अहमदाबाद.

॥ सत्यनाम ॥

सद्गुरु कबीर साहब

का

साखी-ग्रंथ ।

(टीका-टिप्पणी-सहित)

सपनाम सत्सुकुत, आदि अदले
अजर अचिन्त पुरुष गुनीन्द्र
वरुणामय — कर्णार
सुरतियोग-सतायन
धनी धर्मदास
साहय की
दया

गुरुदेव को अंग ।

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम ।
 कीट न जानै भृंग को, गुरु करिले आप समान ॥१॥
 दंडवत गोविंद गुरु, वन्दौं अब जन सोय ।
 पहिले भये प्रनाम तिन, नमो जु आगे होय ॥२॥
 गुरु गोविंद करि जानिये, रहिये सदा समाय ।
 मिलै तो दंडवत बंदगी, नहिं पलपल ध्यान लगाय ॥३॥
 गुरु गोविंद दोऊ खड़े, किसके लागौ पाँय ।
 बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दिया बताय ॥४॥
 गुरु गोविंद दोउ एक हैं, दूजा सब आकार ।
 आपा मेंटै हरि भजै, तब पावै दीदार ॥५॥

१ दंडवत्—दंडकी तरह भूमि में पड़कर साष्टांग प्रणाम करना ।
 कीट न जान भृंगीको—भृंगी एक प्रकार की बर—मरखी होती है जो कि मिट्टी के घर में काड़े को लाकर रखती है और अपना शब्द सुनाकर उसे भृंगी बना लेती है । इसी प्रकार सद्गुरु अपने सत्योपदेश से शिष्य को अपने समान बना लेते हैं ।

२ अबजन—वर्तमान समय के सत । इस साखी में तीनों काल के सतों को प्रणाम किया गया है ।

५ दूजा सब आकार—गुरु और गोविंद में केवल आकार का भेद है ।

गुरु हैं बडे गोविंद ते, मन में देखु विचार ।
 हरि सिरजे ते चार हैं, गुरु 'सिरजे ते पार ॥६॥
 गुरु तो गरुआ मिला, ज्यों आटे में लौन ।
 जाति पाँति कुल मिटि गया, नाम धरेगा कौन ॥७॥
 गुरु सों ज्ञान जु लीजिये, सीस दीजिये दान ।
 बहुतक भौंदू 'बहि गये, राखि जीव आभमान ॥८॥
 गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय ।
 कहै कबीर सो संत है, आवागवन नसाय ॥९॥
 गुरु पारस गुरु पुरुष है, (गुरु)चंदनवास सुवास ।
 सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास ॥१०॥
 गुरु पारस को अन्तरो, जानत है सब संत ।
 वह लोहा कंचन करै, ये करि लेय महंत ॥११॥
 कुपति कीच चैला भरा, गुरु ज्ञान जल होय ।
 जनम जनम का मोरचा, पल में डारे धोय ॥१२॥
 गुरु धोवी सिप कापडा, साबू सिरजनहार ।
 सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार ॥१३॥

६. बार-इस तरफ, चौरास्ता में । पार-उस तरफ, भग से पार ।

८. भौंदू-अज्ञानी । जोय-अपने हृदय में । ११. महंत-बडा, श्रेष्ठ ।

१२. ज्योति-तेज, प्रकाश ।

१. पा० सुमिरे । २. पा० मीर ।

गुरु कुम्हार सिप कुंभ है,	गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट ।
अन्तर हाथ सहार दे,	बाहिर बाढ़े चोट ॥१४॥
गुरु समान दाता नहीं,	याचक सीप समान ।
तीन लोक की संपदा,	सो गुरु दीन्ही दान ॥१५॥
सहिले दाता सिप भया,	तन मन अरपा सीस ।
पाछे दाता गुरु भये,	नाम दिया बख्सीस ॥१६॥
गुरु जो वसै बनारसी,	सीप समुंदर तीर ।
एक पलक विसरै नहीं,	जो गुन होय सरीर ॥१७॥
लच्छ कोस जो गुरु वसै,	दीनै सुरति पठाय ।
सद तुरी असवार छै,	छिन भावै छिन जाय ॥१८॥
गुरु को सिर पर राखिये,	चलिये आज्ञा मांहि ।
कहै कबीर ता दास को,	तीन लोक भय नांहि ॥१९॥
गुरु को मानुष जो गिनै,	चरनामृत को पान ।
ते नर नरके जायंगे,	जनम जनम ठहै स्वान ॥२०॥
गुरु को मानुष जानते,	ते नर कहिये अंध ।
होय दुखी संसार में,	आगे जप का फंद ॥२१॥
गुरु बिन ज्ञान न ऊपजै,	गुरु बिन मिठै न भेज ।
गुरु बिन संसय ना मिटै,	जय जप जय गुरु देव ॥२२॥

१७. बनारसी-काशी में । १८. तुरी-घोड़ा । २०. स्वान-कुत्ता ।

१. पा० मारे ।

गुरु विन ज्ञान न ऊपजै,
गुरु विन लखै न सख को,

गुरु नारायण रूप है,
सतगुरु वचन प्रताप सों,

गुरु महिमा गावत सदा,
मो भव फिरि आवै नहीं,

गुरु सेवा जन बंदगी,
ये चारों तब ही मिले,

गुरु मुक्तावै जीव को,
मुक्त परवाना देहि गुरु,

गुरु विन मिलै न मोष ।

गुरु विन मिटे न दोष ॥२३॥

गुरु ज्ञान को घाट ।

मन के मिटे उचाट ॥२४॥

मन अनि राखे मोद ।

बैठे प्रभु की गोद ॥२५॥

हार सुमिरन बेराग ।

पूरन होवै भाग ॥२६॥

चौरासी बंद छोर ।

जप सो तिनका तोर ॥२७॥

२३ मोष-मोक्ष । २४. उचाट-चञ्चलता ।

२७ तिनका तोर=तिनका तोटना, सबव विच्छेद करना (महाभिरा) तिनका टुडाना कबीरपथ की एक विधि है । चौका आरती में शिष्य का तिनका अपेण कराया जाता है । उसका भाव यह है कि अब तुम्हारा यमराज से कोई संबंध न रहा ।

मुक्त परवाना=मुक्ति का बीड़ा । जिस प्रकार युद्ध में समिलित होने के लिये प्राचीन काल में वीर लोग बीड़ा उठाया करते थे, इसी प्रकार चौका आरती में अधिकारी मुमुक्षु को मुक्ति का परवाना दिया जाता है । उसका यह भाव है कि मुमुक्षु को मुक्ति के बाधक कामादिक शत्रुओं से लड़ने के लिये तैयार हो जाना चाहिये ।

परवाना का दूसरा आशय यह भी है कि जिस प्रकार सरकारी परवाना (खास रुका, पास) पाये हुए जो दरबार में आने के लिये कोई रोक नहीं समता, इसी प्रकार मुक्ति परवाना पाये हुए पूर्वोक्त वीर को यमराज नहीं रोक सकना, अतएव वह सीधा सत्यलोक चला जाता है ।

गुरु सों प्रीति निवाहिये, जिहि तत निवहै सैन ।
 प्रेम विना ढिग दूर है, प्रेम निकट गुरु कंत ॥२८॥
 गुरु मारै गुरु झटकरै, गुरु बोरै गुरु तार ।
 गुरु सों प्रीति निवाहिये, गुरु हैं भव कँडिहार ॥२९॥
 गुरु भक्ता मम भक्त हैं, साथ भक्त मम दास ।
 हरि भक्ता सो उत्तमा, कहै कबीर हरि व्यास ॥३०॥
 गुरु की महिमा को कहे, सिव विरंचि नहि जान ।
 गुरु सतगुरु को चीन्हि के, पावे पद निरवान ॥३१॥
 गुरु मुख बानी ऊचरे, सीप साँच करि मान ।
 या विधि फंदा छूटहीं, और युक्ति नहि आन ॥३२॥

२८. निवाहिये-बना राखिये । जेहि तत निवहै-जिस तरह बनी रहें । ढिग-पास अर्थात् पासमें रहते दूर भी । कंत-स्वामी (म कान्त) ।

२९. झटकरै-फटकार बताने । बोरै-डुबाने । तार-संसार से पार करे ।

कँडिहार-(सं. कर्णधार) नाव चलानेवाला, संसार सागर से पार उतारनेवाला । कबीरपंथ में महंतों की 'कँडिहार' पदवी है । जिस प्रकार मछली दरिया से पार उतारते हैं इस प्रकार ये लोग भी भवसागर से उतारने में मुमुक्षुओं की सहायता करते हैं ।

३०. हरिव्यास-हरि व्यासजी को कहते हैं । गुरु महिमा के प्रमाण रूप यह साखी कबीर साहेब न हरि और व्यास के संवाद रूप में कही है ।

३१. विरंचि-ब्रह्मा । निरवान-मुक्ति ।

१ पा० गुरु । २ पा० जान ।

गुरु मूरति गति चंद्रमा, सेवक नैन चकोर ।
 आठ पहर निरखत रहै, गुरु मूरति की ओर ॥३३॥
 गुरु समाना सीप में, सीप लिया करि नेह ।
 बिलगाये बिलगे नहीं, एक मान दुइ देह ॥३४॥
 गुरु सरनागत छाँडि के, करै भरोसा और ।
 सुख संपत्ति की कह चली, नहीं नरक में ठौर ॥३५॥
 गुरु मूरति आगे खड़ी, दुतिय भेद कह्यु नाँहि ।
 उनही कं परनाम करि, सकल तिमिर मिटि जाँहि ॥३६॥
 ज्ञान प्रकासी गुरु मिला, सो जनि बिसरौ जाय ।
 जब गोविंद किरपा करी, तब गुरु मिलिपा आय ॥३७॥
 ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विस्वास ।
 गुरु सेवा ते पादये, सतगुरु चरन निवास ॥३८॥
 कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और ।
 हरि के रुठे ठौर है, गुरु रुठे नहि ठौर ॥३९॥
 कबीर हरि के रुठते, गुरु के सरनै जाय ।
 कहै कबीर गुरु रुठते, हरि नहि होत सहाय ॥४०॥

३३. ओर-तरफ । ३४. नेह-प्रेम । बिलगाये-अलग करने से ।

३५. कह चली-कहा धरी है । ३७. सो जनि बिसरौ जाय-उसे कभी

न भूलना । ३९. रुठे-रुठना, अप्रसन्न होना ।

हरि स्तै गति एक है, गुरु सरनागत जाय ।
 गुरु स्तै एको नही, हरि नहि करै सहाय ॥४१॥
 कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अरथाय ।
 सुरति कंवल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥४२॥
 बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार ।
 मानुष ते देवता किया, करत न लागी बार ॥४३॥
 सिप खाँडा गुरु मसकला, चहै सद्द खरसान ।
 सद्द सहे सनमुख रहै, निपजै सीप सुजान ॥४४॥
 भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हानि ।
 दीपक जोति पतंग ज्यौ, पड़ता आय निदान ॥४५॥
 भली भई जो गुरु मिले, जाते पाया ज्ञान ।
 घट ही मोहि चवूतरा, घट ही मोहि दिवान ॥४६॥

४२ गम-ज्ञान । अरथाय समझा दिया । सुरति कंवल-यह सहस्रदल के आगे आठवाँ कमल है, जहाँ से सतमत का अभ्यास आरम्भ होता है । ' सुरति कंवल पर साहज चोलें ' । निराधार-निरालम्ब, सन्धपुरुष ।

४३ बार-देरी ।

४४ खाँडा-तरवार । मसकला-जग छुड़ाने का सिकलीगर का एक ओजार । खरसान-सान । निपजै-बने ।

४५. नातर-नहीं तो । निदान-अंत में ।

४६ चवूतरा-चौरा, बैठक । दिवान-न्यायकर्ता ।

सत्तनाम के पटतरै,	देवै को कटु नाँहि ।
कह ले गुरु सतोपिये,	ह्वस रही मन माँहि ॥४७॥
निज मन माना नाम सों,	नजरि न आवै दास ।
कहै कबीर सो क्यों करै,	राम मिलन की आस ॥४८॥
निज मन तो नीचा किया,	चरन कमल की ठौर ।
कहै कबीर गुरुदेव तिन,	नजरि न आवै और ॥४९॥
तन मन दीया(तो)मल किया,	<u>सिर क जासी भार ।</u>
जो कबहुँ कहै मैं दिया,	बहुत सहे सिर मार ॥५०॥
तन मन ताको दीजिये,	<u>जाको विषया नाँहि ।</u>
आपा सब ही डारि के,	राखै साहिव माँहि ॥५१॥
ऐसा कोई ना मिला,	सत्तनाम का मीत ।
तन मन सोंपै मिरग ज्यों,	सुनै अधिक का गीत ॥५२॥
जल परमानै भाछली,	कुल परमानै सुद्धि ।
जाको जैसा गुरु मिला,	ताको तैसी बुद्धि ॥५३॥
जैसी प्रीति कुटुंब की,	वैसी गुरु सों होय ।
कहै कबीर ता दास का,	पला न पकड़ै कोय ॥५४॥

४७ पटतरै—अंग, बदला में । ह्वस—इच्छा (फा० ह्विश) ।

४८ जिसका अन्तर्हृदय नाम का अनुरागी हो ऐसा दास देखने में नहीं आता । ऐसे प्रेमी को तो राम मिला ही मिलाया है । अतः वह उसके मिलने का आशा क्यों करे ।

५२ मीत—मित्र । वधिक—पारधी । ५३ सुद्धि—आचार निचर ।

सब घरती कागद करू, लिखनी सब प्रनराय ।
 सात समुंद की मसि करूं, गुरु गुन लिखा न जाय ॥६५॥

✓बूढ़ा था पर ऊगरा, गुरु की लहरी चमक ।
 वेड़ा देखा झाँझरा, बतरी मया फरक दिख ॥

अह अगनि निस दिन जरै, गुरु सों चाहै मान ।
 ताको जम न्यौता दिया, हो (उ) हमार मिहमान ॥६७॥

जम गरजै बल बाघ के, कहैं कवीर पुकार ।
 गुरु किरपा ना होत जो, तो जम खाता फार ॥६८॥

अग्रन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख ।
 गुरु दया ते पावई, सुरति निरति फरि देखा ॥६९॥

पढित पढि गुनि पचि मुये, गुरु भिन मिलै न ज्ञान ।
 ज्ञान बिना नहीं मुक्ति है, सत्त सन्द परमान ॥७०॥

६६ लहर-मौज, इच्छा । चमक-चमक गई, गुरुकी दया हो गई । वेड़ा-नात्र । झाँझरा छेदवाला, पुराना । फरक-अलग ।

६८. बल बाघ के-सिंह के समान बली ।

६९. अमूर्त-आकार रहित । पेख-देखा ।

१ पा० छेखनि । २ पा० मेरा ।

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव ।

मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सत भाव ॥६१॥

६१ गुरु स्वरूप के ध्यान करने पर किसी ध्यान की आवश्यकता नहीं होती, और गुरु चरणों की पूजा के अनन्तर दूसरी पूजा की आवश्यकता नहीं होती । इसी प्रकार गुरुवचन को हृदय में धर लेने पर दूसरे नाम को उसमें धरने की जरूरत नहीं होती, और अपने भाव को सत्य बनाने पर सत्य को हृदय की जरूरत नहीं होती । “ यस्य देवे परा भक्ति र्यथा देवे तथा गुरोः तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन ” श्वेताश्वतर के, इस वचन के अनुसार गुरुभक्ति से अन्य मुक्ति का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता, क्यों कि मुक्ति के मंदिर की कुची मद्गुरु के पास है । बिना उनकी कृपा के उसका मिलना असंभव है । इसीलिये यह कहा गया है कि “ तद् विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत् ” अर्थात् परमार्थ तत्त्व के जानने के लिये अधिकारी को गुरु के शरण में ही जाना चाहिये । गीता में भी यह स्पष्ट ही कहा गया है कि—“ तद्धि-द्वि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यति ते ज्ञानं ज्ञानिन स्तत्पद-दर्शिनः ” ॥ उस तत्त्व को जानने के लिये गुरु को प्रणाम करो, उसकी सेवा करो और विनम्रपूर्वक उनसे पूछो, ऐसे आचरण से प्रसन्न होकर सद्गुरु तुमको मुक्ति तत्त्व का उपदेश देंगे । इत्यादि श्रुति और स्मृतियों के वचनों के आकलन से स्पष्ट है कि, गुरु की पूजा और ध्यान मुक्तिप्रद होने के कारण अप देवताओं की पूजा और ध्यान से श्रेष्ठ है । इसी प्रकार गुरु का सत्योपदेश नामस्मरण से अधिक फलदायी होने के कारण आवश्यक ग्राह्य है ।

कहें कबीर तजि भरम को,	नन्हा हूँ करि पीव ।
तजी अहं गुरु चरन गहू,	जप सौं वाचै जीव ॥६२॥
तीन लोक नव खंड में,	गुरु ते वढ़ा न कोय ।
करता करै न करि सकै,	गुरु करै सो होय ॥६३॥
कोटिन चंदा ऊगहीं,	सूरज कोटि हजार ।
तीमिर तो नासै नहीं,	बिन गुरु घोर अंधार ॥६४॥
पहिले घुरा कपाड़ के,	बांधी विष की पोढ़ ।
कोटि करम पल में कटै,	(जब)आया गुरुकी ओढ़ा ॥६५॥
जगत जनायो सकल जिहि,	सो गुरु भगटे आय ।
जिन गुरु आँखिन देखिया,	सो गुरु दिया लखाय ॥६६॥
हरि किरपा तब जानिये,	दे मानव अवतार ।
गुरु किरपा तब जानिये,	छड़ावे संसार ॥६७॥
जाके सिर गुरु ज्ञान है,	सोइ तरत मव पाँहि ।
गुरु धिन जानो जन्तु को,	कबहुँ मुक्ति सुख नाँहि ॥६८॥
देवी बड़ा न देवता,	सूरज बड़ा न चंद्र ।
आदि अंत दोनों बड़े,	कै गुरु कै गोविंद ॥६९॥

६६. जिस मालिक ने सारे संसार का निर्माण किया है और जो स्वयं अलक्ष्य है उस मालिक के रूप में प्रकट होकर गुरु ने उसको लखा दिया ।

६७. बिना ईश्वर की कृपा के मनुष्य देह नहीं मिल सकती, और गुरु की कृपा के बिना भवसागर से पार नहीं हो सकता । एवं गुरु की कृपा के बिना ईश्वर की कृपा भी नहीं हो सकती ।

सब कुछ गुरु के पास है, पाइये अपने भाग ।
 सेवक मन सौपै रहे, निस दिन चरनों लगा ॥७०॥
 बहुत गुरु भै जगत में, कोई न लागे तीर ।
 सत्रै गुरु वहि जायंगे, जाग्रत गुरु कबीर ॥७१॥
 वेद पुराना साधु गुरु, सवन कहा निज वात ।
 गुरु तें अधिक न दूसरा, का हरि का पितुमात ॥७२॥
 ताते सद्र विवेक करि, कीजै ऐसो साज ।
 जिहि विधि गुरु सों प्रीति रह, कीजै सोई काज ॥७३॥
 सो (इ) सो(इ)नाच नचाइये, जिहि निबहै गुरु भेष ।
 कहै कबीर गुरु भेष विन, कितहुँ कुसल नहि उमा ॥७४॥
 तन मन सीस निछावरै, दीजै सरवस प्रान ।
 कहै कबीर दुख सुख सहै, सदा रहै गलतान ॥७५॥
 तब ही गुरु भिय बैन कहि, सोप षढी चिन प्रीत ।
 तो रहिये गुरु सनमुखौं, कबहुँ न दीजै पीठ ॥७६॥
 स्नेह भेष गुरु चरन सों, जिहि प्रकार सें होय ।
 क्या नियरै क्या दूर वस, भेष भक्त सुख सोय ॥७७॥
 जिहि विधि सिपको मन बसै, गुरु पद परम सनेह ।
 कहै कबीर क्या फरक दिग, क्या परबत बन गेह ॥७८॥

जो गुरु पूरा होय तो,	सीप हिलेय निवाह ।
सीप भाव सुत जानिये,	सूत(ते)थेष्ट सिप आह ॥७९॥
अनुध सुबुध सुत मातुपितु,	सब हि करै प्रतिपाल ।
अपनी ओर निवाहिये,	सिख सुत गहि निजचाल ॥८०॥
कहै कबीर गुरुसों मिले,	होय नाम परकास ।
गुरु मिलि सिप भवनिधि तरै,	कहै कृष्ण मुनि व्यास ॥८१॥
सुनिये संतो साधु मिलि,	कहै कबीर सुझाय ।
जिहि विधि गुरुसों प्रीति हू,	कीजै सोइ उपाय ॥८२॥
आध सद्र गुरु देव का,	ताका अनेत विचार ।
धाके मुनि जन पंडिता,	वेद न पावे पार ॥८३॥
करै दूरि अज्ञानता,	अंजन ज्ञान सु देय ।
बलिहारी वे गुरुन की,	हंस उबारि जु लेय ॥८४॥
हरि सेवा युग चार है,	गुरु सेवा पल एक ।
ताके पटतर ना तुलै,	संतन कियो विवेक ॥८५॥
ते मन निरमल सत खरा,	(जो)गुरुसों लागै हेत ।
अंकुर सोई जगसी,	(गुरु) सद्र बोया खेत ॥८६॥
मौसागर की त्रास ते,	गुरु की पकड़ो यौहि ।
गुरु बिन कौन उबारसी,	मौजल धारा मौहि ॥८७॥

७९. आह—है ।

८१. यह साखी भी व्यास और कृष्ण के संवाद रूप में कही गई है।

१. प्रा० एक ।

लौ लागी बिप भागिया, कालक(ख) डारी धोय ।
 कहें कवीर गुरु साबु सों, कोइ इक ऊजल होय ॥८८॥
 साबु विचारा क्या करै, गोंठै राखै भोय ।
 जल सो अरसा परस नरि, क्यों करि ऊजल होय ॥८९॥
 नारद सरिखा सीप है, गुरु है पच्छीमार ।
 ता गुरु की निन्द करै, पढ़ै चौरासी धार ॥९०॥
 राजा की चोरी करै, रहै रंक की ओट ।
 कहें कवीर क्यों ऊबरै, काल कठिन की चोट ॥९१॥

८८. लौ-लगन, प्रेम । बिप-विषयवासना । कालख-पाप ।

८९. जिस प्रकार मैले कपड़े में बाधा हुआ साबुन बिना पानी के कपड़े को सफा नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना सत्संग के ज्ञान पाप के मेल को दूर नहीं कर सकता ।

९०. शिष्य को उचित है कि वह गुरु की जाति का विचार न करे । शिष्य के पूछने पर नारदजी ने अपने धोमर गुरु की निंदा की थी। इस कारण उन्हें चौरासी मोगने की आज्ञा हो गई थी परन्तु अपने गुरु की कृपा से उनको इससे छुटकारा हो गया ।

९१. जो ईश्वर से निमुख होकर ससार का प्रेमी बनता है वह काल के फन्दे से नहीं बच सकता । उसको उचित है कि वह गुरु के शरण में जाय ।

सतगुरु को अंग ।



वकीर रामानंद को, सतगुरु भये सहाय ।
 जग में युक्ति अनूप है, सो सब दर्ई बताय ॥१॥
 सतगुरु के परताप तें, मिटी गयो सब दुंद ।
 कई कधीर दुविधा मिटी, (गुरु)मिलिया रामानंद ॥२॥
 सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात ।
 हरि समान को है हितु, हरिजन सम को जात ॥३॥
 सतगुरु सम कोई नहीं, सात द्वीप नव खंड ।
 तीन लोक ना पाइये, अरु इकइस ब्रह्मंड ॥४॥
 सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार ।
 लोचन अनंत उधारिया, अनंत दिखावनहार ॥५॥
 दिल ही में दीदार है, बादि झखै संसार ।
 सतगुरु सद्गिहि मसकला, मुझे दिखावनहार ॥६॥
 सतगुरु साँचा सूरमा, नख सिख मारा पूर ।
 बाहिर घाव न दीसई, अन्तर चकना चूर ॥७॥

३ दात-दाता । जात-जाति भाई ।

५ (१) अनन्त-अपार । (२) अनन्त-बहुत । लोचन-नेत्र । (३) अनन्त-अविनाशी । (४) अनन्त-अखंड पुरण ।

६ दीदार-दर्शन । बादि-व्यर्थ । झखै-पछताता है । मुझे-मुझको (अपना रूप) ।

७ दासई-दीखता है । चकनाचूर-बिल्कुल टूट गया ।

सतगुरु साँचा सूरमा, सद्ध जु बाह्या एक ।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥८॥

सतगुरु मेरा सूरमा, वेधा सकल सरीर ।
सद्ध बान से भरि रहा, (क्यों)जीयेदास कबीर ॥९॥

सतगुरु मेरा सूरमा, तकि तकि मरै तीर ।
लागे पन भागे नहीं, ऐसा दास कबीर ॥१०॥

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर ।
१नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥११॥

सतगुरु मारा बान भरि, धरि करि धीरी मूठ ।
अंग उवाड़े लागिया, गया दुवाँ सौ फूट ॥१२॥

८ बाह्या-चलाया, मारा । एक-एक मालिक का । शद्ध-उपदेश ।
छेक-छेद ।

९. वेधा छेद दिया ।

१०. तकि २-निशाना ताक कर । लागे पन . शिष्य को
चाहिये कि सद्गुरु के उपदेश से अपने चित्त को कभी न हटावे ।

११. मेरे हृदय की आसक्ति को पहचान २ कर सद्गुरु ने ऐसा
पूरा उपदेश दिया कि शिक्षा से हटके दूसरी ओर चित्त नहीं जाता ।

१२ धीरी मूठ-बाण को धीरे से खेंचकर । दुवासों-आपारा सद्गुरु
के शत उपदेश को जो शिष्य कपट छोड़कर मानता है उसके हृदय से
लोक और परलोक के सुख को आशा निकल जाती है ।

१. पा० अलख नाम में रमि रहा, ।

सतगुरु मारा वान भरि, टूटि गई सब जेव ।
 कहूँ आपा कहूँ आपदा, तसबी कहूँ किनेव ॥१३॥
 सतगुरु मारा वान भरि, डोळा नाँहि मरीर ।
 कहूँ चुंवक क्या करि सकै, मुख लागै वहि तीर ॥१४॥
 सतगुरु मारा वान भरि, रहा कलेजे माल ।
 राखी काढ़ी तळ रहे, आज परे की काल ॥१५॥
 गोसा ज्ञान धमान का, खैचा किनहु न जाय ।
 सतगुरु मारा वान भरि, रोम हि रहा समाय ॥१६॥
 सतगुरु मारा तान करि, सद्ग सुरंगी वान ।
 मेरा मारा फिर जिये, (तो)हाथ न गहों कमान ॥१७॥
 सतगुरु मारी प्रेम की, रही कटारी दूट ।
 वैसी अनी न सालई, जैसी सालै मूठ ॥१८॥

१३. जेज समार, घनाव । शरीर की ममता । आप कह आशा.....
 गुरु के उपदेश स्वर्ण वाण से शिष्य ऐसा घायल हो गया कि उसको
 तसबी (माला) और कुरान का कुछ खयाल न रहा और सारी आशाएँ
 छोड़कर आप अपने में पहुच गया ।

१४. सद्गुरु के उपदेश के सुनते ही चित्त स्थिर हो गया ।
 ससारी लोग उसे बहुत कुछ अपनी ओर खींचना चाहते हैं, परन्तु वह
 आनन्द के सागर को छोड़ना नहीं चाहता ।

१६. गोसा रोदा । रोमही-रोम २ में

१७. सुरंगी-सीधा, सत्यका उपदेश ।

१८. अनी-नोक । मूठ-पकड़ने की जगह । वैसी... मूठ-थोडा
 प्रेम मनुष्य को घायल नहीं कर सकता, किन्तु पूरे प्रेम से ही वह
 ससार से उदास हो सकता है ।

सतगुरु सद्ध कमान करि, वाहन लागे तीर ।
 एक हि वाहा प्रेप सों, भीतर विधा सरीर ॥१९॥
 सतगुरु सत का सद्ध है, (जिन)सत्त दिया वतलाय ।
 जो सत को पकड़े रहै, सत्त हि माँहि समाय ॥२०॥
 सतगुरु सद्ध सब घट बसै, कोई कोइ पावै भेद ।
 समुँद वुँद एकै भया, काहे करहु निपेद ॥२१॥
 सतगुरु दाता जीव के, जीव ब्रह्म करि लेह ।
 सरवन सद्ध सुनाय के, और रंग करि देह ॥२२॥
 सतगुरु सें सुधा मया, सद्ध जु लागी अंग ।
 ऊठी लहरि समुँद की, भींजि गया सब अंग ॥२३॥
 सद्धै मारा खैंचि करि, तब हम पाया ज्ञान ।
 लगी चोट जो सद्ध की, रही कलेजे छान ॥२४॥
 सतगुरु बड़े सराफु हैं, परखे खरा रु खोट ।
 भीसागर ते काढि के, राखे अपनी ओट ॥२५॥
 सतगुरु बड़े जहाजु हैं, जो कोइ घेठे आय ।
 पार उतारै और को, अपनो पारस लाय ॥२६॥

२१. समुँद वुँद-ईश्वर और जीव । २३. सुधा-सन्मुख ।
 समुँद-प्रेम को समुद्र । २४. छान-वेध गई । २५. सराफ-जोहरी ।
 ओट-सहारे । २६. पारस-पारसमणि, दाम ।

१. पा० सतगुरु सद्ध जहाजु हैं, २. पा० किसका करुं निपेद ॥

सतगुरु बड़े सुनार हैं, परखे वस्तु भँडार ।
 सुरति हि निरति मिलाव के, भेंटि डारे खुटकार ॥२७॥
 सतगुरु के सद्के किया, टिल अपने को सॉच ।
 कलियुग हय सौ लहि पडा, मुहकम मेरा वाच ॥२८॥
 सतगुरु मिलि निर्भय भया, रही न दूजी आस ।
 जाय समाना सब्द में, सत्तनाम विस्वास ॥२९॥
 सतगुरु मोहि निवाजिया, दीन्हा अंघर बोल ।
 सीतल छाया सुगम फल, हंसा करै किलोल ॥३०॥
 सतगुरु पारस के सिला, देखो सोचि विचार ।
 आइ परोसिन ले चली, दीयो दिया सम्हार ॥३१॥
 सतगुरु सरन न आवहौं, फिरि फिरि होय अकाज ।
 जीव खोय सब जायंगे, काल तिहु पुर राज ॥३२॥
 सतगुरु सो सत भाव है, जो अस भेद बताय ।
 धन्य सीप धन माग तिहि, जो ऐसी सुधि पाय ॥३३॥

२७ सुरति-जीव । निरति-साहब । खुटकार-खटक ।

२८. सद्के न्योठावर । मोहकम-परमाना । कलियुग की अमलदारी के रहते हुए भी मैंने सतगुरु में चित्त लगाकर उसे समझि स लिया ।

३० निवाजिया-दया की । अमर बोल-मुक्ति का उपदेश ।

३१. दीयो .. सम्हार-दीये से ढाये को जला लिया । अर्थात् सतगुरु का उपदेश शिष्य प्रशिष्य के द्वारा ससार में फैल गया ।

३३. भावों की सत्यता ही साहब का स्वरूप है, जो इस मत को मान लेता है वह बड़भागी है, क्योंकि उसकी मुक्ति में संदेह नहीं रहता ।

सतगुरु हम सौ रीझि कै, कह्यो एक परसंग ।
 चरपै बादल प्रेम को, भीजि गया सब अंग ॥३४॥
 सतगुरु बादल प्रेम के, — हम पर चरप्यौ आय ।
 अन्तर भीजी आत्मा, हरी भई बनराय ॥३५॥
 हरी भई सब आत्मा, सब्द उठै गहराय ।
 डोरी लागी सब्द की, ले निज घर कुं जाय ॥३६॥
 हरी भई सब आत्मा, सतगुरु सेव्या मूल ।
 चहुँदिस फूटी वासना, भया कली सौं फूल ॥३७॥
 सतगुरु के भुज दीय है, गोविंद के भुज चार ।
 गोविंद से कलु ना सरै, गुरु उतारै पार ॥३८॥
 सतगुरु की दाया भई, उपजा सहज सुभाव ।
 ब्रह्म अगनि परजालिया, अब कलु कहा न जाव ॥३९॥
 सतगुरु हम सौं मल कही, ऐसी करै न कोय ।
 तीन लोक जम फंद में, पला न पकड़े कोय ॥४०॥

३४ रीझि कै-प्रसन्न होकर । एक परसंग-एक साहब से प्रेम का प्रसंग ।

३५. बनराय-सारा जगल । सब ओर आनंद छा गया ।

३७ जिस प्रकार मूल के साँचने से पेड़ की डालियाँ हरी भरी हो जाता हैं और कलियाँ खिलकर चारों ओर सुगंध फैला देती हैं, इसी प्रकार पूरे सतगुरु के शरण से पूर्णपद मिल जाता है, जिससे श्रेय और प्रेम दोनों की प्राप्ति हो जाती है ।

सतगुरु मिले जु सच मिले, ना तो मिला न कोय ।
 मातु, पिता सुत बंधुवा, ये तो घर घर होय ॥४१॥
 सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय ।
 भ्रम का माँडा तोड़ि करि, गढ़े भिराला होय ॥४२॥
 सतगुरु आत्म दृष्टि है, इन्द्रि टिकै न कोय ।
 सतगुरु विन सुझे नहीं, खरा दुहेला होय ॥४३॥
 सतगुरु किरपा फेरिया, मन का और हि रूप ।
 कबीर पांचो पलटिया, भेले किया अनूप ॥४४॥
 सतगुरु की मानै नहीं, अपनी कहै बनाय ।
 कहै कबीर वया कीजिये, और मता मन माँय ॥४५॥
 सतगुरु अमृत बोझ्या, सिप खारा है आय ।
 नाप रसायन छाँडि कर, आक धरारा खाय ॥४६॥
 सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह ।
 सादिव दरसन कारनै, सब्द शरोखा कीन्ह ॥४७॥
 सतगुरु वो ऐसा मिला, ताते लोह लुहार ।
 कसनी दे कंचन किया, ताय किया ततसार ॥४८॥

४३. सतगुरु (साहब) स्वानुभवगम्य हैं । इन्द्रियों से वह जाना नहीं जाता । बिना सतगुरु (गुरु) के मिले सत्य वस्तु भी झूठी मालूम पड़ती है ।

४४. भेले—मिला दिया । अनूप—मालिक ।

सतगुरु के उपदेस का, सुनिया एक विचार ।
 जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥४९॥
 जम द्वारे में दूत सब, करते ऐंचातान ।
 उन ते कबहु न छटना, फिरता चारों खान ॥५०॥
 चारि खानि में भरमता, कबहु न लगता पार ।
 सो फेरा सब पिटि गया, सतगुरु के उपकार ॥५१॥
 पाछे लागा जाय था, लोक वेद के साथ ।
 पैडे में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥५२॥
 दीपक दीन्हा बेल भरि, घाती दी अघट ।
 पूरा किया विसाहना, बहुरि न आवै हट ॥५३॥
 पूरा सतगुरु सेवतों, अंतर प्रगटे आप ।
 मनसा वाचा कर्मना, मिटे जनम के ताप ॥५४॥
 पूरा सतगुरु 'सेव तूं', धोखा सब दे द्वार ।
 साहिब भक्ति कहँ पाइये, अब मानुष औतार ॥५५॥
 पूरा सतगुरु सेवताँ, सरन पायो नाम ।
 मनसा वाचा कर्मना, सेवक सारा काम ॥५६॥
 मनहि दिया जिन सब दिया, मन के संग सरीर ।
 अब देवे को क्या रहा, यों कथि कहँ कबीर ॥५७॥

५२. पैडे में—रास्ते में ।

५३. अघट—पूरी । विसाहना—सौदा । हट—छाट, बाजार ।

तन मन दिया जु क्या हुआ,
कहैं कबीर ता दास सों,
तन मन दिया जु आपना,
कहैं कबीर सद्गुरु किया,
पारस लोहा परसते,
अंसय सबही मिटि गया,
मर जग मरमा यों फिरै,
सतगुरु सों सुधि जब भई,
थापन पाई धिर भया,
कबीर हीरा बनिजिया,
कबीर हीरा बनिजिया,
पारब्रह्म किरपा करी,
निश्चय निधी मिलाय तत,
निपजी में साझी घना,
पिति पाई मन धिर भया,
अनन्य कथा जिव संचरी,
कर कमान सर साधि के,
भीतर बंधै सो मरै.

निज मन दिया न जाय ।
कैसे मन पतियाय ॥६८॥
निज मन नाके संग ।
सुनि सतगुरु परसंग ॥६९॥
पलटि गया सब अंग ।
सतगुरु के परसंग ॥७०॥
ज्यों रामा का रोज ।
पाया हरि का खोज ॥७१॥
सतगुरु दीन्ही धीर ।
मान सरोवर तीर ॥७२॥
हिरदै भगदी खान ।
सतगुरु मिले सुजान ॥७३॥
सतगुरु साइस धीर ।
वाँटनहार कबीर ॥७४॥
सतगुरु करी सहाय ।
हिरदै रही समाय ॥७५॥
खैचि जु मारा मॉहि ।
जिय पै जीवै नॉहि ॥७६॥

६१. रामा—भगन् । ६२. बनिजिया—खरोदा । ६९. अनिन
कथा—एक ध्यान ।

१. पा० लोहा पारस परसते । २. पा० भेष । ३. पा० सत्ता ।

चेतन चौकी बैठि के, सतगुरु दीन्ही धीर ।
 निर्भय होय निःसंक मजु, केवल कहैं कबीर ॥६७॥
 जब ही मारा खंचि के, तब मै मूआ जानि ।
 लागी चोट जु सब्द की, गई कलेजे छानि ॥६८॥
 हँसै न धौलै उनमुनी, चंचळ मेल्या मार ।
 कह कबीर अंतर विध्या, सतगुरु का हथियार ॥६९॥
 गुगा हुआ धावरा, बहरा हुआ कान ।
 पाँवन ते पंगुला भया, सतगुरु मारा वान ॥७०॥
 ज्ञान कमान रु लौ गुना, तन तरकस मन तीर ।
 भलक वधै तत सार का, मारा हृदफ कबीर ॥७१॥
 जो दीसै सो विनसि है, नाम धरा सो जाय ।
 कबीर सोई तत गहौ, सतगुरु दीन्ह बताय ॥७२॥
 कुदरत पाई ^१खबर सों, ^२सतगुरु दिया बताय ।
 भँवर विलंघा कपल रस, ^३अव उडि अंत न जाय ॥७३॥
 सच नाम छाडौ नहीं, सतगुरु सीख दई ।
 अविनासी सों परसि के, आत्म अमर भई ॥७४॥

६९. चंचळ—चंचल्ता । मेल्या मारे—मार हटाई ।

७१. हृदफ—निशाना ।

७३. सतगुरुने ससार का सच्चा भेद बना दिया, इस कारण चित्त उससे हटकर परमानन्द में लग गया ।

१. पा० खरी सों । २. पा० चित्त सों चित्त मिलाय । ३. पा० अब कैसे उडि जाय ।

चित चोखा मन निरमला,	बुधि उत्तम पति धीर ।
सो घोखा नहि धिरहही,	सतगुरु मिले कवीर ॥७५॥
बिन सतगुरु चाँचै नहीं,	फिर बूढ़े भव माँहि ।
भौसागर की प्रास सैं,	सतगुरु पकड़े बाँहि ॥७६॥
जीव अघम अति कुटिल हैं,	काहु नहीं पतियाय ।
ताका औगुन भेटि कर,	सतगुरु होत सहाय ॥७७॥
जेहि खोजत ब्रह्मा यकै,	सुर नर मुनि अरु देव ।
कहैं कवीर सुन साधवा,	करु सतगुरु की सेव ॥७८॥
काल के माये पाँव दे,	सतगुरु के उपदेस ।
साहिब अंक पसारिया,	ले चल अपने देस ॥७९॥
जाय पिल्यौ परिवार में,	सुख सागर के तीर ।
वरन पलटि हंसा किया,	सतगुरु सच कवीर ॥८०॥
जग मूआ विषयर धरै,	कहैं कवीर पुकार ।
जो सतगुरु को पाइया,	सो जन उतरै पार ॥८१॥
अंधा ऊरट जात है,	दोनों लोचन नाँहि ।
उपकारी सतगुरु मिले,	(लै) डारै वस्ती माँहि ॥८२॥
दौड़ आय सो दौड़सी,	पहुँचेगा उन देस ।
जाय मिले वा पुरुष कूँ,	सतगुरु के उपदेस ॥८३॥

७९. अंक—अंकनार । ८२. ऊरट—बेरस्ते, कुमार्ग ।

१. पा० विचलहो । २. पा० हसै । ३. पा० विचार ।

जग 'में युक्ति अनूप है,
 तामें निपट अनूप है,
 सीप हरन गुरु पारधी,
 लागा तब ही भय पिटा,
 सब जग तो भरमत फिरै,
 सतगुरु सों सूधि भई,
 तीन लोक है देह में,
 सतगुरु विन नहि पाइये,
 सकळ जगत् जानै नहीं,
 जिन आँखों देखा नहीं,
 चलते चलते युग गया,
 पैडे में सतगुरु मिले,
 खेल मचा खेलाडि सों,
 सतगुरु के संग खेलतों,
 सीप जु तब लग उतरती,
 छलटि सीप पैडे गई,
 सीप समुंदर में बसै,
 सकल समुंद तिनखा गिनै,
 कबीर समझा कहत है,
 ताकूं सतगुरु कह करै,

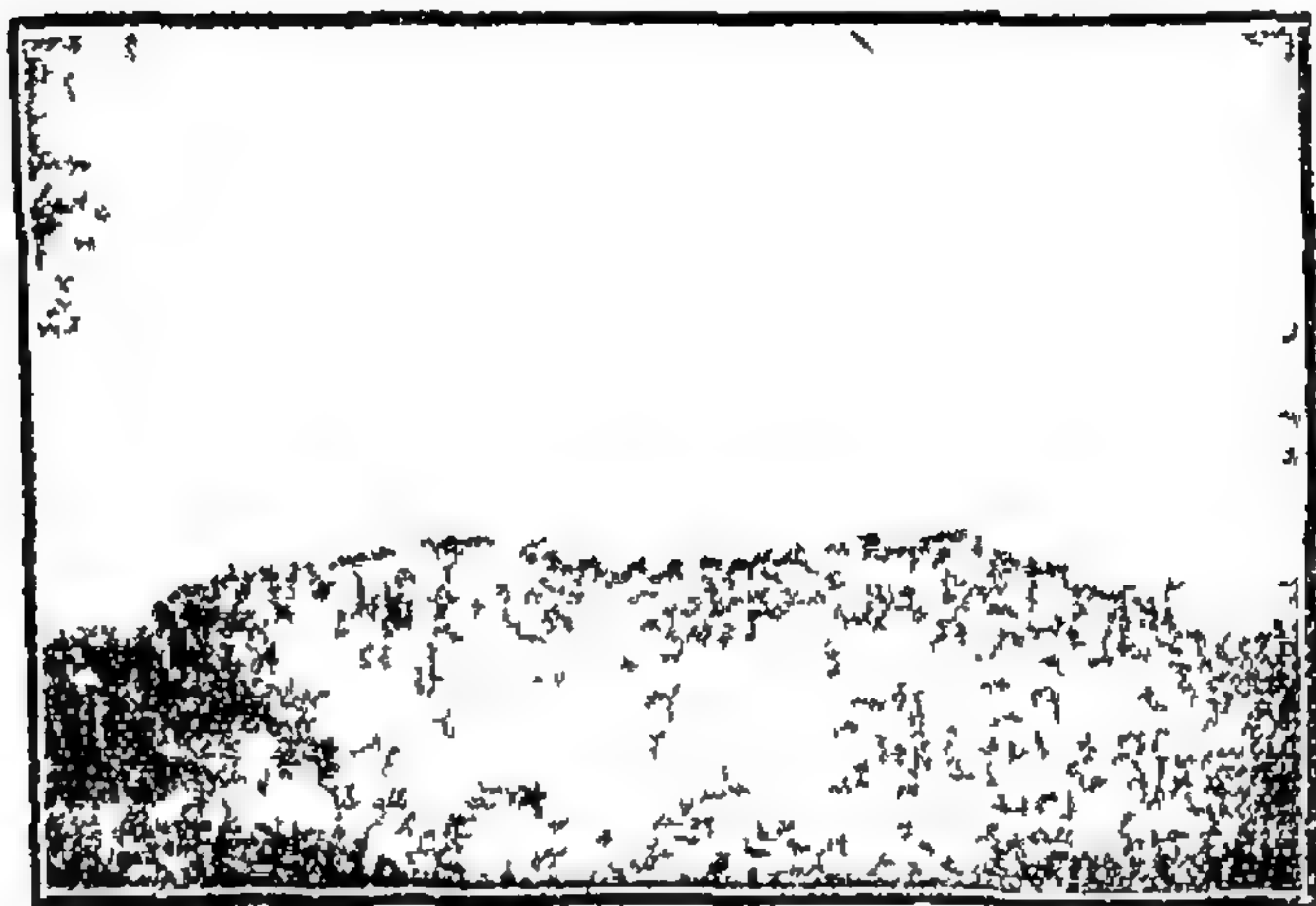
साध संग गुरु ज्ञान ।
 सतगुरु लागा कान ॥४॥
 सत्तनाम के वान ।
 तब ही निकसे पान ॥८५॥
 ज्यों जंगल का रोज़ ।
 जब देखा कछु मौज ॥८६॥
 रोम रोम में धाम ।
 सत्त सार निज नाम ॥८७॥
 सो गुरु प्रगटे आय ।
 सो गुरु दीन्ह लखाय ॥८८॥
 को(इ) न बतावै धाम ।
 पाव कोस पर गाव ॥८९॥
 आनंद जीतै जाय ।
 जीव ब्रह्म है जाय ॥९०॥
 जब लग खाली पेट ।
 (जब) भई स्वाँति सों भेटा ॥९१॥
 रटत पियास पियास ।
 (एक) स्वाँति बूँद की आस ॥९२॥
 पानी थाह बताय ।
 (जो) औघट दूँ जे जाय ॥९३॥

दूबा औघट ना तरै, मोहि अंदेसा होय ।
 लोम नदी की धार में, कहा पही नर सोय ॥९४॥
 सचु पाया मुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर ।
 सकल पाप सहजे गया, सतगुरु मिले हजूर ॥९५॥
 बिन सतगुरु उपदेस, सुरनर मुनि नहि निस्तरे ।
 ब्रह्मा विस्तु महेस, और सकल जीव को गिनै ॥९६॥
 कैते पढ़ि गुनि पचि मुआ, योग यज्ञ तप लाय ।
 बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥९७॥
 करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है ।
 होय तब जिव काज, निश्चय करि परतीति कर ॥९८॥
 अच्छर आदि जगत में, जाका सब विस्तार ।
 सतगुरु दाया पाईये, सत्तनाम निज सार ॥९९॥
 सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहु ।
 मेटो भव को अंक, आवा गहन निवारहु ॥१००॥
 सत्तनाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करै ।
 और झूट सब होय, कोहे को भरमत फिरै ॥१०१॥
 जो सत्तनाम समाय, सतगुरु की परतीति कर ।
 जम के अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥१०२॥
 ततदरसी जो होय, सो तत सार विचारई ।
 पावै तत्त विलोय, सतगुरु के चेला सई ॥१०३॥

जग में युक्ति अनूप है, साध संग गुरु ज्ञान ।
 तारें निपट अनूप है, सतगुरु लागा कान ॥८४॥
 सीप हरन गुरु पारधी, सत्तनाम के वान ।
 लागा तब ही भय मिटा, तब ही निकसे प्रान ॥८५॥
 सब जग तो भरमत फिरै, ज्यौ जंगल का रोज़ ।
 सतगुरु सों मूधि भई, जब देखा कलु मौज ॥८६॥
 तीन लोक है देह में, रोम रोष में धाम ।
 सतगुरु विन नहि पाइये, सत्त सार निज नाम ॥८७॥
 सकल जगत जानै नही, सो गुरु मगटे आय ।
 जिन आँखों देखा नही, सो गुरु दीन्ह लखाय ॥८८॥
 चलते चलते युग गया, को(इ) न बतावे धाम ।
 पैहे में सतगुरु मिले, पाव कोस पर गाव ॥८९॥
 खेल मचा खेलाहि सो, आनंद जीतै जाय ।
 सतगुरु के संग खेलताँ, जीव ब्रह्म है जाय ॥९०॥
 सीप जु तब लग उतरती, जब लग खाली पेट ।
 छलटि सीप पैडे गई, (जब) भई स्वाँति सों भेट ॥९१॥
 सीप समुंदर में वसै, रतत पियास पियास ।
 सकल समुंद तिनखा गिनै, (एक) स्वाँति बूंद की आस ॥९२॥
 कबीर समझा कहत है, पानी थाह बताय ।
 तार्कू सतगुरु कह करै, (जो) औघट दूवै जाय ॥९३॥

बुझा औघट ना तरै, मोहि अंदेसा होय ।
 लोम नदी की धार में, कहा पढ़ी नर सोय ॥९४॥
 सचु पाया सुख ऊपजा, दिल ढरिया भरपूर ।
 सकल पाप सहजे गया, सतगुरु मिले हजूर ॥९५॥
 बिन सतगुरु उपदेस, मुरनर मुनि नहि निस्तरे ।
 ब्रह्मा विष्णु महेश, और सकल जीव को गिनै ॥९६॥
 केते पढ़ि गुनि पचि मुआ, योग यज्ञ तप लाय ।
 बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥९७॥
 करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है ।
 होय तत्र निव काज, निश्चय करि परतीति कर ॥९८॥
 अच्छर आदि जगत में, जाका सब विस्तार ।
 सतगुरु दाया पाईये, सत्तनाम निज सार ॥९९॥
 सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहु ।
 मेरी भव को अंक, आवा गवन निवारहु ॥१००॥
 सत्तनाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करै ।
 और झूठ सब होय, कोह को भरमत फिरै ॥१०१॥
 जो सत्तनाम सपाय, सतगुरु की परतीति कर ।
 जम के अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहै ॥१०२॥
 ततदरसी जो होय, सो तत सार विचारै ।
 पावै तत्त बिलोय, सतगुरु के चेला सदै ॥१०३॥

जग ' भीसागर माँहि, कहु कैसे बूझत तरे ।
 गहु सतगुरु की बाँहि, जो जल थल रक्षा करै ॥१०४॥
 निजमत सतगुरु पास, जाहि पाय सब सुधि मिले ।
 जगते रहै उदास, ता कहँ क्यों नहि खोजिये ॥१०५॥
 यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत ।
 करम भरम सब त्यागि के, चलै सो भवजल जीत ॥१०६॥



गुरु पारख को अंग ।

गुरु लोभी सिप लालची, दोनों खेले दाव ।
 दोनों बूढ़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाव ॥ १ ॥
 गुरु मिला नहि सिध मिला, लालच खेला दाव ।
 दोनों बूढ़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥ २ ॥
 जाका गुरु है आंधरा, चेका खरा निरंध ।
 अंधे को अंधा मिला, पडा काल के फंद ॥ ३ ॥
 जानीता बूझा नहीं, बुझि किया नहि गौन ।
 अंधे को अंधा मिला, पंध घतावै कौन ॥ ४ ॥
 जानीता जब बुझिया, पैडा दिया बताय ।
 चलता चलता तहँ गया, जहाँ निरंजन राय ॥ ५ ॥
 अंधा गुरु अंधा जात, अंधे हैं सब दीन ।
 गगन मंडल में बज रही, अनइद बानी वीन ॥ ६ ॥
 सो गुरु नितदिन बन्दिये, नामों पाया नाम ।
 नाम बिना घट अंध है, ज्यों दीपक बिन घाम ॥ ७ ॥
 आगे अंधा कूप में, दूजा लिया बुलाय ।
 दोनों बूढ़े बापुरे, निकसे कौन उपाय ॥ ८ ॥

३. निरंध—विल्कुल अपात्र । ४. जानीता—जानकार से ।
 बूझा—पूछा ।

रात अघेरी रैन में, अघे अंधा साथ ।
 वो बहिरा वो मूंगिया, बघौ करि पूछै बात ॥ ९ ॥
 अगम पंथ को चालताँ, (सब) अंधा मिलिया आय ।
 औघाट घाट मूझै नहीं, कौन पंथ है जाय ॥१०॥
 जाका गुरु है लालची, दया नहीं सिप माँहि ।
 उन दोनों कू भेजिये, ऊजड़ कूआ माँहि ॥११॥
 जिसका गुरु है लालची, पीतल देखि भुलाय ।
 सिप पीछे लागा फिरै, (ज्यौ) बहुभा पीछै गाय ॥१२॥
 कलि के गुरुवा लालची, लालच लोभे जाय ।
 सिप पीछे धाया फिरै, (ज्यौ) बहुभा पीछै गाय ॥१३॥
 १ जाके हिय साहिव नहीं, सिप साखों की भूख ।
 ते जन २ ऊभा मुखसी, ३ (ज्यौ) दाहै दाशा रुख ॥१४॥
 सिप साखा चीना भया, गुरु कूं आगम नाँहि ।
 जेता पेटै प्रीति मूं, तेता डूबै माँहि ॥१५॥
 माई मूँड (उस) गुरु की, जाते भरम न जाय ।
 आपन बूढ़ा धार में, चेला दिया बहाय ॥१६॥
 गुरु गुरु में भेद है, गुरु गुरु में भाव ।
 सोइ गुरु नित बाँदिये, सदा बतवै दाव ॥१७॥

९ मूंगिया—गूगा । ११. ऊजड़ कूआ—अधाकूआ ।

१२. पीतल—पीतलकी मूर्ति ।

१ जाके हिरदै गुरु नहीं, । २ ऐसा । ३ ज्यौ बन दाशा रुख ।

पूरे सतगुरु के बिना, पूरा सीप न होय ।
 गुरु लोभी सिप लालची, धूनी दाशन सोय ॥१८॥
 पूरा सतगुरु ना मिलै, सुनी अधूरी सीख ।
 स्वाँग यती का पहिरि के, घर घर माँगी भीख ॥१९॥
 पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
 निकसा था हरि मिलन को, बीच हि खाया बीख ॥२०॥
 पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
 मुँह मुँहावे मुक्ति कुं, चालि न सकई बीक ॥२१॥
 कवीर गुरु हैं घाट के, हाट्टू बैठा . खेल ।
 मुँह मुँहाया सांझ कुं, गुरु सवेरे खेल ॥२२॥
 पूरा सज्जे गुन करै, गुन नहि आवै छेद ।
 सायर पोषे सर भरे, दान न माँगे मेह ॥२३॥
 गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाँहि ।
 भौसागर की जाल में, फिर फिर गोताँ खाँहि ॥२४॥
 जा गुरु ते भ्रम ना मिटै, भ्रान्ति न जिव की जाय ।
 सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय ॥२५॥

२० बीख-विष. २१. बीक—विस्वा ।

२२. गुरु विरागी और चेला संसार का अनुरागी हो तो दोनों का मेल नहीं खाता ।

२३. छेद—अंत । सायर-समुद्र ।

१ पा० बड़े भौ निवि दोष ।

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार ।
 द्वार न पावै सद्व का, भटके वारं वार ॥२६॥
 सौंचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय ।
 चंचल ने निश्चल भया, नहि आवै नहि जाय ॥२७॥
 कनफूका गुरु हृद का, बेहद का गुरु और ।
 बेहद का गुरु जब मिलै, लहै ठिकाना ठौर ॥२८॥
 जा गुरु को तो गम नहीं, पाहन दिया बताय ।
 सिप सोधि दिन सेइया, पार न पहुँचा जाय ॥२९॥
 सतगुरु ने तो गप कही, भेद दिया अरथाय ।
 सुरति कमल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥३०॥
 सतगुरु का सारा नहीं, सद्व न लाग्य अंग ।
 कोरा रहिगा सीदरा, सदा तेल के संग ॥३१॥
 सतगुरु मिले तो क्या भया, जो मन परिगा भोल ।
 कपास बिनाया कापड़ा, (क्या) करै विचारी चोला ॥३२॥
 सतगुरु ऐसा कीजिये, ज्यों भुंजी मत होय ।
 पक पल दाव . बतावही, हंस न जाय विगोय ॥३३॥

२८. ससारी गुरु अगम पद को नहीं पहुँचा सकते, उस पद को पाने के लिये तो सद्गुरु दूढ़ना चाहिये ।

३१. सारा-वश . सीदडा-तेल का कुप्पा (कुप्पी) ।

३२. सद्गुरु के मिलने पर भी मलिन हृदय उससे लाभ नहीं उठा सकता । कपास को कूटकर बनाया हुआ कपड़ा कभी साफ नहीं बन सकता । चोल खदर का लाल रंगा धान ।

सतगुरु ऐसा कीजिये, लोभ मोह भ्रम नाँहि ।
 दरिया सौ न्यारा रहे, दीसै दरिया माँहि ॥३४॥
 सतगुरु ऐसा कीजिये, जाका पुरन मन ।
 अनतोले ही देत है, नाम सरीखा धन ॥३५॥
 गुरु तो ऐसा कीजिये, (सब) वस्तु लायक होय ।
 यहाँ दिखावै सद्ध में, वहाँ पहुँचावै लोप ॥३६॥
 गुरु तो ऐसा कीजिये, तत्व दिखावै सार ।
 पार बतारे पलक में, दरपन दे दातार ॥३७॥
 गुरु की सूनी आत्मा, चेह्र चहै निज नाम ।
 कहै कबीर कैसे बसे, धनी बिहना गाम ॥३८॥
 काचे गुरु के मिलन से, अगली भी बिगड़ी ।
 चाले ये हरि मिलन को, दूनी विपत्ति पड़ी ॥३९॥
 कबीर बेडा सार का, ऊपर लादा सार ।
 पापी का पापी गुरु, यौं बूढ़ा संसार ॥४०॥
 ऐसा गुरु ना कीजिये, जैसी लटलटी राव ।
 माखी जामें फँसि रहे, वा गुरु कैसें खाव ॥४१॥
 गुरु नाम है गम्य का, सीप सीख ले सोय ।
 बिनु पद बिन मरजाद नर, गुरु सीप नहि कोय ॥४२॥

३४. लोभ और मोह से रहित होने के कारण संसार में रहते हुए भी जो उससे न्यारे हों ऐसे सद्गुरु को शरण में जाना चाहिये ।

गु अंधियारी जानिये, रु कहिये परकास ।
 मिटे अज्ञान तम ज्ञान ते, गुरु नाम है तास ॥४३॥
 भैरे चढ़िया झाँझै, भौसागर के माँहि ।
 जो छाँड़ै तो वाचि है, नातर बूढ़े माँहि ॥४४॥
 जाका गुरु है गीरही, गिरही चेला होय ।
 कीच कीच के धोवते, दाग न छूटे कोय ॥४५॥
 गुरुवा तो सस्ता भया, पैसा केर पचास ।
 राम नाम धन बेचि के, करे सीप की आस ॥४६॥
 गुरुवा तो घर घर फिरे, दीक्षा हमरो लेहु ।
 कै बूढ़ो कै ऊबरौ, टका पर्दनी देहु ॥४७॥
 घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु चतुर सुजान ।
 पाँच मद्ध धुनकार धुन, बाजै सद्ध निसान ॥४८॥
 छीपा रँगै सुरंग रँग, नीरस रस करि लेय ।
 ऐसा गुरु पै जो मिलै, सीप मोक्ष पुनि देय ॥४९॥

४३. गु-शब्दध्वान्वकारे हि, रु-शब्द स्तान्निवर्तकः ।

अज्ञाननाशको यस्तु, स गुरु सप्रकीर्तितः ॥

जिससे अज्ञान को निवृत्ति हो ऐसे ज्ञान ही का नाम गुरु है और उस ज्ञान को जो अपने हृदय में धरता है वही शिष्य है । जिना इस धारणा के गुरु और शिष्य दोनों ही केवल नाम मात्र के हैं ।

४७. परदनी-धोती ।

४८. जो अपने हृदय में परम तत्व का परिचय करा दे वही गुरु पूरा है । और ब्रह्मांड में पाँच अनन्द शब्द का परिचय करा दे ।

मैं उपकारी ठेठ का, सतगुरु दिया मुहाग ।
 दिल दरपन दिखलाय के, दूर किया सब दाग ॥५०॥
 ऐसा कोई ना मिला, जासों रहिये लाग ।
 सब जग जलना देखिषा, अपनी अपनी आग ॥५१॥
 ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन सों रहिये लाग ।
 सब ही जग सीतल भया, (जब)मिटो आपनी आग ॥५२॥
 यह तन विप की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
 सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी समता जान ॥५३॥
 गुरु बतावै साध को, साध कहै गुरु पूज ।
 अरस परस के खेल में, मई अगम की सूझ ॥५४॥
 नादी बिंदी बहु मिले, करत कलेजे छेद ।
 (कोइ)तख्त तले का ना मिला, जासों पूछं भेद ॥५५॥
 तख्त तले की सो कहै, (जो)तख्त तले का होष ।
 मौझ महल की को कहै, पड़दा गाढ़ा सोष ॥५६॥
 मौझ महल की गुरु कहै, देखा जिन घरवार ।
 कुंजी दीन्ही हाथ कर, पड़दा दिया उधार ॥५७॥

५५. नादी—नाद की टपासना करनेवाले । बिंदी—बेदों के पारगत वादविवाद करनेवाले । तख्ततले का—परम तत्त्व का ज्ञाता ।

५६. सत्य पुरुष का परिचय वही करा सकता है जो उसका भेद हो । अविनाशी के महल में दूसरा नहीं जा सकता; क्योंकि वह बड़े पड़दे में है ।

१. पा० अरस परस के मेल से २. पा० आदी ।

वस्तु कहि हूँ कहों,
 कहैं कबीर तब पाइये,
 भेदी लीया साथ करि,
 कोटि जनम का पंथ था,
 घट का पड़दा खोलि करि,
 बाल सनेही सांझा,
 गुरु मिला तब जानिये,
 हरष सोक व्यापै नहीं,
 सिप साखा बहुते किया,
 चाले थे सत लोक को,
 बंधे को बंधा मिला,
 कर सेवा निरबंघ की,
 गुरु बेचारा क्या करै,
 नी नेजा पानी चढा,
 गुरु बेचारा क्या करै,
 कहैं कबीर मैली गज़ी,
 गुरु है पूरा; सिप है सूरा,
 सत सुकृत को चीन्हि के,
 कहता हूँ कहि जात हूँ,
 गुरु की करनी गुरु जानै,

त्रिहि विधि आवै हाथ ।
 (जब) भेदी लीजै साथ ॥५८॥
 दीन्हा वस्तु लखाय ।
 पल में पहुँचा जाय ॥५९॥
 सनमुख ले दीदार ।
 आदि अंत का यार ॥६०॥
 मिटे मोह तन ताप ।
 तब गुरु आपै आप ॥६१॥
 सतगुरु किया न मीत ।
 बीच हि अटका चीत ॥६२॥
 छूटे कौन सपाय ।
 पल में लेत लुटाय ॥६३॥
 (जो) हिरदा भया कठोर ।
 पथर न भीजी कोर ॥६४॥
 सद्ग न लाग़ा अंग ।
 कैसे लाग़े रंग ॥६५॥
 बाग मोरि रन पैठ ।
 एक तरुत चढ़ि बैठ ॥६६॥
 देता हूँ हेला ।
 चेला को चेला ॥६७॥

६४. नेजा—६ (छे) हाथ का एक नाप । कोर—किनार ।

६६. बाग—लगाम । मनको रोक कर ध्यान में लगे । ६७. हेला—आवाज़ ।

गुरु शिष्य हेरा को अंग ।



ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेस ।
 भीसागर में डूबने, कर गहि काढ़े वेस ॥ १ ॥

*ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय ।
 पाँचों लड़के पटकिके रहे नाम लौ लाय ॥ २ ॥

ऐसा कोई ना मिला, जासो कहूँ दुख रोय ।
 जासों कहिये भेद को, सो फिर बेरी होय ॥ ३ ॥

ऐसा कोई ना मिला, सब विधि देय बताय ।
 सुन मंडल में पुरष है, ताहि रहं लौ लाय ॥ ४ ॥

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान ।
 ढोल दमामा ना सुनै, सुति बिहूना कान ॥ ५ ॥

‡ इस सकेतवाली साखी 'गुरुहेरा' की है ।

* और इस सकेत की 'शिष्यहेरा' का है ।

गुरु शिष्य-हेरा का यह अर्थ है कि, उत्तम अधिकारी को गुरु दृढ़ते हैं और पूरे सद्गुरु को शिष्य दृढ़ता है । बिना दोनों के पूरा मिले कार्य की सिद्धि नहीं होती ।

२. पाँचों लड़के-काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद ।

३. भेद की-सत्य उपदेश की । ५. दमामा-नकारा ।

१. पा-बूझते । २. पा० उठि ।

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान ।
 अपना करि किरपा करै, लो उतारि मैदान ॥ ६ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, जासो कहं निसंक ।
 जासो हिरदा की कहं, सो फिरि माँडे कंक ॥ ७ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, जलती जोति बुझाय ।
 कथा सुनावै नाम की, तन मन रहै समाय ॥ ८ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, टारै मन का रोस ।
 जा पैडे साधू चले, (तू) चलि न सकै इक कोस ॥ ९ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, सद्य देखै बतलाय ।
 अच्छर और निहअच्छरा, तामे रहै समाय ॥ १० ॥
 हम घर जारा अपना, लूका लीन्हा हाथ ।
 बाह का घर फंक दं, (जो) चलै हमारे साथ ॥ ११ ॥
 हम देखत जग जात है जग देखत हम जाँहि ।
 ऐसा कोई ना मिला, पकड़ि लुड़ावै चाँहि ॥ १२ ॥
 सरप हि दूध पियाइये, सोई विष है जाय ।
 ऐसा कोई ना मिला, आपे हि विष खाय ॥ १३ ॥

६. मैदान—सत्तार से बाहर । ७. कंक—झगडा ।

१०. अक्षर—जीव । निहअक्षर—परम पुरुष ।

११. लूका—अवजली लकड़ी ।

१३. भलाई के बदले में बुराई करनेवाले सत्तार में बहुत हैं, परन्तु बुराई के बदले भलाई करनेवाले बिरले हैं ।

१. पा० लिया मुराडा हाथ । पा० अत्र घर जास तासका,

तीन सनेही बहु मिले, चौथा मिला न कोय ।
 सब हि पियारे राम के, बैठे परवस होय ॥१४॥
 जैसा दृढत मैं फिरू, तैसा मिला न कोय ।
 ततवेता तिरगुन रहित, निरगुन सो रत होय ॥१५॥
 सारा सारा बहु मिले, घायल मिला न कोय ।
 घायल को घायल मिले, राम भक्ति दृढ होय ॥१६॥
 माया डोलै मोहती, बोलै बहुवा वैन ।
 कोई घायल ना मिले, साई हिरदा सैन ॥१७॥
 मेमी दृढत मैं फिरू, मेमी मिले न कोय ।
 मेमी सों मेमी मिले, त्रिप से अमृत होय ॥१८॥
 जिन दृढा तिन पाइया, गहिरै पानी पैठ ।
 मैं बपुरा बूढ़न दरा, रहा किनारे बैठ ॥१९॥
 सतगुरु हम सों रीझि के, एक दिया उपदेस ।
 भौ सागर में बूडता, कर गहि काढे केस ॥२०॥
 आदि अंत अब को नहीं, निज बाने का दास ।
 सब संतन मिलि यों रमै, ज्यों पुहुपन में बास ॥२१॥
 पुहुपन केरी बास ज्यों, व्यापि रहा सब ठोहि ।
 बाहर कबहु न पाइये, पावै संतों माँहि ॥२२॥

१४. तीन सनेही—सुत, पित और नारी के प्रेमी । चौथा—सद्गुरु
 का प्रेमी । १६ घायल—रामधियोगी ।

विरछा पूछे बीज सो, कौन तुम्हारी जात ।
 बीज कहे ता वृच्छ सों, कैसे भै फल पात ॥२३॥
 विरछा पूछे बीज को, बीज वृच्छ के माँहि ।
 जीव जो हूँदै ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के पाँहि ॥२४॥
 डाल जो हूँदै मूल को, मूल डाल के पाँहि ।
 आप आप को सब चले, (कोप)मिलेमूलमों नाँहि ॥२५॥
 डाल भई है मूल तें, मूल डाल के माँहि ।
 सब हि पडे जब भरम में, मूल डाल कहु नाँहि ॥२६॥
 मूल कबीरा गहि चढ़े, फल खाये भरि पेट ।
 चौरासी की भय नहीं, ज्यौ चाहे त्यौ लेट ॥२७॥
 आदि हती सब आपमें, सकल हती ता माहि ।
 ज्यौ तहवर के बीज में, डार पात फल छाँहि ॥२८॥
 हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय ।
 वृंद समानी समुंद में, सो कित हेरी जाय ॥२९॥
 हेरत हेरत है सखी, रहा कबीर हिराय ।
 समुंद समाना वृंद में, सो कित हेरा जाय ॥३०॥

२९ वृंद-जाग्र । समुंद-मालिक । तपासक अपने आपकी मालिक में मिलाना चाहते हैं । इस सखी में तपासकों की भावना का वर्णन है ।

३०. इस सखी में ज्ञानियों की धारणा का वर्णन है ।

कवीर वैद बुलाइया, जो भावै सो लेह ।
 जिहि जिहि औपध गुरु मिले, सो सो औपध देह ॥३१॥
 परगट कहू तो मारिया, परदा लखै न कोय ।
 सहना छिग पयाळ में, को कटि वैरी होय ॥३२॥
 जैसे सती पिय सँग जरे, आसा सब की त्याग ।
 सुघर कूर सोचै नहीं, सिख पतिवर्त सुहाग ॥३३॥
 सरयस सीस चढाइये, तन कृत सेवा सार ।
 भूख प्यास सहै ताड़ना, गुरु के सुरति निहार ॥३४॥
 गुरु को दोष रती नहीं, सीप न सोधे आप ।
 सीप न छडै मनमता, गुरु द्वि दोष का पाप ॥३५॥
 जैसी सेवा सिप करै, तस फल प्रापत होय ।
 जो बौवै सो लोवही, कहै कवीर विलोय ॥३६॥
 हिरदे ज्ञान न ऊपजे, मन परतीत न होय ।
 ताको सतगुरु कहा करै, धनघसि कुलहरा न होय ॥३७॥

३१. वैद-गुरु । औपध-उपदेश । गुरु-सत्यपुरुष । ३२. सहना-
 -अधिगतपुरुष । पयार-पीरा, माया । ३३. सुघर-अच्छा । कूर-चुरा ।
 ३४. तनकृत सेवा सार-तन से अच्छी सेवा करता रहै । ३५. लोवही-
 काटता है । विलोय-सोच समझकर । ३७. धनघसि...होय-लुहार के
 धन को घिसकर कोई उसका कुल्हड़ा नहीं बना सकता ।

घनघसिया जोई मिले, घन घसि काढे धार ।
 मूरख तें पंडित किया, करत न लागी वार ॥३८॥
 सिप पूनै गुरु आपना, गुरु पूजे सब साथ ।
 कहै कबीर गुरु सीप को, मत है अगम अमाध ॥३९॥
 गुरु सोन ले सीप का, साधु संत को देत ।
 कहै कबीरा सौन से, लागे हरि सों हेत ॥४०॥
 सिप किरपिन गुरु स्वारथी, मिले योग यह आय ।
 कीच कोच के दाग को, कैसे सकै छुड़ाय ॥४१॥
 देस दिसन्तर में फिरुं, मानुष बढ़ा सुकाल ।
 जा देखै सुख ऊपजै, वाका पड़ा दुकाल ॥४२॥
 सत को दूढ़त में फिरुं, सतिया मिलै न कोय ।
 जब सत कूं सतिया मिले, त्रिप तजि अमृत होय ॥४३॥
 स्वामी सेवक होय के, मन ही में मिलि जाय ।
 चतुराई रीझै नहीं, रहिये मन के मांय ॥४४॥
 धन धन सिप की सुरतिकूं, सतगुरु लिये समाय ।
 अन्तर चितवन करत है, (गुरु)वुरत हिले पहुंचाय ॥४५॥
 गुरु विचारा क्या करै, वांस्त न इंधन होय ।
 अमृत सोचै बहुत रे, वृद्ध रही नहि कोय ॥४६॥

४० सौज—वस्तु, चीजें । ४२. मानुष—सुकाल-मनुष्यों की
 कमी कहीं नहीं है ।

गुरु भया नहि सिप भया,	हिरदे वपट न जाव ।
आलो पालो दुख सहै,	चढि पाथर की नाव ॥४७॥
चन्हु होय तो देखिये,	जुक्ती जानै सोय ।
दो अंधे को नाचनो,	कशो काहि पर मोय ॥४८॥
गुरु कीजै जानि कै,	पानी पीजै छानि ।
बिना विचारै गुरु करै,	पहै चौरासी खानि ॥४९॥
गुरु सो ऐसा चाहिये,	सिपसों कटु न लेय ।
सिप तो ऐसा चाहिये,	गुरु को सब कुछ देय ॥५०॥



४८. दो अंधे,....मोय । जैसे दो अंधे एक दूसरे को अपना नाच दिखलावें तो उनमें से किसी पर किसी का नाच का असर नहीं हो सकता, क्योंकि दोनों ही बिना आंख के हैं । इसी प्रकार गुरु और शिष्य यदि दोनों अज्ञानी हों तो किसी से किसी को लाभ नहीं पहुंच सकता ।

घनघसिया जोई मिले,	घन घसि काढे धार ।
मूरख तें पंडिन किया,	करत न लागी वार ॥३८॥
सिप पूजे गुरु आपना.	गुरु पूजे सब साध ।
कहै कबीर गुरु सीप को,	मत है अगम अगाध ॥३९॥
गुरु सोन ले सीप का,	साधु संत को देत ।
कहै कबीरा सोन से,	लागे हरि सों हेत ॥४०॥
सिप किरपिन गुरु स्वारथी,	मिले योग यह आय ।
कीच कीच के दाग को,	कैसे सकै छुड़ाय ॥४१॥
देस दिसन्तर मैं फिरुं,	मानुष बड़ा सुकाल ।
जा देखै सुख ऊपजै,	वाका पड़ा दुकाल ॥४२॥
सत को हृदय मैं फिरुं,	सतिया मिलै न कोय ।
जब सत कूं सतिया मिले,	विष तजि अमृत होय ॥४३॥
स्वामी सेवक होय के,	मन ही में मिलि जाय ।
चतुराई रीझै नहीं,	रहिये मन के मांय ॥४४॥
धन धन सिप की सुरतिरुं,	सतगुरु लिये समाय ।
अन्तर चितवन करत है,	(गुरु)तुरत हिले पहुंचाय ॥४५॥
गुरु विचारा क्या करै,	चांस न इंधन होय ।
अमृत साँचै पहुँच रे,	बूढ़ रही नहि कोय ॥४६॥

४०. मोज—वस्तु, चीजें । ४२. मानुष—सुकाल—मनुष्यों की कमी कहीं नहीं है ।

गुरु भया नहि सिप भया, हिरदे कपट न जाव ।
 आलो पालो दुख सहै, चटि पाथर की नाव ॥४७॥
 चन्हु होय तो देखिये, जुक्तो जानै सोय ।
 दो अंगे को नाचनो, कशे काहि पर मोय ॥४८॥
 गुरु कीजै जानि के, पानी पीजै छानि ।
 जिना विचारै गुरु करै, पड़े चौरासी खानि ॥४९॥
 गुरु तो ऐसा चाहिये, सिपसों कटु न लेय ।
 सिप तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय ॥५०॥

४८. दो अंगे....मोय । जैसे दो अंगे एक दूसरे को अपना नाच दिखलावें तो उनमें से किसी पर किसी क माघ का असर नहीं हो सकता; क्यों कि दोनों ही बिना आंख के हैं । इसी प्रकार गुरु और शिष्य यदि दोनों अज्ञानी हों तो किसी से किसी को लाभ नहीं पहुंच सकता ।

निगुरा को अंग ।

जो निगुरा सुमिरन करै,	दिन में सौ सौ बार ।
नगर नायका सत करै,	जरै कौन की लार ॥ १ ॥
गुरु बिनु अहिनिम नाम ले,	नहीं संत का भाव ।
कहै कबीर ता दास का,	पढ़ै न पूरा दाव ॥ २ ॥
गुरु बिन माला फेरते,	गुरु बिन देते दान ।
गुरु बिन सब निष्फल गया,	पूछौ वेद पुरान ॥ ३ ॥
गरभ योगेसर गुरु विना,	लागे हरि की सेव ।
कहै कबीर वैकुंठ ते,	फेर दिया सुकदेव ॥ ४ ॥
जनक विदेही गुरु किया,	लागा हरि की सेव ।
कहै कबीर वैकुंठ में,	उलटि मिला सुकदेव ॥ ५ ॥
चौसठ दीवा जोय के,	चौदह चंदा माँहि ।
तिहि घर किसका चांदना,	जिहि घर सतगुरु नाँहि ॥ ६ ॥
निसि अंधियारी कारनै,	चौरासी लख चंद ।
गुरु बिन येते उदय है,	तह सुद्रिष्टि हि मंद ॥ ७ ॥

१. नगर नायका—वेश्या ।

६. चौसठ दीया—चौसठ कला । चौदह चंदा—चौदह विद्या ।

१. पा० सो तो दान हाराम है ।

दारुक में पावक बसै, घुनका घर किय जाय ।
 (यौं)दरिसंग विमुख निगुरुको, काल ग्रास ही खाय ॥ ८ ॥
 पूरे को पूरा मिले, पूरा पडसी दाव ।
 निगुरु तो कूबट चलै, जब तब करै कुदाव ॥ ९ ॥
 जो कामिनी पडदै रहै, सुनै न गुरुमुख बात ।
 सो तो होगी कूकरी, फिरै उयारै गात ॥ १० ॥
 कबीर गुरु की भक्ति विनु, नारि कूकरी होय ।
 गली गली भूकत फिरै, टुक न डारै कोय ॥ ११ ॥
 कबीर गुरु की भक्ति विनु, राजा रासम होय ।
 माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय ॥ १२ ॥
 गगन मंडल के बीच में, तहवाँ अलकै नूर ।
 निगुर महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर ॥ १३ ॥
 कबीर हृदय कठोर के, सद्ग न लागै सार ।
 सुधि बुधि के हिरदै विधे, उपजे ज्ञान विचार ॥ १४ ॥

८. दारुक — लकड़ी । पावक — अग्नि । घुनका — घुन ।

यद्यपि लकड़ी में आग रहती है; परन्तु वह उसे-घुन को नहीं बचा सकता । इसी प्रकार गुरु से विमुख नर हृदय में राम के रहते हुए भी काल के द्वारा मारा जाता है । ९. कूबट कुमार्ग ।

१०. स्त्रियों को भी अन्तरात्मा की शांति के लिये गुरु दीक्षा ग्रहण करना चाहिये । १२. रासम-गदहा ।

झिरमिर झिरमिर बरसिया,	पाहन ऊपर मेह ।
माटी गलि पानी भई,	पाहन बाही नेह ॥१५॥
हरिया जानै रुखड़ा,	उस पानी का नेह ।
सूखा काठ न जानि है,	कितहूं बूढ़ा मेह ॥१६॥ :
कबीर हरिरस बरसिया,	गिरि परवत सिखराय ।
नीर निवानू ठाहरै,	ना वह छापर डाय ॥१७॥
पसुवा सों पानी पर्यो,	रहु रहु हिया न खीज ।
ऊपर बीज न ऊगसी,	बोवै दूना बीज ॥१८॥
ऊंचै कुल के कारनै,	वांस बढ्यो इंकार ।
राम भजन हिरदै नहीं,	जायों सब परिवार ॥१९॥
कबीर चंदन के भिरै,	नीम भी चंदन होय ।
बूढ्यो वांस बढाइयाँ,	यों जनि बूढ़ी कोय ॥२०॥
कबीर लहरि समुद्र की,	मोती बिखरे आय ।
बगुला परख न जानई,	हंसा चुगि चुगि खाय ॥२१॥
सारा लश्कर हूँदिया,	सारदूल नहि पाय ।
गीदड़ को सर घाँटिके,	नामै काम गँवाय ॥२२॥
सुकदेव सरिखा फेरिया,	तो को पावै पार ।
गुरु बिन निगुरा जो रहै,	पहै चौरासी धार ॥२३॥

१७. निवानू-तालतलेया, नीची जगह । ठाहरै-ठहरता है । छापर-
डाय-ऊँची समतल भूमि ।

१८. पानो-मुकाबला, काम । २०. भिरे-पास ।

'सत्त नाम है मोतिया,
 घुगुरे ये सो चुनि लिये,
 कंचन मेरु अरपहीं,
 कौं वधीर गुरु बेमुखी,
 दारु के पावक करै,
 कौं कवीर गुरु बेमुखी,
 साकट का मुख विष है,
 ताकी औपधि मौन है,
 साकट कहा न कटि चलै,
 जो कौवा मठ हगि भरै,
 साकट सूकर कूकग,
 कोटि जतन परमोधिये,
 टेक न कीजै वावरे,
 टेक छाड़ि मानिक मिले,
 टेक करै सो वावरा,
 जो टेकै साहिब मिले,
 साकट संग न बैठिये,
 तत्व सरीरौ झड़ि पडै,
 साकट संग न बैठिये,
 ताके संग न चालिये,

'सचराचर रहो छाय ।
 चूक ढही निगुराय ॥२४॥
 अरपै कनक भंडार ।
 कबहुं न पावै पार ॥२५॥
 घुनक जरी (क्यौ)त जाय ।
 काल पास रहि जाय ॥२६॥
 निकसत वचन भुवंग ।
 विष नहीं व्यापै अंग ॥२७॥
 घुनहा कहा न खाय ।
 (तो)मठ को कहा नशाय ॥२८॥
 तीनों की गति एक ।
 तऊ न छाड़ै टेक ॥२९॥
 टेक माहि है हानि ।
 सतगुरु वचन प्रमान ॥३०॥
 टेकै होवै हानि ।
 सोड टेक परमान ॥३१॥
 अपनो अंग लगाय ।
 पाप रहै लपटाय ॥३२॥
 करन कुबेर समान ।
 पडि है नरक निदान ॥३३॥

साकट ब्राह्मन मति मिलो, वैष्णव मिलु चंडाल ।
 अंग भरै मरि भेटिये, मानो मिले दयाल ॥३४॥
 साकट सन का जेवरा, भीजै सो करराय ।
 दो अच्छर गुरु बाहिरा, बांधा जपपुर जाय ॥३५॥
 साकट से सूकर भला, सूचौ राखै गाँव ।
 वूढ़ौ साकट बापुरा, बाइस भरमौ नाँव ॥३६॥
 साकट हमरै कोऊ नहि, सब ही वैष्णव क्षारि ।
 संसय ते साकट मया, कहैं कवीर विचारि । ३७॥
 साकट ब्राह्मन सेवरा, चौथा जोगी जान ।
 इनको संग न कीजिये, होय भक्ति में हान ॥३८॥
 साकट संग न जाइये, दे मांगा मोहि दान ।
 भीत संगती ना मिलै, छाडै नहि अभिमान ॥३९॥
 साकट नारी छांड़िये, गनिका कीजै नारि ।
 दासी है हरि जनन की, कुल नहीं आवै गारि ॥४०॥

३५. जेवरा-रस्सा । ३६ सूचौ-साफ । बाइस-कौवा । जिस प्रकार समुद्र में नाव पर बैठा हुआ कौवा उड़ाये जाने पर इधर भटक कर नाव पर ही आकर बैठ जाता है । इसी प्रकार निगुरे मनुष्य को ससार में कहीं सुख नहीं मिलता ।

४०. गणिका को हृदय में यदि भक्ति और सुबुद्धि उत्पन्न हो जाय और वह एक की स्त्री बनकर रहना चाहे तो उसे अपना लेना चाहिये । और अपनी स्त्री भी यदि व्यभिचारिणी कुलटा बन जाय तो उसे त्याग देना चाहिये ।

साकट ते' सँत होत है, जो गुरु मिले सुजान ।
 राम नाम निज मंत्र दे, छुड़वै चारों खान ॥४१॥
 कवीर साकट की सभा, तू पति बैठे जाय ।
 एक गुवाड़े कदि वढ़ै, रोज गदहरा गाय ॥४२॥
 मैं तोही सों कव कथा, (त)साकट के घर जाव ।
 बहती नदिया हूवि मरूं, साकट संग न खाव ॥४३॥
 संगति सोई विगुर्चई, जो है साकट साथ ।
 कंचन कटोरा छाडि कै, सनटक छीन्ही दाय ॥४४॥
 सूता साधु जगाइये, करै ब्रह्म को जाप ।
 ये तीनों न जगाइये, साकट सिंह रु साप ॥४५॥
 आंखों देखा घी भला, ना मुख मेला तेल ।
 साधु सों झगड़ा भला, ना साकट सों मेल ॥४६॥
 घर में साकट इस्तरी, आप कहावै दास ।
 ओ तो हैयगी सूकरी, वह रखवाला पास ॥४७॥
 खसम कहावै बैसनव, घर में साकट जोय ।
 एक घरा में दो मता, भक्ति कहाँ ते होय ॥४८॥
 एक अनूपम हम किया, साकट सों बेवहार ।
 निंदा साटि उजागरो, कीयो सौदा सार ॥४९॥

४२. गुवाड़े-गोशाला में । मुखों की सभा में मत जाओ, क्यों कि उनको अच्छे और बुरे की पहचान नहीं होती ।

४४. विगुर्चई-खराब होती है । सनटक-मिट्टी का कटोरा, सकोरा ।

ऊजड़ घर में बैठि के, किसका लीजै नाम ।
 साकुट के संग बैठ- के, क्यूं कर पावै राम ॥५०॥
 साकुट साकुट बहा करो, फिट साकुट को नाम ।
 ताही सँ सूअर भला, चोखा राखै गाम ॥५१॥
 हरिजन की लातों भलीं, बुरि साकुट की बारा ।
 लातो में सुख ऊपजे, बति इज्जत जात ॥५२॥
 साकुट भले हि सरजिया, परनिदा जु करंत ।
 पर को पार उतार के, आप हि नरक परंत ॥५३॥
 वैस्नव भया तो क्या भया, साकुट के घर खाय ।
 वैस्नव साकुट दोउ मिलि, नरक कुंड में जाय ॥५४॥
 सूने मंदिर पैठतों, नही धनी की लाज ।
 कूकर कोने फिरत हैं, क्यों करि सरगो काज ॥५५॥
 पारब्रह्म बूढ़ो मोतिया, झडी बांधि सिखर ।
 सुगरा सुगरा चुनि लियां, चूक पड़ी निगुर ॥५६॥
 बेकामी को सिरजि निगवै, सांठि खोवै भालि गँवावै ।
 दास कवीर ताहि को भावै, रारि सँ सनमुख सरसवि ॥५७॥
 हरिजन आवत देखिके, मोहड़ो सूख गयो ।
 भाव भक्ति समुझ्यो नहीं, मूरख चूक गयो ॥५८॥
 दासी केरा पूत जो, पिता कौन से कहै ।
 गुरु विनः नर भरमत फिरै, मुक्ति कहा से लहै ॥५९॥
 निगुरा ब्राह्मन नहि भला, गुरुमुख भला चमार ।
 देवतन से कुत्ता भला, नित उठि भुंके द्वार ॥६०॥

साधु को अंग ।



कबीर दरसन साधु के, साहिब आवै याद ।
 लेखे में सोई घड़ी, वाकी के दिन बाद ॥ १ ॥
 कबीर दरसन साधु का, करत न कीजै कानि ।
 ज्यों रघुम, से लक्ष्मी, आलस मन से हानि ॥ २ ॥
 कबीर सोई दिन मला, जा दिन साधु मिलाय ।
 अंक भरै भरी भेटिये, पाप सरीरों जाय ॥ ३ ॥
 कबीर दरसन साधु के, बड़े भाग दरसाय ।
 जो होवै सूली सजा, कांटे ई टरि जाय ॥ ४ ॥ —
 दरसन कीजै साधु का, दिन में कइ कइ बार ।
 आसोजा का येह ज्यों, बहुत करै उपकार ॥ ५ ॥
 कई बार नहि करि सकै, दोय वखत करि लेय ।
 कबीर साधू दरस ते, काल दगा नहि देय ॥ ६ ॥

१. बाद=ब्रेकाम । २. कानि=मान मर्यादा-अहंकार ।

४. संतों के दर्शन की ऐसी महिमा है कि सूली की सजा के बदले कांटा लगाकर रह जाता है ।

५. आसोजा=आश्विन् ।

१. पा० कबीर सो दिन निरमला, । २. पा० संत । ३. पा० देहका ।

दोष बखत नहि करि सकै,
 कबीर साधू दरस ते,
 एक दिना नहि करि सकै,
 कबीर साधू दरस ते,
 दूजै दिन नहि करि सकै,
 कबीर साधू दरस ते,
 तीजै चौथै नहि करै,
 यामें विलंब न कीजिये,
 वार वार नहि करि सकै,
 कहै कबीर सो भक्त जन,
 पाख पाख नहि करि सकै,
 यामें देर न लाइये,
 मास मास नहि करि सकै,
 यामें ढील न कीजिये,
 छठे मास नहि करि सकै,
 कहै कबीर सो भक्तजन,
 वरस वरस नहि करि सकै,
 कहै कबीर जीव सो,
 मात पिता सुत इतरी,
 साधु दरस को जय चलै,

दिन में वरु इक वार ।
 उतरे भौजल पार ॥ ७ ॥
 दूजै दिन करि लेह ।
 पावै उत्तम देह ॥ ८ ॥
 तीजै दिन वरु जाय ।
 मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥ ९ ॥
 वार वार करु जाय ।
 कहै कबीर स_झाय ॥ १० ॥
 पाख पाख करि लेय ।
 जनम सुफल करि लेय ॥ ११ ॥
 मास मास करु जाय ।
 कहै कबीर समुझाय ॥ १२ ॥
 छठे मास अलगत्त ।
 कहै कबीर अविगत्त ॥ १३ ॥
 वरस दिना करि लेय ।
 जम हि चुनौती देय ॥ १४ ॥
 ताको लागे दोष ।
 कबहुं न पावै मोष ॥ १५ ॥
 आलस बधू कानि ।
 ये अट्कावै आनि ॥ १६ ॥

इन अटकाया ना रहै,	साधु दरस को जाय ।
कवीर सोई संत जन,	मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥१७॥
साधु चलत रो दीजिये,	कीजै अति सनसौन ।
कहै कवीर कहु भेंट धरु,	अपने वित अनुमान ॥१८॥
खाली साधु न विदा करु,	सुनि लीजो सब कोय
कहै कवीर कहु भेंट धरु,	जो तेरे घर होय ॥१९॥
मोहर रूपैया पैसा,	छाजन भोजन देय ।
कह कवीर सो जगत में,	जनम सफल करि लेय ॥२०॥
हाथी घोडा गाय भैस,	रथ अरु गाढी भवन ।
कवीर दीजै साधु को,	कीया चाहै गवन ॥२१॥
बेटा बेटा इस्तरी,	साधु चाहै सो देय ।
सिर साधु के अरपही,	जनम सुफल करि लेय ॥२२॥
कवीर दरसन साधु के,	खाली हाथ न जाय ।
यही सीख बुनि लीजिये,	कहै कवीर समुझाय ॥२३॥

२२ ऊपर की चार साखियों में साधुओं के निमित्त तन मन धन और सर्वस्व अर्पण करने का बयान किया है । शरणागत का यही अर्थ है कि तन कुछ गुरु को सौंप दिया जाय, परन्तु गुरु की परीक्षा कर लेना भी आवश्यक है । गुरु की पहिचान इस साखी में बतलाई गई है—“तन मन ताको दाजिये जाके निपया नाहि । आग सबही डारके रखे साहय माहि” । अर्थात् जो नियम बिकार से सर्वनाश गहित है उही की सेवा में तन कुछ अर्पण करे । अन्यथा गुरु आर शिष्य दोनों को हानि है ।

सुनिये पार जु पाइया, छाजन भोजन आनि ।
 कहै कबीरा साधु को, देत न कीजै कानि ॥२४॥
 कवीर लौंग इलायची, दातुन माटी पानि ।
 कहै कबीरा साधु को, देत न कीजै कानि ॥२५॥
 टुका माहीं टुक दे, चीर मांहि सों चीर ।
 साधू देत न सकुचिये, यों कहै सत्त कवीर ॥२६॥
 कंचन दीया करन ने, द्रौपदी दीया चीर ।
 जो दीया सो पाइया, ऐसे कहै कवीर ॥२७॥
 निराकार निजरूप है, भेष प्रीति सों सेव ।
 जो चाहै आकार को, साधू परतछ देव ॥२८॥
 साधू आवत देखि के, चरनों लागी धाय ।
 क्या जानौ भूष भेष में, रहि आपै भिन्न जाय ॥२९॥
 साधू आवत देखि करि, हंसी हमारी देह ।
 माया का ग्रह ऊतरा, नैनन बढ़ा सनेह ॥३०॥
 साधू आवत देखि के, मनमें करै मरोर ।
 सो तो होसी चूहरा, वसै गांव की ओर ॥३१॥
 साधु आया पाहुना, मागे चार रतन ।
 धुनी पानी सापरा, सरधा सेती अन्न ॥३२॥

२४. छाजन—कपडा । २६. चीर—कपडा । ३२. सापरा—बिछौना

१ पा० किस । २ पा० साहेब ही ३ पा० छोर ।

साधू दया साहिव मिले,	उपजा परमानंद ।
कोटि विघन पलमें टलै,	बिटे सकल दुख दंद ॥३३॥
साधू सद्ध समुद्र है,	जामें रतन भराय ।
मंद भाग मुट्ठी भरे,	कंकर हाथ लगाय ॥३४॥
साधु मिलै यह सब टलै,	काल जाल जम चोट ।
सीस नवावत ढहि पड़े,	अघ पापन के पोट ॥३५॥
साधु सेव जा घर नहि,	सतगुरु पूजा नॉहि ।
सो घर मरघट जानिये,	भूत वसै तेहि ^१ मॉहि ॥३६॥
साधु सीप साहिव समुंद,	निपजत मोती मॉहि ।
वस्तु ठिकानै पाइये,	नाल खाल में नॉहि ॥३७॥
साधु बड़े संसार में,	हरि ते अधिका सोय ।
बिन इच्छा पूरन करै,	^२ साहिव हरि नहि दोया ॥३८॥
साधु विरछ सतनाम फल,	सीतल सद्ध विचार ।
जग में होते साधु नहि,	जरि मरना संसार ॥३९॥
साधु हमारी आत्मा,	हम साधुन की देह ।
साधुन में हम यौ रहें,	ज्यौं वादल में मेह ॥४०॥ —
साधु हमारी आत्मा,	हम साधुन की सांस ।
साधुन में हम यौ रहें,	ज्यौ फूलन में वास ॥४१॥
साधु हमारी आत्मा,	हम साधुन के जीव ।
साधुन में हम यौ रहें,	ज्यौ पय मये धीव ॥४२॥ —

ज्यौं पय मद्धे घीव है,	(त्यौं) रमी रहा सब ठौर।
वक्ता सोता बहु मिले,	मधि काँदें ते और ॥४३॥
साधु नदी जल प्रेम रस,	तहाँ प्रछालो अंग ।
कहैं कविर निरमल भया,	हरि भक्तन के संग ॥४४॥
साधु मिले साहिब मिले,	अन्तर रही न रेख ।
मनसा वाचा करमना,	साधू साहिब एक ॥४५॥
साधू को उठि भेटिये,	मुख ते कहिये राम ।
नातो साधु सम्प को,	करनी सो नहि काम ॥४६॥
साधुन के मैं संग हूँ,	अन्त कहं नहि जाँव ।
जु मोहि अरपै प्रीतिसो,	साधुन मुख है खौव ॥४७॥
साधू भूखा भाव का,	धन का भूखा नाँहि ।
धन का भूखा जो फिर,	सो तो साधू नाँहि ॥४८॥
साधु बड़े परमारथी,	घन ज्यौं बरसै आय ।
तपन बुझावै और की,	अपनो पारस लाय ॥४९॥
साधु बड़े परमारथी,	सीतल जिनके अंग ।
तपन बुझावै और की,	दे दे अपनो रंग ॥५०॥
आवत साधु न हरपिया,	जात न दीया रोय ।
कहैं कविर वा दास की,	मुक्ति कहाँ ते होय ॥५१॥
छाजन भोजन प्रीति सों,	दीजै साधु बुलाय ।
जीवत जस है जगत में,	अन्त परम पद पाय ॥५२॥

४६. नातो-सम्बन्ध । ४९. पारस-ज्ञान । ५०. रंग-स्वरूप, स्वभाव ।

१. पा० सत ।

सरवर : तरुवर संतजन, चौथा घरसै मेह ।
 परमारथ के कारनै, चारों धारी देह ॥५३॥
 विरछा कबहु न फल मखै, नदी न अँचवै नीर ।
 परमारथ के कारनै, साधुन धरा सरीर ॥५४॥
 अलख पुरुष की आरसी, साधु ही की देह ।
 लखा जु चाहै अलख को, इनही में लखि लेह ॥५५॥
 सुख देव दुख को हरै, दूर करै अपराध ।
 कहैं कविर बूढ़ कब मिलै, परम सनेही साव ॥५६॥
 जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान ।
 मोल करो तलवार का, पढा रहन दो म्यान ॥५७॥
 हरि दरबारी साधु हैं, इन ते सब कुछ होय ।
 बेगि मिलावैं राम को, इन्हें मिले जु कोय ॥५८॥
 कह अकास को फेर है, कह(हा) धरती का तोल ।
 कहा साधु की जाति है, कह(हा) पारस का मोल ॥५९॥

५४. अँचवै-पीती है ।

५५. सन्तों का हृदय दर्पण के समान निर्मल होता है । अतएव उसमें अलख पुरुष के दर्शन हो सकते हैं ।

५८. हरि दरबारी-हरि के दरबार में रहनेवाले ।

५९. जिस प्रकार आकाश की गोलार्द्धका अन्दाज, पृथ्वी का तोल और पारस का मोल नहीं होता, इसी प्रकार साधु की भी जाति नहीं होती ।

१. पा० निराकार की । २. पा० जो पूछो तो ज्ञान ।

हरि सों तू मति हेत करु, कर हरिजन सों हेत ।
 माल मुल्क हरि देत हैं, हरिजन हरि ही देत ॥६०॥
 साधू खोजा राम के, धसै जु महलन माँहि ।
 औरन को परदा लगे, इनको परदा नाँहि ॥६१॥
 जा घर साधु न सेवहीं, पारब्रह्म पति नाँहि ।
 ते पर मरघट सारिखा, भूत वसें ता ठाँहि ॥६२॥
 साधुन की झुपडी भली, ना साकुट को गाँव ।
 चंदन की कुटकी भली, ना बाबुल बनराव ॥६३॥
 पुर पटन सूवस बसै, आनन्द ठाँवै ठाँव ।
 राम सनेही बाहिरा, ऊजड़ मेरे भाव ॥६४॥
 हयवर गयवर सघन घन, छत्रपति की नारि ।
 तासु पटतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥६५॥
 क्यों नृपनारी निन्दिये, पनिहारी को पान ।
 (वह) मांग सँवारै पीव कुं, नित वह सुमिरै राम ॥६६॥
 साधुन की कुतिया भली, बुरी साकुट की माय ।
 वह बैठी हरिजस सुनै, (वह) निन्दा करनै जाय ॥६७॥

६०. हरिजन-हरि के भक्त, साधु सन्त ।

६१. खोजा-हिजडे । राजपूताने में रानियों के महलों में हिज का पहरा रहता है । उनका पडदा नहीं होता ।

६३. बाबुल-बबूल । ६५. हयवर गयवर-अनेक सानों से मजीदु

तीरथ न्हाये एक फल,	साधु मिले फल चार ।
सतगुरु मिलें अनेक फल,	कहैं कबीर विचार ॥६८॥
साधु सिद्ध बहु अन्तरा,	साधु मता परवंड ।
सिद्ध जु तारे आप को,	साधु तारि नौ खंड ॥६९॥
यही बढ़ाई सन्त की,	करनी देखो आय ।
रज हूं ते झीना रहे,	लौलिन हैं गुन गाय ॥७०॥
परमेश्वर ते संत बड़,	ताका कह(हा) उनमान ।
हरि माया आगै धरै,	संत रहे निरवान ॥७१॥
नील कंठ कीड़ा भखै,	मुख बाके हैं राम ।
औगुन बाके नहि लगै,	दरसन ही से काम ॥७२॥
अन वैस्नव : कोई नहीं,	सब ही वैस्नव जानि ।
जेता हरि को ना भजै,	तेता ताको हानि ॥७३॥
आप साधु करि देखिये,	देख असाधु न कोय ।
जाके हिरदै हरि नहीं,	हानी उसकी होय ॥७४॥
जा सुख को मुनिवर रदैं,	सुरनर करें विलाप ।
सो सुख सहजै पाइया,	सन्तों संगति आप ॥७५॥
मेरा मन पंछी भया,	उड़ि के चढ़ा अकास ।
वैकुंठ हि खाली पडा,	साहिव सन्तों पास ॥७६॥

७१. हरि से सन्त सुखो है, इससे यही प्रमाण है कि हरि को माया लगी रहती है । और साधुजन उससे रहित हैं ।

परवत परवत मैं फिरा, कारन अपने राम ।
 राम सरीखे जन मिले, तिन सारै सब काम ॥७७॥
 कबीर सीतल जल नहि, हीम न सीतल होय ।
 कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥७८॥
 भली भई हरिजन मिले, कहने आयो राम ।
 सुरति दसौं दिस जाय थी, अपने अपने काम ॥७९॥
 संत मिले जनि वीछुरौ, विछुरौ यह मम प्रान ।
 सद्ध सनेही ना मिलै, प्रान देह में आन ॥८०॥
 कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करुघाम ।
 जवलन साध न सेवई, तवलन काचा काम ॥८१॥ -
 आसा वासा सन्त का, ब्रह्मा लखै न वेद ।
 पट दरसन खटपट करै, विरला पावै भेद ॥८२॥
 वेद थके ब्रह्मा थके, थाके सेस महेस ।
 गीता हूं की गम नहीं, असत किया परवेस ॥८३॥
 धन सो माता सुन्दरी, जाया साधू पूत ।
 नाम सुमिरि निर्मय भया, अरु सब गया अबूत ॥८४॥

८३. पट् दर्शन-जोगी जगम सेवडा, सन्यासी दरपेश ।

लहा कहिषे ब्राह्मणा, छै घर छै उपदेश ।

८४. अबूत (अऊन)-निर्मल, बिना पद के ।

१. पा० थकिया शकर सेस । २. पा. गीता की जहं गम नहीं ।

३. पा० तहें सतगुरु का देस ।

साधू ऐसा चाहिये,	दुखै दुखावै नाँहि ।
पान फूल छुँडै नहीं,	असै अगीचा माँहि ॥८५॥
साधू जन सब में रमै,	दूख न काहू देहि ।
अपने मत गाढ़ा रहे,	साधन का मत येहि ॥८६॥
साध हजारी कापड़ा,	तापें मल न समाय ।
साकट काळी कामची,	भावै तहाँ बिछाय ॥८७॥
साधू मौँरा जग कली,	निस दिन फिरै उदास ।
दुकि दुकि तहाँ बिलंबिया,	(जहाँ)सीतल सद्र निवास ॥८८॥
साधु सिद्ध बड़ अन्तरा,	जैसे आम बबूल ।
बाकी डारी अभी फल,	बाकी डारी मूल ॥८९॥
साधु कहावन कठिन है,	आगे की सुधि नाँहि ।
सूली ऊपर खेलना,	गिरतो ठौरहि काहि ॥९०॥
साधु कहावन कठिन है,	ध्यों खाँडे की धार ।
ढगमगाय तो गिरि पड़े,	निहचल उतरै पार ॥९१॥
साधु कहावन कठिन है,	लम्बी पैर खजूर ।
चढ़ तो चाखै मेमरस,	गिर तो चकना चूर ॥९२॥
साधू चाल जु चालई,	साधु कहावै सोय ।
बिन साधन तो सुधि नहीं,	साधु कहा वे होय ॥९३॥

८७. हजारी कापड़ा सफेद कपड़े । ८८. दुकि दुकि धोड़ी २ देर ।

१ पा० तोड़े । २. पा० रहे ।

साधू सोई जानिये, चलै साधु की चाल ।
 परमारथ राता रहै, बोलै वचन रसाल ॥९४॥
 साधु सती औ सूरमा, दर्ई न मोहैं मूंह ।
 ये तीनों भागा बुरा, साहिव जाकी सूंह ॥९५॥
 साधु सती औ सूरमा, राखा रहै न ओट ।
 माथा बांधि पताक सों नेजा बालैं चोट ॥९६॥
 साधु सती औ सिंघ को, ज्यौ लंघन त्यों सोभ ।
 सिंघ न मारै मेटका, साधु न बांधै लोभ ॥९७॥
 साधु सिंघ का इक मता, जीवत ही को खाय ।
 भाव हीन मिरतक दसा, ताके निकट न जाय ॥९८॥
 साधु साधु सब एक हैं, जस अफीम का खेत ।
 कोई विवेकी लाल हैं, और सेत का सेत ॥९९॥
 साधू तो हीरा भया, ना फूटै वन खाय ।
 ना वह बिनसै कुंभ ज्यों, ना वह आवै जाय ॥१००॥
 साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
 सद्ध विवेकी पारखी, ते माये के पौर ॥१०१॥

९४ रसाल-मीठे । ९५. दर्ई-देव । इनको देव अपने लक्ष्य से न गिराने । सूंह-सींगद । ९६. ओट-आड में । पताक-ध्वजा । नेजा-भाला । ध्वजा से शिर बांधने का यह भाव है कि ध्वजा शिर के साथ रहे ।

९७. लघन—उपवास ।

१. पा० सो ।

साधू ऐसा चाहिये,	जाके ज्ञान विवेक ।
बाहर मिलने सों मिलै,	अन्तर सब सों एक ॥१०२॥
सदकृपालु दुखपरिहरन,	वैर भाव नहि दोष ।
छिमा ज्ञान सत माखही,	हिंसा रहित जु होय ॥१०३॥
दुखसुख एक समान है,	हरष सोक नहि व्याप ।
उपकारी निहकामता,	उपजै छोड़ न ताप ॥१०४॥
सदा रहै सन्तोष में,	धरम आप दृढ़ धार ।
आम एक गुरु देव की,	और न चित्त विचार ॥१०५॥
सावधान औ सीलता,	सदा प्रफुलित गात ।
निर्विकार गंभीर मत,	धीरज दया वसात ॥१०६॥
निर्वैरी निहकामता,	स्वामी सेती नेह ।
विषया सों न्यारा रहे,	साधुन का मत येह ॥१०७॥
मान अमान न चित्त धरै,	औरन को सनमान ।
जो कोई आसा करै,	उपदेसै तेहि ज्ञान ॥१०८॥
सीलवंत दृढ़ ज्ञान मत,	अति उदार चित होय ।
लजावान अति निछलता,	कोमल हिरदा सोय ॥१०९॥
दयावंत धरमक ध्वजा,	धीरजवान प्रमान ।
सन्तोषी सुख दायका,	साधू परम सुजान ॥११०॥
निहचल भल अरु दृढ़ मता,	ये सब लच्छन जान ।
साधू सोई जगत में,	जो यह लच्छनवान ॥१११॥

मन रंजन पर दुख हरन,
 छिपा ज्ञान हिंसा रहित,
 इन्द्रिय मन निग्रह करन,
 सदा सुद्ध आचार में,
 और देव नहि चित वसै,
 स्वल्पाहार भोजन करु,
 और देव नहि चित वसै,
 मिछा (अ)हार भोजन करै,
 पढ़ विकार यह देह के,
 सोक मोह प्यास हि लुधा,
 कपट कुटिलता छाँडि के,
 कृपावान सम ज्ञानवत,
 कपट कुटिलता दुग्धचन,
 कृपावन्त आसा रहित,
 रवि को तेज घटै नहीं,
 साधु वचन पलटै नहीं,
 जौन चाल संसार की,
 हिम चाल करनी करै,
 गांठी दाम न बांधई,
 कहैं कविर ता साधु की,
 वैर भाव बिसराय ।
 सो नर साधु कहाय ॥११२॥ —
 हिरदा कोमल होय ।
 रह विचार में सोय ॥११३॥
 मन गुरुचरन बसाय ।
 तृस्ना दूर पराय ॥११४॥
 बिन प्रतीति भगवान ।
 तृस्ना चलै न जान ॥११५॥
 तिन को चित न लाय ।
 जरा मृत्यु नसि जाय ॥११६॥
 सध सों मित्र हि भाव ।
 वैर भाव नहि काव ॥११७॥
 त्यागी सब सों हेत ।
 गुरु भक्ति सिख देत ॥११८॥
 जो यन जुरै घमंड ।
 पलटि जाय ब्रह्मंड ॥११९॥
 तौन साधु की नाहि ।
 साधु कहो मति ताहि ॥१२०॥
 नहि नारी सों नेह ।
 हम चरनन की खेह १२१॥

कोई आवै भाव ले, को (य) अभाव ले आव ।
 साधु दोउ को पोषते, भाव न गिनै अभाव ॥१२२॥
 रक्त छँडि पय को गहै, ज्यों रे गउ का वच्छ ।
 औगुन छँडै गुन गहै, ऐसा साधू लच्छ ॥१२३॥
 संत न छँडै संतता, कोटिक मिले असन्त ।
 मलय भुवंगम वेधिया, सीतलता न तमन्त ॥१२४॥
 साकट ब्राह्मन मति मिलो, साधु मिलो चंडाल ।
 जाहि मिले सुख ऊपजै, मानो मिले दयाल ॥१२५॥
 कमल पत्र है साधु जन, वसै जगत के माँहि ।
 बालक केरी धाय ज्यों, अपना जानत नाँहि ॥१२६॥
 हरि दरिया सूभर भरा, साधू का घट सीप ।
 तामें मोती नीपजै, चढै देसावर दीप ॥१२७॥
 बहता पानी निरमला, बंदा भंडा होय ।
 साधू जन श्रमता भला, दाग न लागे कोय ॥१२८॥

१२४. चन्दन पर सर्पों के लिपटे रहने पर भी वह अपनी शौतलता नहीं छोड़ता ।

१२७ सूभर—पूरा । हरि समुद्र के समान भरपूर और व्यापक है, उसमें सर्पों का हृदय सीपी के समान है जिससे ज्ञान के मोती निकालकर सारे ससार में फैलते हैं ।

१. पा० गदिया । २. पा० रमते भले, ।

बंधा (भी) पानी निरमला, जो टुक गहिरा होय ।
 साधु जन बैठा भला, जो बहु साधन सोय ॥१२९॥
 ढोल दयामा गढ़गढ़ी, सहनाई औ तूर ।
 तीनों निकसि न बाहुरै, साधु सती औ सूर ॥१३०॥
 तूटै वरत अकास सों, कौन सकत है झेल ।
 साधु सती औ सूर का, अनी उपर का खेल ॥१३१॥
 हांसी खेलें हराम है, जो जन राते नाम ।
 माया मंदिर इस्तरी, नहि साधु का कोम ॥१३२॥
 उडगन और सुधाकरा, बसत नीर की संघ ।
 यों साधु संसार में, कबीर पढ़त न फदे ॥१३३॥
 जौन भाव ऊपर रहे, भितर बसावै सोय ।
 भीतर औ न बसावई, ऊपर और न होय ॥१३४॥
 तन में सीतल सद्ग है, बोले बचन रसाल ।
 कहैं कवि वा साधु को, गंजि सकै नहि काल ॥१३५॥
 तीन लोक उनमान में, चौथा अगम अगाध ।
 पंचम दसा है अलख की, जानैगा कोइ साध ॥१३६॥

१३१. वरत—नट के वास की रसी । १३३. पानी में चन्द्रमा और ताराओं का प्रतिबिम्ब पड़ता है, परन्तु जाल डालने पर वे उसमें नहीं आते ।

१३६ ब्रह्म, विष्णु और शिवलोक त्रिगुणरूप होने के कारण कल्पना के विषय हैं । चौथा निरंजन का धाम अव्यक्त है । इन सब से परे अविगत पुरुष है उसको लखने वाले साधु त्रिलोके हैं ।

१सब वन तो चंदन नहीं, सुरा के दल नौहि ।
 सब समुद्र मोती नहि, यों २साधू जग मौहि ॥१३७॥
 सिंघन के अलेहडा नहीं, हंसों की नहि पांत ।
 लालन की नहि वोरियों, साधु न चले जमात ॥१३८॥
 त्यागी सब संसार हैं, साधू समज अपार ।
 अलल पंछि कोइ एक है, पंछी कोटि हजार ॥१३९॥
 ऐसा साधू खोजि के, रहिये चरनों लाग ।
 मिटै जनम की कल्पना, जाके पूरन भाग ॥१४०॥
 अलंदा चित अरु सम दसा, साधू गुन गंभीर ।
 जो धोखा विचलै नही, सोई संत सुधीर ॥१४१॥
 चित चैनमें गरकि रहा, जागि न देख्यो मित्त ।
 कहाँ कहाँ सल पारि हो, गल बल सहर अनित्त ॥१४२॥

१३८. लेहडा-झूड । पात-कतार । वोरिया गूत, धेला ।

१३९. अललपक्षी एक प्रकार का पक्षी होता है। मुना जाता है कि वह सदैम आकाशमें रहता है । यहां तक कि उसके अड़े भी आकाश में ही फूटकर बचे हो जाते हैं ।

१४२. सल पारि हो-मेल प्रेम करोगे । गलबल-गडबड ।

१. पा० सुरा का तो दल नहीं, चंदन का वन नौहि ।

२. हाट हाट हीरा नहीं, चंदन के वन नौहि ।

३. पा० हरिजन । ३. पा० टोले । ४. पा० ऊंचा चित्त समुद्र का ।

कबीर हमरा कोइ नहि,	हम काहु के नाँहि ।
पारै पहुँची नाव ज्यों,	मिलि के बिलुरी जाँहि ॥१४३॥
आज काल के लोग हैं,	मिलि के बिलुरी जाँहि ।
लाहा कारन आपने,	सोगँद रामकि खाँहि ॥१४४॥
कबीर सब जग हेरिया,	मेल्यो कंध चढ़ाय ।
हरि बिन अपना कोइ नहि,	देखा ठोकि बजाय ॥१४५॥
निसरा पै विसरा नहीं,	तो निसरा ना काहि ।
पहिली खाद उखालिया,	सो फिर खाना नहि ॥१४६॥
जो विभूति साधुन तजी,	मूढ ताहि लपटाय ।
ज्यों हि वमन करि डारिया,	स्नानखाद करि जाय ॥१४७॥
दुनिया बंधन पढ़ि गई,	साधू हैं निरबंध ।
राखै खड्ग जु ज्ञान का,	काटन फिरै जु फंद ॥१४८॥
कबीर कमलन जल वसै,	जल बसि रहे असंग ।
साधू जन तैसे रहें,	सुनि सतगुरु परसंग ॥१४९॥
मुर्गावी को देख कर,	मन उपजा यह ज्ञान ।
जल में गोता मारिकर,	पंख रहे अलगान ॥१५०॥

१४४. लाहा-लाम ।

१४६. संसार छोड़ने पर भी यदि हृदय से उसकी ममता नहीं गई तो छोड़ना किसी काम का न हुआ । उसकी तो वैसी ही दशा है जैसे कुत्ता मुँह से अन्न को गिराकर उसे फिर खा लेता है ।

१५०. मुर्गावी-जलकूकडी । अलगान-बिना भोगे हुए ।

जूआ चोरी मुखविरी, व्याज विरानी नारि ।
 जो चाहै दीदार को, इतनी वस्तु निवारि ॥१५१॥
 सन्त समागम परम सुख, जान अल्प सुख और ।
 मान सरोवर हंस हैं, बगुला ठौरै ठौर ॥१५२॥
 संत मिले सुख ऊपजे, दुष्ट मिले दुख होय ।
 सेवा कीजै संत की, जनम कृतारथ होय ॥१५३॥
 हरिजन मिले तो हरि मिले, मन पाया विश्वास ।
 हरिजन हरि का रूप है, ज्युं फूलन में वास ॥१५४॥
 संत मिले तब हरि मिले, कहिये आदि रु अन्त ।
 भजो संतन को परि हरै, (सो)सदा तजै भगवन्त ॥१५५॥
 राम मिलन के कारनै, मो मन बड़ा उदास ।
 संत संग में सोधि ले, राम उनों के पास ॥१५६॥
 सरनै राखौ भौड़्यो, पूरो मन की आस ।
 और न मेरे चाहिये, संत मिलन की प्यास ॥१५७॥
 कलियुग एकै नाम है, दूजा रूप है संत ।
 साँचे मन से सेइये, मेदे करम अनन्त ॥१५८॥
 संत जहाँ सुमरन सदा, आठों पहर अभूक्त ।
 भरि भरि पीवै रामरस, प्रेम पियाला फूल ॥१५९॥

१५१. मुखविरी-जासूसो । विरानी-पराई ।

१, पा० जिन जिन साधू परिहरा, तिहि तजि दे भगवन्त ॥

फूटा मन बदलाय दे,	साधू षडे सुनार ।
कूटी होवै राम सों,	फेर सँधायन द्वार ॥१६०॥
राज दुवार न जाइये,	कोटिक मिले जु हेम ।
सुपच भगत के जाइये,	यह विस्नू का नेम ॥१६१॥
संगत कीजै साधु की,	कदी न निस्फल होय ।
लोहा पारस परस ते,	सो भी कंचन होय ॥१६२॥
सो दिन गया अक्राज में,	संगत भई न संत ।
प्रेम विना पशु जीवना,	भाव विना मटकंत ॥१६३॥
संत मिले तव हरि मिले,	यूं सुख मिलै न कोय ।
दरसन ते दुरमत कटै,	मन अति निरमल होय ॥१६४॥
भसादिव मिला तव जानिये,	दरसन आपाये साध ।
मनसा वाचा करमना,	मिटै सकल अपराध ॥१६५॥
सोई साधु पति वरत जु,	सदा जरै पिय आग ।
लाभ हानि विसराय के,	रहु गुरु चरनन लाग ॥१६६॥
दया गरीबी वंदगी,	सुमता सील सुभाव ।
येते लच्छन साधु के,	कहै कविर सद्भाव ॥१६७॥
मान नहि अपमान नहीं,	ऐसे सीतल संत ।
भवमागर ऊतर पहे,	तोरै जम के दत ॥१६८॥
आसा तजि माया तजै,	मोह तजै अह मान ।
हरख सोक निन्दा तजै,	कहै कविर संत जान ॥१६९॥

साधु सोड सराहिये,	कनक कामिनी त्याग ।
और कछु इच्छा नहीं,	निस दिन रह अनुराग ॥१७०॥
साधु ऐसा चाहिये,	जैसा फोकल भग ।
आप करावै ठूढ़ा,	पर मुख राखै रंग ॥१७१॥
तन हि ताप जिन को नही,	(नहि)माया मोह संताप ।
हरख सोरु आसा नहीं,	सो हरिजन हरि आप ॥१७२॥
सतन के मन भय रहे,	भय परि करै विचार ।
निस दिन नाम जपउ करै,	विसरत नही लगार ॥१७३॥
आसन तो इकान्त करै,	कामिनी संगत दूर ।
सीतल संत सिरोमनी,	उनका ऐसा नूर ॥१७४॥
साधु साधु मुखसे कहै,	पाप भसम है जाय ।
आप कबीर गुरु कहत हैं,	साधू सदा सहाय ॥१७५॥
हैं साधुन के संग रह,	अंत न कितहूँ जाऊँ ।
जु मोहि अरपै प्रीति सों,	साधुन मुख है खाऊँ ॥१७६॥
यह कलियुग आयो अने,	साधु न मानै कोय ।
कामी कोथी मसखरा,	तिनकी पूजा होय ॥१७७॥
संत संत सब कोइ कहै,	सब समुंदर पार ।
अनल पंखि कोइ एक है,	पखी कोटि हजार ॥१७८॥
कबीर सेवा दोउ भली,	एक संत इक राम ।
राम है दाता मुक्ति का,	संत जयावै नाम ॥१७९॥

साधू खारा यौ तजै, (ज्यौ) सोप समुंदर मॉहि ।
 वासो तो वामे रहै. मन चित वासो नॉहि॥१८०॥
 साधु मिले साहिव मिले, ये सुख कहो न जाय ।
 अतरगत अंगीठही, ततलिन टाढ़ी थाय ॥१८१॥
 साहिव सँग राचै भँवर, कबहु न छूटे रंग ।
 जैसे जैसे कीजिये, उन संनन को सग ॥१८२॥
 साधू के घर जाय के, किरतन दीजै कान ।
 ज्यौ उद्यम त्यौ लाभ है, ज्यौ आलस त्यौ हानि॥१८३॥
 साधू के घर जाय के, सुधि ना लीजै कोय ।
 पीछे करी न देखिये, आगे है सो होय ॥१८४॥
 साधु बिहंगम सुरसरी, चेल बिहंगम चाल ।
 जो जो गलियौ नीकसे, सो सो करै निहाल ॥१८५॥
 साधू सोई सराहिये, पांचौ राखै चूर ।
 जिन के पांचौ बस नहीं, तिनते साहिव दूर ॥१८६॥

१८४ साधु सग में बैठकर अपने किये हुए कर्मों पर पछताते न रहना चाहिये बल्कि आगे से सुकृती बनने का निश्चय कर लेना चाहिये। ऐसा करने से वह धीरे २ पुण्यात्मा बन जायगा ।

१८५. साधू देवनदी गंगा के समान हैं वे जहा २ जाते हैं उस भूमि को पवित्र करते हैं । और वहा के निवासियों का जीवन सफल कर देते हैं । १८६. पांचों=पंच विषयों को । चूर=अपने अधीन ।

१. पा० तहँ तहँ ।

निहकामी निरमल दसा, पकड़े चारों खंड ।
 कहैं कविर वा दास का, आस करै वैकुण्ठ ॥१८७॥
 रति एक धूँवा संतका, भूत ऊधरे चार ।
 जले जलाये फिर जले, कहैं कविर विचार ॥१८८॥
 साधु सरवन सांभरी, छोड़ चले गृह काम ।
 डग डग पै असमैध जग, यौ कहि श्री भगवान ॥१८९॥
 साधु दरस को जाइये, जेता धरिये पाँय ।
 डग डग पै असमैध जग, कहैं कविर समुझाय ॥१९०॥
 साधु दरसन महाफल, कोटि जज्ञ फल लेह ।
 इक मंदिर को का पढ़ी, (सब) सहर पवित्र करिछेह ॥१९१॥
 साधु मिले सुख ऊपजे, साधु गये दुख होय ।
 ताते देही दूबली, नैनन दीन्हा रोय ॥१९२॥
 जाकी धोति अघर तपै, ऐसे मिले असंख ।
 सब रिषियन के देखतां, सुपच बजाया घंट ॥१९३॥
 साहिव का बाना सही, संतन पाहरा जानि ।
 पांडव जग पूरन भयो, सुपच विराने आनि ॥१९४॥

१८८. जोरित सन्तों की महिमा के विषय में तो क्या कहना है मृत
 सन्त के बारे में भी एक कथा में ऐसा सुना जाता है कि उनके जलाये
 हुए शरीर के धूँए से चार भूतों का उद्धार हो गया ।

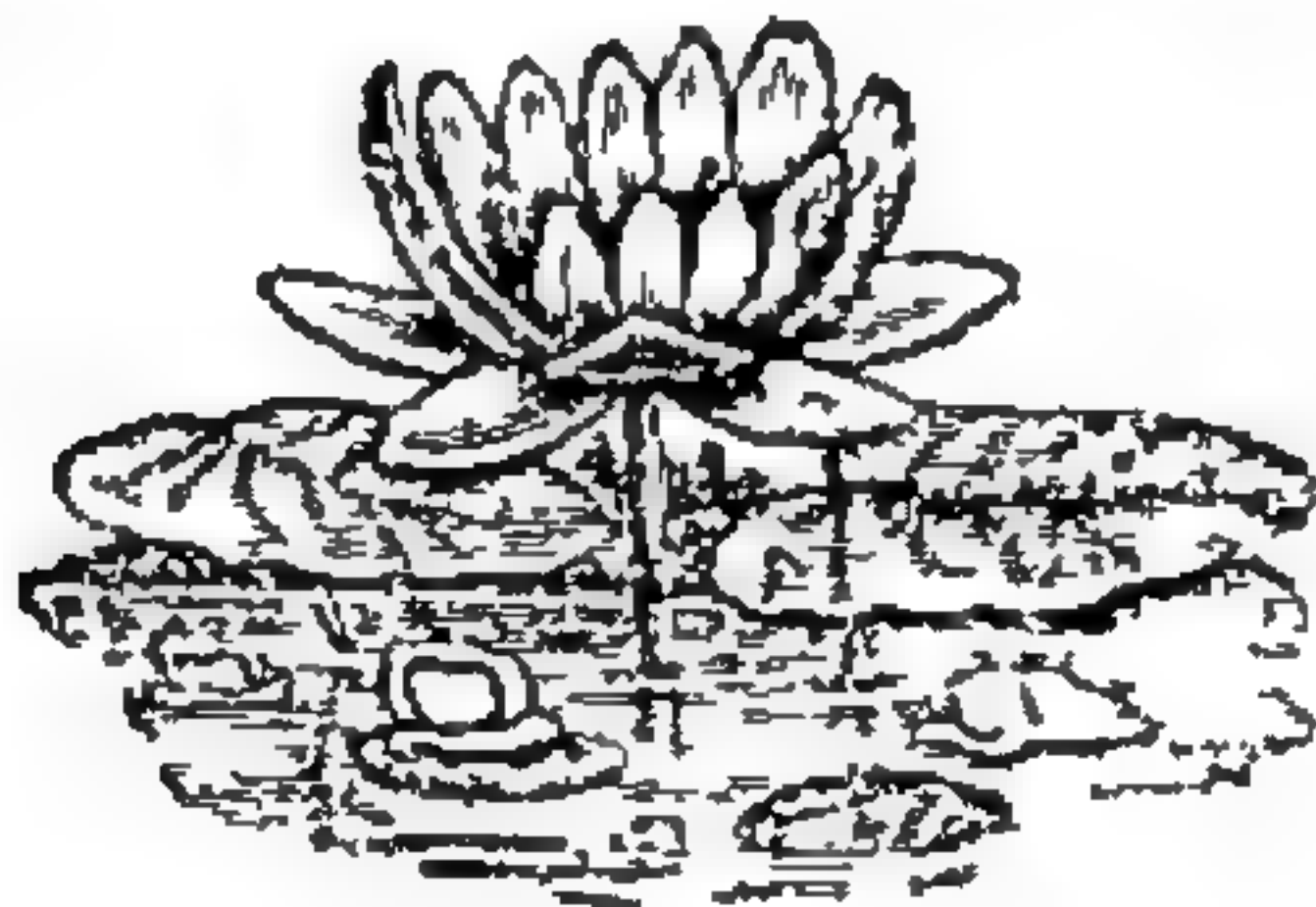
१. पा० जुरे । २. पा० सख ।

कुळवंता कोटिक मिले,	पाडत कोटि पचीस ।
सुपच भक्त की पनहि में,	तुलै न काहू सीस ॥१९५॥
हरि सेती हरिजन बड़े,	जानै संत मुजान ।
सेतु बांधि रघुवर चले,	कूदि गये हनुमान ॥१९६॥
ज्ञान ध्यान मन धनुष गहि,	खैंचन हार अलेख ।
केते दुरिजन मारिया,	(जब)आप कदै या मेखा ॥१९७॥
साधु ऐसा चाहिये,	जहाँ रहै तहाँ गैब ।
बानी के विस्तार में,	ताकूं कोटिक ऐव ॥१९८॥
सन्त मता गजराज का,	चाले बंधन छोड़ ।
जग कुत्ता पीछे फिरै,	सुनै न बाका सोर ॥१९९॥
आज काल दिन पांच में,	वरस पंच जुग पंच ।
जब तब साधू तारसी,	और सकल परपंच ॥२००॥
सतगुरु कैरा भावता,	दूर हि ते दीसंत ।
तन छीन मन जनमुनी,	झूठा रूठ फिरंत ॥२०१॥
ज्यों जल में मच्छी रहै,	(यों) साहिव साधु माहि ।
सब जग में साधू रहै,	असमझ चीन्है नाहि ॥२०२॥
समझे घट कूं यूं बनै,	ये तो बात अगाध ।
सब ही सों निरवैरता,	पूजन कीजै साध ॥२०३॥
मिलता सेती मिलि रहै,	बिछुरे सें वैराग ।
साहिव सेती यों रहै,	(ज्यों)विपन के गल ताग ॥२०४॥

१९८. गब=छियोछियाये । साधुको टचित है कि अधिक भाषण न करे; क्योंकि अधिक बातचीत से अनेक अनर्थ हो जाते हैं ।

हाजी कूं दुख बहुत हैं,	नाजी क दुख नाँहि ।
कबीर हाजी हैं रहो,	अपने ही दिल माँहि ॥२००॥
सन्त कहि सो साधु कहि,	वेद कही मति जान ।
कहीं कबीर एकै रही,	ताने होत पिछान ॥२०१॥
साधू ऐसा चाहिये,	जाका पूरन मन ।
विपति पड़े छाड़े नहीं	चढ़े चौगुना रग ॥२०२॥
कबीर साधू (को) दुरमति,	ज्यौ पानी में छात ।
पल एकै विरजत रहे,	पीछे इक है जात ॥२०३॥
साधू ऐसा चाहिये,	जामे लउन बतीस ।
विरचाया विरचै नहीं,	पाँव चढ़े दे सीम ॥२०४॥
साधु मिले सनु पादया,	साधुट मिलि हैं हानि ।
बलिदारी वा दास की,	पिये मेमरस छानि ॥२०५॥
केता जिभ्या रस भखै,	रती न लागै टक ।
ज्ञानी माया मुक्ति ये,	यो साधू निकलक ॥२०६॥
काग साधू दरसन कियो,	कागा ते भय डस ।
कबीर साधू दरस ते,	पाये उत्तम भय ॥२०७॥
हंस साधू दरसन कियो,	हंसा ते भय कौर ।
कबीर साधू दरस ते,	पाये उत्तम ठौर ॥२०८॥
कौर साधू दरसन कियो,	पायो उत्तम घोष ।
कबीर साधू दरस ते,	मिटि गय तीनों दोष ॥२०९॥

कागा ते हंसा भयो, हंसा ते भयो कौर ।
 कवीर साधू दरस ते, भयो और को और ॥२१५॥
 हेत विना आवै नहीं, हेत तहाँ चलि जाय ।
 कवीर जल औ संतजन, नवै तहाँ उदराय ॥२१६॥
 संत होत है हेत के, हेत तहाँ चलि जाय ।
 कहै कविर वे हेत विन, गरज कहाँ पतिषाय ॥२१७॥
 दृष्टि सुष्टि आवै नही, रूप वरन पुनि नॉहि ।
 जो मनमें परतीत है, देखा संतन मॉहि ॥२१८॥
 सदा मीन जल में रहे, कब अचवै है पानि ।
 ऐसी महिमा साधु की, पडै न काहू जानि ॥२१९॥
 मूर चढै संग्राम कुं, बाधे तरकस चार ।
 साधू जन माने नही, बांधे बहु हकार ॥२२०॥
 संत सेवा गुरु चंदगी, गुरु सुमिरन बैराग ।
 येता तबही पाइये, पूरन मस्तक भाग ॥२२१॥



भेष को अंग ।

कबीर भेष अतीत का, अधिक करै अपराध ।
 बाहिर दीसै साधु गति, अन्तर बड़ा असाध ॥ १ ॥
 कबीर वह तो एक है, परदा दीया भेष ।
 भरम करम सब दर कर, सब ही माँहि अलेख ॥ २ ॥
 तत्त्व तिलक तिहु लोक में, सत्तनाम निजसार ।
 जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अगम अपार ॥ ३ ॥
 तत्त्व तिलक की खानि है, महिमा है निजनाम ।
 अछै नाम वा तिलक को, रहे अछै विसराम ॥ ४ ॥
 तत्त्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान ।
 करनी कंठी कंठ में, परसा पद निरवान ॥ ५ ॥
 तत्त्व हि फल मन तिलक है, अछै विरल फल चार ।
 अपर महातम जानि के, करो तिलक ततसार ॥ ६ ॥
 त्रिकुटी ही निजमूल है, भूकुटी मध्य निसान ।
 ब्रह्म दीप अस्थूल है, अगर तिलक निरवान ॥ ७ ॥
 अगर तिलक सिर सोई, बैसाखी उनिहारि ।
 सोभा अविचल नाम की, देखो सुरति विचारि ॥ ८ ॥
 जैसि तिलक उनहार है, तस सोभा अस्थीर ।
 स्वप्न लड़ाटे सोई, तत्त्व तिलक गंभीर ॥ ९ ॥

मध्य गुफा जहँ सुरति है,	उपरि तिलक का धाम ।
अमर समाधि लगावई,	दीसै निरगुन नाम ॥१०॥
द्वादस तिलक बनावहीं,	अंग अंग अस्थान ।
* कहैं कबीर विरानहीं,	ऊजल इस अमान ॥११॥
ऊजल देखि न भरमिये,	वक ज्यों लावै ध्यान ।
कुटिल चाल करनी करै,	सो मूरख अज्ञान ॥१२॥
ऊजल देखि न धीजिये,	वग ज्यों मांडै ध्यान ।
घोरै बैठि चपेट सी,	यों ले बूढ़े ज्ञान ॥१३॥
चाल वकुल की चलत है,	बहुरि कहावै हंस ।
ते मुक्ता कैसे चुगै,	पड़े काल के फंस ॥१४॥
साधु भया तो क्या हुआ,	माला पहिरी चार ।
बाहर भेष बनाइया	भीतर भरी भंगार ॥१५॥
जेता मीठा बोलवा	तेता साधु न जान ।
पहिले थाह दिखाइ करि,	औडै देसी आन ॥१६॥
मीठे बोल जु बोलिये,	ताते साधु न जान ।
पहिले स्वाँग दिखाय के,	पीछे दीसै आन ॥१७॥
चांची कूटै बावरा,	सरप न मारा जाय ।
मूरख चांची ना डसै,	सरप सवन को खाय ॥१८॥
माला तिलक लगाय के,	भक्ति न आई हाथ- ।
दाढ़ी मूँछ मुँडाय के,	चले दुनी के साथ ॥१९॥

दाढ़ी मूँछ मुँडाय के, हुआ घोटम घोट ।
 मन को क्यों नहि मूँडिये, जायें भरिया खोट ॥२०॥
 केसन कदा विगारिया, मुँडा सौ सौ बार ।
 मन को क्यों नहि मूँडिये, जायें विषय विकार ॥२१॥
 मन मेवासी मूँडिये, केस हि मूँडै काहि ।
 जो कुछ किया सो मन किया, केस किया कलु नाहि ॥२२॥
 मूँड मुँडावत दिन गया, अजहु न मिलिया राम ।
 राम नाम कहो क्या करै, मन के औरै काम ॥२३॥
 मूँछ मुँडायै हरि मिले, सब कोइ लेहि मुँडाय ।
 बार बार के मूँडते, मेढ न वैकुण्ठ जाय ॥२४॥
 स्वाँग पहिरि सोहरा भया, दुनिया खाई खुद ।
 जा सेरी साधू गया, सो तो राखी मूँद ॥२५॥
 भूला भसम रमाय के, मिटी न मन की चाह ।
 जो सिका नहि साँच का, तबलग जोगी नाह ॥२६॥
 ऐसी ठाठ ठाठिये, बहुरि न यह तन होय ।
 ज्ञान गूदरी ओढिये, काहि न सकही कोय ॥२७॥

२२. मेवासी=लुटेरा, डाकू ।

२५. सेहरा=प्रसिद्ध । साधु का येष बनानेवाले येष के कारण संसार में प्रसिद्ध होकर आनन्द करने हैं; परन्तु महात्माओं के सच्चे रास्ते को ऐसे लोग लुप्त कर देते हैं ।

मन माला तन सुपरनी, हरिजी तिलक दियाय ।
 दुहाइ राजा राम की, दूजा दूरि कियाय ॥२८॥
 मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत ।
 राम पिछा सब देखताँ, सो जोगी अवधूत ॥ २९ ॥
 माला फेरै मनमुखी, बहुतक फिरै अचेत ।
 गांगी रोलै घहि गया, हरि सों किया न हेत ॥३०॥
 माला फेरै कलु नहीं, डारि मुआ गल भार ।
 ऊपर ढोला हींगला, भीतर भरा भँगार ॥३१॥
 माला फेरै क्या भया, गाठि न हिय की खोय ।
 हरि चरना चित राखिये, तो अपरापुर जोय ॥३२॥
 माला फेरै कलु नहीं, काती मन के हाथ ।
 जबलग हरि परसै नहीं, तबलग थोधी बात ॥३३॥
 ज्ञान संपुरन ना विधा, हिरदा नहि भिदाय ।
 देखा देखी पकरिया, रंग नहीं ठहराय ॥३४॥
 बाना पहिरै सिंघ का, चले भेड की चाल ।
 बोली बोले सियार की, कुत्ता खावै फाल ॥ ३५ ॥
 भरम न भागै जीव का, बहुतक धरिया भेष ।
 सतगुरु मिलिया बाहिरै, अन्तर रहा अलेख ॥३६॥
 तन को जोगी सब करै, मन को करै न कोय ।
 सहजै सन सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ ३७ ॥

हम तो जागी मनहि के,	तन के हैं ते और ।
मन को जोग लगावताँ,	दसा भई कहु और ॥ ३८ ॥
पहिले बूढ़ी ^१ पिरथवी,	झूठे कुल की कार ।
अलख विसायों भेष में,	बूढ़ि काल की धार ॥ ३९ ॥
चतुराई हरि ना मिलै,	यह घातों की बात ।
निश्मेही निरधार का,	माइक दीनानाथ ॥ ४० ॥
जप माला छापा तिलक,	सरै न एकी काम ।
मन काचे ^२ नाचे त्रिया,	साचे राचे राम ॥ ४१ ॥
हम जाना तुम मगन हो,	रहै प्रेमरस पाग ।
रंच (क) पौन के लागते,	उठै ^३ आग से जाम ॥ ४२ ॥
सीतल जल पाताल का,	साठि हाथ पर मेख ।
माला के परताप से,	ऊपर आया देख ॥ ४३ ॥
करिये तो करि जानिये,	सरिखा सेती संग ।
झिर झिर जिमि लोई भई,	तऊ न छोड़ै रग ॥ ४४ ॥
संसारी साकट भला,	कन्या कौरी माय ।
साधु दुराचारी बुरा,	हरिजन तहाँ न जाय ॥ ४५ ॥
वैरागी शिरकत भला,	गिरा पड़ा फल खाय ।
सरिता को पानी पिये,	गिरही द्वार न जाय ॥ ४६ ॥

४३. जिस प्रकार कूमे का साठ हाथ गहरा पानी रहद की माला के प्रताप में ऊपर चला आता है इसी प्रकार माला के प्रेमपूर्णक फेरने से गुप्त राम भी प्रकट हो जाता है ।

१ पा० राचे । २ पा० नाग से ।

गिरही द्वारै जाय के,	उदर समाता लेय ।
पीछे लागे हरि फिरै,	जब चाहै तब देय ॥४७॥
सिप साखा संसार गति,	सेवक परतछ काल ।
वैरागी छवै मढी,	ताको मूल न डाल ॥४८॥
जो मानुष गृहि धर्म युत,	राखै सील विचार ।
गुरु मुख बानी साधु संग,	मन बच सेवा सार ॥४९॥
सेवक भाव सदा रहै,	बहम न आनै चित्त ।
निरनै लखी यथार्थ विधि,	साधुन को करै मित्र ॥५०॥
सच सील दाया सहित,	वरते जग व्यौहार ।
गुरु साधु का आश्रित,	दीन बचन उच्चार ॥५१॥
बहु संग्रह विषयान को,	चित्त न आवै ताहि ।
मधुकर इम सब जगत जिव,	घटि बढ़ि लखि वरताहि ॥५२॥
गिरही सेवै साधु को,	साधु सुमरै नाम ।
यामे घोखा कलु नही,	सरै दोउ का काम ॥५३॥
गिरही सेवै साधु को,	भाव भक्ति आनन्द ।
कहे कविर वैरागि को,	निरवानी निरदुद ॥५४॥
सब्द विचारे पथ चले,	ज्ञान गली दे पाँव ।
क्या रमता क्या बैठता,	क्या गृह कँदला छँव ॥५५॥
जैसा मीठा घृत पकै,	तैसा फीका साग ।
रामनाम सौ राचहीं,	कहे कविर वैराग ॥५६॥

५६. जिनको मिये घी से बना मिठाई और अलौना शाक दोनों बराबर है वे ही सच्चे वैरागो हैं । १ पा० समाना ।

पांच सात सुमता भरी, गुरु सेवा चित लाय ।
 तब गुरु आज्ञा लेयके, रहे दिसंतर जाय ॥५७॥
 गुरु आज्ञा ते जो रमै, रमते तजे सरीर ।
 ताको मुक्ति हजूर है, सतगुरु कहै कवीर ॥५८॥
 गुरु के सनमुख जो रहै, सहै कसौटी दुख ।
 कहै कवीर ता दुख पर, वारों कोटिक सुख ॥५९॥
 सतगुरु अथम उधारना, दया सिंधु गुरु नाम ।
 गुरु विन कोइ न तरि सकै, क्या जप अलुह राम ॥६०॥
 माला पहिरै कौन गुन, मन दुविधा नहि जाय ।
 मन माला करि राखिये, गुरुचरनन चित लाय ॥६१॥
 मन का मस्तक मूडि ले, काम क्रोध का केस ।
 जो पांचौ परमोधि ले, चेला सबही देस ॥६२॥
 माला तिलक बनाय के, धर्म विचारा नाँहि ।
 माल विचारी क्या करै, मैल रहा मन माँहि ॥६३॥
 माल बनाई काठ की, विच में डारा सूत ।
 माल विचारी क्या करै, फेरन हार कपूत ॥६४॥
 माल तिलक तो भेष है, राम भक्ति कटु और ।
 कहै कविर जिन पहिरिया, पांचौ राखै ठौर ॥६५॥

५७. साधक को उचित है कि कुछ वर्षों तक अश्रान्त और गरीबी से गुरु की सेवा करे । पश्चात् यदि देशभ्रमण की इच्छा हो अथवा विदेश में रहने की इच्छा हो तो गुरु की आज्ञा लेकर जाये या रहे ।

माला तो मन की मली, औ' ससारी भेष ।
 भाला फेरें हरि मिले, रहस्य के गल देख ॥६६॥
 मन भैला तन ऊजला, षगुला कपटी अंग ।
 तासों तो कौआ भला, तन मन एक हि रंग ॥६७॥
 कवि तो कोटिन कोटि है, सिर के मुँडे कोट ।
 मन के मुँडे देख करि, ता संग लीजे ओट ॥६८॥
 भेष देखि मति भूलिये, वृद्धि लीजिये ज्ञान ।
 विना कसौटी होत नहीं, कंचन की पहिचान ॥६९॥
 फाली फूली गाढी, ओढि सिंग की खाल ।
 सांचा सिंग जग आ मिले, गाढर कौन हवाल ॥७०॥
 पाँची में फूला फिरै, साधु कहाँ सोय ।
 स्वान न मेलै वाघरो, वाघ वहाँ से होय ॥७१॥
 बोली ठोली मसकरी, हांसी खेल हराम ।
 मद माया औ इस्तरी, नहि असंगन के काम ॥७२॥
 भांड भवाई खेचरी, ये कुल को बेवहार ।
 दया गरीबी बंदगी, संगन का उपकार ॥७३॥
 दूध दूध सब एक है, दूध आक थी होय ।
 बाना देखि न बंदिये, नैना पखो सोय ॥७४॥

१ पा० माया पहिरे मन, मुखी, बाहिर के घट देख ।

२ पा० रहस्य । ३ पा० साधन ।

वाना देखी बँदिये, नहि करनी सों काम
 नीलकंठ कीछ चुगै, दरसन ही सों काम ॥७५॥
 कविर भेष भगवंत का, माला तिलक बनाय ।
 लनकूँ आवत देखिके, उठिफर मिलिये राय ॥७६॥
 गिरही को चिंता धनी, वैरागी को भीख ।
 दोनों का विच जीव है, देहु न सन्तो सीख ॥७७॥
 वैरागी विरक्त भला, गिरही चित्त उदार
 दोउ चुकि खाली पड़े, ताको चार न पार ॥७८॥
 घर में रहे तो भक्ति करु, नातर करु वैराग ।
 वैरागी वंघन करै, ताका बड़ा अभाग ॥७९॥
 धारा तो दोनों भली, गिरही कै वैराग ।
 गिरही दासातन करै, वैरागी अनुराग ॥८०॥
 अजर जु घान अतीतका, गिरही करै अहार ।
 निथै होई दरिद्री, कहैं कपीर विचार ॥८१॥

भीख को अंग ।

माँगन मरन समान है, मति कोइ मागो भीख ।
 माँगन ते परना भला, यह मतगुरु की सीख ॥ १ ॥
 माँगन मरन समान है, सीख लई मै तोहि ।
 कहैं कविर सतगुरु मुनो, मतिरे मँगाउ मोहि ॥ २ ॥
 माँगन मरन समान है, तोहि दर्द में सीख ।
 कहैं कविर समुझाय के, मति कोइ मागै भीख ॥ ३ ॥

माँगन गय सो मर रहे,
 तिनते पहिले वे मरे,
 उदर समाता मांगि ले,
 कहै कविर अधिका गहै,
 अजहं तेरा सब मिटे,
 जवलग तूं घर में रहै,
 उदर समाता अन्न ले,
 अधिक हि संग्रह ना करै,
 अन मांगा तो अति मला,
 उदर समाता मांगि ले,
 अन मांगा उत्तिम कहा,
 कहै कविर निकृष्ट सो,
 सहज मिलै सो दूध है,
 कहै कविर वह रक्त है,
 आव गया आदर गया,
 यह तीनों तवही गये,
 भीख तीन परकार की,
 दास कविर परगट कहै,
 उत्तिम भीख है अजगरी,
 कहै कविर ताके गहै,
 भँवर भीख मध्यम कही,
 कहै कविर ताके गहै,
 खर कृकर की भीख जो,
 कहै कविर इस भीख में,

मरै जु माँगन जाँहि ।
 होत करत है नाँहि ॥ ४ ॥
 ताको नाहीं दोष ।
 ताकी गति न मोष ॥ ५ ॥
 जो मानै गुरु सीख ।
 मति कहँ मांगै भीख ॥ ६ ॥
 तन ही समाता चीर ।
 तिसका नाँव फकीर ॥ ७ ॥
 माँगि लिया नहि दोष ।
 निश्चै पावै मोष ॥ ८ ॥
 मध्यम मांगि जु लेय ।
 पर घर धरना देय ॥ ९ ॥
 मांगि मिलै सो पानि ।
 जामे ऐचातानि ॥ १० ॥
 नैनन गया सनेह ।
 जवहि कहा कलु देह ॥ ११ ॥
 सुनहु संत चित लाय ।
 भिन्न भिन्न अरथाय ॥ १२ ॥
 सुनि लीजे निज बैन ।
 महा परम सुख चैन ॥ १३ ॥
 सुनो संत चित लाय ।
 मध्यम माँहि समाय ॥ १४ ॥
 निकृष्ट कहाये सोय ।
 मुक्ति न कवहं होय ॥ १५ ॥

संगति को अंग ।



कवीर संगति साधु की,	नित प्रति कीजै जाय ।
दुरमति दूर वहावसी,	देसी सुमति चताय ॥ १ ॥
कवीर संगति साधु की,	कबहुं न निष्फल जाय ।
जो पै वोवै भुनि के,	फुलै फलै अयाय ॥ २ ॥
कवीर संगति साधु की,	जो की भूसी खाय ।
खीर खांठ मोजन मिलै,	साकट संग न जाय ॥ ३ ॥
कवीर संगति साधु की,	ज्यों गंधी का वास ।
जो कुछ गंधी दे नहीं,	तो भी वास सुवास ॥ ४ ॥
कवीर संगति साधु की,	निष्फल कभी न होय ।
होसी चंदन वासना,	नीम न कइसी कोय ॥ ५ ॥
कवीर संगति साधु की,	जो करि जानै कोय ।
सकल विरछ चंदन भये,	वांस म चंदन होय ॥ ६ ॥
कवीर चंदन संग से,	बेधे ढाक पलास ।
आप सरीखा करि लिया,	जो ठहरा तिन पास ॥ ७ ॥
मलया गिरि के पेड़ सों,	सरप रहै लिपटाय ।
रोम रोम बिप भीनिया,	अमृत कहा समाय ॥ ८ ॥

१. पा० द्वाय । २. पा० आक । ३. जो होते उन पास ।

एक घड़ी आधी घड़ी,
 कबीर संगति साधु की,
 घड़ि ही की आधी घड़ी,
 सत संगति पल ही भली,
 जा पल दरसन साधु का,
 सत्तनाम रसना वसै,
 ते दिन गये अकारधी,
 प्रेम बिना पसु जीवना,
 जा घर गुरु की भक्ति नहि,
 ता घर जम डेरा दिया,
 रिद्धि सिद्धि मांगूं नहीं,
 नित प्रति दरसन साधु का,
 मेरा मन हंसा रमै,
 बगुला मन मानै नहीं,
 मेरा संगी दो जना,
 वे दाता है मुक्ति के,
 कबीर वन वन में फिरा,
 राम सरीखा जन मिलै,
 कबीर तासों संग कर,
 राजा राना छत्रपति,

आधी हूं सों आध ।
 कटै कीटि अपराध ॥ ९ ॥
 भाव भक्ति में जाय ।
 जमका धका न खाय ॥ १० ॥
 ता पल की बलिहार ।
 लीजै जनम सुधार ॥ ११ ॥
 संगति भई न संत ।
 भक्ति बिना भगवंत ॥ १२ ॥
 संस नही मिहमान ।
 जीवत भये मसान ॥ १३ ॥
 मांगूं तुम पै येह । १
 कहै कविर मुहि देह ॥ १४ ॥
 हंसा गगनि रहाय ।
 घर आंगुन फिर जाय ॥ १५ ॥
 इक वैष्णव इक राम ।
 वे सुमिरावै नाम ॥ १६ ॥
 हूँदि फिरा सब गाय ।
 तब पूरा है काम ॥ १७ ॥
 जो रे भजि हैं राम ।
 नाम बिना वैकाम ॥ १८ ॥

कवीर लहरि समुद्र की,	कमी न निस्फल जाय ।
घमुळा परखि न जानई,	हंसा चुगि चुगि खाय ॥१९॥
कवीर मन पंछी भया,	भाँवे तहवाँ जाय ।
जो जैसी संगति करै,	सो तैसा फल पाय ॥ २० ॥
कवीर खाई कोट की,	पानी पियै न कोय ।
जाय मिले जव गंग में,	सब गंगोदक होय ॥ २१ ॥
कवीर बलह रु कल्पना,	सतसंगति सँ जाय ।
दुख वासों भागा फिरै,	सुख में रहै सपाय ॥२२॥
संगति कीजै संत की,	जिनका पूग मन ।
अनतोले ही देत है,	नाम सरीखा धन ॥२३॥
साधु संग अन्तर पढे,	यह मति कबहुँ होय ।
कहै कविर तिहु लोक में,	सुखी न देखा कोय ॥२४॥
मथुरा कासी द्वारिका,	हरिद्वार जगनाथ ।
साधु संगति हरिभजन विन,	कहू न आवै हाथ ॥२५॥
साखि सन्द बहुते गुना,	मिटि न मनका दाग ।
संगति सो सुधरा नहीं,	ताका बडा अभाग ॥२६॥
साधुन के सतसंग ते,	धर धर कांपै देह ।
कबहुँ भाव कुभाव ते,	पत मिटि जाय सनेह ॥२७॥
राप बुलावा मेजिया,	दिया कवीर। रोय ।
जो सुख साधू संग में,	सो वैकुण्ठ न होय ॥२८॥

राम राम रटिबो करै, निसदिन माधुन संग ।
 कहो जु कौन विचारतै, (नहि) नैना लागत रंग ॥२९॥
 मन दीया कहूँ ओर ही, तन साधुन के संग ।
 कहै कबिर कोरी गजी, कैसे लागे रंग ॥३०॥
 भुक्कम वास न वेधई, चंदन दोष न लाय ।
 सब अंग तो विष सों भरा, अमृत कहाँ समाय ॥३१॥
 चंदन परसा बावना, विष ना तजै भुजंग ।
 यह चाई गुन आपना, कहा करै सतसंग ॥३२॥
 कबीर चंदन के निकट, नीम भि चंदन होय ।
 बूढ़े वांस बडाइया, यौ जनि बूढ़ो कोय ॥३३॥
 चंदन जैसे संत हैं, सरप जैस संसार ।
 वाके अंग लपटा रहै, भागै नहीं विकार ॥३४॥
 चंदन डर लहसुन करै, पति रे विगारै वास ।
 सुगुरा निगुरा सों डरै, जग से डरपै दास ॥३५॥
 कबिर कुसंग न कीजिये, लोहा जल न तिराय ।
 कदली सीप भुजंग मुख, एक बुद तिर भाव ॥३६॥
 कबिर कुसंग न कीजिये, जाका नाँव न आव ।
 ते क्यौँ होसी बापरा, साध नहीं जिहि गॉव ॥३७॥
 कबीर गुरु के देस में, बसि जानै जो कोय ।
 फागा ते इसा वनै, जाबि वरन कुल खोय ॥३८॥

कबीर कहते ययों बने, अन बनता के संग ।
 दीपक को भावै नहीं, जरि जरि मरै पतंग ॥३९॥
 ऊजल बुंद अकास की, पडि गइ भूमि बिकार ।
 पाटी मिलि भइ कीच सो, दिन संगति मौ छार ॥४०॥
 हरिजन सेती रुठना, संसारी सों हेत ।
 ने नर फावहु न नीपजे, ज्यों कालर का खेत ॥४१॥
 गिरिये परवत सिखर ते, परिये घरनि मँझार ।
 मूरख मित्र न कीजिये, बूढ़ो काली धार ॥४२॥
 मूरख को समझावते, ज्ञान गांठि का जाव ।
 कोयला होय न ऊजल, सौ मन साधुन छाव ॥४३॥
 कोयला भि होय ऊजल, जरि धरि है जो सेत ।
 मूरख होय न ऊजला, ज्यों कालर का खेत ॥४४॥
 संगति अधम असाधु की, मीच होय ततकाल ।
 कहैं कविर सुन साधवा, बानी ब्रह्म रसाल ॥४५॥
 मेर निसानी मीच की, कूसंगति ही काल ।
 कहैं कविर सुन मानिया, बानी ब्रह्म सँभाल ॥४६॥
 ऊंचे कुल कइ जनमिया, (जो) करनी ऊंच न होय ।
 कनक कलस मद सों भरा, साधुन निंदा सोय ॥४७॥

४१. कालर=एक प्रकार का घास । यह घास जिस खेत में बढ़ता है उसमें दूसरी चीज नहीं हो सकती ।
 ४६. मेर=सीमा ।

जानि बूझि सॉची तजै, करै झूठ सों नेह ।
 ताकी संगति रामजी, सपने हू मति देह ॥४८॥
 काचा सेती पति मिलै, पाका सेती वान ।
 काचा सेती मिलत ही, है तन धन की हान ॥४९॥
 तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल ।
 काची सरसों पेलि के, खरी भया नहि तेक ॥५०॥
 कुल टूटै कांची पड़ी, सरा न एकौ काम ।
 चौरासी वासा भया, दूर पडा हरिनाम ॥५१॥
 दाग जु लागा नील का, सौ मन साधुन धोय ।
 कोटि जतन परपोषिये, कागा हंस न होय ॥५२॥
 जग सों आपा राखिये, ज्यों विपहर सो अंग ।
 करो दया जो सूख है, बुरा खलक का संग ॥५३॥
 जीवन जोवन राजमद, अविचल रहै न कोय ।
 जु दिन जाय सतसंग में, जीवन का फल सोय ॥५४॥
 ब्राम्हन केरी बेटिया, मांस शराव न खाय ।
 संगति भई कलाल की, मद बिन रहा न जाय ॥५५॥
 साखि सब्द बहुत हि सुना, मिटा न मनका मोह ।
 पारस तक पहुँचा नहीं, रहा लोह का लोह ॥५६॥

५३. कुसंगी लोगों की संगति से अपने आपको ऐसे बचना चाहिये जिस तरह साप से अपने शरीर को बचाते हैं ।

माखी चंदन परिहरे, जहँ रस मिलितहँ जाय ।
 पापी छुनै न हरि कथा, ऊँघे कै उठि जाय ॥५७॥
 पुरब जनम के माग से, मिले संत का जोग ।
 कहँ कविर समुझै नहीं, फिर फिर चाहै भोग ॥५८॥
 जहाँ जैसी संगति करै, तहँ तैसा फल पाय ।
 हरि मारग तो कठिन है, क्यों करि पैठा जाय ॥५९॥
 ज्ञानी को ज्ञानी मिलै, रस की लूटम लूट ।
 ज्ञानी अज्ञानी मिल, होवै भाषा कूट ॥६०॥
 सज्जन सों सज्जन मिले, होवे दो दो बात ।
 गदहा सों गदहा मिले, खावे दो दो घात ॥६१॥
 मैं मांगू यह मांगना, मोहि दीजिये सोय ।
 संत समागम हरिकथा, हमरे निसदिन होय ॥६२॥
 कंचन मी पारस परसि, बहुरि न लोहा होय ।
 चंदन बास पलास विधि, ढाक कहै नहि कोय ॥६३॥
 पहिले पद पासै विना, बीचे पड़े न भात ।
 पासै विन लागे नहीं, कुसुम बिगारै साथ ॥६४॥

६४. कपडे को कुसुमिया और समुद्रलहर बनाने के लिये पहले उसे खूम किया जाता है । पश्चात् सल पाड कर उसे डोरों से बाधा जाता है । इसके बाद कुसुम का पास बनाकर उससे कपडे को रंगते हैं ।

बीचे पडे न भात-समुद्रलहर की शोभा नहीं आती । पासै विना-पास चढाये विना ।

कवीर सतगुरु सेविये, कहा साधु को संग ।
 विन वगुरे भिगोय विना, कोरै चढ़ै न रंग ॥ ६५ ॥
 कवीर विषधर बहु मिले, मनिधर मिला न कोय ।
 विषधर को मनिधर मिले, विषधर अमृत होय ॥ ६६ ॥
 भीति करो सुख लेन को, सो सुख गयो हिराय ।
 जैसे पाइ छटुंदरी, पकड़ि साप पछिताय ॥ ६७ ॥
 जो छोड़ै तो आंधरा, खाये तो मरि जाय ।
 ऐसे खंभ छटुंदरी, दोउ भांति पछिताय ॥ ६८ ॥
 साप छटुंदर दोयकूं, नीला नीगल जाय ।
 वाकूं विष वेहै नहीं, जदी भरोसे खाय ॥ ६९ ॥
 कूसंगति लागे नहीं, सद् सजीवन हाथ ।
 वाजीगर का बालका, सोवै सरपाके साथ ॥ ७० ॥
 पानी निरपल अति घना, पल संगे पल भंग ।
 ते नर निरफल जायंगे, करै नीचको संग ॥ ७१ ॥
 निगुनै गांव न वासिये, सब गुन को गुन जाय ।
 चंदन पड़िया चौक में, ईधन बदले जाय ॥ ७२ ॥

६५. कहा-साधु का संग करना कहा है । विनु वगुरे भिगोय विना-कपड़े को खून भिगो कर धोये विना ।

६६. मणिधारी सर्प की मणि में यह गुण होता है कि सर्प के काट लेने पर सर्पमणि को लगा देने से वह विष को खींच लेती है । पश्चात् उसे दूध में डाल देने से दूध अमृत के समान गुणकारी हो जाता है । कोढ़ी को वह दूध यदि पिला दिया जाय तो उसका कोढ़ दूर हो जाता है । ६८. खंभ-खाकर ।

संगति को बैरी बनो, सुनो संत इक बैन ।
 येही काजल कोठरी, येही काजल नैन ॥७३॥
 साधू संगति परिहरै, करै विषय को संग ।
 कृप खनी जल चावरे, त्यागि दिया जल गंग ॥७४॥
 अन मिलता सों संग करि, कहा विगोयो आप ।
 सच कविर यों कहत है, ताहि पुरखो पाप ॥ ७५ ॥
 लकड़ी जल दूबै नहीं, कहो कहाँ की मीति ।
 अपना सींचो जानि के, यही बदन की रीति ॥७६॥
 मैं सींचो हित जानि के, कठिन मयो है काठ ।
 ओछी संगति नीचकी, सिर पर पाड़ी बाट ॥७७॥
 साधू सद्ग सुलच्छना, गांधी हाट बनेह ।
 जो जो मांगे मीति सों, सो सो कौड़ी देह ॥ ७८ ॥

७३. काजल यदि नेत्रों में लगता है तो उसकी शोभा और स्थिरता रहती है । और वह यदि कोठरी में समा जाता है तो उसे चूने से मिटा देते हैं। यह योग्य और अयोग्यकी संगतिका फल है । ७५. विगोयो-विगाड़ा.

७६. यह जल की उदारता है कि वह काठ को (नाव को) यह समझकर नहीं डुबाता कि इसको मैंने सींचकर बड़ा किया है । यह बड़े पुरुषों की महत्ता है ।

७७. जल के इस प्रकार उदारता दिखलाने, पर भी काठ अपनी नीचता को नहीं छोड़ता । वह सदैव उसके सिर पर चढ़ा रहता है और जल के ऊपर से ही अपना आना जाना जारी रखता है । यही नीचों की नीचता है ।

तरुवर जड़ से काटिया,	जबै सम्हारो जहान ।
तारै पन वोरै नहीं,	वाँह गहै की लाज ॥ ७९ ॥
साधु संगति गुरुमक्ति जु,	निष्कल कवहुँ न जाय ।
चंदन पास है रखडा,	(सो) कवहुँक चंदन भाय ॥ ८० ॥
संत सुरसरी गंगजल,	आनि पखारा अंग ।
मैले से निरमल भये,	साधू जन के संग ॥ ८१ ॥
चर्चा करु तब चौहटे,	ज्ञान करो तब दोय ।
ध्यान धरो तब एकिला,	और न दूजा कोय ॥ ८२ ॥
संगति कीजै साधु की,	दिन दिन होवै हेत ।
साकुट काली कामली,	धोते होय न सेत ॥ ८३ ॥
साधु संगति गुरु भक्ति रु,	बढ़त बढ़त बढ़ि जाय ।
ओछी संगति खर सव्द रु,	घटत घटत घटि जाय ॥ ८४ ॥
संगति ऐसी कीजिये,	सरसा नर सों संग ।
छर छर लोई होत है,	तऊ न छाडै रंग ॥ ८५ ॥
सब संगति सब सों बढ़ी,	बिन संगति सब ओस ।
सत संगति परमानता,	कटै करम की दोस ॥ ८६ ॥

८०. भाय—हो जाता है ।

८४. साधुसंगति गुरुमक्ति के समान दिन२ बढ़ती ही जाती है ।
और कुसंगति गद्दे की रेंकन (आवाज) के समान धीरे२ घटती ही
जानी है ।

साधिव दरसन कारनै, निस दिन फिरुं उदास ।
 साधू संगति सोधि ले, नाम रहै उन पास ॥८७॥
 तेल तिली सों जपनै, सदा तेल को तेल ।
 संगति को बेरो मपो, ताते नाम फुलैल ॥८८॥
 हरिजन केवल होत हैं, जाको हरि का संग ।
 विपति पदै विसरै नहीं, चढ़ै चौगुना रंग ॥८९॥



सेवक को अंग ।

सेवक सेवा में रहै, अन्त कहूं नहि जाय ।
 दुख सुख सिर ऊपर सहै, कहैं कविर समुझाय ॥१॥
 सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय ।
 कहैं कविर सेवा बिना, सेवक कभी न होय ॥२॥
 सेवक मुखै 'कहावई', सेवा में दृढ़ नाँहि ।
 कहैं कविर सो सेवका, लख चौरासी माँहि ॥३॥
 सेवक सेवा में रहै, सेव करै दिनरात ।
 कहैं कविर कुसेवका, सनमुख ना ठहरात ॥४॥
 सेवक फल मांगै नहीं, सेव करै दिनरात ।
 कहैं कविर ता दास पर, काल करै नहि घात ॥५॥

सेवक स्वामी, एक मत, मत में मत मिलि जाय ।
 चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाय ॥६॥
 सेवक कुत्ता रामका, सुतिया वाका नाँव ।
 डोरी छागी प्रेम की, जित खँचै तित जाँव ॥ ७ ॥
 तू तू करु तो निकट है, दुर दुर करु तो जाय ।
 ज्यों गुरु राखै त्यों रहै, जो देखै सो खाय ॥ ८ ॥
 फल कारन सेवा करै, निसदिन जाँचै राम ।
 कहैं कविर सेवक नहीं, चाहै चौगुन दाम ॥ ९ ॥
 सब कछु गुरु के पास है, पाइये अपने भाग ।
 सेवक मन सोंप्या रहै, रहे चरन में लाग ॥ १० ॥
 सतगुरु सद्ध उलंघि कर, जो सेवक कहँ जाय ।
 जहाँ जाय तहँ काल है, कहैं कविर समुझाय ॥ ११ ॥
 सतगुरु बरजै सिष करै, क्यों करि वाचै काल ।
 दहँ दिसि देखत वहि गया, पाती फूटी पाल ॥ १२ ॥
 सतगुरु कहि जो सिष करै, सब कारज सिष होय ।
 अमर अभय पद पाइये, काल न झाँकै कोय ॥ १३ ॥

१०. मन सोंप्या रहे—अपना मन अर्पण कर दे ।

१२. पाल—तालाब का बाध । जिस प्रकार पाल के फूटने से पानी फावू से बाहर हो जाता है । इसी प्रकार गुरु की आज्ञा का भग करनेवाला शिष्य संसार में बह जाता है । शुक्राचार्य ने बलिराजा को घामन को दान देने से रोका था, परन्तु उसने गुरु की आज्ञा नहीं मानी, इसलिये उसे पाताल में जाना पड़ा ।

साहिब को भावे नहीं,	सो हमसों जनि होय ।
सतगुरु लाजै आपना,	साधु न मानै कोय ॥१४॥
साहिब जासों ना रुचै,	सो हमसों जनि होय ।
गुरु की आज्ञा में रहै,	बल बुधि आपा खोय ॥१५॥
साहिब के दरवार में,	कमी काहु की नाहि ।
बंदा मौज न पावहीं,	चूक चाकरी माहि ॥ १६ ॥
द्वार धनी के पड़ि रहै,	धका धनी का खाय ।
कबहुक धनी निवाजिहै,	जो दर छाँडि न जाय ॥१७॥
आस करै वैकुण्ठ की,	दुरमति तीनों काल ।
सुक कही बलि ना करी,	ताते गयो पताल ॥ १८ ॥
गुरु आज्ञा मानै नहीं,	चलै अटपटी चाल ।
लोक वेद दोनों गये,	आगे सिर पर काल ॥१९॥
भुक्ति मुक्ति मांगों नहीं,	भक्ति दान दे मोहि ।
और कोइ जाँची नहीं,	निसदिन जाँचौ तोहि ॥२०॥
भोग मोक्ष मांगों नहीं,	भक्ति दान गुरुदेव ।
और नहीं कह्य चाहिये,	निसदिन तेरी सेव ॥२१॥
यह मन ताको दीजिये,	साँचा सेवक होय ।
सिर ऊपर आरा सहै,	तऊ न दूजा होय ॥२२॥
अन राते सुख सोवना,	राते निंद न आय ।
ज्यों जल छूटी माछरी,	तलफत रैन विहाय ॥२३॥

२२. आरा—करवन । २३. अनराते—जिनका किसीसे प्रेम नहीं है ।

राता राता सब कहै, अनगता नहि कोय ।
 राता सोई जानिये, जा तन रक्त न होय ॥२४॥
 राता रक्त न नीकसे, जो तन चीरै कोय ।
 जो राता गुरु नाम सों, ता तन रक्त न होय ॥२५॥
 सीलवंत सुर ज्ञान मत, अति उदार चित होय ।
 लजावान् अति निछलता, कोपल हिरदा सोय ॥२६॥
 दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
 सन्तोषी सुख दायका, सेवक परम सुजान ॥२७॥
 चतुर विवेकी धीर मत, छिमावान बुधिवान ।
 आज्ञावान् परमत लिया, मुदित प्रफुल्लित जान ॥२८॥
 ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहुं सो हेत ।
 सत्यवान परमारथी, आदर भाव सहेत ॥२९॥
 पट्ट दरसन को प्रेम करि, असन बसन सों पोष ।
 सेव करै हरिजनन की, हरपित परम सँतोष ॥३०॥
 यह सब लच्छन चित धरै, अप लच्छन सब त्याग
 सावधान सम ध्यान है, गुरु चरनन में लाग ॥३१॥
 गुरु मुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग ।
 कहै कविर विसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥३२॥

* २७. धरमकध्वजा धर्म को प्रकट करने के लिये ध्वजा के समान ।

३०. पट्टदर्शन—जोगी, जगम सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश, और
 ब्राह्मण । असन—भोजन । बसन—कपड़ा ।

गुरु मुख गुरु चितवत रहै, जैसे साह दिवान ।
 और कभी नहि देखता, है बाही को ध्यान ॥३३॥
 गुरुमुख गुरु आज्ञा चले, छाँडि देइ सब काम ।
 कहै कविर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम ॥३४॥
 उलटे सुलटे वचन के, सीप न मानै दूख ।
 कहै कविर संसार में, सो कहिये गुरुमुख ॥ ३५ ॥
 सुरति सुहागिन सोइ सहि, जो गुरु आज्ञा मोहि ।
 गुरु आज्ञा जो भेटहीं, तासु कुसल है नाहि ॥ ३६ ॥
 गुरु आज्ञा लै आवही, गुरु आज्ञा लै जाय ।
 कहै कविर सो सन्त प्रिय, बहु विधि अमृत पाय ॥३७॥
 कहै कविर गुरु प्रेम वस, क्या निररै क्या दूर ।
 जाका चित जासों वसै, सो तिहि सदा इजूर ॥३८॥
 कबीर गुरु औ साधु कं, सीस नवावै जाय ।
 कहै कविर सो सेवका, महा परम पद पाय ॥ ३९ ॥

दासातन को अंग ।

गुरु समरथ सिर पर खड़े, कदा कबि तोहि दास ।
 रिद्धि सिद्धि सेंवा करै, मुक्ति न छाँडै पास ॥ १ ॥
 दुख सुख सिर ऊपर सहै, कबहु न छाँडै मंग ।
 रंग न लागै और का, व्यापै सतगुरु रंग ॥ २ ॥

धूम धाम सहता रहे, कबहु न छाड़े संग ।
 पाहा विन लागे नहीं, कपड़ा के बहु रंग ॥ ३ ॥
 कबीर गुरु सब को चहे, गुरु को चहे न कोय ।
 जब लग आस सरीर की, तबलग दास न होय ॥ ४ ॥
 कबीर गुरु के भावते, दूर हि ते दीसंस ।
 तन छीना मन अनमना, जग ते रूठि फिरत ॥ ५ ॥
 कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोय ।
 कै जागै विषया भरा, दास बंदगी जोय ॥ ६ ॥
 कबीर पांचौ बलधिया, ऊजड़ ऊजड़ जाहि ।
 बलिहारी वा दास की, पकड़ि जु राखै बाँहि ॥ ७ ॥
 काजर केरी कोठरी, ऐसो यह संसार ।
 बलिहारी वा दास की, पैठी निकसन हार ॥ ८ ॥
 काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट ।
 बलिहारी वा दास की, रहे नाम की ओट ॥ ९ ॥
 निरबन्धन बंधा रहे, बधा निरबन्ध होय ।
 करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥ १० ॥
 दासातन हिरदै नहीं, नाम धरावै दास ।
 पानी के पीये बिना, कैसे पिटै पियास ॥ ११ ॥

३. पाहा—कपड़ेको भड़ी चढ़ाना । ५. गुरु के भावते—गुरु प्रेमी । अनमना—उदास । ६. खालिक—मालिक साहब । ७. पा बलधिया—पंचज्ञानेन्द्रिया ।

दासातन हिरदै बसै, साधुन सों आधीन ।
 कहैं कविर सो दास है, मेम भक्ति लौ लीन ॥१२॥
 नाम धराया दास का, मन में नार्हो दीन ।
 कहैं कविर सो स्वान गति, और हि के लौलीन ॥१३॥
 नाम धरावै दास को, दासातन में लीन ।
 कहैं कविर लौलीन विन, स्वान बुद्धि कहि दीन ॥१४॥
 स्वामी होना सोहरा, दुहरा होना दास ।
 गाढर आनी ऊनको, बांधी चरै कपास ॥१५॥
 दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल ।
 पलक एक में प्रगट है, छिन में करुं निहाल ॥१६॥
 दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अंत तिहुँ काल ।
 पलक एक में प्रगटि के, छिन में करै निहाल ॥१७॥
 कबीर कुल सो ही भला, जा कुल उपजै दास ।
 जा कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥१८॥
 भली मई जो मय मिठा, टूटी कुल की लाज ।
 बेपरवाही है रहा, बैठा नाम जहान ॥१९॥

१५. सोहरा-सहल । दुहरा—मुश्किल । गाढर-भेड ।

स्वामी बनना सहज है परंतु दास होना कठिन है । स्वामी में
 अहंता और दास में उसका अभाव होता है । जो स्वामी (गुरु) तो
 बन जाते हैं; परन्तु अहंकार नहीं त्यागते उनको लाभ के बदले इस
 प्रकार हानि उठाना पड़ती है जिस तरह ऊन के लिये लाई हुई भेड
 कपास खा जाती है और उसके मालिक को पछताना पड़ता है ।

काविर भये हैं केतकी,	भँवर भये सब दास ।
जहँ जहँ भक्ति कवीर की,	तहँ तहँ मुक्ति निवास ॥२०॥
दास कहावन कठिन हैं,	मैं दासनका दास ।
अब तो ऐसा है रहें,	पाँव तले की घास ॥२१॥
काहें को न सँतापिये,	जो सिरहंता सोय ।
फिर फिर बाहुं बंदिये,	दास लच्छ है सोय ॥२२॥
लगा रहै सतनाम सों,	सब ही बंधन तोड़ ।
कहै कविर वा दास सों,	काल रहै हथ जोट ॥२३॥
दास, कहावन कठिन है,	जबलग दूजी आन ।
हांसी साहिव जो मिले,	कौन सहै खुरसान ॥२४॥
डग डग पै जो डर करै,	नित सुमिरै गुरुदेव ।
कहै कविर वा दास की,	साहिव मानै सेव ॥२५॥
निहकामी निरमल दसा,	नित चरनों की आस ।
तीरथ इच्छा ता करै,	कव आवै वे दास ॥२६॥
चंदन डरपै सरप सों,	पति रे बिगाड़ै वास ।
सरगुन डरपै निगुन सों,	(यौ) जगसँ डरपै दास ॥२७॥

भक्ति का अंग ।



भक्ति , द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद ।
 परगट करी कबीर ने, सात दीप नव खड ॥ १ ॥
 भक्ति भाव भादों नदी, सब हि चली घहराय ।
 सरिता सोई सराहिये, जेठ मास उहराय ॥ २ ॥
 भक्ति भान सों होत है, मन दे कीजै भाव ।
 परमार्थ परतीति में, यह तन जाये जाव ॥ ३ ॥
 भक्ति बीज विनसै नहीं, आय पड़ै जो झोल ।
 कंचन जो विष्टा पड़ै, घटै न ताको मोल ॥ ४ ॥
 भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत ।
 ऊंच नीच घर औतरे, होय संत का संत ॥ ५ ॥
 भक्ति फठिन अती दुर्लभ, भेष सुगम नित सोय ।
 भक्ति जु न्यारी भेष सें, यह जानै सब कोय ॥ ६ ॥
 भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास ।
 भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस ॥ ७ ॥
 भक्ति रूप भगवंत का, भेष आहि कछु और ।
 भक्त रूप भगवंत है, भेष जु मन की दीर ॥ ८ ॥

२. पन-टेक । ४. झोल-झमेला आपत्ति । १०. दुहेली-वठिन ।

१. गान पन ।

भक्ति पदारथ तब मिलै,	जब गुरु होय सहाय ।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो,	पूरन भाग मिळाय ॥ ९ ॥
भक्ति दुहीली गुरुन की,	नहि कायर का काम ।
सीस उतारै हाथ सों,	ताहि मिलै सतनाम ॥ १० ॥
भक्ति दुहीली राम की,	नहि कायर का काम ।
निस्पेही निरधार को,	आठ पहर संग्राम ॥ ११ ॥
भक्ति दुहीली नाम की,	जस खांडे की धार ।
जो डोलै सो कटि पटै,	निहचल उतरै पार ॥ १२ ॥
भक्ति जु सीढ़ी मुक्ति की,	चढ़े भक्त दरपाय ।
और न कोई चढ़ि सकै,	निज मन समझौ आय ॥ १३ ॥
भक्ति निसैनी मुक्ति की,	संत चढ़े सब धाय ।
जिन जिन मन आलस किया,	जनम जनम पछिताय ॥ १४ ॥
भक्ति विना नहि निसतरै,	लाख करै जो कोय ।
सद्व सनेही ह्वै रहै,	घर को पहुँचै सोय ॥ १५ ॥
भक्ति दुवारा सांकरा,	राई दसवैं भाय ।
मन तो मैंगल ह्वै रहा,	कैसे आवै जाय ॥ १६ ॥
भक्ति दुवारा मोकला,	सुमिरी सुमिरि समाय ।
मन को तो मैदा किया,	निरमय आवै जाय ॥ १७ ॥
भक्ति सोइ जो भाव सों,	इक मन चित को राख ।
सोंच सील सों खेलिये,	मैं तैं दोऊ नाख ॥ १८ ॥

भक्ति गेद चौगान की, भावै कोइ ले जाय ।
 कहै कबिर कछु भेद नहीं, कहा रंक कह राय ॥१९॥
 भक्ति सरव ही ऊपरै, भागिन पावै सोय ।
 कहै पुकारै संत जन, सत सुमिरत सब कोय ॥२०॥
 भक्ति विनावै नाम विन, भेष विना ये होय ।
 भक्ति भेष बहु अन्तरा, जानै बिरला कोय ॥२१॥
 कबीर गुरु की भक्ति करु, तज विषया रस चौज ।
 बार बार नहि पाइये, मनुष जनम की मौज ॥२२॥
 कबीर गुरु की भक्ति विन, धिक् जीवन संसार ।
 धूवा का धौराहरा, विनसत लगे न बार ॥२३॥
 कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास ।
 मन मनसा माँजै नहीं, होन चाहत है दास ॥२४॥
 कबीर गुरु की भक्ति से, संसै हारा धोय ।
 भक्ति विना जो दिन गया, सो दिन सालै मोय ॥२५॥
 जब लग नाता जाति का, तब लग भक्ति न होय ।
 नाता तोड़ै गुरु भजै, भक्त कहावे सोय ॥२६॥
 छिपा खेत भल जोतिये, सुमरिन बीज जपाय ।
 खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहि जाय ॥२७॥

२२. चौज-चाह, इच्छा । मौज-आनन्द । २३. धौराहरा-मीनार, स्तूप ।

१. पा० भीसागर भागे नहीं, सोच विचारो माय । २. त्रिया ।

जल ज्यों प्यारा माछरी,
 माता प्यारा बालका,
 प्रेम बिना जो भक्ति है,
 उदर भरन के कारनै,
 भाग बिना नहि पाइये,
 बिना प्रेम नहि भक्ति कह्यु,
 जहाँ भक्ति तहाँ प्रेम नहि,
 नाम भक्ति जो प्रेम सों,
 भाव बिना नहि भक्ति जग,
 भक्ति भाव एक रूप है,
 गुरु भक्ती अति कठिन है,
 बिना सांच पहुँचै नहीं,
 कामी क्रोधी लालची,
 भक्ति करै कोइ सुरमा,
 जाति वरन कुल खोय के,
 कहै कविर सतगुरु मिलै,
 जब लग भक्ति सकाम है,
 कहै कविर वह क्यों मिलै,

लोभी प्यारा दाम ।
 भक्ति प्यारी राम ॥२८॥
 सो निज दंभ विचार ।
 जनम गुंवायो सार ॥२९॥
 प्रेम प्रीति का भक्त ।
 भक्त भयो सब जक्त ॥३०॥
 वरनाश्रम तहाँ नाँहि ।
 सो दुरलभ जग मौहि ॥३१॥
 भक्ति बिना नहि भाव ।
 दोऊ एक सुभाव ॥३२॥
 ज्यों खांडे को धार ।
 महा कठिन व्यवहार ॥३३॥
 इनसे भक्ति न होय ।
 जाति वरन कुल खोय ॥३४॥
 भक्ति करै चित लाय ।
 आवागवन नसाय ॥३५॥
 तबलग निष्फल सेव ।
 निहकामी निज देव ॥३६॥

३१. भक्ति के लिये किसी वेप के बनाने की आवश्यकता नहीं है ।
 और न किसी वर्ण और आश्रम की है । भाव यह है कि सब वर्ण
 और आश्रम के तथा बिना वेप बनाये भी भक्ति हो सकती है ।

जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज ।
 सर औसर समझे नहीं, पेट भरन सों काज ॥३७॥
 मन की मनसा मिटि गई, दुरमति भइ सब दूर ।
 जन मन प्यारा राम का, नगर वसै भरपूर ॥३८॥
 मेवासा मोहै किया, दुरिजन काढे दूर ।
 राज पियारे राम का, नगर वसै भरपूर ॥३९॥
 आरत है गुरु भक्ति करु, सब कारज सिध होय ।
 करम जाल भौजाल में, भक्त फसी नहि कोय ॥४०॥
 आरत सों गुरुभक्ति करु, सब सिध कारज होय ।
 कृपा मांग्या राख है, सदा न फवसी कोय ॥४१॥
 सब सों कहं पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख ।
 भक्ति ठानि सबै गई, बहुरि न काछै भेष ॥४२॥
 देखा देखी भक्ति का, कबहु न चढ़सी रंग ।
 विपति पढ़ै यौ छांडसी, केचुली तजत भुजंग ॥४३॥
 देखा देखी पकड़िया, गई छिनक में छट ।
 कोइ विरला जन बाहुरै, जाकी गहरी मूढ ॥४४॥

३७. भक्ति में आई हुई अनेक बाधाओं के कारण भक्त सदा मृत्यु के मुख में ही रहता है ।

३८. मेवासा-समता । मोहै किया-दवा लिया । ४०. आरत है-
 पीडित होकर, दुःखी होकर । ४१. राखि-वरेतन । फवसी शोभा देगा ।
 ४२. बहुरि न काछै भेष-फिर नाना शरीरों में आना नहीं होगा ।
 ४४. बाहुरै-लोट आता है ।

तोटे में भक्ति करै, ताका नाम सपूत ।
 मायाधारी मसखरै, केते गये अऊत ॥४५॥
 ज्ञान संपूरन ना भिदा, हिरदा नाहि जुड़ाय ।
 देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥४६॥
 खेत विगायों खरतुआ, सभा विगारी कूर ।
 भक्ति विगारी लाकची, ज्यों केसर में धूर ॥४७॥
 तिमिर गया रवि देखते, कुमति गई गुरुज्ञान ।
 सुमति गई अति लोभसे, भक्ति गई अभिमान ॥४८॥
 निर्विषी की भक्ति है, निर्मोही को ज्ञान ।
 निरदुंदी की मुक्ति है, निर्लोभी निरवान ॥४९॥
 विषय त्याग वैराग है, समता कहिये ज्ञान ।
 सुखदाई सब जीव सों, यही भक्ति परमान ॥५०॥
 विषय त्याग वैराग रत, समता दिये समाय ।
 मित्र सहु एकौ नहीं, मन में राम वसय ॥५१॥
 जब लगि आसा देह की, तब लगि भक्ति न होय ।
 आसा त्यागी हरि भजै, भक्त कहावे सोय ॥५२॥
 चार चिन्ह हरि भक्ति के, प्रगट दिखाई देत ।
 दया धर्म आधीनता, परदुख को हरि लेत ॥५३॥

४५. अऊत—निर्वश । ४७. खरतुआ—एक प्रकार का घास जो
 चढ़कर खेत को नष्ट कर देता है ।

और कर्म सब कर्म है,	भक्ति कर्म निहकर्म ।
कहैं कवीर पुकारि के,	भक्ति करो तजि मर्म ॥५४॥
भक्ति भक्ति सब कोइ कहैं,	भक्ति न आई काज ।
जिहि को कियो मरोसवा,	तिहि ते आई गाज ॥५५॥
इन्द्र राज सुख भोगकर,	फिर मौसागर माँहि ।
यह सिरगुन की भक्ति है,	निर्भय कबहुँ नाँहि ॥५६॥
भक्त आप भगवान है,	जानत नाहि अपान ।
सीस नवावै साधु कूँ,	बूझि करै अभिमान ॥५७॥
सत्त भक्ति तरवार है,	बांधे विरळा कोय ।
कोइ एक बांधे मूरमा,	तन मन डारै खोय ॥५८॥
भक्ति महल बहु ऊँच है,	दूर हि ते दरसाय ।
जो कोइ जन भक्ति करै,	सोमा वरनि न जाय ॥५९॥
भक्तन की यह रीत है,	बाँधे करै जो माव ।
परमारथ के कारनै,	या तन रहो कि जाव ॥६०॥
भक्ति भक्ति बहु कठिन है,	रती न चाले खोट ।
निराधार का खेल है,	अथर धार की चोट ॥६१॥

५५. गाज=गर्जना, फटकार ।

५७. उच्चर्यगलों के हृदय में अपनी उच्चता का ऐसा अहकार रहता है कि वे बिना जाति पूछे किसी भक्त (साधु) को प्रणाम तक नहीं करते, यह उनकी धारणा नितान्त ही अनुपयुक्त है, क्योंकि भक्त में और भगवान में किसी प्रकार का भेद नहीं होना । इस कारण प्रणाम करते समय साधु की जाति पूछना अत्यन्त ही अनुचित है ।

भक्ति निसैनी मुक्ति फी,
नीचै बाधिन लुकि रही,
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै,
पूरन भक्ती जब मिलै,
सतगुरु की किरपा विना,
मनसा वाचा कर्मना,
दुख खंडन भय भेटना,
वा घर राचे साधरी,
भक्ति बीज है प्रेम का,
कहै कविर बोया बना,
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै,
एक भक्ति तो अजब है,
भक्त उलटि पीछै फिरै,
परतछ दीसै जीवताँ,
दया गरीबी दीनता,
ये लच्छन हैं भक्ति के,
सल्लिख भक्त कहूं ना तरै,
सतगुरु सैं सनमुख नही,

संत चढे सब आय ।
कुचल पढे कुं खाय ॥६२॥
भक्ति न जानै भैव ।
कृपा करै गुरुदेव ॥६३॥
सत की भक्ति न होय ।
सुनि लीजो सब कोय ॥६४॥
भक्ति मुक्ति विसराम ।
यही भक्ति को नाम ॥६५॥
परगट पृथ्वी माँहि ।
निपजै कोइक ठाँहि ॥६६॥
भक्ति भक्ति में फेर ।
इक है दमड़ी सेर ॥६७॥
संत धरै नहि पाँव ।
सुआ माँहिला भाव ॥६८॥
सुमता सील करार ।
कहै कबीर विचार ॥६९॥
जावै नरक अघोर ।
धर्मराय के चोर ॥७०॥

६२. भक्ति की निसैनी को दृढ़ता से पकड़कर घटनेवाले सब सत जन, परम पद के महल में पहुँच जाते हैं । और जो इस निसैनी से गिर पड़ते हैं उनको माया बाधिनी खा लेती है । ६९. करार दृढ़ता ।

संत सुहागी सुरमा, सदै ऊठे जाग ।
 सलिल सद्ग मानै नहीं, जरि वरि लागे आग ॥७१॥
 सतगुरु सद्ग उथापही, अपनी महिमा लाय ।
 कहैं कविर वा जीव कुं, काळ घसीटै जाय ॥७२॥
 सांच सद्ग खाली करै, आपन होय सयान ।
 सो जीव मनमुखी भये, कलियुग के व्रतपान ॥७३॥

सुमिरन को अंग ।

नाम रतन धन पाय कर, गांठी बांध न खोळ ।
 नहि पाटन नहि पारखी, नहि गाढ़क नहि मोळ । १ ।
 नाम रतन धन संत पहुँ, खान खुली घट माँहि ।
 संत मँत ही देत हैं, गाढ़क कोई नाँहि ॥ २ ॥
 नाम नाम सब को (इ) कहे, नाम न चीन्है कोय ।
 नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥ ३ ॥
 नाम विना बेकाम है, छप्पन भोग विछास ।
 क्या इन्द्रासन बैठना, क्या बैकुंठ निवास ॥ ४ ॥
 नाम रतन सो पाइहैं, ज्ञान दृष्टि जेहि होय ।
 ज्ञान विना नहि पावई, कोटि करै जो कोय ॥ ५ ॥

नाम जो रती एक है,	पाप जु रती हजार ।
आध रती घट संचरै,	जारि करै सब छार ॥ ६ ॥
नाम जपत कुप्री भला,	चुड़ चुड़ परै जु चाम ।
कंचन देह किस कामको,	जा मुख नहीं नाम ॥ ७ ॥
नाम जपत कन्या भली,	साकुट भला न पूत ।
छेरी के गल गल थना,	जामे दूध न मूत ॥ ८ ॥
नाम जपत दरिद्री भला,	टूटी घर की छानि ।
कचन मंदिर जारि दे,	जहाँ न सतगुरु नाम ॥ ९ ॥
नाम लिया जिन सब लिया,	सब साखन को भेद ।
बिना नाम नरके आये,	पढ़ि गुनि चारों वेद ॥ १० ॥
नाम पियू का छोड़ि के,	करै आन का जाप ।
बेस्या करा पूत ज्यों,	कहै कौन को वाप ॥ ११ ॥
आदि नाम धीरा अहै,	जीव सकल ल्यौ बूझ ।
अमरावै सत लोक ले,	जम नहि पावै सूझ ॥ १२ ॥
आदि नाम पारस अहै,	मन है मैला लोह ।
परसत ही कंचन भया,	छटा बंधन मोह ॥ १३ ॥
आदिनाम निज सार है,	बूझि लेहु सो ठंस ।
जिन जान्यो निज नामको,	अपर भयो सो बंस ॥ १४ ॥
आदि नाम निज मूल है,	और भंत्र सब डार ।
कहै कविर निज नाम बिनु,	बूझि मूवा संसार ॥ १५ ॥

१. पा० भक्ति न सारगपानि । २. पा० सफल वेद का भेद ।

३. पा० पडा । ४. पा० पढ़ता ।

कोटि नाम संसार में, ताते मुक्ति न होय ।
 आदि नाम जो गुप्त अप, धिरला जाने कोय ॥ १६ ॥
 सत्त नाम निज औपधि, कोटिक कटै विकार ।
 विष बारी धिरकत रहै, काया कंचन सार ॥ १७ ॥
 यह औपधि अंग ही लगि, अनेक उधरी देह ।
 कोव फेर कूपथ करै, नहि तो औपधि येह ॥ १८ ॥
 सत्त नाम निज औपधि, सतगुरु दर्ह बताय ।
 औपधि खाय रु पथ रहै, ताकी वेदन जाय ॥ १९ ॥
 सतनाम विश्वास, करम मरम सब परिहरै ।
 सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै ॥ २० ॥
 रामनाम को सुमिरतां, उधरे पतित अनेक ।
 कहैं कविर नहि छाड़िये, रामनाम की टेक ॥ २१ ॥
 रामनाम को सुमिरतां, हँसि कर भावै खीझ ।
 उलटा सुलटा नीपजै, ज्यों खेतनमें बीज ॥ २२ ॥
 रामनाम जाना नहीं, लागी मोटी खोर ।
 काया हांडी काठकी, ना वह चढ़ै बहोर ॥ २३ ॥

१७. कंचनसार-कुंदन, जो अपने शरीर में विषयवादी की अक्षरीली हवा नहीं लगाने देता, उसका शरीर कुंदन के समान निर्मल रहता है ।

१८. कोट फेर-.....विषयभोग का कुपथ्य संसार के रोगों को बढ़ा देता है, परन्तु औपधी तो यही सत्यनाम है । १९. वेदन=इ ख ।

ॐकार निश्चै भया, सो कर्ता मति जान ।
 साँचा सद्ध कवीर का, परदे माँहि पिछान ॥२४॥
 जो जन होइ है जौहरि, रतन लेहि बिलगाय ।
 सोहँग सोहँग जपि मुआ, मिथ्या जनम गँगाय ॥२५॥
 सब हि रसायन हप करि, नहीं नाम सम कोय ।
 रचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥२६॥
 जबहि नाम हिरदै धरा, भया पापका नास ।
 मानो चिनगी आगकी, परी पुराने घास ॥ २७ ॥
 कोई न जम सँ वांचिया, नाम बिना धरि खाय ।
 जे जन विरही नामने, ताको देखि डराय ॥ २८ ॥
 पूंजि मेरी नाम है, जाते सदा निहाल ।
 कवीर गरजे पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥ २९ ॥
 कवीर हमरे नाम बल, सात द्वीप नव खंड ।
 जम हरपै सब भय करै, गाजि रहा ब्रह्मण्ड ॥ ३० ॥
 कवीर हरिके नाम में, मुरति रहै करतार ।
 ता मुखसँ मोती झरे, हीरा अनैत अपार ॥ ३१ ॥
 कवीर हरिके नाममें, बात चलवै और ।
 तिस अपराधी जीवको, तीन लोक कित ठौर ॥३२॥

२४ परदे माह शब्दी (शब्द करनेवाला) चेतन पुरुष सत्य है । और ॐकार आदिक सब असत्य है यह वार्ता परदे की है ।

२६. रसायन—धातुमारण की विधि । रचक—थोड़ीसी ।

१. पा० नहि ।

कबीर सब जग निरघना,^{३५} घनवंता नहि कोय ।
 घनवंता सो(इ) जानिये, राम नाम घन होय ॥३३॥
 साहेब नाम सँभारतां, कोटि विघन टरि जाय ।
 राई मार वसंदरा,^{३६} केता काठ जराय ॥३४॥
 कबीर परगट राम कहूँ, छानै राम न गाय ।
 फूसक जोड़ा दूरि करूँ, बहुरि न लागे लाय ॥३५॥
 कबीर आपन राम कहि, औरन राम कहाय ।
 जा मुख राम न नीसरे,^{३७} ता मुख राम कहाय ॥३६॥
 कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै राम ।
 जा मुख राम न नीकसै, सो मुख है किस काम ॥३७॥
 कबीर 'हरि के मिलन की,^{३८} बात सुनी हम दोय ।
 कै कलु 'हार को नाम ले, कै कर ऊँचा होय ॥३८॥
 कबीर राम रिझाय ले, जिह्वा सों कर प्रीत ।
 हरे सागर जनि बीसरे,^{३९} छीलर देखि अनीत ॥३९॥
 कबीर राम रिझाय ले, मुख अमृत गुन गाय ।
 फूट नग ज्यों जोरि मन, संधै संधि मिळाय ॥४०॥
 कबीर नैन झर लाइये, रहत वही निस जाम ।
 पपिहा यों पी पी करै, कवरि मिलेगे राम ॥४१॥

३५. वसंदरा-आम । ३६. छीलर—छिछला तालाव, (अनित्य संसार)

१. पा० गुरु । २. पा० गुरु ।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरंत हरि को नाम ।
 सूखी ऊपर नट विधा, गिरै तो नाहिँ ठाम ॥ ४२ ॥
 लंबा मारग दूर घर, विकट पंथ बहू मार ।
 कहो संत क्यों पाइये, दुर्लभ गुरु दीदार ॥ ४३ ॥
 सून सिखर चढ़ि घर किया, सहज समाधि लगाय ।
 नाम रतन धन तहँ मिला, सतगुरु भये सहाय ॥ ४४ ॥
 घटहि नाम की आस करु, दूजी आस निरास ।
 वसै जु नीर गँभीर में, क्यों वह मरे पियास ॥ ४५ ॥
 जा घट भीत न प्रेम रस, पुनि रसना नहि नाम ।
 ते नर पसु संसार में, उपजि मेरे बेकाम ॥ ४६ ॥
 जैसे माया मन रमै, तैसा राम रमाय ।
 तारा मंडल वेधि के, तव अमरापुर जाय ॥ ४७ ॥
 ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय ।
 तहाँ सुमिर सतनामको, सहज समाधि लगाय ॥ ४८ ॥
 एक नाम को जानि के, भेटु करम का अंक ।
 तबही सो सुचि पाइ है, जब जिव होय निसंक ॥ ४९ ॥
 ' एक नाम को जानि करि, दूजा देइ बहाय ।
 तीरथ ब्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥ ५० ॥

जैसे फनिपति मंत्र सुनि,	राखै फनहि सिकोर ।
तैसे चीरा नाम ते,	काल रहै मुख मोर ॥५१॥
सबको नाम सुनावहु,	जो आवेगो पास ।
सद्व हमारो सत्त है,	दृढ राखो विश्वास ॥५२॥
होय बिनेकी सद्व का,	जाय मिले परिवार ।
नाम गहै सो पहुँचई,	मानो कडा हमार ॥५३॥
सुरति समावे नाम में,	जगसे रहे उदास ।
कहै कविर गुरु चरनमें,	दृढ राखो विश्वास ॥५४॥
अस औसर नहि पाइहो,	धरो नाम कडिहार ।
भौसागर तरि जाव जत्र,	पलक न लागे वार ॥५५॥
आसा सो इक नाम की,	दूजी आस निवार ।
दूजी आसा मारसी,	ज्यों चौपर की सार ॥५६॥
कोटि करम कटि पलकमें,	रेचक आवै नाम ।
जुग अनेक जो पुन्य करु,	नहीं नाम बितु ठाम ॥५७॥
सपने में बरसाई कै,	धोखे निकरै नाम ।
बाके पगकी पानही,	मेरे तन को चाम ॥५८॥
जाकी गांठी नाम है,	ताके है सब सिद्धि ।
कर जोरै ठाही सबै,	अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥५९॥

५१. फनिपति—सर्प ।

१. पा० कडा बडाई तासुकी, जो मुख सुमिरे राम ।

हयवर गयवर सघन घन, छत्र धुजा फहराय ।
 ता सुख तैं भिक्षुक मला, नाम भजत दिन जाय ॥६०॥
 पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव ।
 जब सो पारस भेटि है, तब जिव होसी सीव ॥६१॥
 पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार ।
 पारस पाया पुरुष का, परखि परखि टकसार ॥६२॥
 सुख के पाये सिल परै, नाम हृदे से जाय ।
 बलिहारी वा दुख की, पल पल नाम रटाय ॥६३॥
 लेने को सतनाम है, देने को अन्न दान ।
 तरने को आधीनता, बूडन को अभिमान ॥६४॥
 लूटि सकै तो लूटि ले, राम नाम की लूट ।
 फिर पाछे पछिताहुगे, मान जाहिगे छूट ॥६५॥
 लूटि सकै तो लूटि ले, रामनाम की लूट ।
 नाम जु निरगुन को गहौ, नातर जैहो सूट ॥६६॥
 कहैं कविर तूं लूटि ले, रामनाम भंडार ।
 काल कंठ को जब गहे, रोके दसहं द्वार ॥६७॥
 कविर निर्भय नाम जपु, जब लग दीवे बाति ।
 तेल घटे बाती बुझै, सोचोगे दिनराति ॥६८॥
 कवीर सूना क्या करै, जागी जपो मुरार ।
 एक दिना है सोचना, लंघे पाँव पसार ॥६९॥

कबीर सूता क्या करै, बठिन मनो भगवान ।
 जम धर जब ले जायंगे, पढा रहेगा म्यान ॥७०॥
 कबीर सूता क्या करै, गुन सतगुरु का गाय ।
 तैरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदे का खाय ॥७१॥
 कबीर सूता क्या करै, सूने होय अकाज ।
 ब्रह्मा को आसन दिग्यो, सुनी कालकी गाज ॥७२॥
 कबीर सूता क्या करै, ऊठि न रोवो दुख ।
 जाका वासा गोर में, सो क्यों सोये सुख ॥७३॥
 कबीर सूता क्या करै, जागन की कर चौप ।
 ये दम हीरा लाल है, गिन गिन गुरु को सौप ॥७४॥
 कबीर मूता क्या करै, काहेन देखै जागि ।
 जाके संग तें बीछुरा, ताहि के संग लागि ॥७५॥
 अपने पहरे जागिये, ना परि रहिये सोय ।
 ना जानौ छिन एकमें, किसका पहरा होय ॥७६॥
 निंद निसानी मीच की, ऊहु कबीरा जाग ।
 और रसायन छांदि के, नाम रसायन लाग ॥७७॥
 सोया सो निष्फल गया, जागा सो फल लेहि ।
 साहिब इक न राखसी, जब मागे तब देहि ॥७८॥

१। केसव कहि कहि कूकिये, ना सोड्ये असरार ।
 रात दिवस के कूकते, कबहुँक लगे पुकार ॥७९॥
 कविर क्षुधा है कूकरी, २। करत भजन में मंग ।
 याकूँ दुकड़ा डारिके, ३। सुमिरन कर सुरंग ॥८०॥
 ४। गिरही का दुकड़ा बुरा, दो दो आंगुल दांत ।
 भजन करै तो ऊबरे, नातर काढै आंत ॥८१॥
 बाहिर क्या दिखलाइये, अन्तर जपिये नाम ।
 कहा मढोला खलक सों, पर्यो धनी सों काम ॥८२॥
 गोविंद के गुन गावता, कबहु न कीजै लाज ।
 यह पद्धति आगे मुक्ति, एक पंथ दो काज ॥८३॥
 गुन गाये गुनना कटै, रटै न नाम वियोग ।
 अहिनिसि गुरु ध्यायो नहीं, (क्यों) पावै दुरलभ योग ॥८४॥

७९. असरार—बेखबर ।

८१. गृहस्थों का अन्न खाकर जो भजन नहीं करते उनका पाप कर्म घेर लेते हैं और वे वे मौत मारे जाते हैं ।

८३. पद्धति—मार्ग । संकोच त्यागकर साहब के गुन गाने से लोक में शिक्षा का मार्ग प्रचलित होता है । और आगे के लिये मुक्ति का द्वार खुलता है । यही एक पंथ है और दो काज है ।

८४. गुनना—चौरासी का चक्र । हरिगुण के गाने से संसार-भ्रमण मिट जाता है । और बार२ रटने से विस्मरण नहीं होता ।

१. पा० पिट पिउ । २. पा० कूकते । ३. पा० होय रहो निःसंक
 ४. पा० संसारी का दुकड़ा ।

सतगुरु का उपदेस,	सतनाम निज सार है ।
यह निज मुक्ति संदेस,	सुनो संत सत भावसे ॥८५॥
क्यों छूटे जम जाल,	घहु बंधन जिव बांधिया ।
काटे दीन दयाल,	करम फंद एक नामसे ॥८६॥
काटहु जमके फंद,	जेहि फंदै जग फंदिया ।
कटे तो होय निसंक,	नाम खडग सतगुरु दिया ॥८७॥
तजै कागको देह,	हंस दसा की सुरति पर ।
मुक्ति संदेसा यह	सतनाम परमान अस ॥८८॥
सुमिरन पारग महजका,	सतगुरु दिया बताय ।
साँस साँस सुमिरन करु,	इक दिन मिलसी आय ॥८९॥
सुमिरन से सुख होत है,	सुमिरन से दुख जाय ।
कहै कविर सुमिरन किये,	सोई माँहि सपाय ॥९०॥
सुमिरन की सुधि यों करो,	जैसे कामी काम ।
एक पलक विसरै नहीं,	निस दिन आठौ जाय ॥९१॥
सुमिरन की सुधि यों करो,	ज्यौ गागर पनिहारि ।
हालै डोलै सुरति में,	कहै कबीर विचारि ॥९२॥
सुमिरन की सुधि यों करो,	जैसे कामी काम ।
कहै कबीर पुकारि के,	तब मगटै निज नाम ॥९३॥
सुमिरन की सुधि यों करो,	ज्यों सुरभी सुत माँहि ।
कहै कविर चारा चरत,	विसरत कबहुँ नाँहि ॥९४॥

सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल ।
 कहैं कविर विसरै नहीं, पल पल लेत सँभाल ॥९५॥
 सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे नाद कुरंग ।
 कहैं कविर विसरै नहीं, भान तजै तिहि संग ॥९६॥
 सुमिरन की सुधि या करो, ज्यों सूई में डोर ।
 कहैं कविर छूटे नहीं, चलै ओर की ओर ॥९७॥
 सुमिरन सों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग ।
 कविर विसारे आपको, होय जाय तिहि रंग ॥९८॥
 सुमिरन सो मन लाइये, जैसे दीप पतंग ।
 भान तजै छिन एक में, जरत न मोरै अंग ॥९९॥
 सुमिरन सों मन लाइये, जैसे पानी मीन ।
 भान तजै पल बीछुरे, दास कविर कहि दीन ॥१००॥
 सुमिरन सों मन जब लागै, ज्ञानांकुस दे सीस ।
 कहैं कविर डोळै नहीं, निश्चै विस्वा धीस ॥१०१॥
 सुमिरन मन लागै नहीं, विपहि ढलाहल खाय ।
 कबीर हटका ना रहै, करि करिथका उपाय ॥१०२॥
 सुमिरन माँहि लगाय दे, सुरति आपनी सोय ।
 कहैं कविर संसार गुन, तुझै न व्यापै कोय ॥१०३॥
 सुमिरन सुरति लगाय के, मुख ते कछु न बोल ।
 बाहर के पट देय के, अंतर के पट खोल ॥१०४॥

९६- कुरंग हरिण । १०४- बाहर के पट-दोनों नेत्र । अंतर के पट-हृदय की दृष्टि ।

सुमिरन तू घट में करै, घट ही में करतार ।
 घट ही भीतर पाइये, सुरति सख भंडार ॥१०५॥
 राजा राना रात्र रँक, बड़ो जु सुमिरै नाम ।
 कहै कविर सब सों बड़ा, जो सुमिरै निहकाम ॥१०६॥
 सहकामो सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम ।
 निहकामो सुमिरन करै, पावै अविचल राम ॥१०७॥
 जप तप संजम साधना, सब कछु सुमिरन माँहि ।
 कबीर जाने भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाँहि ॥१०८॥
 थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय ।
 हरदो लगै न फिस्करी, चोखा ही रंग होय ॥१०९॥
 ज्ञान कषे बकि बकि मरै, काहे करै उपाय ।
 सतगुरु ने तो यों कहा, सुमिरन करो बनाय ॥११०॥
 कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल ।
 आदि अंत मधि सोधिया, दूना देखा काल ॥१११॥
 कबीर हरि हरि सुमिरि ले, मान जाहिगे छूट ।
 घर के प्यारे आदमी, चलते लेंगे लूट ॥११२॥
 कबीर चित चंचल भया, चहुँदिस लागी लाय ।
 गुरु सुमिरन हाथे घडा, लीजे वेगि बुझाय ॥११३॥
 कबीर मेरी सुमिरनी, रसना ऊपर राम ।
 आदि जुगादि भक्ति है, सबका निज विहराम ॥११४॥

कबीर राम रिझाय ले,	जिभ्या के रस स्वाद ।
और स्वाद रस त्याग दे,	राम नाम के स्वाद ॥११५॥
कबीर मुख से राम कहु,	मन हि राम को ध्यान ।
रामक सुमिरन ध्यान निव,	यही भक्ति यहि ज्ञान ॥११६॥
राम नाम गुन गावने,	तोहि न आवै लाज ।
जो कोइ लाजै राम रामसे,	ताका तन बेकाज ॥११७॥
जीना थोड़ा ही भला,	हरि का सुमिरन होय ।
लाख बरस का जीवना,	लेखै धरै न कोय ॥११८॥
निज सुख आत्म राम है,	दूजा दुःख अपार ।
मनसा वाचा करमना,	कबीर सुमिरन सार ॥११९॥
जो बोलो तो राम कहु,	अन्त कहूँ मति जाय ।
कहै कविर निसदिन कहै,	सुमिरन सुरति लगाय ॥१२०॥
नर नारी सब नरक है,	जब लगि देह सकाम ।
कहै कविर सो पीव को,	जो सुमिरै निहकाम ॥१२१॥
दुखमें सुमिरन सब करै,	सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै,	दुख काहे को होय ॥१२२॥
सुख में सुमिरन ना किया,	दुख में कीया याद ।
कहै कविर ता दासकी,	कौन सुनै फारियाद ॥१२३॥
साइ सुमिर मति ढील कर,	जो सुमिर ते लाइ ।
इहाँ खलक खिदोमत करै,	उहाँ अमरपुर जाइ ॥१२४॥

साँई यौं मति जानियो, प्रीति घटे मम चीव ।
 मरुं तो सुमीरत मरुं, जीयत सुमिरुं नीत ॥१२५॥
 साँई को सुमिरन करै, ताको वंदे देव ।
 यहकी आप उगावही, पाछे लारै सेव ॥१२६॥
 चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास ।
 जो कछु चितवै नाम विनु, सोई कालकी फांस ॥१२७॥
 पांच संगि पिव पिव करै, छठा जो सुमिरै मन ।
 आई सुरति कबीर की, पाया राम रतन ॥१२८॥
 मन जो सुमिरै रामको, राम वसै घट^१ आहि ।
^२अप मन रामहि है रहा, सोस नवाऊँ काहि ॥१२९॥
 तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँयें ।
 बारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँय ॥१३०॥
 तू तू करता तू भया, तुझ में रहा समाय ।
 तुझ माँही मन मिलि रहा, अब कहूँ अनत न जाय ॥१३१॥
 रग रग बोला गमजी, रोम रोम (र)रंकार ।
 सहजे ही धुन होत है, सोई सुमिरन सार ॥१३२॥
 सहजे ही धुन होत है, पल पल घटही माँहि ।
 सुरति सद्ग मेला भया, मुख की हाजत नाँहि ॥१३३॥

१. पा० साँहि । २. पा० राम मोर में राम का, ।

३. पा० अब कहा आये जाय ।

अजपा सुमिरन घट विषे, दीन्हा सिरजन हार ।
 वाही-सों मन लागि रहा, कहैं कधीर विचार ॥१३४॥
 साँस साँस पर नाम ले, दृथा 'साँस मति खोय ।
 'न जानै इस साँस को, आवन होय न होय ॥१३५॥
 सास सुफल सो जानिये, जो सुमिरन में जाय ।
 और साँस यों ही गये, करि करि बहुत उपाय ॥१३६॥
 कहाँ भरोसा देह का, विनसि जाय छिन माँहि ।
 साँस साँस सुमिरन करो, और जतन कछु नाँहि ॥१३७॥
 जाकी पूंजी साँस है, छिन आवै छिन जाय ।
 ताको ऐमा चाहिए, रहे नाम लौ लाय ॥१३८॥
 कहता हूँ कहि जात हूँ, कहूँ बजाये ढोल ।
 स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥१३९॥
 ऐसे महुँगे मोलका, एक साँस जो जाय ।
 चौदह लोक न पटतरै, काहे धूर मिलाय ॥१४०॥
 माला साँसउ साँस की, 'फेरै को (इ) निज दास ।
 चौरासी भरमै नहीं, कटे 'करम की फाँस ॥१४१॥
 माला फेरत 'मन खुशी, ताते कछु न होय ।
 मन माला के फेरते, घट उजियारो होय ॥१४२॥

माला फेरत लुग गया,	मिटा न मन का फेर ।
करका मनका डारिं दे,	मन का मनका फेर ॥१४३॥
जे राते सतनाम सों,	ते तन रक्त न होय ।
रति इक रक्त न नीकसे,	जो तन चीरै कोय ॥१४४॥
माला तो करमें फिरै,	जीम फिरै मुख मोहि ।
मनवा तो देहु दिस फिरै,	यह तो सुमिरन नाँहि ॥१४५॥
माला फेरै न हरि भजूँ,	मुखसे कहूँ न राम ।
मेरा हारे मोको भजै,	तब पाऊँ विसराम ॥१४६॥
माला मोसे लहि पड़ी,	का फेरत है मोहि ।
मन की माला फेरि ले,	गुरु से मेळा होय ॥१४७॥
माला फेरै कह भयो,	छिरदा गाँठि न खोय ।
गुरु चरनन चित राचिये,	तो अमरापुर जोय ॥१४८॥
कवीर माला काठकी,	बहुत जतनका फेर ।
माला साँस उमौंस की,	जामें गाँठ न मेर ॥१४९॥
क्रिया करै अंगुरि गिनै,	मन धावै चहुँ ओर ।
जिहि फेरै साँई मिलै,	सो भय काठ कठोर ॥१५०॥
तन थिर मन थिर वचन थिर,	सुरति निरति थिर होय ।
कहै कविर उस पलकको,	कल्प न पावै कोय ॥१५१॥
जाय मरै अजया मरै,	अनदद भी मरि जाय ।
सुरति समानी सद्धमें,	ताहि काल नहि खाय ॥१५२॥

१ बिना साँच सुमिरन नहीं, (बिन) भेदी भाक्ति न सोय ।
 पारस २ में परदा रहा, (कस) लोहा कंचन होय ॥१५३॥
 हिरदै सुमिरनि नामकी, मेरा मन मसगूळ ।
 छवि लागै निरखत रहूँ, मिटि गय संसै सुल ॥१५४॥
 देखा देखी सब कहै, भोर भये ३ हरि नाम ।
 अरध रात को (इ) जन कहै, खाना जाद गुलाम ॥१५५॥
 नाम रटत अस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन ।
 सुरति सब्द एकै भया, जल ही हैगा मीन ॥१५६॥
 कहता हूँ कहि जात हूँ, सुनता है सब कोय ।
 सुमिरन सों भल होयगा, नातर भला न होय ॥१५७॥
 कबीर माला काठकी, पहिरी मुगद डुलाय ।
 सुमिरन की सुधि है नहीं, (ज्यौँ) डीगर बाँधी गाय ॥१५८॥
 नाम जेपे अनुराग से, सब दुख ४ डारै धोय ।
 विश्वासे तो गुरु मिले, लोहा कंचन होय ॥१५९॥
 सब मंत्रन का बीज है, सत्तनाम ततसार ।
 जो को(इ) जन हिरदै धरे, सो जन उतरै पार ॥१६०॥

१५४. मसगूल-लपलीन । १५५. खानाजादगुलाम-बरका दास ।

१५८. मुगद-मूख ।

१. पा. सुद्धि बिना सुमिरन नहीं, भाव बिनु भाक्ति न होय ।

२ पा० बिच । ३ पा. ते राम । ४ पा. डाले ।

जब जागै तब नाम जप,
 ऊठत बैठत आत्मा,
 सुमिरन ऐसो कीजिये,
 सुमिरन ऐसो कीजिये,
 ओठ कंठ हाले नही,
 गुप्त हि सुमिरन जो लखे,
 अंतर हरि हरि होत है,
 सहजे धुन लागी रहे,
 अन्तर जपिये रामजी,
 सहजे धुन लागी रहे,
 कवीर मन निश्चल करो,
 निश्चल बिना न पाईये,
 निसदिन एकै पलक ही,
 ताके जनमो जनम के,
 सुरति फसी संसार में,
 सुरति बाधि अस्थिर करो,
 नाम साँच गुरु साँच है,
 तीन साँच जब परगटे,
 मनुवा तो गाफिल भयाँ,
 घनी सहेगा सासना,

सोवत नाम सँमार ।
 चालत नाम चितार ॥१६१॥
 खरे निशाने चोट ।
 हाले जीम न ओठ ॥१६२॥
 जीम न नाम उचार ।
 सोई हंस हमार ॥१६३॥
 मुख की हाजत नाहि ।
 संतन के घट माहि ॥१६४॥
 रोम रोम रकार ।
 येही सुमिरन सार ॥१६५॥
 सच नाम गुन गाय ।
 कोटिक करो उपाय ॥१६६॥
 जो कहु नाम कवीर ।
 जैह पाप शरीर ॥१६७॥
 ताते परिगो दूर ।
 आठों पहर हँसूर ॥१६८॥
 आप साँच जब होय ।
 बिपका अमृत होय ॥१६९॥
 सुमिरन लगै नाहि ।
 जमके देरगह माहि ॥१७०॥

हाथो में माला फिरे, हिरदा डामाडूळ ।
 पग तो पाला में पडा, भागन लागे सुल ॥१७१॥
 वाद विवादा मत करो, करु नित एक विचार ।
 नाम सुमिर चित्त लायके, सब करनीमें सार ॥१७२॥
 वाद करै सो जानिये, निगुरेका वह काम ।
 संतो को पुरसद नहीं, सुमिरन करते नाम ॥१७३॥
 भक्ति भजन हरि नाम है, दूजा दुःख अपार ।
 मनसा वाचा कर्मना, कवीर सुमिरन सार ॥१७४॥
 जागन में सोवन करै, सोवनमें लव लाय ।
 सुरति होरि लागी रहे, तार तूटि नहि जाय ॥१७५॥
 जोइ गहै निज नामको, सोई हंस हमार ।
 कहै कविर धर्मदास सों, उतरे भवजल पार ॥१७६॥
 कवीर सुमिरन अंगको, पाठ करै मन लाय ।
 विद्याहिनि विद्या, अहे, कहै कविर समुदाय ॥१७७॥
 जो कोय सुमिरन अंगको, पाठ करै मन लाय ।
 भक्ति ज्ञान^१ मन ऊपजै, कहै कविर समुदाय ॥१७८॥
 जो कोय सुमिरन अंगको, निसि वासर करै पाठ ।
 कहै कविर सो संत जन, संघै औघट घाट ॥१८९॥

परिचय को अंग

१. तब परिचय तब जानिये, पित्तों हिल मिल होय ।
 पित्त की लाली मुख परै, परगट दीसै सोय ॥ १ ॥
 लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल ।
 लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥ २ ॥
 जिन पावन भुईं बहु फिरै, घूमै देस बिदेस ।
 पिया मिलन जब होइया, आगन मया बिदेस ॥ ३ ॥
 उलटि समानी आप में, प्रगटी जोति अनंत ।
 साहब सेवक एक सँग, खेलें सदा वसंत ॥ ४ ॥
 जोगी हुआ झक लगी, मिटि गई ऐचातान ।
 उलटि समाना आप में, हुआ ब्रह्म समान ॥ ५ ॥
 हम वासी वा देस के, जहां पुरुष की आन ।
 दुख सुख कोइ व्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥ ६ ॥
 हम वासी वा देस के, (जहें) वारह पास वसंत ।
 नीहार झरै महा अपी, भीजत हैं सब संत ॥ ७ ॥

१. पित्त-साहब, मालिक । लाली-काति, प्रसन्नता । २. झक-लग्न ।

३. पा० झक लगी जोगी हुआ ।

हम वासी वा देसके, गगन धरन दुइ नाँहि ।
 भौंरा बैठा पंख विन, देखौ पलकों माँहि ॥८॥
 हम वासी वा देस के, जहाँ ब्रह्म का कूप ।
 अविनामी विनसै नहीं, आवै जाय सरूप ॥९॥
 हम वासी वा देसके, आदि पुरुष का खेल ।
 दीपक देखा गैवका, विन वाती विन तेल ॥१०॥
 हम वासी वा देस के, वारह मास विलास ।
 प्रेम झरे विगसै कमल, तेजपुंज परकास ॥११॥
 हम वासी वा देस के, जाति वरन कुल नाँहि ।
 सद्ग मिलवा है रहा, देह मिलवा नाँहि ॥१२॥

८. गगनधरन—ब्रह्मांड और पिंड । इस साखी में भ्रचरी मुद्रा का वर्णन किया गया है । जिसमें दृष्टि को उल्ट कर भुकुटी में लगाई जाती है ।

१२. हम उस देश के वासी हैं जहाँ जाति, वर्ण और कुल की मर्यादा नहीं मानी जाती । उस देश का संबन्ध केवल शब्द से होता है, देह से नहीं । इस साखी को लोग बहुधा छयाछूत की रक्षा के प्रणाम में बोला करते हैं । और ऐसा अर्थ करते हैं कि सर्व साधारण से केवल शब्द से मिलो, देह से नहीं । इसका ऐसा अर्थ नितान्त अनुचित है; क्यों कि यह पिन परचे के प्रकरण की है । इसके अतिरिक्त छयाछूत की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं है, प्रत्युत “ पांडत देखहु मन महुँ जानी । कहुघो छूत कदां से उपजी, तबहो छूत तुम मानी ” इत्यादि श्रुत छूत के खंडन के अनेक प्रमाण हैं ।

हम वासी वा देस के,	रूप वरन कछु नाँहि ।
सैन मिलावा है रहा,	शत्रु मिलावा नाँहि ॥१३॥
हम वासी वा देस के,	पिंड ब्रह्मंड कछु नाँहि ।
आपा पर दोइ बीसरा,	सैन मिलावा नाँहि ॥१४॥
हम वासी वा देस के,	गाज रहा ब्रह्मंड ।
अनदद वाजा वाजिया,	अविचल जोति अखंड ॥१५॥
संसै करौ न मैं डरौ,	सब दुख दिये निवार ।
सहज सुन्न में घर किया,	पाया नाम आधार ॥१६॥
बिन पाँवन का पंथ है,	बिन वस्ती का देस ।
बिना देह का पुरुष है,	कहैं कविर संदेस ॥१७॥
नौन गला पानी मिठा,	बहुरि न भरि हैं गौन ।
सुरति सद्र मेला मया,	काल रहा गहि मौन ॥१८॥
टिळ मिल खेलै सद्र सौं,	अन्तर रही न रेख ।
समसै का मत एक है,	क्या पंडित क्या सेख ॥१९॥
अलख लखा कालच लगा,	कहत न आवै बैन ।
निज मन धसा सरूपमें,	सतगुरु दीन्ही सैन ॥२०॥
कहना था सो कहि दिया,	अब कछु कहा न जाय ।
एक रहा दूजा गया,	दरिया लहरि समाय ॥२१॥
जो कोइ समझै सैनमें,	तासों कहिये घाय ।
सैन बैन समझै नहीं,	तासों कहै बलाय ॥२२॥

पिंजर , प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत ।
 संसै लड़ा भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥२३॥
 उनमुनि लागी सुन्न में, निस दिन रहि गलतान ।
 तन मन की कछु सुधि नहीं, पाया पद निरवान ॥२४॥
 उनमुनि चढी अकाम को, गई धरनि से छूट ।
 हंस चला घर आपने, काल रहा सिर कूट ॥२५॥
 उनमुनि सों मन लागिया, गगन हि पहुंचा जाय ।
 चाद विहूना चादना, अलख निरंजन राय ॥२६॥
 १उनमुनि सों मन लागिया, २उन मुनि नहीं बिलंगि ।
 ३लैन बिलंग्या पानिया, पानी नैन बिलंगि ॥ २७ ॥
 पानी ही ते हिम भया, हिम ही गया बिलाय ।
 जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय ॥२८॥
 मेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास ।
 अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥२९॥

२६. विहूना-विना । गगन-गगन गुफा । निरजन-माया से रहित ।

नोट-अप्य मन्त्रों में अलख निरजन को काल पुरुष माना है ।

जैसा कि यह बीजक का वचन है--“ अलख निरजन लखे न काई,
 जेहि बन्धे मन्त्रा सन लेई । ” इत्यादि ।

१. पा० मन लगा उनमुनि मू । २. पा० उनमुनि मतहि बिलंगि ।

३. पा० लैन मिलीयो पानि में ।

सुरति समानी निरति में, अजपा माही जाप ।
 लेख समाना अलख में, आपा माही आप ॥३०॥
 सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार ।
 सुरति निरति परिचय भया, खुल गया सिंधु द्वार ॥३१॥
 गुरु मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप ।
 निसि वासर सुख निधि लहूँ, अन्तर भगटे आप ॥३२॥
 सुचि पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर ॥
 सकल पाप सहजै गया, साहिव मिले हजर ॥३३॥
 तत पाया तन बीसरा, मन धाया धरि ध्यान ।
 तपत मिटी सीतल भया, सुन किया अस्थान ॥३४॥
 कौतुक देखा देह बिना, रविससि बिना उजास ।
 साहिव सेवा माही है, बेपरवाही दास ॥३५॥
 नेव बिहूना देहरा, देह बिहूना देव ।
 कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव ॥३६॥
 देवल मोहि देहुरी, तिल जैसा बिस्तार ।
 माहीं पाती फूल जल, माहीं पूजन द्वार ॥३७॥

३०. जाप अजपा में, सुरति निरति में और लेख अलख में परिणत होने पर आप (मैं) अपने आप (स्वयम्) को पा सकता है ।

३४. सुन-गाया प्रपच से रहित देश । ३६. देहरा—देवमन्दिर ।

३७. देवल-शरीर । देवरी हृदय । पाती-प्रीति । जल स्नेह ।

सिचनहार-प्राण ।

१. पा० साहिव से धरि ध्यान । २. पा० अस्थान । ३. पा० देवली ।

पवन नहीं पानी नहीं, नहि धरनी आकास ।
 तहाँ कबीरा संत जन, साहिव पास खवास ॥३८॥
 अशुवानी तो आइया, ज्ञान विचार विवेक ।
 पीछे हरि भी आयंगे, सारे सौंज समेत ॥३९॥
 पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान
 कहिवे की सोभा नहीं, देखै ही परमान ॥४०॥
 सुरज समाना चांद में, दोउ किया घर एक ।
 मन का चेता तब भया, पुरब जनम का लेख ॥४१॥
 पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास ।
 सुख करि सूती महल में, वानी फूटी वास ॥४२॥
 आया था संसार में, देखन को बहु रूप ।
 कहै कबीरा संत हो, परि गया नजर अनूप ॥४३॥
 पाया था सो गहि रहा, रसना लगी स्वाद ।
 रतन निराळा पाइया, जगत ठोला वाद ॥४४॥
 हिम से पानी है गया, पानी हुआ माप ।
 जो पहिले था सो भया, प्रगटा आपहि आप ॥४५॥

४०. उनमान — अंदाज । ४१. इस साखी में “चांद सुरज एकै घर लायो, सुप्रमण मेती पान लगायो” इस वचन के अनुसार प्यालीपयोगी सुगुम्णा का लाना आवश्यक बताया गया है ।

कुछ करनी कुछ करम गति,
देखो माग कबीर का,
जब मैं था तब गुरु नहीं,
कबीर नगरी एक मैं,
मैं जाना मैं और था,
मैं तै दोऊ मिटि गये,
अगम अगोचर गम नहीं,
तहाँ कबीरा रहि रहा,
कबीर तेज अनंत का,
पति संग जागी सुंदरी,
कबीर देखा एक अंग,
तेजपुंज परसा धनी,
कबीर कमल प्रकाशिया,
रैन अंधेरी मिटि गई,
कबीर मन मधुकर भया,
कमल खिल्ला है नीर बिन,
कबीर मोतिन की लड़ी,
चांद मूर की गम नहीं,
कबीर दिल दरिया मिला,
सागर मांहि ढिंढोस्तां,

कुछ पूरव ले लेख ।
लेख से भया अलेख ॥४६॥
अब गुरु हैं मैं नाँहि ।
दो राजा न समझि ॥४७॥
मैं तजि हूँ गय सोय ।
रहे कहन को दाय ॥४८॥
जहां झिलमिली जोत ।
पाप पुन नहि छोट ॥४९॥
मानो सूरज सैन ।
कौतुक देखा नैन ॥५०॥
महिमा कही न जाय ।
नैनोँ रहा समाय ॥५१॥
ऊगा निरमल सूर ।
वाजै अनहद दूर ॥५२॥
करै निरन्तर वास ।
निरखै कोइ निजदास ॥५३॥
हीरोँ का परकास ।
दरसन पाया दास ॥५४॥
पाया फल समरत्य ।
हीरा चढ़ि गया हथ ॥५५॥

कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाँहि ।
 अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाँहि ॥५६॥
 कबीर दिल दरिया मिला, बैठा दरगह आय ।
 जीव ब्रह्म मेला भया, अब कछु कहा न जाय ॥५७॥
 कबीर कंचन भासिया, ब्रह्म वास जहां होय ।
 मन मौंरा तहां लुवधिया, जानेगा जन कोय ॥५८॥
 गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर ।
 चहुं दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ॥५९॥
 गगन मंडल के बीच में, झलकै सत का नूर ।
 निगुरा गम पावै नहीं, पहुँचै गुरुमुख सूर ॥ ६० ॥
 गगन मंडल के बीच में, मंडल पडा इक चीन्हि ।
 कहै कबिर सो पावई, जिहि गुरु परिचै दीन्हि ॥६१॥
 गगन मंडल के बीच में, बिना कलम की छाप ।
 पुरुष एक तहां रपि रहा, नहीं मंत्र नहि जाप ॥६२॥
 गगन मंडल के बीच में, तुरी तत्त इक गाँव ।
 लच्छु निसाना रूप का, परखि दिखाया ठाँव ॥६३॥
 गगन मंडल के बीच में, जहां सोहंगम डोर ।
 सह्य अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोर ॥६४॥
 गरजै गगन अमी चुबै, कदली कपल प्रकास ।
 तहां कबीरा संतजन, सत्तपुरुष के पास ॥६५॥

गरजै गगन अभी चुबै, कदली कमल प्रकास ।
 तहाँ कवीरा वंदगी, कर कोई निजदास ॥६६॥
 दीपक जोषा ज्ञान का, देखा अपरम देव ।
 चार वेद की गम नहीं, तहाँ कवीरा सेव ॥६७॥
 मान सरोवर सुगम जल, हंसा केलि कराय ।
 मुक्ताहल मोती चुगै, अब उड़ि अंत न जाय ॥६८॥
 सुन महल में घर किया, बाजै सह रसाल ।
 रोष रोष दीपक भया, मगटै, दीन दयाल ॥६९॥
 पूरे से परिचय मया, दुख सुख मेला दूर ।
 जम सौ बाकी कटि गई, साईं मिला हजूर ॥७०॥
 सुरति उड़ानी गगन को, चरन विछंबी जाय ।
 सुख पाया साहेब मिला, आनंद उर न समाय ॥७१॥
 जा वन सिंघ न संचरै, पंछी उड़ि नहि जाय ।
 रैन दिवस की गम नहीं, रहा कवीर समाय ॥७२॥
 सीप नहीं, सायर नहीं, स्वाति बुंदमी नाहि ।
 कवीर मोती नीपजै, सुँन सरवर घट मॉहि ॥७३॥

६८. मुक्ताहल मोती—अनवेधे मोती । ७२. वन—अगम पद ।
 सिद्ध-जीवात्मा । पंछी—मन ।

१. पा० अंग । २. पा० सागर ।

काया सिप संसारमें, पानी बुंद सरीर ।
 बिना सीप के मोतिया, मगटे दास कबीर ॥७४॥
 घट में औघट पाइया, औघट भारी घाट ।
 कहैं कबीर परिचय मया, गुरु दिखाई वाट ॥७५॥
 जा कारन में जाय था, सो तो मित्रिया आय ।
 सौई ते^५ सनमुख भया, लगा कबीरा पाय ॥७६॥
 जा कारन में जाय था, सो तो पाया ठौर ।
 सो ही फिर आपन भया, को कहता और ॥७७॥
 जा दिन किरतम ना हता, नहीं हाट नहि वाट ।
 हता कबीरा संत जन, देखा औघट घाट ॥७८॥
 नहीं हाट नहि वाट था, नहीं धरति नहि नीर ।
 असंख जुग परलै गया, तब की कहैं कबीर ॥७९॥
 चांद नहीं सूरज नहीं, हता नहीं ओंकार ।
 तहां कबीरा संतजन, को जानै संसार ॥८०॥
 धरति गगन पवनै नहीं, नहि होते तिथि वार ।
 तब हरि के हरिजन हुते, कहैं कबीर विचार ॥८१॥
 धरति हती नहि पग धरूं, नीर हता नहि न्हाऊं
 माता ते जनम्या नहीं, छीर कहाते खाऊं ॥८२॥
 अगन नहीं जहँ तप करूं, नीर नहि तहँ न्हाऊं ।
 धरती नहीं जहँ पग धरूं, गगन नहि तहँ जाऊं ॥८३॥

पांच तत्त्व गुन तीन के, आगे मुक्ति मुकाम ।
 तहां कवीरा घर किया, गोख दत्त न राम ॥ ८४ ॥
 सुर नर मुनिजन औलिया, ये सब उरली तीर ।
 अलह राम की गम नहीं, तई घर किया कवीर ॥ ८५ ॥
 सुर नर मुनिजन देवता, ब्रह्मा विस्तु महेस ।
 ऊंचा महल कवीर का, पार न पावै सेस ॥ ८६ ॥
 जब दिल मिला दयाल सों, तब कलु अंतर नाँहि ।
 पाछा गलि पानी भया, यों हरिजन हरि माँहि ॥ ८७ ॥
 ममता मेरा क्या करै, प्रेम उवारी पोल ।
 दरसन भया दयाल का, सुल भई सुख सोल ॥ ८८ ॥
 सुन सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव ।
 सदा समुह सुख बिलसिया, बिरला जानै भेव ॥ ८९ ॥
 सुन सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव ।
 सुधा सिंधु सुख बिलसही, बिरला जानै भेव ॥ ९० ॥
 लौन गला पानी मिला, बहुरि न मरि है गून ।
 हरिजन हरि सो मिलि रहा, काल रहा सिर धन ॥ ९१ ॥

८८. पोल—दरजाना । सोल—सहल, सहज । ८९. समुह—सन्मुख ।

९०. सरोवर के किनारों पर बने हुए देवालयों के देवता सरोवर के आनन्द-विहार और शीतलता का अनुभव नहीं कर सकते । उस आनन्द को तो मच्छली ही उठाती है । इसी प्रकार शून्य सरोवर के आनन्दामृत को केवल अम्बासी ही पा सकता है । देवता उस सुख को क्या जाने ।

गुन इन्द्रो सहजे गये, सतगुरु करी सहाय ।
 घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै वलाय ॥९२॥
 जत्र लग पिय परिचय नहीं, कन्या कौरी जान ।
 हथलेवो हूँ सालियो, मुस्किल पाढ़ि पढ़िनान ॥९३॥
 सेजै सूती रग रम्हा, मागा मान गुमान ।
 हथ लेवो हरि सूं जुयो, अखि अमर वरदान ॥९४॥
 पूरे सों परिचय भया, दुख सुख मेला दुर ।
 निरमल कीन्ही आत्मा, ताते सटा हजूर ॥९५॥
 मैं लागा उस एक सों, एक भया सब मौहि ।
 सव मेरा मैं सवनका, तहां दूसरा नाहि ॥९६॥
 भली भई जो भय पड़ी, गई दिसा सब भूल ।
 पाला गलि पानी भया, हलि मिछा उस कूल ॥९७॥
 चितमनि पाई चौदटै, हाड़ी मारत हाथ ।
 मीरां मुझ पर मिहर करि, मिला न काहू साथ ॥९८॥
 वरसि अमृत निपज हिरा, घटा पड़े टकसार ।
 तहां कवीरा पारखी, अनुभव उतरै पार ॥९९॥

९३ हथलेवो हूँ सालियो—पाणिप्रक्ष्ण भी अस्तरने लगता है ।
 ९७ जो भय पड़ी—भो हो गई । पाला—अज्ञानी जीव । पानी—ज्ञानी ।
 टमकूल—मालिका में । ९८ चितमनि—साहन । हड्डी—हिरस । मीरा—
 तद्गुरु । ९९ अमृत—अमी । हिरा—शुद्ध मन ।

मकर तार सों नेहरा,	झलकै अघर विदेह ।
मुरति सोहंगम मिलि रहि,	पल पल जुरै सनेह ॥१००॥
ऐसा अविगति अलख है,	अलख लखा नहि जाय ।
जोति सरूपी राम है,	सब में रह्यौ समाय ॥१०१॥
मिलि गय नीर कबीर सों,	अंतर रही न रेख ।
तीनों मिलि एकै भया,	नीर कबीर अलेख ॥१०२॥
नीर कबीर अलेख मिलि,	सहज निरंतर जोय ।
सच सद्ग ओ मुरति मिलि,	हंस हिरंवर होय ॥१०३॥
कहना था सो कहि दिया,	अब कछु कहना नाहि ।
एक रही दूजी गई,	बैठा दरिया माँहि ॥१०४॥
आया एक हि देस ते,	उतरा एक ही घाट ।
विच में दुधिया हो गई,	हो गये बारह घाट ॥१०५॥
तेजपुंज का देहरा,	तेजपुंज का देव ।
तेजपुंज झिलमिल झरै,	तहां कबीरा सेव ॥१०६॥
खाला नाला हीम जल,	सो फिर पानी होय ।
जो पानी मोती भया,	सो फिर नीर न होय ॥१०७॥
देखो कर्म कबीर का,	कछु पूरवञा लेख ।
जाका महल न मुनि लहै,	किय सो दोस्त अलेख ॥१०८॥
मैं था तब हरि नहि जय,	अब हरि है मैं नाहि ।
सकल अंधेरा मिटि गया,	दीपक देखा माँहि ॥ १०९ ॥

सूरत में मूरत बसै,	मूरत में इक तत्त ।
ता तत तत्व विचारिया,	तत्व तत्व सो तत्त ॥११०॥
फेर पड़ा नहीं अंग में,	नहि इन्द्रियन के माँहि ।
फेर पड़ा कछु बूझ में,	सो निखारै नाँहि ॥१११॥
साहेब पारस रूप है,	लोह रूप संसार ।
पारस सो पारस भया,	परखि भया टकसार ॥११२॥
मोती निपजै सुन्न में,	बिन सायर बिन नीर ।
खोज , करंता पाइये,	सतगुरु कहै कबीर ॥ ११३॥
या मोती कछु ओर है,	वा मोती कछु और ।
या मोती है सद्ग का,	व्यापि रहा सब ठौर ॥११४॥
दरिया माही सीप है,	मोती निपजै माँहि ।
वस्तु ठिकानै " पाइये,	नाले खाले नाँहि ॥११५॥
चौदा भुवन भाजि धरै,	ताहि कियो वैराट ।
कहै कविर गुरु सद्ग सो,	मस्तक डारै काट ॥११६॥
हमकुं स्वामी मति कहो,	हम है गरीब आधार ।
स्वामी कहिये तासु कूं,	तीन लोक विस्तार ॥११७॥
हमकुं बाबा मति कहो,	बाबा है बलियार ।
बाबा है करि बैठसी,	घनी सहेगा मार ॥११८॥
यह पद है जो अगमका,	रन मंग्रामे जूझ ।
समुझे, कूं दरसन दिया,	खोजत मुये अनूझ ॥११९॥

सीतल कोमल दीनता, संतन के आधीन ।
 वासों साहिब यों मिले, ज्यों जल भीतर मीन ॥१२०॥
 कवीर आदू एक है, करन सुनन कूं दोय ।
 जल सें पारा होत है, पारा से जल होय ॥१२१॥
 दिल लागा जु दयाल सों, तब कलु अंतर नाहि ।
 पारा गलि पानी भया, साहिब साधू माहि ॥१२२॥
 ऐसा अविगति रूप है, चीन्है विरला कोय ।
 कहै सुनै देखै नहीं, ताते अचरज मोय ॥१२३॥
 सत्तनाम तिरलोक में, सकल रहा मरपूर ।
 लाजै ज्ञान सरीर का, दिखवै साहिब दूर ॥१२४॥
 कवीर दुख सुख सब गया, गय सो पिंड सरीर ।
 आत्म परमात्म मिलै, दूध धोया नीर ॥१२५॥
 गुरु हाजिर चहुदिसि खड़े, दुनी न जानै मेद ।
 कवि पंडित कूं गम नहीं, थाके वपुरे वेद ॥१२६॥
 जा कारन हम जाय थे, सनमुख मिलिया आय ।
 धन मैली पिव ऊजला, लाग सकी नहि पाय ॥१२७॥
 भीतर मनुषा मानिया, बाहिर कहं न जाय ।
 ज्वाला फेरी जल भया, बूझी जलती लाय ॥१२८॥

१२७. धन-जीरामा ।

१. पा. तन भीतर मन मानिया, बाहिर कहहु न लाग ।

ज्वाला ते फिरि जल भया, बूझी जलती आग ॥

जिन जेता प्रभु पाइया, ताकूं तेता लाभ ।
 ओसे प्यास न भागई, जव लग धसै न आम ॥१२९॥
 अकास बेली अमृत फल, पंखि मुवे सब झूर ।
 सारा जग हि झखि मूआ, फल मीठा पै दूर ॥१३०॥
 तीखी सुरति कबीर की, फोड़ गई ब्रह्मंड ।
 पीव निराळा देखिया, साव दीप नौ खंड ॥ १३१ ॥
 ना मैं छई छापरी, ना मुझ घर नहि गाँव ।
 जो कोइ पूछै मुझसों, ना मुझ जाति न ठाँव ॥१३२॥

प्रेम को अंग

यह तो घर है प्रेमका, खाला का घर नाँहि ।
 सीस उतारै भुँय धरै, तब पैठै घर माँहि ॥ १ ॥
 यह तो घर है प्रेमका, मारग अगम अगाध ।
 सीस काटि पग तर धरै, निकट प्रेमका स्वाद ॥ २ ॥
 यह तो घर है प्रेमका, ऊँचा अधिक इकंत ।
 सीस काटि पग तर धरै, तब पैठै कोइ संत ॥ ३ ॥
 सीस काटि पासंग किया, जीव तेर भरि लीन ।
 जिहि भावै सो आय ले, प्रेम आगु हम कीन ॥ ४ ॥

१२९. आम जल । १३० आकाश—गगनमहल । बेली—सुरत । पंखी—मन ।

१. खाला—मोसी । ४. देह और प्राण की समता के त्याग के बिना कोइ भी प्रेम के आनन्द को नहीं ले सकता ।

सीस उतारै भुँय धरै,	ऊपर राखै पाँव ।
दास कबीरा यों कहै,	ऐसा है तो आव ॥ ५ ॥
प्रेम न बाढी ऊपजै,	प्रेम न हाट विक्राय ।
राजा परजा जो रुचै,	सीस देय ले जाय ॥ ६ ॥
प्रेम पियाला सो पिये,	सीस दच्छिना देय ।
कोभी सीस न दे सकै,	नाम प्रेम का लेय ॥ ७ ॥
प्रेम पियाला भरि पिया,	राचि रखा गुरु ज्ञान ।
दिया नगारा शब्द का,	लाल खडै मैदान ॥ ८ ॥
प्रेम प्रेम सब को (इ) कहै,	प्रेम न चीन्है कोय ।
आठ पहर भीजा रहै,	प्रेम कहावै सोय ॥ ९ ॥
प्रेम प्रेम सब को (इ) कहै,	प्रेम न चीन्है कोय ।
जा मारग साहिब मिलै,	प्रेम कहावै सोय ॥ १० ॥
प्रेम पियारे लालसों,	मन दे कीजै भाव ।
सतगुरु के परसाद से,	भला बना है दाव ॥ ११ ॥
प्रेम विकाता मैं सुना,	माया साटै हाट ।
पूछत विलम न कीजिये,	ततछिन दीनै काट ॥ १२ ॥
प्रेम बनिज नहि करि सकै,	चढै न नाम कि गैल ।
मानुष बेरी खोलरी,	ओढि फिरै ज्यों बैल ॥ १३ ॥
प्रेम बिना धीरज नहीं,	विरह चिना वैराग ।
सतगुरु दिन जाँवै नहीं,	मन मनसा का दाग ॥ १४ ॥

पिया पिया रस जानिये, उतरै नहीं खुमार ।
 नाम अपल पाता रहै, पिये अपीरस सार ॥३५॥
 कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय ।
 सिर सौपै सो पीवसी, नातर पिया न जाय ॥३६॥
 कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक ।
 पाका कलस कुम्हारका, बहुरि न चढसी चाक ॥३७॥
 कबीर तासे प्रीति करु, जो निरवाहे ओर ।
 बने तो विविधि न राचियु, देखत लागै खोर ॥३८॥
 जब मैं था तब गुरु नहो, अब गुरु है मैं नाहि ।
 प्रेम गली अति सांकरि, तामें दो न समौहि ॥३९॥
 आया बबुला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास ।
 तिनका तिनका सें मिला, तिनका तिनका पास ॥४०॥
 अधिक सनेही मालरी, दूजा अल्प सनेह ।
 जवही जलते बीछुरै, तवही त्यागै देह ॥४१॥
 सौ जोजन साजन वसै, मानो हृदय मँझार ।
 कपट सनेही आगनै, जानो समुंदर पार ॥४२॥
 यह तत बह तन एक है, एक मान दुइ गात ।
 अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ॥४३॥

३७. छाक—प्यास । ३८. विविधि—अनेकों से । ४०. बबुला—बबड़ । तिनका—जोयात्मा ।

१. पा० और न पीया जाय । २. पा० ऊठा । ३. पा०. दिल ।

हम तुम्हरो सुमिरन करै, तुम हम चितवौ नाहि ।
 सुमिरन मनकी भीति है, सो मन तुमही माँहि ॥४४॥
 मेरा मन तो वृक्ष सों, तेरा मन कहूँ और ।
 कहैं कविर कैसे, बने, एक चित्त दुइ ठौर ॥४५॥
 ज्यों मेरा मन वृक्ष सों, यों तेरा जो होय ।
 अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै ना कोय ॥४६॥
 भीति जु लागी घुल गई, पैठि गई मन माँहि ।
 रोम रोम पियु पियु करै, मुख की सरधा नाँहि ॥४७॥
 जो जागत सो सपन में, ज्यों घट भीतर साँस ।
 जो जन जाको भावता, सो जन ताके पास ॥४८॥
 भीति ताहि सो कीजिये, (जो) आप समाना होय ।
 कबहुँक जो अवगुन पडै, गुनही लहै समोय ॥४९॥
 नाम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल ।
 कवीर पीवन दुलभ है, माँगै सीस कलाल ॥५०॥
 यह रस यहँगा सो पियै, छाँडि जीव की वान ।
 माथा साटै जो मिलै, तौ भी सस्ता जान ॥५१॥
 सबै रसायन हम किया, प्रेम समान न कोय ।
 रंचक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥५२॥
 अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि ।
 आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिछावै घोरि ॥५३॥
 अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान ।
 वस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहि आवै आन ॥५४॥

साधू सीप समुद्र के,
 तृषा गड़ एक बुंदसे,
 मिलना जगमें कठिन है,
 विछुरा साजन तिहि मिलै,
 जोड़ मिलै सो प्रीति में,
 मनसे मनसा ना मिलै,
 जो दिल दिलही में रहे,
 जो दिल दिल से बाहिरा,
 नैनो की करि कोठरी,
 पलकों की चिक डारिकै,
 जब लगि मरने से डरै,
 'वही दूर है प्रेम घर,
 पिय का मारग कठिन है,
 नाचन निकसी बापुरी,
 मिथ का मारग सुगम है,
 नाचि न जानै बापुरी,
 प्रीति बहुत संसार में,
 'उतम प्रीति सो जानिये,
 गुनवेता औ द्रव्य को,
 कबीर प्रीती (सो) जानिये,

सतगुरु स्वाती बुंद ।
 क्या ले करो समुंद ॥५५॥
 मिलि विछुरौ जनि कोय ।
 जिहि माथै मनि होय ॥५६॥
 और मिलै सब कोय ।
 (तो) देह मिलै क्या होय ॥५७॥
 सो दिल कहूँ नहि जाय ।
 सो दिल कहाँ समाय ॥५८॥
 पुतली पलंग विछाय ।
 पियको लिया रिझाय ॥५९॥
 तब लगि प्रेमी नाहि ।
 समझि लेहु मन माँहि ॥६०॥
 'जैसा खांडा सोय ।
 'घूँघट कैसा होय ॥ ६१ ॥
 तेरा चलन अघेठ ।
 कहै आंगना टेढ़ ॥ ६२ ॥
 नाना विधि की सोय ।
 सतगुरु से जो होय ॥ ६३ ॥
 प्रीति करै सब कोय ।
 इनते न्यारी होय ॥६४॥

कहा भयो तन वीछुरे, दूरि वसै जो वास ।
 नैना ही अंतर पड़ा, मान तुम्हारे पास ॥६५॥
 जो है जाका भावता, जब तब मिलि है आय ।
 तन मन ताको सौपिये, (जो) कबहु न छाडी जाय ॥६६॥
 जल में वसै कमोदिनी, चंदा वसै अकास ।
 जो है जाका भावता, सो ताही के पास ॥६७॥
 तन दिखलावै आपना, कछु न राखै गोय ।
 जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जु होय ॥६८॥
 सही हेत है तासुका, जाको सतगुरु टेक ।
 टेक निवाहै देह भरि, रहे सद्ध मिलि एक ॥६९॥
 पासा पकड़ा प्रेमका, सारी किया सरीर ।
 सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कवीर ॥७०॥
 खेल जु पैडा खिलाडिसों, आनंद बढा अघाय ।
 अब पासा काहु पढौ, प्रेम बँधा जुग जाय ॥७१॥
 आगि आँचि सहना सुगम, सुगम खडग की धार ।
 नेह निवाइन एक रस, महा कठिन व्योहार ॥७२॥
 नेह निवाहै ही बनै, सोचै बनै न आन ।
 तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥७३॥
 राई वातां वीसवा, फिर वीसन का वीस ।
 ऐसा मनुवा जो करै, ताहि मिलै जगदीस ॥७४॥

प्रेम पिछोरी तान के, सुख मंदिर में सोय ।
 घर कबीर को पाय के, कदा मुक्ति को रोय ॥७५॥
 प्रीति पुरानि न होत है, जो उत्तम से लाग ।
 सो वरसां जलमें रहे, पथर न छोड़े आग ॥७६॥
 तुम मति जानो बीछुरे, साजन प्रीति घटाय ।
 वैपारी का ब्याज ज्यूँ, दिन दिन दून बढ़ाय ॥७७॥
 गहरी प्रीति सुजान की, बढ़त बढ़त बढ़ि जाय ।
 ओछी प्रीति अजानकी, घटत घटत घटि जाय ॥७८॥
 कबीर सूरत मित्र की, दिन दिन चढ़ रहे चित्त ।
 तन न मिलै तो क्या भया, मन तो मिलता नित्त ॥७९॥
 प्रीति जु तासों कीजिये, जाकी जात मजीठ ।
 प्रीति कुसुंन न कीजिये, भीड़ पड़े दे पीठ ॥८०॥
 सजन सनेही बहुत हैं, सुखमें मिले अनेक ।
 विपति पड़े दुख बाँटिये, सो लाखन में एक ॥८१॥
 बलिहारी उस फूलकी, जामें दूनी वास ।
 अपना तन मन सौंपके, भया पुराना घास ॥८२॥
 नेह निवाहन कठिन है, सबसे नीमत नाहि ।
 चढ़वो मोम तुरंग पर, चलवो पावक माँहि ॥८३॥
 प्रेम प्रीतिसे जो मिले, ताको मिलिये धाय ।
 कपट राखि के जो मिले, तासैं मिले बलाय ॥८४॥

प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, दूर देस मति जाय ।
 हम तुम एक नगर वसे, (जो)भीख मांग नित खाय ॥८५॥
 एक दृष्टि दो नैन हैं, * एक सद्व दो कान ।
 हम तुम एके पदतारा, दो घट में एक पान ॥८६॥
 पिया तो पिव पिव करे, निस दिन प्रेम पियास ।
 पंछी विरुद न छांढही, क्यों छांढ निजदास ॥८७॥
 आठ पहर चौसठ घड़ी, लागि रहे अनुराग ।
 हिरदै पलक न बीसरे, तव सौँचा वैराग ॥८८॥
 जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।
 बिन अनुराग न पावई, कोटि करै जो कोय ॥८९॥
 प्रेम पंथमें पग धरै, दैत न सीस डराय ।
 सपने मोह व्यापे नहि, ताको जन्म नसाय ॥९०॥*

विरह को अंग ।

राखूं रुनी विरहिनी, ज्युँ बच्चोंको कुंज
 कवीर अंतर परगछ्यो, विरह अग्नि को पुंज ॥ १ ॥

८७. विरुद-दाना । ९०. जन्म नसाय-आवागमन का नाश होता है ।

१. रुनी-ठढ़ास हुई । कुंज-कौंच । जैसे कौंच पक्षी अपने बच्चों के बिलुडने पर विलाप करता है ।

१. पा० राखेचा ।

प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, दूर देस मति जाय ।
 हम तुम एक नगर वसे, (जो)भीख मांग नित खाय ॥८५॥
 एक दृष्टि दो नैन है, * एक सद्ग दो कान ।
 हम तुम एकै पटतरा, दो घट में इक मान ॥८६॥
 पपिया तो पिव पिव करे, नित दिन प्रेम पियास ।
 पंछी विरह न छांढही, क्यों छांढ निजदास ॥८७॥
 आठ पहर चौसठ घड़ी, लागि रहे अनुराग ।
 हिरदै पलक न बीसरे, तब साँचा बैराग ॥८८॥
 जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।
 बिन अनुराग न पावई, कोटि करै जो कोष ॥८९॥
 प्रेम पंथमें पग धरै, देत न सीस डराय ।
 सपने मोह व्यापे नहि, ताको जन्म नसाय ॥९०॥

विरह को अंग ।

राख्युं रुनी विरहिनी, ज्युं वधोंको कुंज
 कवीर अंतर परगछ्यो, विरह अग्नि को पुंज ॥ १ ॥

८७. विरह-वाना । ९०. जन्म नसाय-आगमन का नाश होता है ।

१. रुनी-उदास हुई । कुंज-कौंच । जैसे कौंच पक्षी अपने वधों के त्रिलुङ्गे पर तिलाप करता है ।

१. पा० समिचा ।

अमर कुंज कुरलाइया, गरजि भरा सब ताल ।
 जिनते ^१साहिव विछुरा, तिनका कौन हवाल ॥ २ ॥
^२चकवी विछुरी रैन की, ^३आय मिली परभात ।
 जो जन विछुरे नामसो, दिवस मिले नहि रात ॥ ३ ॥
 वासर सुख नहि रैन सुख, ना सुख सपना माँहि ।
 जो नर विछुरे राम सो, तिनको धूप न छाँहि ॥ ४ ॥
 बहुत दिनन की जोइती, ^४वाट तुम्हारी राम ।
 जिय तरसै तुव मिलन को, मन नाँहीं विसराम ॥ ५ ॥
 विरहिनि ऊभी पंथ सिर, पंथी पूछे धाय ।
 एक सह्र कहो पीवका, ^५कब हि मिलेंगे आय ॥ ६ ॥
 विरहिनि देय सँदेसरा, सुनो हमारे पीव ।
 जल बिनमछली क्यों जिये, पानी में का जीव ॥ ७ ॥
^६विरहिनि देय सँदेसरा, सुनहु राम सुजान ।
 येगि ^६मिलो तुम आय के, नहि तो तजिहौं प्रान ॥ ८ ॥
 विरहिनि विरह जलाइया, बैठी हूँ छार ।
 मति को (य) कुइला ऊवरै, जारै दूजी वार ॥ ९ ॥

२. अमर-आकाश में । आकाश में झौंच पक्षी वर्षा में चिह्नाते हैं । ४. छूप न छाहि न छूप ही अच्छी लगती है और न, छाया ।

१. पा० सतगुरु (साई) २. पा० रैन की विछुरी चाकरी । ३. पा० आनि ।

४. पा० रटत तुम्हारी नाम । ५. पा० कबरे ।

विरहिनि जलती देखि के,	साँई आये धाय ।
मेम बुँद सों छिरकि के,	जलती लैय बुझाय ॥१०॥
विरहिनि थो तो क्यों रही,	जरी न पिव के साथ ।
रहि रहि मूढ़ गहेलरी,	अब क्यों भीने हाथ ॥११॥
विरहिनि उठि उठि मुँऽ परै,	दरसन कारन राग ।
लोहा पाटी मिल गया,	तव पारस किहि काम ॥१२॥
मूये पीछे मति मिलो,	कहैं कबीरा राम ।
लोहा पाटी मिल गया,	तव पारस किहि काम ॥१३॥
विरह जलन्ती मैं फिरँ,	मोहि विरह का दूग ।
छाँह न बैठै डरपती,	मति जलि ऊँहै रुख ॥१४॥
विरह तेज तनमें तप	अंग सयै अकुलाय ।
बट सूना जिव पीव में,	मौत हँडि फिरि जाय ॥१५॥
विरह कमंडल कर लिये,	वैरागी ठो नैन ।
मौगे दरस मघूररी,	छक रहे दिन रैन ॥१६॥
विरह विधा नैराग की,	कही न काह जाय ।
मूंगा सपना देखिया,	समझि समझि पछिताय ॥१७॥
विरह बढो बरी भयो,	हिरदा वरै न बीर ।
सुरति बनेही ना मिलै,	मिटै न मन की पीर ॥१८॥
विरह प्रबल दल साजिके,	घेरि लियो मोहि आय ।
नहि मागे छाँहै नहीं,	तळफि तळफि जिय जाय ॥१९॥

विरह कुल्हाड़ी तन बधै, याव न बांधै रोह ।
 मरने का संसै नहीं, छूटि गया भ्रम मोह ॥२०॥
 विरह अगनि तन मन जला, लागि गहा तन जीव ।
 कै वा जानै विरहिनी, कै जिन भेटा पीव ॥२१॥—
 विरह जलाई मै जलूँ, जलती जलहर जाऊँ ।
 मो देखा जलहर जलै, सन्तो कहँ बुझाऊँ ॥२२॥
 विरहा पूत लुहार का, धुवै हमारी देह ।
 कुइला किया न छूटि है, जव लग होय न खेह ॥२३॥
 विरहा पीव पठाइया, कही साधु परमोधि ।
 जा घट तालाबेलिया, ताको लावो सोधि ॥२४॥
 विरहा आया दरदसों, कहुवा लागा काम ।
 काया लागी काल है, मीठा लागा राम ॥२५॥
 विरहा सेती मति अटै, रे मन मोर सुजान ।
 हाड मांस रग खात है, जीवत करै मसान ॥२६॥
 विरही प्रानी विरह की, पिनर पीर न जाय ।
 एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥२७॥
 विरहा विरहा मति कहो, विरहा है सुलतान ।
 जा मंद विरह न संचरे, सो घट जान मसान ॥२८॥—

२०. रोह—घावका भर आना । २२. जलहर—तालाब वगैरह ।

२४. तालाबेली—छटपटी, बेचैनी ।

विरहा मोसों यों कहै, गाढा पकड़ो मोहि ।
 चरन कमल की मौजमें, ले पहुँचावौ तोहि ॥ २९ ॥
 विरहा भयो विछावना, ओढ़न विपति वियोग ।
 दुख सिरहाने पाय तन, कौन बना संजोग ॥ ३० ॥
 विरहा कहै कवीरको, तू मति छाड़ै मोहि ।
 पारब्रह्म के तेज में, जहाँ ले राखूँ तोहि ॥ ३१ ॥
 कवीर सुन्दरि यों कहै, सुनिये कंत मुजान ।
 बेगि मिलो तुम आयके, नहि तो तजि हों प्रान ॥ ३२ ॥
 कवीर हसना दूर करु, रोने से करु चीन ।
 बिन रोयै क्यों पाइये, मेम पियारा मीत ॥ ३३ ॥
 कवीर चिनगी विरहकी, मो तन पडी चड़ाय ।
 तन जरि धरती हू जरी, अंबर जरिया जाय ॥ ३४ ॥
 कवीर सुपनै रैनके, पडा कलेजे छेक ।
 जब सोऊँ तब दुड जना, जब जागूँ तब एक ॥ ३५ ॥
 कवीर वैद बुलाइया, जो भावै तो लेय ।
 जिहि जिहि औपध हरि मिलै, सो मो औपय देय ॥ ३६ ॥
 कवीर वैद बुलाइया, पकरि क देखी बाँहि ।
 वैद न वेदन जानसी, करक कलेजे माँहि ॥ ३७ ॥

३५. सोना-अज्ञान । जागना-ज्ञान । ३६. वैद—संसारी उपदेशक ।
 ३७. करक-कसक ।

जाहु वैद घर आपने,	तेरा किया न होय ।
जिन या वेदन निरमई,	मला करेगा सोय ॥ ३८ ॥
अंदेसो नहि भागसी,	संदेसो कहिआय ।
कै हरि आया भागसों,	कै हरि पास गयाय ॥ ३९ ॥
आय न सकि हौं तोहि पै,	सकूँ न तुझै बुलाय ।
जियरा यौही लेहुगे,	विरह तपाय तपाय ॥ ४० ॥
या तन जाऊँ मसि करूँ,	धूँवा जाय सुरंग ।
मति वह राम दया करै,	वरसि बुझावै अंग ॥ ४१ ॥
या तन जाऊँ मसि करूँ,	लिखूँ राम को नाँव ।
लेखनि बरूँ करक की,	लिखि लिखि राम पठाँव ॥ ४२ ॥
सौई सेवत जरि गई,	मांस न रहिया देह ।
सौई जब लग सेयहीं,	या तन है हे खेह ॥ ४३ ॥
कै विरहिनि को पीच दे,	(कै)आप आय दिखलाय ।
आँठ पहरका दासना,	मो पै सदा न जाय ॥ ४४ ॥
तन मन जोवन जारिके,	मसम किया सब देह ।
उठी कबीरा विरहिनी,	अजहूँ हूँदे खेह ॥ ४५ ॥
हं जु विरह की लाकडी,	समुझि समुझि धुँधवाय ।
छूटि परूँ जो विरह सों,	सघरी ही जलि जाय ॥ ४६ ॥
लाकडी जलि कुइला मये,	मो तन अजहूँ आग ।
विरह की ओदि लाकडी,	सिलग सिलग उठि जाग ॥ ४७ ॥

निसदिन दाक्षै विरहिनी, अंतर गति की लाय ।
 दास कवीरा क्यों बुझै, सतगुरु गये लगाय ॥ ४८ ॥
 तन मन जोवन यों जला, विरह अगिनि सों लागि ।
 मिरतक पीर न जानही, जानेगी वा आगि ॥ ४९ ॥
 चोट सतावै विरह की, सब तनजरजर होय ।
 मारन द्वारा जानि है, कै जिस लागि सोय ॥ ५० ॥
 अँखियन तो झाँई परी, पथ निहार निहार ।
 जिभ्या तो छाला पड्या, नाम पुकार पुकार ॥ ५१ ॥
 नैनन तो झडि लाइया, रहट बहै निहुवास ।
 पपिहा ज्यों पिव पिव रटै, पिया मिलन की आस ॥ ५२ ॥
 सब रग ताँती खाव तन, विरह वजावै नीत ।
 और न कोई सुनि सकै, कै सॉई कै चीत ॥ ५३ ॥
 या तन का दिवला करूँ, वाती मेलूँ जीव ।
 लोह सीचूँ तेल ज्यौ, तब मुख देखूँ पीव ॥ ५४ ॥
 अँखिया प्रेम कसाइयाँ, जिन जानौ दुखदाय ।
 नाम सनेही कारनै, रो रो रात बिताय ॥ ५५ ॥

५३. खाम-एक प्रकार का बाजा ।

१. या० अँखडिया प्रेम कसाइया, जनि जानौ दुखडिया ।
 राम सनेही कारनै, राय रोय रातडिया ॥

'सोई आसू साजना, सोई लोग २ विहाय ।
 जो लोचन ३ लोही चुनै, ४ तो जानो हित आय ॥५६॥
 हसुँ तो दुःख न वीसरूँ, रोऊँ बल घटि जाय ।
 मनही माँहि विसूरना, ज्यों घुन काठ हि खाया ॥५७॥
 काठ हि घुन जो खाइया, खात न किनहु दीठ ।
 छाल उखाडी देखिये, भीतर जमिया चीठ ॥५८॥
 चीठर जमिया चूनका, वैरी विरहा खद ।
 वीछुरिया सो साजना, घेदन काहू लद ॥५९॥
 हसि हसि कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।
 हाँसी खेलौं पिव मिले, (तो) कौन दुहागिन होया ॥६०॥
 हाँसी खेलौं पिव मिलै, (तो) कौन सहे खुरसान ।
 काम क्रोध तृस्ना तजै, ताहि मिले भगवान ॥६१॥
 देखत देखत दिन गया, निसिभी देखत जाय ।
 विरहिनीं पिव पावै नही, जियरा तलफत जाय ॥६२॥
 ५ रोवत रोवत मैं फिरूँ, नैन गँवायो रोय ।
 सो बूटी पाऊँ नहीं, जासों जीवन होय ॥६३॥
 नैना अन्तर आव-तू, निसदिन निरखूँ तोहि ।
 ६ कव हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि ॥६४॥

५७. विसूरना—सुसकना । ५८. चीठ—मेल ।

१. पा० जोइ आसू साजन जन । २. पा० बडाहि । ३. पा० लोह ।
 ४. पा० जानो हेत हियाहि । ५. पा० २परबत । ६. पा० गँवाऊ ।

नैन हमारे वावरे, छिन छिन लोरें तुझ ।
 ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी वेदन, मुझ ॥६५॥
 रनयों राम छिपाइयों, रहु रहु संख मझुर ।
 देवल देवल धाहरी, दिवस न कौ सूर ॥६६॥
 तू मति जानै बीसरो, भीति घटे मम चित्त ।
 भरूँ तो तुम सुमिरत भरूँ, जिऊँ तो सुमिरूँ नित ॥६७॥
 फारि पटोरा धज करूँ, कामलियों पहराऊँ ।
 जिन जिन भेषै हरि मिलै, सो सो भेष बनाऊँ ॥६८॥
 गलौ तुम्हारे नाम पर, ज्यौ पानी में लौन ।
 ऐसा विरहा मेलि के, नित दुख पावै कौन ॥६९॥
 सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै ।
 दुखिया दास कवीर है, जागै अरु रोवै ॥७०॥
 यो विरहिनि का पिय मुआ, दाग न दीया जाय ।
 मांस हि गलिगलिभुइ परा, करैक रही लपटाय ॥७१॥
 मली भई जो पिय मुआ, नित उठि करता रार ।
 छुटी गलकी फांसरी, सोऊँ पाँव पसार ॥७२॥
 काग करैक ढँदोरिया, मुठि इक रहिया हाड ।
 जिस पिंजर विरहा वसै, पाँस कहां रे हाड ॥७३॥

६८. पटोरा-रेशम के कपड़े ।

१. पा० लोटें ।

मांस गया पिंजर रखा,
 साहिव अजहुँ न आइया,
 काग करंक न चूथि रे,
 मैं दुख दाश्री विरह की,
 रगत मांस सब भपि गया,
 अब विरहा कूकर मया,
 पिय विन जिय तरसत रहै,
 रैन दिवस मोहि कल नहि,
 जो जन विरही नाम के,
 देहीसें उद्यम करै,
 मैं तुमको हूँ दूत फिरूँ,
 हिरदा माँहि उठि मिलै,
 अंक भरै भरि भेटिया,
 कहै फविर वह क्यौं मिले,
 जीव विलंबा जीव सों,
 साहिव मिल न झल बुझै,
 जीव विलंबा जीव सों,
 लेख समाना (अ) लेख में,
 सब को(य) विरहिनि पीयरी,
 परचा पाया पीव का.

तमकन लागे काग ।
 मंद हमारे भाग ॥७४॥
 उदरे परेरो जाय ।
 (व) दया मास न खाय ॥७५॥
 नेक न किन्ही कान ।
 लागो हाड चवान ॥७६॥
 पल पल विरह सताय ।
 सिसकि सिसकि दम जाया ॥७७॥
 तिनकी गति है येह ।
 सुमिरन करै विदेह ॥७८॥
 कहें न मिलिया राम ।
 कुसल तुम्हारे काम ॥ ७९ ॥
 मनमें बांधी धीर ।
 जब लग दोय सरीर ॥ ८० ॥
 अलख लख्यो नहि जाय ।
 रही बुझाय बुझाय ॥८१॥
 पिय जो लिया मिलाय ।
 अब कलु कहा न जाय ॥८२॥
 तू विरहिनि क्यूँ लाल ।
 यों हम भई निहाल ॥ ८३ ॥

१. पा० ताकन । २. पा० दाशा । ३. पा० मन नहि बाधे धीर ।

४. पा० आनेनासी को सेज पर, भोजी मया निहाल ।

अविनासी की सेज का, कैसा है बनमान ।
 कहिये को सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥ ८४ ॥
 अविनासी की सेज पर, केलि कर आनंद ।
 कहैं कविर वा सेज पर, विलसत परमानंद ॥ ८५ ॥
 तन मन जोवन जरि गया, विरह अग्निनि घट लाग ।
 विरहिनि जानि पीर को, क्या जानेगी आग ॥ ८६ ॥
 आग लगी आकास में, झरि झरि परे अंगार ।
 कबीर जलि कंचन भया, कांच भया संसार ॥ ८७ ॥
 तन मन जोवन जारिके, भसम किया सब देह ।
 विरहिनि जरिवरि मरि गई, क्या तू हूँदे खेह ॥ ८८ ॥
 लकड़ी जली कुइला भई, कुइला जलि भई राख ।
 मैं विरहिनि ऐसी जली, कुइला भई न राख ॥ ८९ ॥
 दीपक पावक आनिया, तैल भि आना संग ।
 अतिनू मिलिके जोईया, उडि उडि परै पतंग ॥ ९० ॥
 हवस करे पिय मिलनकी, औ सुख चाहै अग ।
 पीड सहै बिनु पदमिनी, पूत न लेत डछंग ॥ ९१ ॥
 चूड़ी पटकुं पलंग सैं, चौकी लार्ज आगि ।
 जा कारन या तन घरा, ना सूती गल लागि ॥ ९२ ॥
 पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय ।
 चित चक्कमक चहुँटे नहीं, धूँवा है है जाय ॥ ९३ ॥

सबही तरु तर जायके, सब फल लीनो चीख ।
 फिर फिर मँगत कबीर है, दरसन ही की भीख ॥ ९४ ॥
 कबीर जिन कलु जानिया, सुख, निंदरी विहाय ।
 मेरे अवसी बूझिया, पड़ी पड़ी बिललाय ॥ ९५ ॥
 राम वियोगी विकल, तन, ताहि न चीन्हें कोय ।
 तबोली का पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥ ९६ ॥
 पील कँदौरी सांझा, केवल कहै इस रोग ।
 छौने लंघन नित करुं, राम पियारे जोग ॥ ९७ ॥
 जलो हमारा जीवना, यों मति जीवो कोय ।
 सब कोइ सूता निंद भरि, हमकुं निंद न होय ॥ ९८ ॥
 जिहि साई का सोच है, सो तन फूले नाँहि ।
 जन कबीर सिमटा रहै, ज्यों अजा सिध पाँहि ॥ ९९ ॥
 मेरे मन होरी जरै, सब को खेले काग ।
 खेत सु मिरगा खा गया, राजा मांगे भाग ॥ १०० ॥
 फट रे छिया फाटै नहीं, साई तनो वियोग ।
 काला मुँह लीये फिरै, कह परमोधै लोग ॥ १०१ ॥

९५. मेरा=बास या लकड़ी का टूंड जो कि पानी में बहाया जाता है । इहा मेरा से तात्पर्य शरीर का है ।

९७. साई के वियोग में मैं कदूरी की तरह पीली हो गई । अज्ञानी लोग कहते हैं कि इसे पीलिया रोग हो गया है । मैंने प्यारे राम के मिलने के लिये पांच ज्ञान इन्द्रिया और मन के विषयों को त्याग दिया है ।

१. पा. मैं अबूझो बूझाया, पूरी पड़ी बलाय ।

फाटे दीदें मैं फिरुं,	नजर न आवै कोय ।
जिस घट मेरा साइया,	सो क्यों छाना होय ॥१०१॥
विरहा घूरा अनि कहो,	विरहा है सुलतान ।
जा घट हरि विरहा नहीं,	सो घट सदा ममान ॥१०३॥
जा तनमें विरहा वसै,	ता तन लोहु न मांस ।
इतना बहुत लु ऊवरा,	हाड चाम अरु स्वास ॥१०४॥
पहिले अगनी विरह की,	पीछे प्रेम पियास ।
कहैं कविर तब जानिये,	राम भिन्न की आस ॥१०५॥
जितना अवगुण मैं किया,	तितना करै न कोय ।
काला हवा मूखडा,	धोय न सकहुं रोग ॥१०६॥
विरहानी मर जायगी,	आतुर हाल शरीर ।
बेगी दर्शन दीजिये,	जीवै दास कबीर ॥१०७॥
मैं दीवानी नाम की,	कहे दिवानी कोय ।
मोहि दिवाना आ मिळा,	(तब)बंदी चंगी होय ॥१०८॥
कबीर पीर पिरावनी,	पिंजर पीर न जाय ।
एक पीर जो प्रीति की,	रही कलेजे छाय ॥१०९॥
सो सर मेरे मन बस्या,	जिहि सर मारा कालिह ।
सर बिनु सबु पाऊं नहीं,	तिहि सर अजहू मारि ॥११०॥
मो चित तिल नहि वीसरौ,	तुम हरि दूर ययांढ ।
यहि अंग औलू भाजसी,	जद तद तुम मिलियांढ ॥१११॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव ।
 कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥१९॥
 कबीर खेत किसान का, मिरगन खाया झारि ।
 खेत विचारा क्या करै, धनी करै नहि वारि ॥२०॥
 कबीर अनहुआ हुआ, बहु रीता संसार ।
 पडा भुलावा, गाफला, गया कुबुद्धि हार ॥२१॥
 कबीर वा' दिन याद कर, पग ऊपर तल सीस ।
 मृतु मढ़ल में आय के, विसरि गया जगदीस ॥२२॥
 कबीर वेडा जरजरा, कूडा खेवन हार ।
 हरुये हरुये तरि गये, बूडे जिन सिर भार ॥२३॥
 कबीर पांच पखेरुया, राखै पोष लगाय ।
 एक जु आयो पारधी, लड़ गय सबै उढाय ॥२४॥
 कबीर पैडा दूर है, बीच पढी है रात ।
 ना जानौ क्या होयगा, ऊँते परभात ॥ २५ ॥
 कबीर यह तन बन भया, करम जु भया कुलहार ।
 आप आपको काटि है, कहै कबीर विचार । २६ ॥
 कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छुडै ओट ।
 घन अहरन बिच लोह ज्यों, घनी सहै सिर चोट ॥ २७ ॥
 कबीर नाव तो झांझरि, भरी विराने भार ।
 खेवन सो परिचै नहीं, क्यों कर उतरै पार ॥ २८ ॥

कवीर रसरी पाव पैं,	कह सोवै सुख चैन ।
सांस नगारा कृच का,	वाजत है दिन रैन ॥ २९ ॥
कवीर जंत्र न वाजई,	टूटि गये सय तार ।
जंत्र विचारा क्या करै,	चला बजावन द्वार ॥ ३० ॥
कवीर गाफिल क्या करै,	आया काल नजीक ।
कान पकरिके ले चले,	ज्यौ अजिया हि खटीक ॥ ३१ ॥
कवीर पानी होज का,	देखत गया बिलाय ।
ऐसे ही जिव जायगा,	काल जु पहुँचा आय ॥ ३२ ॥
कवीर चित्त हि चपक्रिया,	किया पयाना दूर ।
कायथ कागज काढिया,	दरगह लेखा पूर ॥ ३३ ॥
कवीर केवल नाम कह,	सुद्ध गरीबी चाल ।
कूर बढाई बूडसी,	मारी परसी झाल ॥ ३४ ॥
कवीर पूंजी साहकी,	तू जिन करै खुवार ।
खरी विगुरचन होयगी,	लेखा देती वार ॥ ३५ ॥
मरेंगे मरि जायंगे,	कोय न लेगा नाम ।
ऊजह जाय बसाहिंगे,	छोडि बमन्ता गाम ॥ ३६ ॥
लेखा देना सोहग,	जो टिल साँचा होय ।
साँई के दरवार में,	पला न पकडे कोय ॥ ३७ ॥
कायथ कागज काढिया,	लेखा वार न पारै ।
जबलग सांस सरीरमें,	नय छग नाम सैमार ॥ ३८ ॥

कबीर यह तन जात है,	सकै तो ठौर लगाव ।
कै सेवा कर साध की,	कै गुरु के गुन गाव ॥१९॥
कबीर खेत किसान का,	मिरगन खाया झारि ।
खेत विचारा क्या करै,	धनी करै नहि वारि ॥२०॥
कबीर अनहुआ हुआ,	बहु रीता संसार ।
पडा भुलावा. गाफला,	गया कुबुद्धि हार ॥२१॥
कबीर 'वा' दिन याद कर,	पग ऊपर तल सीस ।
मृतु मंडल में आय के,	विसरि गया जगदीस ॥२२॥
-कबीर बेडा जरजरा,	कूडा खेवन हार ।
हरुये हरुये तरि गये,	बूडे जिन सिर भार ॥२३॥
कबीर पांच पखेरुवा,	राखै पोष लगाय ।
एक जु आयो पारधी,	लइ गय सबै उडाय ॥२४॥
कबीर पैडा दूर है,	बीचि पढी है रात ।
ना जानौ क्या होयगा,	ऊगँते परभात ॥ २५ ॥
कबीर यह तन बन भया,	करम जु भया कुलहार ।
आप आपको काटि है,	कहै कबीर विचार । २६ ॥
कबीर सतगुरु सरन की,	जो कोइ छाडै ओट ।
घन अहरन बिच लोह ज्यों,	घनी सहै सिर चोट ॥ २७ ॥
कबीर नाव तो झारि,	भरी विराने भार ।
खेवट भों परिचै नहीं,	क्यों कर उतैर पार ॥ २८ ॥

कवीर रसरी पांव में,	कह सोवै सुख चैन ।
सांस नगारा कूच का,	वाजत है दिन रैन ॥ २९ ॥
कवीर जंत्र न वाजई,	टूटि गये सब तार ।
जंत्र विचारा क्या करै,	चला बजावन द्वार ॥ ३० ॥
कवीर गाफिल क्या करै,	आया काल नजीक ।
कान पकरिके ले चले,	ज्यौ अजिया दि खटीक ॥ ३१ ॥
कवीर पानी होज का,	देखत गया बिलाय ।
ऐसे ही जिव जायगा,	काल जु पहुँचा आय ॥ ३२ ॥
कवीर चित्त हि चमकिया,	किया पयाना दूर ।
कायथ कागज काढिया,	दरगह लेखा पूर ॥ ३३ ॥
कवीर केवल नाम कह,	सुद्ध गरीबी चाल ।
चूर बढाई बूडसी,	भारी परसी झाल ॥ ३४ ॥
कवीर पूंजी साहकी,	तू जिन करै खुवार ।
खरी विगुरचन होयगी,	लेखा देती वार ॥ ३५ ॥
मरेगे मरि जायंगे,	कोय न लेगा नाम ।
ऊजड जाय बसाहिगे,	छोडि बसन्ता गाम ॥ ३६ ॥
लेखा देना सोहरा,	जो टिल साँचा होय ।
साँई के दरवार में,	पला न पकडे कोय ॥ ३७ ॥
कायथ कागज काढिया,	लेखा वार न पार ।
जबलग सांस सरीरमें,	तब लग नाम सँभार ॥ ३८ ॥

जिनके नीचत धाजती, मैगल बधति वारि ।
 एकहि गुरुके नाम विन, गये जनम सब हारि ॥ ३९ ॥
 ढोल दमामा दुरवरी, सहनाई सँग मेरि ।
 औसर चले बजायके, है कोय सुख फेरि ॥ ४० ॥
 एक दिन ऐसा होयगा, सब सो पग विछोह ।
 राजा राना राव रँक, मावध क्यों नहि होय ॥ ४१ ॥
 ऊनड खेडे टेकरी, घडि घडि गये कुम्हार ।
 गवन जैसा चलि गया, लंका को मरदार ॥ ४२ ॥
 आज काल के बीचमें, जंगल होगा वास ।
 ऊपर ऊपर हल फिरै, ढोर चरने वास ॥ ४३ ॥
 हाड जरै ज्यों लाकडी, केस जरै ज्यों घास ।
 सब जग जाता देखि करि, भये कबीर उदास ॥ ४४ ॥
 पानी केरा बुद बुदा, इस मानुसकी जात ।
 देखत ही छिप जायंगे, ज्यों तारा परमात ॥ ४५ ॥
 रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाप ।
 हीरा जनम अमोल था, कौडी बदले जाय ॥ ४६ ॥
 कै खाना कै खोवना, और न कोई चीत ।
 सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अंत का भीत ॥ ४७ ॥
 निगडक बैठा, नाम विनु, चेति न करै पुकार ।
 यह तन जलका बुदबुदा, बिनसत नाशो वार ॥ ४८ ॥

यह औसर चेत्यो नहीं,	पसु ज्यो पाली देह ।
सत्त नाम जान्यो नहीं,	अंत पडे सुख खेह ॥४९॥
आळे दिन पाले गये,	गुरु सों किया न हेत ।
अब पछितावा क्या करै,	चिहियां चुगि गइ खेत ॥५०॥
आज कहै मैं काल भजुं,	काल कहै फिर काल ।
आज काल क करत ही,	औसर जासी चाल ॥५१॥
काल करै सो आज कर,	सबहि साज तुव साथ ।
काल काळ तू क्या करै,	काल काल के हाथ ॥५२॥
काल करै सो आज कर,	आज करै सो अब ।
पलमें परलय होयगी,	बहुरि करेगा कव्व ॥५३॥
पाव पलक की सुधि नहीं,	करै काल का साज ।
काल अचानक मारसी,	ज्यो तीतर को बाज ॥५४॥
पाव पलक तो दूर है,	मो पै कहा न जाय ।
ना जानी क्या होयगा,	पल के चौधे भाय ॥५५॥
ऊँचा दीसै धौहरा,	माँडी चीती पोल ।
एक गुरु के नाम विना,	जम मारेंगे रोल ॥५६॥
ऊँचा मंदिर मेढियां,	चूना कली दुलाय ।
एकहि गुरु के नाम विन,	जदि तदि परलै जाय ॥५७॥
ऊँचा महल चुनाइया,	सुवरन कली दुलाय ।

ते मन्दिर खाली पडे, रहे मसाना जाय ॥५८॥
 १ऊंचा महल चूनावते, करते होडम होड ।
 ने मंदिर खाली पडे, गये पलकमें छोड ॥५९॥
 २सातों शब्द जु बाजते, घरि घरि होने राग ।
 ते मंदिर खाली पडे, बैठन लागे काग ॥६०॥
 कहा चुनावै मेडियां, चूना माटी लाय ।
 बीच सुनैगी पापिनी, दौरि कि लेगी आय ॥६१॥
 कहा चुनावै मेडियां, लंबी भीत उतारि ॥
 घर तो साढे तीन द्ध, घना तु पौने चारि ॥६२॥
 पांच तत्व का पूतला, मानुस धरिया नाप ।
 दिना चार के कारनै, फिर फिर रोकै ठाम ॥६३॥
 पाकी खेती देखिके, गरबै कहा किसान ।
 अजहू झोला बहुत है, घर आवै तब जान ॥६४॥
 ३हाड जले लकडी जले, जले जलावन द्वार ।
 कौतिक हारा भी जले, कासों करुं पुकार ॥६५॥
 घर रखवाला बाहिरा, चिडियां खाया खेत ।
 आधा परधा ऊवरै, चेति सकै तो चेत ॥६६॥
 मौत विसारी बाधरी, अचरन कीया कौन ।
 तन माटीमें मिलि गया, उर्यौ आटामें लौन ॥६७॥

१. पा० सुवरन कली दुलागते, । २. पा० पाचौ शब्द जु बाजते, ।

३. पा० मडा ।

जनमै मरन विचारि के,	कूरे काम निवारि ।
जिन पया तोहि चालना,	सोई पय संवारि ॥६८॥
जिन गुरुकी चोरी करी,	गये नाम गुन भूल ।
त विघना बागल रचे,	रहे अरघ मुख झूल ॥६९॥
राम नाम जाना नहीं,	पाला सकल कुटुंब ।
धधा ही में पचि मरा,	वार भई नहि धुंव ॥७०॥
रामनाम जाना नहीं,	हुआ बहुत अकाज ।
बूढोगे रे बापुरे,	बड़े बड़ों की लाज ॥७१॥
रामनाम जाना नहीं,	ता मुख आन धरंम ।
कै मूसा कै कातरा	खाता गया जनम ॥७२॥
राम नाम जाना नहीं,	मेला मना विसार ।
ते नर हाली चालडी,	सदा पराये वार ॥ ७३ ॥
राम नाम जाना नहीं,	बात विनूडी भूल ।
देहरिसा हितु विसारिया,	अंत पडी मुख धूल ॥ ७४ ॥
राम नाम जाना नहीं,	चूके अब की बात ।
माटी मिलन कुम्हारकी,	बनी सहेगा लान ॥ ७५ ॥
माटी कहे कुम्हारको,	क्या तू रौंदै मोहि ।
एक दिन ऐसा होयगा,	मै रौंदैगो तोहि ॥ ७६ ॥

७० धुंव—डका, सुपश ।

१. पा० जिन जिन पंथों चालना, सो निज पय संवारि ।

२. पा० हेतु इहानी हारिया, पटत पडी मुख धूल ।

लकड़ी कहैं लुहारसों,	तू मति जरै मोहि ।
एक दिन ऐसा होयगा,	मैं जारौंगी तोहि ॥ ७७ ॥
कदा किया हम आयके,	कदा करेंगे जाय ।
इत के भये न ऊतके,	चाले मूल गँवाय ॥ ७८ ॥
जग जहदा में राचिया,	झूठे कुलको लाज ।
तन छीजै कुल धिनसि है,	रटै न नाम जहाज ॥ ७९ ॥
यह तन काचा कुंभ है,	लिया फिरै ये साथ ।
टपका लाग़ा फुटि गया,	बहु न आया हाथ ॥ ८० ॥
यह तन काचा कुंभ है,	चोट चहुं दिस खाय ।
एक हि गुरुके नाम बिन,	जदि तदि परलै जाय ॥ ८१ ॥
यह तन काचा कुंभ है,	मोहि किया रहिवास ।
कबीर नैन निहारिया,	नहि जीवनकी आस ॥ ८२ ॥
दुनिया यांझा दुख का,	भरा मुँहा मुँह मुख ।
आदी अलुह राम की,	कुरलै कौनी कख ॥ ८३ ॥
दुनिया के मैं कुल नहीं,	मेरे दुनिया कात ।
साहिब दर देखै खडा,	दुनिया दोजख जात ॥ ८४ ॥
दुनिया सेती दोसती,	होय भजनमें भंग ।
एकाएकी राम सों,	कै साधन के संग ॥ ८५ ॥
दुनियाकें धोखै मुआ,	चला कुदुव की कानि ।
तब कुलकी क्या लाज है,	जब ले धरा मसानि ॥ ८६ ॥

कुल खोये कुल लखरै,
 राम निकुल कुल भेटिया,
 कुल करनी के कारनै,
 तब कुल काको लाजि है,
 कुल करनी के कारनै,
 तब कुल काको लाजि है,
 कहत सुनत जग जात है,
 कहैं कबिर सुन प्रानिया,
 पानी का सा बुद बुदा,
 ऐसा जियरा जायगा,
 काया मँजन क्या करैं,
 लजल होय न छूटसी,
 लजल पहिनै कापडा,
 कबीर गुरुकी भक्ति विन,
 मलमल खासा पहिन्ते,
 नेढा होकर चालते,
 महलन मांहीं पोढ़ते,
 ते सपने दीसे नहीं,
 महलन मांहीं पोढ़ते,
 छत्रपती की छारमें,
 जंगल देरी राखकी,
 तेभी होते मानवी,

कुल राखै कुल जाय ।
 सब कुल गया विलाय ॥ ८७ ॥
 हंसा गया विगोय ।
 चारि पाँव का होय ॥ ८८ ॥
 ढिग हो रहिगो राम ।
 (जब) जप की धूपाधाम ॥ ८९ ॥
 विषय न सूझै काल ।
 साद्वि नाम सम्हाल ॥ ९० ॥
 देखत गया विलाय ।
 दिन दस ठोली लाय ॥ ९१ ॥
 कपडा धोयम धोय ।
 सुख निंदरि नहिसोय ॥ ९२ ॥
 पान सुपारी खाय ।
 यौथा जमपुर जाय ॥ ९३ ॥
 खाने नागर पान ।
 करते बहुत गुमान ॥ ९४ ॥
 परिमल अंग लगाय ।
 देखत गये विलाय ॥ ९५ ॥
 परिमल अंग लगाय ।
 गदहा लोटे जाय ॥ ९६ ॥
 उपरि उपरि हरियाय ।
 करते रंग रलियाय ॥ ९७ ॥

मेरा संगी कोय नहि, सबै स्वाग्धी लोय ।
 मन परतीति न ऊपजै, जिय विस्वास न होय ॥१८॥
 थलि जो चरता मिरगला, बेधा इक जूं सौन ।
 हम तो पथी पंथ मिर, हरा चरेगा कान ॥१९॥
 जिसको रहना उत घरा, सो क्यों तोड़ै भीत ।
 जैसे परघर पाहुना, रहै उठाये चीत ॥१००॥
 इत परघर उत है घरा, वनिजन आये हाट ।
 करम करीना बेचि के, उठि करि चाछो वाटा ॥१०१॥
 ज्यों कोरी रेजा बुनै, भीरा आवे छोर ।
 ऐसा लेखा बीच का, दौरि सकै तो दौर ॥१०२॥
 कोठे ऊपर दौरना, सुख निंदरि नहि सोय ।
 पुनै पाया देहरा, ओछी ठौर न खोय ॥१०३॥
 मैं मेरी तू जनि करै, मेरी मूल विनासि ।
 मेरी पगका पैखडा, मेरी गलकी फासि ॥ ०४॥
 मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसु भागि ।
 कवलग राखो रामजी, रुई लपेटि आगि ॥१०५॥
 मोर तोर की जेवरी, बल बंदा संसार ।
 कदा सुकुलवा सुतकलिष्ठ, दाक्षिण वारवार ॥१०६॥
 मोर तोर की जेवरी, गल बंधा संसार ।
 दास कविग क्यों बंनै, जाक नाम आधार ॥१०७॥

१०४. पैखडा-बेडी ।

१. पा० बुनता । २. पा० कायस कूटे वस्तु फल ।

नान्हा कातौ चित दे, मँहगे मोल विकाय ।
 ग्राहक राजा राम है, औरन नीरा जाय ॥१०८॥
 तन सराय मन पाहरू, मनसा उत्तरी आय ।
 को काहू का है नही, देखा ठोंकि बजाय ॥१०९॥
 राम कहेतै खिल परै, कुष्ट होय गलि जाय ।
 सूकर है करि औतरे, नाक बूडता खाय ॥११०॥
 पुर पटन काया पुरी, पाच चोर दस द्वार ।
 जमराजा गढ़ भेलसी, सुपरि लेहु करतार ॥१११॥
 पीपर सूना फूल विन, फल विन सूनी राय ।
 एकाएकी मानुषा, टप्पा दीया आय ॥११२॥
 राज दुवारे बांधिया, मूढी धुनै गयंद ।
 मनुष जनम कब पायंह, कब भजिहं गोविंद ॥११३॥
 आये हैं ते जायंगे, राजा रक फकीर ।
 एक मिवासन चढि चले, (एक) बांधे जात जँजीर ॥११४॥
 या मन गहि जो थिर रहे, गहिरी धूनी गाहि ।
 चलती विरिया उठि चला, हस्ती घोड़ा छाडि ॥११५॥
 तू मति जानै बावरे, मेरा है सब कोय ।
 पिंड मान सो बधि रहा, सो नहि अपना होय ॥११६॥
 दीन गँवायो दूनि सँग, दुनी न चाली साथ ।
 पाँव कुल्हाडी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥११७॥
 मैं भौरा तुहि वरजिया, बन बन घोस न लेय ।
 अटकेगा फुटुं बेलसों, तटप तड़प जिय दैय ॥११८॥

बाढी के बिच भँवर था, फलियाँ लेता वास ।
 सो तो भौंरा उड़ि गया, तजि बाढीकी आस ॥११९॥
 ऐसी गति संसार की, ज्यों गाढर की ठाट ।
 एक पड़ी जिहि गाड़ में, सबै जाहि तिहि बाट ॥१२०॥
 एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस ।
 लंकापति रावन गया, बीस भुझा दम सीस ॥१२१॥
 कालचक्र चक्की चलै, बहुत दिवस औ रात ।
 सगुन अगुन दीय पाटला, तामें जीव पिसात ॥१२२॥
 राम भजो तो अब भजो, बहोरि भजोगे कब ।
 हरिया हरिया रूखड़े, इधन हो गये सब ॥१२३॥
 भविनु भाव न ऊपजै, भै विनु होय न प्रीति ।
 जब हिरदे से भै गया, पिटी सकल रस रीति ॥१२४॥
 भयसे भक्ति करै सबै, भयसे पूजा होय ।
 भय पारस है जीवको, निरभय होय न कोय ॥१२५॥
 डर करनी डर परमगुरु, डर पारस डर सार ।
 डरता रहै सो ऊवरै, गाफिल खावै मार ॥१२६॥
 खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकवाद ।
 वांछ हिलावै पालना, तामें कौन सवाद ॥१२७॥
 यह विरियाँ तो फिरि नहि, मन में देखु विचार ।
 आया लाभ हि कारनै, जनम जुआ मति हार ॥१२८॥

बैल गढन्ता नर गढा,	चूका सींग रु पूछ ।
एक हि गुरुके नाम बिनु,	धिक दादी धिक मूल ॥१२९॥
यह मन फूला विषय बन,	तहाँ न लावो चीत ।
सागर क्यों ना उहि चलो,	सुनी वैन मन पीठ ॥१३०॥
कहैं कधीर पुकारि के,	चेत नाहीं कोय ।
अवकी बिरियो चेति है,	सो साहिवका होय ॥१३१॥
धोखे धोखे जुग गया,	जनमहि गया सिराय ।
थिति नहि पकडो आपनी,	यह दुःख कडा सपाय ॥१३२॥
केतो कहू घुझाय के,	परहथ जीव विकाय ।
मैं खैचू सत लोकको,	सीधा जमपुर जाय ॥१३३॥
झूठा सब संसार है,	कोउ न अपना पीत ।
सत्तनाम को जानि ले,	चलै सो भौजल जीत ॥१३४॥
एकदिन ऐसा होयगा,	कोय काहुका नौहि ।
घरकी नारी को कहैं,	तनकी नारी जाहि ॥१३५॥
आठ प्रहर यौही गया,	माया मोह जंजाल ।
सत्तनाम हिरदे नहीं,	जीत लिया जम काल ॥१३६॥
मदिर माँही झलकती,	दीवा की सी ज्योति ।
हस बगज चलि गया,	काही घरकी छोति ॥१३७॥

१३५. तन की नारी—नाडी ।

१ पा० बाधा । १ पा० करकी ।

वारी वारी आपने, चले पियारे मीत ।
 तेरी वारी जीयरा, नियरे आवै नीत ॥१३८॥
 सेस नागके सहस फन, फन फन जिभ्या दोय ।
 नरके एरै जीभ है, रहे ताहि में सोय ॥१३९॥
 परदै रहती पदामिनी, वरती कुलकी कान ।
 छडी जु पहुँची कालकी, छोड भई मैदान ॥१४०॥
 मछरी यह छोडौ नहीं, धीमर तेरो काल ।
 जिहि जिहि ढावर घर करो, तहँ तहँ मेले जाल ॥१४१॥
 पानीमे की मालरी, वर्यौ नै पकर्या तीर ।
 कटिया खडकी जालकी, आई पहुँचा कीर ॥१४२॥
 हे मतिहीनी मालरी, राखि न सकी शरीर ।
 सो सरवर सेवा नहीं, जाल काल नहि कीर ॥१४३॥
 हे मतिहीनी मालरी, धीमर मीत कियाय ।
 कदि समुद्रसे खसना, छीलर चित्त दियाय ॥१४४॥
 हे मतिहीनी मालरी, छीलर माडी आलि ।
 ढावरिया छुटै नहीं, सकै तुसमुँद सँभाल ॥१४५॥

१३८. शास्त्र का कथन है कि शेष नाग भी अपनी दो हजार जिह्वाओं से हरि का भजन करता है । वह भी अपनी । जिह्वाओं को प्रपञ्च से रोके रहता है । नर के एक जीभ है परंतु यह उसे भी नहीं रोक सकता ।

१४२. कीर—धीमर । १४५. आल—क्रीडाविहार ।

मछली फिरि फिरि बाहुरी, ताकि समुंदर तीर ।
 दरिया भीतर घर किया, कदा करेगा कीर ॥१४६॥
 आंखदियौ रतनालियां, चेजा करै पताल ।
 मैं तोहि वूझौ माछली, तू क्यों बंधी जाल ॥१४७॥
 सुखन लागै केवडा, टूटन लागै डार ।
 पानी की कल जानता, चला सो सींचन हार ॥१४८॥
 भाई बीर बटाववा, मरि मरि नैनन रोय ।
 जाका था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय ॥१४९॥
 मरती विरियाँ पुन करै, जीवत बहुत कठोर ।
 कहैं कविर क्यों पाइये, काढै खाँडै चोर ॥१५०॥
 कबीर यह चिन्तावनी, भूत संसार गँवाय ।
 जो पहिले सुख भोगिया, तिनका गुड ले खाय ॥१५१॥
 जब रंग था तब ना रंगा, हरि रंग मान मजीठ ।
 अब पछताये क्या हुआ, जब रंग दिन्हा पीठ ॥१५२॥
 सुमरिन का संसै रहा, पछितावा मन माँहि ।
 कहैं कबीरा रामरस, सघरा पीया नाँहि ॥१५३॥
 विषय वासना उरझिकर, जनम गँवाया बाद ।
 अब पछितावा क्या करै, निजकरनी कर याद ॥१५४॥
 कबीर दरदीवान जो, क्यों करि पावै दाद ।
 पहिले बुगी कमायके, पीछै करि फिरियाद ॥१५५॥

एक बुन्द ते सब किया,	नर नारी का नाम ।
सो तू अन्तर खोजि ले,	सकल वियापक राम ॥१५६॥
एक बुन्द ते सब किया,	यह देहका विस्तार ।
सो तू क्यों वीसारिया,	अंधा मूढ गँवार ॥१५७॥
सब घट भीतर राम है,	ऐसा आप सुजान ।
आप आप से बांधिया,	आपै मया अजान ॥१५८॥
पांच धातुका पिंजरा,	सो तो अपना नाँहि ।
अपना पिंजर तहँ बसे,	अगम अंगोचर माँहि ॥१५९॥
सगा हमारा रामजी,	सहुदर है पुनि राम ।
और सगा सब सगपगा,	कोइ न आवै काम ॥१६०॥
चले गये सो ना मिले,	किसको पूछे बात ।
मात पिता सुत बान्धवा,	झूठा सब संघात ॥१६१॥
राम बिसारो बावरा,	अचरज किन्ही येह ।
घन जीवन चल जायगा,	अंत होयगी खेह ॥१६२॥
मनुस जन्म तोकुं दियो,	भजिवेको हरिनाम ।
कहैं कविर चेत्यो नहीं,	लगे औरहि काम ॥१६३॥
मनुस जन्म तोकुं दियो,	भजिवेको गोविन्द ।
अपनी करनी आपको,	कदा बंधाये फंद ॥१६४॥
कबीर केवल नामकी,	जबलुगि दीपक वाति ।
तेल घटा जाती बूझी,	तब सोचे दिनराति ॥१६५॥

मनुसा जन्महि पायके, भज्यो नरघुपतिराय ।
 तेली केरा बैल ज्यु, फिरिफिरि फेरा खाया ॥१६६॥
 जो तूं परा है फंदमें, निकसेगा कव अंध ।
 माया मद तोरुं चढा, मत भुले मति मंद ॥१६७॥
 कवीर काया पाहुनी, हंस बदाऊ मॉहि ।
 ना जानूं कब जायगी, मोहि भरोसा नाहि ॥१६८॥
 भाटी केरा पूतला, मानुष धरिया नाम ।
 एक कला के वीछो, विकल भया सब ठाम ॥१६९॥
 यह अवसर चेत्यो नहीं, चूक्यो मोठी घात ।
 भाटी मिलत कुंभार की, बहुत सहेगो लात ॥१७०॥
 दरद न लेवै जात को, सुआ न राखे कोय ।
 सगा उसीको कीजिये, (जो) नेह निवाह होय ॥१७१॥
 मनुषा जनम हि पाय के, जब लगि भज्यो न राम ।
 जैसे कुवा जल विना, ताको नाही काम ॥१७२॥
 जिन घर नौवत बाजती, होत छतीसों राग ।
 सो घर भी खाली पड़े, बैठन लागे काम ॥१७३॥
 क्या करिये क्या जोहिये, थोड़े जीवन काज ।
 छांदि छांदि सब जात है, देह गेह धन राज ॥१७४॥
 जागो लोको मत सुनो, ना करु निदसे प्यार ।
 जैसा सपना रैनका, ऐसा यह संसार ॥१७५॥

सब कोई मरि जात है,	काल काल की फाँस ।
सत्तनाम प्रकारतां,	कोइक डररा दास ॥१७६॥
एक बुद के कारनै,	रोता सब संसार ।
^१ (अ)नेक बुद खाली गये,	तिनका नहीं विचार ॥१७७॥
मरुं मरुं सब को(इ) कहे,	मेरी परै वढाय ।
मरना था सो मरि चुका,	अब को मरनै जाय ॥१७८॥
मन मूआ माया मुई,	संशय मुभा शरीर ।
अविनाशी जो ना मरे,	तो क्यों मरे कबीर ॥१७९॥
मरते मरते जग मुआ,	सुत वित दारा जोय ।
राम कबिरा यौ मुआ,	एक बराबर होय ॥१८०॥
ना मूआ ना मरि गया,	नहि आवै नहि जाय ।
यह चरित्र करतारका,	उपनै और समाय ॥१८१॥
जाय मरे मो जीव है,	रमता राम न होय ।
जन्म मरनसँ न्यार है,	मेरा साहिव सोय ॥१८२॥
हरि मरि है तो,	हम हूँ मरि हैं ।
हरि न मरै,	हम काहे को मरि हैं ॥१८३॥
नर नारायन रूप है,	तू मति जानै देह ।
जो समझे तो ममझ नै,	खलक पलकर्म खेह ॥१८४॥
अर्थ कपाले झूलता,	सो दिन कर ले याद ।
जठरा मेती राखिया,	^२ नॉहि पुरुष कर याद ॥१८५॥

अहिरन की चोरी करे, करै सूइ-का दान ।
 ऊँचा चढ़ि कर देखता, केविक दूर विमान ॥१८६॥
 कबीर पट्टण कारिवां, पांच चोर दस द्वार ।
 जम राना गढ़ भेलसी, बोल गले गोपाल ॥१८७॥
 आया अन आया भया, जब राता संसार ।
 पढा भुलावा गाफिला, गये कुबुद्धि द्वार ॥१८८॥
 पानी ज्यों रि तलावका, दस दिसि गया बिलाय ।
 यह सब यों ही जायगा, सकै तो ठाढ़ लाय ॥१८९॥
 माय बिहानी वाप बिड़, हम भी मांस बिडाहि ।
 दरिया केरी नाव ज्युं, संजोगै मिलि जाहि ॥१९०॥
 आंखि न देखे बावरा, सद्ध सुनै नहि कान ।
 सिरके केस उजल भये, अवहं निपट अजान ॥१९१॥
 क्यों खोवै नरतन त्रिधा, परि विषयन के साथ ।
 पांच कुल्हाडी मारही, मूरख अपने हाथ ॥१९२॥
 चेत सवरे बावरे, फिर पाछे पछताय ।
 सुझको जाना दूर है, कहें कबीर जगाय ॥१९३॥
 मूरख शब्द न मानई, धर्म न सुनै विचार ।
 सत्य सब्द नहि खोजई, जावै जमके द्वार ॥१९४॥
 राजपाट धन पाय कर, क्यों करता अभिमान ।
 पाडोसीकी जो दशा, लड़ सो अपनी जान ॥१९५॥

यह नर गर्व भुलाइया, देखी माया झौ
 कहै कविर अब चेत हू, सुमिरि पाछलो कौल ॥१९६॥
 समुझाये समझे नही, धरे बहुत अभिमान ।
 गुरुका शब्द उछेदके, कहत सकल हम जान ॥१९७॥
 ज्ञानी होय सो ही, बूझै सब्द हमार ।
 कहै कविर सो वांचि है, और सकल जम धार ॥१९८॥
 साधु महातम ना कहै, गुरुवन दिया लखाय ।
 कहै कविर वा ^१गुरुका, ^२चेला चौरासि जाय ॥१९९॥
 स्वामी सेवकसँ कहै, सुनरे चेत अचेत ।
 पीतल ही का पारखु, नहि हीरासे हेत ॥२००॥
 कबीर मनुवा मोर है, संसय रूपी साँप ।
 खाया पीया पचि गया, अन्तर प्रगटे आप ॥२०१॥

उपदेस को अंग ।



जीवदया चित्त राखिने,	साखी कहै कवीर ।
भौसागर के जीव को,	आनि लगावै तीर ॥ १ ॥
अंतर याहि विचारिया.	साखी कहो कवीर ।
भौसागर में जीव है,	सुनि कै लागै तीर ॥ २ ॥
काल काल तत्काल है,	बुरा न करिये कोय ।
अनबोवै लुनता नहीं,	बोवै लुनता होय ॥ ३ ॥
काल काम तत्काल है,	बुरा न कीजै कोय ।
भले भलाई पै लहे,	बुरे बुराई होय ॥ ४ ॥
जो तोको कांटा चुवै,	ताको वो तू फूल ।
तोहि फूलको फूल है,	वाको है तिरसूल ॥ ५ ॥
दुरबल को न सताइये,	जाकी मोटी हाय ।
बिना जीवकी सौम से,	लोह भस्म है जाय ॥ ६ ॥
कवीर आप ठगाइये,	और न ठगिये कोय ।
आप ठगे सुख उपजै,	और ठगे दुःख होय ॥ ७ ॥
या दुनियामें आयके,	छाँड़ि देय तू पैठ ।
लेना है सो लेय ले,	ऊठि जात है पैठ ॥ ८ ॥
खाय पकाय लुटाय ले,	यह मनुवा मिजमान ।
लेना है सो लेय ले,	यही गोय मैदान ॥ ९ ॥

३. अनबोवै-बिना बीज डाले । लुनता नहीं-काटता नहीं । ९. गोय-गौद ।

खाय पकाय लुटायके,	करिले अपना काम ।
चलनी विरिया रे नरा,	संग न चलै छदाम ॥ १० ॥
लेना होय सो रत्न ले,	कही सुनीमति मान ।
कही सुनी जुगजुग चली,	आवा गवन ध्यान ॥ ११ ॥
सत ही में सत बांई,	रोटी में ते टुक ।
कहै कबिर ता दासको,	कबहु न आवि चूक ॥ १२ ॥
देह धरे का गुन यही,	देह देह कुलु देह ।
बहुरि न देही पाइये,	अव की देह सुदेह ॥ १३ ॥
कहै कबीर पुकारि कै,	दो बातें लिखि लेय ।
कै साहिव की वदगी,	भूखोंको कलु देय ॥ १४ ॥
कहै कबीरा देय तू,	जबलग तेरी देह ।
देह खेह है जायगी,	(फिर) कौन कहेगा देह ॥ १५ ॥
देह खेह है जायगी,	(फिर) कौन कहेगा देह ।
निश्चय कर उपकारही,	जीवन का फल येह ॥ १६ ॥
हाथ बढ़ा हरि भजन करि,	द्रव्य बढ़ा कलु देह ।
अकल बढ़ी उपकार करि,	जीवन का फल येह ॥ १७ ॥
गांठि होय सो दाथ कर,	हाथ होय सो देह ।
आगे हाट न बनिया,	लेना है सो लेह ॥ १८ ॥
यहां विसाहन करि चलो,	आगे बिसमी बाट ।
स्वर्ग विसाहन ना मिले,	ना बनिया ना हाट ॥ १९ ॥

धर्म किये धन ना धरे,	नदी न घटै नीर ।
अपनी आँखों देख लो,	यों कथि कहै कवीर ॥ २० ॥
कवीर यह तन जात है,	सको तो राखु बहोर ।
खाली हाथों वह गये,	जिनके लाख करोर ॥ २१ ॥
स्वामी है संग्रह करै,	दूजै दिन का नीर ।
तरे न तरि और को,	यों कथि कहै कवीर ॥ २२ ॥
या दुनिया टो रोजकी,	मत कर यासै हेत ।
गुरु चरनन चित लाइये,	जो पूरन सुख देत ॥ २३ ॥
हस्ती चढिये ज्ञान का,	सहज दुलीचा द्वार ।
स्वान रूप संसार है,	भुंकर दे शक मार ॥ २४ ॥
कवीर काहेको डरे,	सिरपर मिरजन द्वार ।
हस्ती चढि दुरिये नहीं,	कृकर भुसै हजार ॥ २५ ॥
ऐसी गानी बोलिये,	मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै.	आपुडि सीतल होय ॥ २६ ॥
जगमे वैरी कोय नहि.	जो मन सीतल होय ।
या आपा को दारि दे,	दया करै सब कोय ॥ २७ ॥
कहने को कहि जान दे,	गुरु की सिख तूं लेय ।
साकट जन औ म्यान को,	फेर जवाब न देय ॥ २८ ॥
कवीर तहाँ न जाइये,	जहँ जो कुल को हेत ।
साधुपनो जानै नहीं,	नाम नाप को लेव ॥ २९ ॥
कवीर तहाँ न जाइये,	जहाँ सिद्ध को गँव ।
स्वामी कहे न बैठना,	फिर फिर पूछे नाँव ॥ ३० ॥

कबीर संगी साधु का, दल थाया भरपूर ।
 इन्द्रि को तब बांधिया, या तन कीया घूर ॥३१॥
 इष्ट मिले अरु मन मिले, मिले सकल रस रीत ।
 कहैं कविर तहाँ जाइये, यह संतन की प्रीत ॥३२॥
 आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक ।
 कहैं कविर नहि उलटिये, वही एकही एक ॥३३॥
 गारी मोटा ज्ञान, जो रंचक उरमें जरै ।
 कोटि सँवारै काम, वैरि उलटि पाँवन परै ॥३४॥
 कोटि सँवारै काम, वैरि उलटि पाँवन परै ।
 गारी सौ कया हानि, हिरदै जु यह ज्ञान धरै ॥३५॥
 गारी हो सैं ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच ।
 * हारि चलै सो सन्न है, लागि मरै सो नीच ॥३६॥
 हारजन तो हारा भला, जीतन दे संसार ।
 हारा तो हरि सों मिले, जीता जमके द्वार ॥३७॥
 * जैसा घट तैसा मता, घट घट और सुभाव ।
 जा घट हार न जीत है, ता घट ब्रह्म समाव ॥३८॥
 जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय ।
 जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥३९॥
 कथा कीरतन कलि बिषे, भौ सागर की नाय ।
 कहैं कविर जन तरनको, नाँही और उपाव ॥४०॥

कथा कीरतन करनकी,	जाके निसदिन रीत ।
कहे कविर वा दाससों,	निश्चै कोजै . प्रीत ॥ ४१ ॥
कथा कीरतन छौँडि कै,	करै जु और उपाव ।
कहे कविर ता साधुके,	पास कोइ मति जाव ॥ ४२ ॥
कथा कीरतन रातदिन,	जाके उद्यम येह ।
कहे कविर ता साधुके,	चरन कमलकी खेह ॥ ४३ ॥
कथा करो करतारकी,	निमदिन साज सकार ।
काम कथा को परिहरो,	कहे कवीर विचार ॥ ४४ ॥
कामकथा सुनिये नहीं,	सुनि कै उपजै काम ।
कहे कवीर विचार के,	विसरि जात है नाम ॥ ४५ ॥
कथा करो करतार की,	सुनो कथा करतार ।
आन कथा सुनिये नहीं,	कहे कवीर विचार ॥ ४६ ॥
आन कथा अंतर परै,	ब्रह्म जीवमें सोय ।
कहे कविर यह दोष बड़,	सुनि लीजै सब कोय ॥ ४७ ॥
कथा कीरतन कलि विषे,	तरवे को उपकार ।
सुने सुनावै प्रेम सों,	यह उपदेस हमार ॥ ४८ ॥
कथा कीरतन सुननकी,	जो कोय करै मनेह ।
कहे कविर ता दासकी,	मुक्तिमें नहि संदेह ॥ ४९ ॥
बहते को बहि जान दे,	मत पकडावौ ठौर ।
सपझाया . समझै नहीं,	देय वका दो और ॥ ५० ॥

वहते को मत वहन दो,
 कह्यो सुन्यो मानि नहीं,
 वदे तूं कर वदगी,
 औसर मानुस जनमका,
 बार बार तो सों कहा,
 वनजारेका बैल ज्यु,
 पनजारे को बैल ज्यु,
 एकन के दूना भया,
 मन राजा नायक भया,
 है है है है है रही,
 वनजारे के बैल ज्यु,
 खँड लादि भुस खात है,
 जीवत कोय समुझै नहि,
 तनमनतें परिचय नहीं,
 जो कोय समुझै सैनमें,
 सैन वैन समुझै नहीं,
 जिहि जियरी ते जग वैधा,
 जासी आटा लौन ज्यौ,
 जिन गुरु जैसा जानिया,
 ओसे प्यास न भागसी,

कर गहि ऐंचहु ठौर ।
 सब्द कहो दुइ और ॥ ५१ ॥
 तो पावै दीदार ।
 बहुरि न वारंवार ॥ ५२ ॥
 सुनरे मनवा नीच ।
 पैडा माही मीच ॥ ५३ ॥
 टाडो उतर्यो आय ।
 (एक)चाला मूल गँवाय ॥ ५४ ॥
 टाडा लादा जाय ।
 पूंजी गई बिछाय ॥ ५५ ॥
 भरमि फिर्यो चहुँ देस ।
 दिनसतगुरु उपदेस ॥ ५६ ॥
 मुया न कह संदेस ।
 ताको बया उपदेस ॥ ५७ ॥
 तासैं कहिये वैन ।
 तासो कछु न कैन ॥ ५८ ॥
 तूं जनि वैधै कवीर ।
 सोन समान शरीर ॥ ५९ ॥
 तिनको तैसा लाभ ।
 जत्र लगि धसैन आभ ॥ ६० ॥

जिन हूँटा तिन पाइया,	गहरे पानी पैठि ।
जो वीरा इवन डरा,	रहा किनारै बैठि ॥ ६१ ॥
चतुराई क्या कोजिये,	जो नहीं सब्द समाय ।
कोटिक गुन सूत्रा पढै.	अन्त विछाई साय ॥ ६२ ॥
.(अल)मस्त फिरै क्या होत है,	सुरति सब्द में पोय ।
चतुराई नहीं छटसी,	सुरति सब्द में पोय ॥ ६३ ॥
पढ़ना गुनना चातुरी,	यह तो बात सहज ।
काम दहन मन बस करन,	गगन चढ़न सुसकल ॥ ६४ ॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये,	लिखि लिखि भये जु ईट ।
कवीर अन्तर मेमकी,	लागी नेक न छीट ॥ ६५ ॥
नाम भजो मन बसि करो,	यही बात है तंत ।
काहे को पढ़ि पचि मरो,	कोटिन ज्ञान गिरंथ ॥ ६६ ॥
करता था तो क्यों रहा,	अब करि क्यों पछिताय ।
योवै पेड़ बगूलका,	आम कहा ते खाय ॥ ६७ ॥
मैं कथि कहि कहि कहि गये,	ब्रह्मा विष्णु महेस ।
सत्तनाम तत सार है,	सब काहू उपदेस ॥ ६८ ॥
जिनमें जितनी बुद्धि है,	तितनी देव बताय ।
वाको घुरा न मानिये,	और कढाते लाय ॥ ६९ ॥
काल (का) जीव मानै नही,	कोटिन कहू बुझाय ।
मैं खैचूं सतलोक को,	बांधा जमपुर जाय ॥ ७० ॥

आत्म पूजा जिव दया, पर आत्म की सेव ।
 कहे कबिर सतनाम भज, सहज परम पद लेव ॥ ७१ ॥
 सतनाम सुमिरन करै, सतगुरु पद निज ध्यान ।
 आत्म पूजा जिव दया, लहे सो मुक्ति अमान ॥ ७२ ॥
 चातुर को चिंता घनी, नहि मूरख को लाज ।
 सर अवसर जानै नही, पेट भरन सँ काज ॥ ७३ ॥
 कंचन को कलु ना लगे, आग न कीडा खाय ।
 बुरा भला होय वैश्व, कदी न नरके जाय ॥ ७४ ॥
 भूख गई भोजन मिले, ठंड गई कंवाय ।
 जोवन गई तिरिया मिले, ताको आग लगाय ॥ ७५ ॥
 मांगन को भल बोलनो, चोरन को भल चूप ।
 मांली को भल बरसनो, धोधी को भल धूप ॥ ७६ ॥
 धोती पोती बिनती, गुरु सेवा सतसंग ।
 ये औरनसँ ना बनै, खान खुतावन अंग ॥ ७७ ॥
 तीन तापमें ताप है, तिनका अनैत उपाय ।
 ताप आत्म महाबली, संत बिना नहि जाय ॥ ७८ ॥
 हिय हीरा की कोठरी, बारवार मत खोल ।
 मिले हिराका जोहरी, तब हीराका मोल ॥ ७९ ॥
 हां न जाको गुन लहे, तहां न ताको ठांव ।
 ओरी बस के बया करे, दीगंवर के गांव ॥ ८० ॥

अति दृढ मत कर बाँवरे, दृढसे बात न होय ।
 ज्युं ज्युं भीजे कापरी, त्युं त्युं मारी होय ॥८१॥
 सबसे हिलिये सबसे मिलिये, सबका लीजे नाम ।
 हांजी हांजी सबसे कहिये, बसिये अपने ठाम ॥८२॥
 वाद विवादां मति करे, कह नित अपना काम ।
 गुरु चरनों चित लाय के, भज ले केवल राम ॥८३॥
 बालू जैसी करकरी, कुजल जैसी धूप ।
 ऐसी मीठी कहु नहीं, जैसी मीठी चूप ॥८४॥
 रितु बसंत याचक भया, हरखि दिया दुम पात ।
 ताते नव पल्लव भया, दिया दूर नहि जात ॥८५॥
 जो जल बाढे नावमें, घरमें बाढे दाम ।
 दोनों हाथ उलीचिये, यही सयाना काम ॥८६॥
 काम क्रोध वृष्णा तजै, तजै मान अपमान ।
 सद्गुरु दाया जाहि पर, जम सिर मरदे मान ॥८७॥
 काया सों कारज करे, मकल काज की रीत ।
 कर्म भवि सब भेटके, सय नाम सों प्रीत ॥८८॥
 गुरु मुग्य सह प्रतीति कर, हर्ष सोक विसराय ।
 दया क्षमा सत सोल गहि, अमरलोक को जाय ॥८९॥
 खाख लपेटे जो रहें, उन्हें नीच पति लेख ।
 साई के मन भावही, ज्यों कीकीमें रेख ॥९०॥

भाव मुआ तो मरन दे, सदा चलैगा नाम ।
 कबीर द्वारै बैठि के, करिले अपना काम ॥९१॥
 मान अभिमान न कीजिये, कहैं कबीर पुकार ।
 जो सिर साधू ना नमै, सो सिर काटि उतार ॥९२॥
 सांझ सवेरे वखत दो, सीस नवावन जाय ।
 कबीर रात जु ना पढ़ै, साधु धरै जो पाय ॥९३॥
 गुरु को पूजै गुरुमुखी, वाना पूजै साध ।
 पट दरसन जो पूजहीं, ताका मता अगाध ॥९४॥

सब्द को अंग ।



कबीर सद् सरीर में, विन गुन बाजै तांत ।
 बाहर भीतर रमि रहा, ताते छूटी भ्रांत ॥ १ ॥
 सद् सद् बहु अन्तरा, सार सद् चित देह ।
 जा सद् सादिव मिले, सोइ सद् गहि लेह ॥ २ ॥
 सद् सद् बहु अन्तरा, सद् सार का सीर ।
 सद् सद् का खोजना, सद् सद् का पीर ॥ ३ ॥
 सद् बराबर धन नही, जो कोय जानै मोल ।
 हीरा सो दामों मिले, सद् हि मोल न तोल ॥ ४ ॥

सन्द कहै सो कीजिये,	बहुतक गुरु लगार ।
अपने अपने . लोम को,	ठौर ठौर बटपार ॥ ५ ॥
सन्द न करै मुलाहिजा,	सन्द फिरै चहुँ वार ।
आपा, पर जब चीन्डिया,	तब गुरु सिष व्यग्रहार ॥ ६ ॥
सन्द हमारा हम सन्द के,	सन्द ब्रह्म का कूप ।
जो चाहै दीदार को,	परख सन्द का रूप ॥ ७ ॥
सन्द दुराया ना दुरै,	कहू जु ढोल बजाय ।
जो जन होवै जौदरी,	लैहैं सीस चढाय ॥ ८ ॥
सन्द पाय सुरति राखहि,	सो पहुचै दरवार ।
कहै कविर तहा देखिये,	बैठा पुरुष हमार ॥ ९ ॥
सन्द उपदेस जु मैं कहं,	जु कोय मानै संत ।
कहै कवीर विचारि के,	ताहि मिलावै कंत ॥ १० ॥
सन्द भेद तब जानिये,	रहै सन्द के पाँहि ।
सन्द सन्द परगट भया,	दजा दीखै नाहि ॥ ११ ॥
सन्द खोजि मन प्रस करै,	सहज जोग है यह ।
सत्त सन्द निज सार है,	यह तो झूठी देह ॥ १२ ॥
सन्द गुरु का सन्द है,	काया का गुरु काय ।
भक्ति करै नित सन्द की,	सतगुरु यौ समझाय ॥ १३ ॥
सन्द सन्द मय कोय कहै,	सन्द का करो विचार ।
एक सन्द सीतल करै,	एक सन्द दे जार ॥ १४ ॥

एक सब्द सुख खानि है,
 एक सब्द बंधन कटै,
 निझर झरै अनहद बजै,
 अविगत अंतर प्रगट है,
 रैन समानी भानु में,
 अकास समाना सब्दमें,
 खोजी हुआ सब्द का,
 कहै कविर गहि सब्द को,
 दारू तो सब को(य) करै,
 जो दारू सतगुरु दई,
 मता हमारा मंत्र है,
 सब्द हमारा कल्पतरु,
 सोइ सब्द निज सार है,
 बलिहारी वा गुरुन की,
 वह तो मोती जानियो,
 यह तो मोती सद्गुरु का,
 सीखे सुनै विचारि ले,
 बिना समझै सब्द गहै,
 यही बड़ाई सब्द की,
 बिना सब्द नहि ऊरै,

एक सब्द दुख रासि ।
 एक सब्द गल फांसि ॥१६॥
 तब ऊपजै ब्रह्मज्ञान ।
 लगा मेम निज ध्यान ॥१७॥
 भानु अकासे माँहि ।
 सब्द परै कहूँ नॉहि ॥१७॥
 धन्य संत जन सोय ।
 कबहु न जाय विगोय ॥१८॥
 वह सुभाय की नॉहि ।
 वही सब्द के माँहि ॥१९॥
 हम सा है सो लेह ।
 जो चाहै सो देह ॥२०॥
 जो गुरु दिया बनाय ।
 सीप विगोय न जाय ॥२१॥
 धुई पीत के साथ ।
 बेधि रहा सब गात ॥२२॥
 ताहि सद्गुरु देय ।
 बल न लाहा लेय ॥२३॥
 जैसे चुंयक भाय ।
 केता करै उपाय ॥२४॥

सही टेक हैं तापुकी,	जाको सतगुरु टेक ।
टेक निवाहैं देह भरि,	रहै सब्द मिलि एक ॥ २५ ॥
काल फिरै सिर ऊपरै,	जीवहि नजरि न आय ।
कहैं कविर गुरु सब्द गहि,	जमसैं जीव बचाय ॥ २६ ॥
ऐसा मारा सब्द का,	मुआ न दीसै कोय ।
कहैं कविर सो ऊपरै,	घड़पर सीसन होय ॥ २७ ॥
संत संतोपी सर्वदा,	सब्द हि भेद विचार ।
सतगुरु के परताप ते,	सहज सील मत सार ॥ २८ ॥
सरसा सर जन वेधिया,	सर विन गम कछु नाँहि ।
लागी चोट जो सब्द की,	करक कलेजे पाँहि ॥ २९ ॥
सारा बहुत पुकारिया,	पीर पुकारै और ।
लागी चोट जो सब्द की,	रहा कवीरा ठौर ॥ ३० ॥
लागी लागी बया करै,	लागत रही लगार ।
लागी तब ही जानिये,	निकसी जाय दुमार ॥ ३१ ॥
विन सर और कमान विन,	मारा है जु कसीस ।
बाहर धावन दीसई,	वेधा नख सिख सीस ॥ ३२ ॥
मैं कलिका कोतवाल हूँ,	लेहू सब्द हमार ।
जो या सब्दहि मानि है,	सो उतरै भी पार ॥ ३३ ॥
सब को सुख दे सद्गका,	अपनी अपनी ठौर ।
जा घट्यो साद्वि वमै,	ताहि न चीन्है और ॥ ३४ ॥

सीतल सद्ग उचारिये,	अहं आनिये नाँहि ।
तेरा प्रीतम तुझहि में,	दुसमन भी तुझ माँहि ॥ ३५ ॥
हरिजन मोई जानिये,	जिन्हा कहै न मार ।
आठ पहर चितवत रहे,	गुरु का ज्ञान विचार ॥ ३६ ॥
टीला टीली हाँडि के,	फोरि करै मैदान ।
समझ सफा करता चलै,	सोइ सद्ग निरवान ॥ ३७ ॥
कुबुधि कपानी चढि रहे,	कुटिल वचन के तीर ।
भरि भरि भरि कान में,	सालै सकल सरीर ॥ ३८ ॥
कुटिल वचन सब तेँ बुरा,	जारि करै सब छार ।
साधु वचन जल रूप है,	वरसै अमृत धार ॥ ३९ ॥
कर गहन दुरजन वचन,	रहे सन्तजन टारि ।
विजुली परै समुद्र में,	कहा सकेगी जारि ॥ ४० ॥
कुटिल वचन नहि बोलिये,	सितल बैन ले चीन्हि ।
गंगा जल सीतल भया,	परवत फोडा तीन्हि ॥ ४१ ॥
सीतलता तब जानिये,	समता रहै समाय ।
विष छाँटे निरविष रहै,	सब दिन दूखा जाय ॥ ४२ ॥
खोद खाद धरती सहै,	काट कूट वनराय ।
कुटिल वचन साधू महे,	औंसे सदा न जाय ॥ ४३ ॥
जिन्हा में अमृत बसै,	जो कोय जानै बोल ।
विष वामृकिका ऊनरै,	जिन्हा तनै हिलोल ॥ ४४ ॥

४० करगटन—करयन ।

४४. सर्प का विष जीभ से चूस लिया जाता है ।

जिन्हा सक्कर दूध जिभ,	जिन्हा प्यारीजागि ।
जिन्हा माजन रलि मिले,	जिन्हा छारै आगि ॥ ४५ ॥
सदज तगाजू आनि कै,	सब रस देखा तोल ।
सब रस पांहीं जीम रस,	जु कोय जानै बोल ॥ ४६ ॥
मुख आवै सोई कहै,	बोल नहीं विचार ।
हठे पराडं आनया,	जीम बांधि तरवार ॥ ४७ ॥
बोलै बोल विचारिके,	बैठे ठौर सँभारि ।
कहै कविर ता दासको,	कबहु न आवै हारि ॥ ४८ ॥
रैन तिमिर नासत भयो,	जबही मानु उगाय ।
सार सद्र के जानने,	करम भरम मिटि जाय ॥ ४९ ॥
जत्र मंत्र सब झूठ है,	प्रति भरमो जग कोय ।
सार सद्र जानै विना,	कागा हंस न होय ॥ ५० ॥
सार सद्र निज जानिके,	जिन कीन्ही परतीति ।
काग कुपन नजि हंस है,	चले सु भोजल जीति ॥ ५१ ॥
सार सद्र जानै विना,	जिव परल में जाय ।
काया माया थिर नहीं,	सद्र लेहु अरथाय ॥ ५२ ॥
सार सद्र को खोजिये,	सोई सद्र सुख रूप ।
अन समझ तो कुछ नहीं,	बह तो दुखका रूप ॥ ५३ ॥
सार हि सद्र विचारिये,	सोई सद्र सुख देय ।
अन समझा सद्रै कहै,	बहु न लाहा लेय ॥ ५४ ॥

कर्मफंद जग फंदिया,
 जाहि सद्ध ते मुक्ति होय,
 सतजुग जेता द्वापरा,
 सार सद्ध एक साच है,
 पृथिवी अपहु तेज नहीं,
 अलल पच्छि तहां है रहे,
 सतगुरु सद्ध परमान,
 और झूठ सब ज्ञान,
 ज्ञानी सुनहु संदेस,
 कह्यो मुक्तिपुर देस,
 मन तहँ गगन समाय,
 नहि आवै नहि जाय,
 ज्ञानी करहु विचार,
 सत्त सद्ध निज सार,
 जगमें बहु परपंच,
 नहि पावै कोय संच,
 गहै सद्ध निज मूल,
 सुक्षम में अस्थूल,
 सद्ध हमारा आदिका,
 आगा पीछा सो करै,

जप तप पूजा ध्यान ।
 सो न परा पहिचान ॥ ५५ ॥
 यह कलजुग अनुमान ।
 और झूठ सब ज्ञान ॥ ५६ ॥
 नहीं वायु आकास ।
 सत्त सद्ध परकास ॥ ५७ ॥
 अनहद बानी ऊचरै ।
 कहैं कवीर विचारिके ॥ ५८ ॥
 सद्ध विवेकी पेखिया ।
 तीन लोक के बाहिरे ॥ ५९ ॥
 धुनि सुनि सुनिके मगनहै ।
 सुन सद्ध थिति पावहीं ॥ ६० ॥
 सतगुरु ही सें पाइये ।
 और सबै विस्तार है ॥ ६१ ॥
 तामें जीव भुलान सब ।
 सार सद्ध जानै विना ॥ ६२ ॥
 सिंधुहि बुंद समान है ।
 बीज बिछ विस्तार ज्युं ॥ ६३ ॥
 हमसँ बली न कोय ।
 जो बल हीना होय ॥ ६४ ॥

घर घर हम सबसे कहा,	सब्द न सुनै हमार ।
ते भवसागर बुझीं,	लख चौरासी धार ॥६५॥
मैं कभीर विचलौ नहीं,	सब्द मोर समरथ ।
ताको लोक पठाइ हो,	(जो) चढे सब्द के रथा ॥६६॥
सब्द सम्हारे बोलिये,	सब्द के हाथ न पांव ।
एक सब्द औपध करै,	एक सब्द करै घाव ॥६७॥
एक सब्द सो प्यार है,	एक सब्द कूप्यार ।
एक सब्द सब दुश्मना,	एक सब्द सब यार ॥६८॥
सब्द जु ऐसा बोलिये,	तनका आपा खोय ।
औरन को सीतल करै,	आपन को सुख होय ॥६९॥
जिहि सब्दे दुख ना लगे,	सोई सब्द उचार ।
तपत मिठी सीतल भया,	सोइ शब्द ततसार ॥७०॥
कागा काको धन हरै,	कोयल काको देत ।
पीठा सब्द सुनाय के,	जग अपनो करि लेत ॥७१॥
जिभ्या जिन वसमें करी,	तिन वस कियो जहान ।
नहि तो औगुन ऊपजे,	कहि सब संत सुजान ॥७२॥
कहने को चुकै नहीं,	जेतो जिस की दौर ।
सबै सब्द सद्दिदान हैं,	परख सब्द सो ठौर ॥७३॥
सब्द गहै सो मरद है,	मेहरी सब संसार ।
पढ़ि पंडित रंढिया भये,	बिन मेटे मतार ॥७४॥

विश्वास को अंग ।

जाके मन विश्वास है,	सदा गुरु हैं संग ।
कोटि काल झक झोलहीं,	तऊ न हो मन भंग ॥ १ ॥
सत्तनाम की लौ लगी,	जगसँ दूर रहाय ।
मोहि भरोसा नामका,	बदा नरक न जाय ॥ २ ॥
सत्तनाम सँ मन मिला,	जम सँ परा दुराय ।
मोहि भरोसा इष्ट का,	बंदा नरक न जाय ॥ ३ ॥
रचनहार को चीन्हि ले,	खाने को क्या रोंय ।
मन मन्दिर में पैठि के,	तान पिछोरी सोय ॥ ४ ॥
भूखा भूखा क्या करै,	कहा सुनावै लोग ।
भांडा घड़िया मुख दिया,	सोही पूरन जोग ॥ ५ ॥
सिरजन हारे सिरजिया,	आटा पानी लौन ।
देनेदारा देत है,	भेटनदारा कौन ॥ ६ ॥
सौई इतना दीजिये,	जामें कुटुंब सपाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ,	साधु न भूखा जाय ॥ ७ ॥
हरिजन गोंठि न बांधीं,	उदर समाना लेय ।
आगे पीछे हरि खड़े,	जो मागें सो देय ॥ ८ ॥
कबीर चिन्ता क्या करूँ,	चिन्ता सों क्या होय ।
मेरी चिन्ता हरि करै,	चिन्ता मोहि न कोय ॥ ९ ॥

चिन्तामनि चित में बसै,	सोई चित में आनि ।
बिना प्रभु चिन्ता करै,	यह मूरख की वानि ॥१०॥
चिन्ता छोड़ि अचिन्त रह,	देनहार सपरत्य ।
पसू पखेरु जन्तु जीव,	तिन के गांठि न ढेध ॥११॥
अंडा पालै कातुई,	बिन धन राखै पोख ।
यौ करता सब को करै,	पालै तीनों लोक ॥१२॥
पौ फाटी पगरा भया,	जामै जीवा जून ।
सब काहू को देत है,	चोंच समान ^१ चून ॥१३॥
खोजि पकरि विश्वास गहु,	धनी मिलेंगे आय ।
अजिया गज मस्तक चढ़ी,	निरभय को पल खाय ॥१४॥
पांडर पिंजर मन भँवर,	अरथ अनूपम वास ।
एक नाम सींचा अमी,	फल लागी विश्वास ॥१५॥
पद नाथै लौलीन है,	फटै न संसै फांस ।
सबै पछोरै थोथरा,	एक बिना विश्वास ॥ १६ ॥
गाया जिन पाया नहीं,	अनगाये ते दूर ।
जिन गाया विश्वास गहि,	ताकै सदा हजूर ॥ १७ ॥
गावन ही में रोवना,	रोवन ही में राग ।
एक वन हि में घर करै,	एक घर ही वैराग ॥ १८ ॥
घट में जोति अनूप है,	रिजक मौतजिव साथ ।
कहा सार हैं मनुसका,	कल्प धनी के हाथ ॥ १९ ॥

साईं दीया सहज में, सोई रिजक हलाल ।
 हैवां सबै हराप है, तजि संसै जिव साल ॥ २० ॥
 सब ते भली मवूकरी, भाति भाति का नाज ।
 दावा कीसी का नही, विना विलायत राज ॥ २१ ॥
 जाके दिल में हरि वसै, सो जन कलपै काहि ।
 एके लहरि समुद्रकी, दुख दारिद्र वहि जाहि ॥ २२ ॥
 आगे पीछे हरि खड़ा, आप सहारे भार ।
 जन को दुःखी क्यों करै, समरथ सिरजन हा ॥ २३ ॥
 भक्त भरोसे राम के, निधडक ऊंची दीठ ।
 तिनकुं करम न लागई, राम ठकोरी पीठ ॥ २४ ॥
 सौटा कीजै राम सों, भरिये गून हलाय ।
 जो कहहुं टाडा लुटे, पूजी विलै न जाय ॥ २५ ॥
 राखनहारा राम है, जाय जंगल में बैठ ।
 हरि कोपै नहि ऊचै, सात पताले पैठ ॥ २६ ॥
 डोरी लागी भय मिटा, मन पाया विसराम ।
 चित्त चहुटा राम सों, याही केवल धाम ॥ २७ ॥
 करम करीमा लिखि रहा, अब कटु लिखा न होय ।
 मासा घटै न तिल बढे, जो सिर पटके कोय ॥ २८ ॥
 करम करीमा लिखि रहा, नर सिर माग अभाग ।
 जो कहहुं चिन्ता करै, तौट न आगौ आग ॥ २९ ॥

२०. हलाल-धर्मयुक्त । हैवा-बलात्कार ।

२५. टाडा—बैलों की कतार । २९. आग—आगि, सामने ।

जो सांचा विस्राम है,	तौ दुख क्यों ना जाय ।
कहे कबीर विचारि के,	तन मन देहि जराय ॥ ३० ॥
विस्वासी है गुरु भजै,	लोहा कंचन होय ।
नाम भजै अनुराग ते,	हरप सोक नहि दोय ॥ ३१ ॥
काहे को तलफत फिरै,	काहे पावै दुख ।
पहिले रिजक बनायके,	पीछे दोनो भूख ॥ ३२ ॥
अब तूं काहेको डरै,	सिरपर हरिका हाथ ।
हस्ती चढ़कर डोलिये,	कूकर भुसे जु लाख ॥ ३३ ॥
मेरो चित्यो हरि ना करे,	क्या करू मैं चित ।
हरि को चित्यौ हरि करे,	ता पर रहू निचित ॥ ३४ ॥
राम किया सोई हुआ,	राम करै सो होय ।
राम करै सो होयगा,	काहा कल्पौ कोय ॥ ३५ ॥
ऐसा कौन अभागिया,	जो विश्वासै और ।
राम विना पग धरनकुं,	कहो कहां है ठौर ॥ ३६ ॥
किये विना मागै विना,	जान विना सब आय ।
काहे को मन कल्पिये,	सहजे रहा समाय ॥ ३७ ॥
मुरदे को भी देव है,	कपडा पानी आग ।
जीवत नर चिता करै,	ताका बडा अभाग ॥ ३८ ॥
पीछे चाहे चाकरी,	पहिले पहिना देय ।
ता साहिव सिर मीपते,	वयुं कसकाता देह ॥ ३९ ॥

भजन भरोसै आपके, मगहर तजा शरीर ।
तेज पुंज परकास में, पहुँचै दास कबीर ॥ ४० ॥

सती को अंग ।



अब तो ऐसी है परी, मन भति निरमल कीन्ह ।
मरने का भय छाँड़ि के, हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥ १ ॥
ढोल ददामा बाजिया, सब्द सुना सब कोय ।
जो सर देखी साने भगै, दोउ कुल हाँसी होय ॥ २ ॥
सती जरन को नीकसी, चिन धरि एक विवेक ।
तन मन सौया पीव को, अंतर रही न रेख ॥ ३ ॥
सती जरन को नीकसी, पिय का सुमिरि सुनेह ।
सब्द सुनत जिय नीकसा, भूलि गई सुधि देह ॥ ४ ॥
सती सूर तन ताइया, तन मन कीया वान ।
नाम जपन धिता मिटी, निरसा तनसैं प्रान ॥ ५ ॥
सती विचारी सत किया, काँगें सैज विडाय ।
सती ले पिय संग में, चहुँ दिसि आग लगाय ॥ ६ ॥

१. सिंधोरा-मिदूदान । सती होने के समय अपने आप को शृंगार से सुसज्जित कर लेती है । २. सर—निता ।

५. वान—वानी, पेरना ।

सती पुकारै ^१सर चढी, सुनरे मीत मसान ।
^२लोग बटाऊ सब गये, हम तुम रहे निदान ॥ ७ ॥
 सती डिगै तो नीच घर, सूर डिगै तो कूर ।
 साधु डिगै तो सिखरते, ^३गिरि भय चकना चूर ॥ ८ ॥
 सती न पीसै पीसना, जो पीसै रॉड ।
 साधु भीख न मांगई, जो मागै सो भांड ॥ ९ ॥
 मैं तोहि पूछे हे सखी, जीवत क्यों न जराय ।
 मूये पीछे सत करै, जीवत क्यों न कराय ॥ १० ॥
 ऐसी भाँति जो सति है, सो निज मुक्ति परमान ।
 मुक्ति देव संसार को, सोऽ सती तू जान ॥ ११ ॥
 साथ सती औ सूरमा, इनका मता अगाध ।
 आसा छाँडै देहकी, तिनमें अधिका साध ॥ १२ ॥
 साथ सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गजदंत ।
 ते निकसै नहि बाहुरै, जो जुग जाहि अनंत ॥ १३ ॥
 साथ सती औ सूरमा, कबहुँ न फेरै पीठ ।
 तीनों निकसी , बाहुरै, तिनका मुख नहि दीठ ॥ १४ ॥
 साथ सती औ सूरमा, इन पट्टर कोय नाँहि ।
 अगम ग्रंथ को पग धरै, ^४गिरि तो कहाँ समाहि ॥ १५ ॥

१. पा० सत । २. संगी थे सो चलि गये । ३. पा० होय चरनकी धूर ।

४. लैटे तो कित जाहि ।

कबीर सतियाँ कुसतियाँ, जरै मरे की वार ।
 सतियां सोई जानिये, जरै सँभारि सँभारि ॥१६॥
 सत तो तासों कीजिये, जहँवां मन पतियाय ।
 ठाम ठाम के सत्त सों, कुल कलंक चढि जाय ॥१७॥
 आँखडियां काजल भरी, मुख में भरी तंचोल ।
 चलिहारी गुरु आपनी, साहिव सेति किलोल ॥१८॥
 सतिया सोई अस तिया, जलती है इक वार ।
 नित जलना है संत कूं, नाम पुकार पुकार ॥१९॥
 सहज जलना सतिया तना, सूखै काठ मिलाय ।
 लै धैठी पिय अपना, चहुं दिस आग लगाय ॥२०॥
 सतिया का सुख देखना, जले पीव के संग ।
 आपैं आग लगात है, तऊ न मोहै अंग ॥२१॥
 सती भई है सत्त कूं, सरीर कीन्ही सान ।
 बाट बटाऊ चलि गये, हम तुम रहै निदान ॥२२॥
 सती विचारी सत किया, ले अपना वे भेष ।
 एक एक जब है मिली, अंतर रही न रेख ॥२३॥
 सती सूर तन साहिया, तनमन किया जु ध्यान ।
 दिया महोला पीव कूं, १मडहट करै बखान ॥ २४ ॥
 सूर सती स्वर्ग पाइ है, जाय मिले सब कोय ।
 कबीर सौदा नाम सूँ, सिर विन कदी न होय ॥ २५ ॥

सती चपाकै अगनिसूं, मूरा सीस डुलाय ।
 साधु जु चूकै टेक सों, तीन लोक अथडाय ॥ २६ ॥
 ये तीनों डलटे बुरे, साधु सती औ सर ।
 जगमें हांसी होयगी, मुख पर रहै न नूर ॥ २७ ॥

पतिव्रता को अंग ।

पतिव्रता के एक है, व्यभिचारिन के दोष ।
 पतिव्रता व्यभिचारिनी, कहु क्यों मेला होय ॥ १ ॥
 पतिव्रता को मुख घना, जाके पति है एक ।
 मन मैली व्यभिचारिनी, ताके स्वसम अनेक ॥ २ ॥
 पतिव्रता मैली भली, काली कुचल कुरूप ।
 पतिव्रता के रूप पर, वारों कोटि सरूप ॥ ३ ॥
 पतिव्रता मैली भली, गले काँचकी पोत ।
 सब सखियनमें यों दियै, ज्यों सूरज की जोत ॥ ४ ॥
 पतिव्रता पतिको भजै, पति भजि घर विस्वास ।
 आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस ॥ ५ ॥
 पतिव्रता पतिको भजै, और न आन सुहाय ।
 सिंघ बच्चा जो लँघना, तो भी यास नखाय ॥ ६ ॥

पतिवरता तब जानिये, रती न खंडै नैन ।
 अंतर तो सूची रहे, बोलै मीठा वैन ॥ ७ ॥
 पतिवरता ऐसी रहे, जैसे चोली पान ।
 जब सुख देखै पीवका, चित्त न आवै आन ॥ ८ ॥
 पतिवरता व्यभिचारनी, इक मंदिर में वास ।
 वह रंग राती पीवके, घर घर फिरै उदास ॥ ९ ॥
 पतिवरता के एक तू, और न दूजा कोय ।
 आठ पहर निरखत रहै, सोइ सुहागिन होय ॥ १० ॥
 पतिवरता तो पिव भैजै, ^१पिया पिया रट लाय ।
 जीवत जस है जगत में, अन परम पद पाय ॥ ११ ॥
 नना अंतर आव तू, नैन झॉपि तुहि लेव ।
 ना मैं देखों और को, ना तुहि देखन देव ॥ १२ ॥
 कबीर सीप समुद्रकी, रटे पियास पियास ।
^२और बुँद को ना गहे, स्वाति बुँद की आस ॥ १३ ॥
 कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहि लेय ।
 पानी पीवै स्वाति का, सोभा सागर देय ॥ १४ ॥
 कबीर भेरै बैठिके, सघसों कहूँ पुकारि ।
 धरा धरै सो धरकुटी, अधर धरै सो नारि ॥ १५ ॥
 धरिया कूँ धीजूँ नही, गहूँ अधर की वाँहि ।
 धरिया अधर पिछानिया, फलू धरावहि नाँहि ॥ १६ ॥

१५. धरा—कृत्रिम, बनावटी, । धरे—पूने । धरकुटी—व्यभिचारिणी ।

१. पाठ पीव पान । २. पा० समुंद्र हि तिनका बर गिनो ।

नाम न रटा तो क्या हुआ,	जो अंतर है हेत ।
पतिवरता पित्तको भजै,	मुख से नाम न लेत ॥ १७ ॥
सुरति सपानी नाम में,	नाम किया परकास ।
पतिवरता पित्त को मिली,	पलक न छाँडै पास ॥ १८ ॥
साँई मोर सुलच्छना,	मैं पतिवरता नारि ।
देहु दीदार दया करो,	मेरे निज भरतार ॥ १९ ॥
मीठ अढो है तुझसे,	बहु गुनियाला कंन ।
जो हसि बोलूँ और मे,	नील रँगाऊँ देन ॥ २० ॥
साँई मेरा एक तू,	और न दू ता कोय ।
दूजा साँई क्या करुं,	तुझ सम और न कोय ॥ २१ ॥
साँई मेरा एक तू,	और न दूजा कोय ।
दूजा साँई जो करुं,	जो 'कुलदूजा होय ॥ २२ ॥
मो चित पलहु न वीसरूँ,	तुम परदेस दि जाय ।
यह अंग और न भेलसी,	जयतव तुम मिलि आय ॥ २३ ॥
कबीर रेख सींदूर अर,	काजर दिया न जाय ।
नैनन मोतम रभि रहा,	दूजा कहाँ समाय ॥ २४ ॥
आठ पहर चौसठ बही,	मेरे और न कोय ।
नैना माँझी तू बसै,	नींद ठौर नहि होय ॥ २५ ॥
बार बार क्या आखिये,	मेरे मन की सोय ।
कलि तो ऊखल होयगी,	साँई और न होय ॥ २६ ॥

जो यह एक न जानिया,	बहु जाने क्या होय ।
एकै ते सब होत है,	सब ते एक न होय ॥२७॥
जो यह एकै जानिया,	तो जानो सब जान ।
जो यह एक न जानिया,	सबही जान अजान ॥२८॥
सब आये उस एकमें	हार पात फल फूल ।
अब कहो पाछे क्या रहा,	गहि पकडा जव मूल ॥२९॥
एकै साथै सब साथै,	सब साथै सब जाय ।
माली सींचै मूलको,	फूलै फूलै अघाय ॥३०॥
जो मन लागै एक सौ,	तो निह्वारा जाय ।
तुरा दो मुख बाजता,	यना तमाचा खाय ॥३१॥
एक नाम को जानि कर,	दूजा दिया बढाय ।
जप तप तीरथ ब्रत नहीं,	सतगुरु चरन समाय ॥३२॥
मैं अवला पिव पिव करूं,	निरगुन मेरा पीव ।
सुन सनेही राम विन,	और न देखू जीव ॥३३॥
मैं सेवक समरथ का,	कचहु न होय अकाज ।
पतिवरता नंगी रहे,	वाही पति को लाज ॥३४॥
मैं सेवक समरथ का,	कोइ पुरवला माग ।
सूनी जागी सुंदरी,	साँई दिया सुहाग ॥३५॥
एक चित होय न पिव मिलै,	पतिवरत ना आवै ।
चंचल मन चहुँ दिसि फिरै,	पिय कहो कैसे पावै ॥३६॥

सुंदरि तो सौँई मजै,	तजै खलक की आस ।
ताहि न कबहुँ परिहरै,	पलक न छाडै पास ॥३७॥
चढी अखाडे सुन्दरी,	मांडा पीवसैं खेल ।
दीपक जोया ज्ञान का,	काम जलै ज्यों तेल ॥३८॥
सूरा के तो सिर नहीं,	दाता के धन नाँहि ।
पतिवरता के तन नहीं,	सुरति वसैं पिव माँहि ॥३९॥
दाता के तो धन घना,	सूरा के सिर वीस ।
पतिवरता के तन सही,	पत राखै जगदीस ॥४०॥
भोरे भूली खसम को,	कबहुँ न किया विचार ।
सतगुरु आनि बताइया,	पूरवला भरतार ॥४१॥
जो गावै सो गावना,	जो जोडै सो जोड ।
पतिवरता साधू जना,	यहि कलिमें है थोड ॥४२॥
घर परमेश्वर पाहुना,	सुनो सनेही दास ।
खट रस भोजन भक्ति करि,	कबहुँ न छाडै पास ॥४३॥
एक जानि एकै समझ,	एकै कै गुन गाय ।
एक निरख एकै परख,	एकै सौँ चित लाय ॥४४॥
जीवत मिरतक हो रही,	तन मन सेती नेह ।
कहै कविर ता नारि की,	चरन कमल की खेह ॥४५॥
ऊँची जाति पपीहरा,	पीये न नीचा नीर ।
कै सुरपति को जाँचई,	कै दुख सई सरीर ॥४६॥

पडा पपीहा सुरसरी, लगा धधिक का वान ।
 मुख मूँदे सुरति गगन में, निकसि गये यूँ प्रान ॥४७॥
 पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज ।
 तन छाडै तो कुछ नही, पन छाडि है लाज ॥४८॥
 पपिहा का पन देख करि, धीरज रहै न रच ।
 मरते दम जलमें पडा, तऊ न बोरी चंच ॥ ४९ ॥
 चातक सुन हि पढावई, आन नीर मति लेय ।
 मम कुल याही रीत है, स्वाति बुँद चित देय ॥५०॥
 चातक सुत हि पढावई, सुनो बात यह तात ।
 आन नीर नहि पीवना, यह सपूत की बात ॥ ५१ ॥
 चातक चित हि चुभि गई, सुत सपूत की बात ।
 आन नीर परसौं नहीं, सुनो तात यह बात ॥ ५२ ॥
 दोजख ह्महि अंगिनिया, या दुख नार्ही मुझ ।
 मेरे भित्त न चाहिये, बौछि पियारे तुझ ॥ ५३ ॥
 पिय सनमुख सेवा करे, सो पतिवरता जान ।
 पिय तजि किन जित जोरमे, वर्त भंग तेहि मान ॥ ५४ ॥

विभिचारिनि को अंग ।



कवीर कलियुग आयके,	कीया चहुन जमीत ।
जिन दिल बाँधा एक सै,	ते सुखसोय निचित ॥ १ ॥
गुरु मरजाद न भक्तिपन,	नहि पिवका अविकार ।
कहै कविर विभिचारिनी,	निच नया भरतार ॥ २ ॥
विभिचारिनि विभिचार में,	आठ पहर हुशियार ।
कहै कविर पतिवन्द विन,	क्यों रीझै भरतार ॥ ३ ॥
विभिचारिन के वस नहीं,	अपनो तन मन दोय ।
कहै कविर पतिवस्त विन,	नारी गई विगोय ॥ ४ ॥
नारि कदावै पीव की,	रहे और सँग सोय ।
जार सदा मनमें वसै,	खसम खुसी क्यों होय ॥ ५ ॥
सेज बिछावै सुन्दरी,	अन्तर परदा होय ।
तन सौपै मन दे नहीं,	सदा दुहागिन सोय ॥ ६ ॥
कवीर मन दीया नहीं,	तन कर डाला जेर ।
अन्तरजापी लखि गया,	बात कहन का फेर ॥ ७ ॥
मुखसँ नाम रटा करै,	निस दिन साधुन संग ।
कहु थौ कौन कुफेर तै,	नहीं लागत रंग ॥ ८ ॥

कबीर पथ निहारतां,	आनि पडी है साँझ ।
जन जन को मन राखतां,	बेस्या रहि गइ बौझ ॥ ९ ॥
रात जगावै राँडिया,	गावै विषया गीत ।
मारै लौंदा लापसी,	गुरु न आवै चीत ॥ १० ॥
कबीर जो कोइ सुन्दरी,	जानि करै विभिचार ।
ताहि न कन्हू आदरै,	परम पुरुष भरतारं ॥ ११ ॥
सत्तनाम को छँडिकर,	करै और की आस ।
कहैं कवि ता नारि को,	होय नरकमें वास ॥ १२ ॥
नौ सत साजै सुन्दरी,	तन मन रही सजोय ।
पिय के मन मानै नहीं,	विडैव किये क्या होय ॥ १३ ॥
सौ बरसों भक्ति करै,	एक दिन पूजै आन ।
सो अयराधी आत्मा,	पडै चौरासी खान ॥ १४ ॥
सत्तनाम को छँडि कै,	करै आन को जाप ।
ताके मुँहदे दीजिये,	नौसादर को वाप ॥ १५ ॥
सत्तनाम को छँडि कै,	करै और को जाप ।
बेस्या केरां पूत ज्यों,	कहै कौन को वाप ॥ १६ ॥
सत्तनाम को छँडि कै,	राखै करवा चौथि ।
सो तो होगी सूकरी,	तिन्हें रामसों कौथि ॥ १७ ॥

१३. नोसत=सोलह शृंगार । १५. नोसादर को वाप=मैला ।

सचनाम को छाँडि कै, राति जगावन जाय ।
 सौंपिनी है करि ओतर, अपना जाया खाय ॥ १८ ॥
 आन भजै सो आँधरा, राम भजै सो साव ।
 तत्त भजै सो बैस्नवा, तिनकामता अगाध ॥ १९ ॥
 करै मुहाली लापसी, जाय आनकी जाति ।
 ज्वारा इसै मलकता, आई मेरी घात ॥ २० ॥
 कामी तरि क्रोधी तरै, लोभी तरै अनन्त ।
 आन उपासी कृतघनी, तरै न गुरु कहन्त ॥ २१ ॥
 काज कनागत कारटा, आनदेव को खाय ।
 कहै कविर समुझै नहों, घाँधा जमपुर जाय ॥ २२ ॥
 देवि देव मानै सवै, अलख न मानै कोय ।
 जा अलेख का सव किया, तासो बेमुख होय ॥ २३ ॥
 देवि देव ठाढ़े भये, हम को ठौर बताव ।
 जो कोइ मुक्त छुँ विमुख है, तिन को लूटै खाव ॥ २४ ॥
 पन छूटे छटा फिरै, ते नर भूत खबोस ।
 भूतन पिंडा राखका, पडा पटकि के सीस ॥ २५ ॥
 माइ मसानि सिद्धि सितला, नैद भूत हनुमन्त ।
 साहिव सों न्यारा रहे, जो इन को पूजन्त ॥ २६ ॥

सूरमा को अंग ।

कवीर सोई सूरमा, मन सों धँडै जूझ ।
 पाँचों इन्द्री पकडि के, दूरि करे सब दूझ ॥ १ ॥
 कवीर सोई सूरमा, (जिन)पाँचों राखी चूर ।
 जिन के पाँचों मोकली, तिन सों साहिव दूर ॥ २ ॥
 कवीर सोई सूरमा, जाके पाँचों हाथ ।
 जाके पाँचों बस नहीं, तो हरि संग न साथ ॥ ३ ॥
 कवीर रनमें आय के, पीछे रहै न सूर ।
 सोई के सनमुख रहै, जूझैं सदा हजूर ॥ ४ ॥
 कवीर घोड़ा भेपका, चेतन चढ़ि अमवार ।
 ज्ञान खड्ग ले काल सिर, भली पचाई मार ॥ ५ ॥
 कवीर तुरी पलानिया, चाबुक लीन्हा हाथ ।
 दिवस थका सोई मिले, पीछे पडि है रात ॥ ६ ॥
 कवीर हीरा बनजिया, मँहगे मोल अपार ।
 हाट गली माटी मिला, सिर सारैं बेवहार ॥ ७ ॥
 कवीर तोड़ा मान गढ़, पारैं पाँच गनीम ।
 सीस नवाया धनी को, साथी बड़ी मुहीम ॥ ८ ॥

१. दूझ=दाशन, जलन । २. चूर=वशमें । मोकली=खुली हुई ।

८. गनीम=शत्रु । मुहीम=आक्रमण ।

नाम कुलहाडी कुबुधि वन,	काटि किया पैदान ।
कवीर जीते मान गढ,	मारै पांचौ खान ॥ १ ॥
कवीर तोड़ा मान गढ,	लूटी पाँचौ खानि ।
ज्ञान कुलहाडी करम वन,	काटि किया पैदान ॥ १० ॥
कवीर पाँचौ मारिये,	जो मारै सुख होय ।
भला भली सब कोय कहै,	बुरा न कहसी कोय ॥ ११ ॥
गगन दमामा वाजिया,	पड़त निसानै चोट ।
कायर भागै कछु नहीं,	सूरा भागै खोह ॥ १२ ॥
गगन दमामा वाजिया,	पड़त निसानै घाव ।
खेत पुकारै सूरमा,	अब लडने का दाव ॥ १३ ॥
गगन दमामा वाजिया,	हनहनिया के कान ।
सूरा घरै बधावनाँ,	कायर तजै पिरान ॥ १४ ॥
सूरा सोइ सराहिये,	छडै धनी के हेत ।
पुरजा पुरजा है पडे,	तऊ न छाडै खेत ॥ १५ ॥
सूरा सोइ सराहिये,	अंग न पहिरै लोह ।
जूझै सब घेद खोलि के,	छाडै वन का मोह ॥ १६ ॥
सूरा जूझै गिरद सों,	इक दिस मूर न होय ।
यौं जूझै विन बाहरा,	भला न कहसी कोय ॥ १७ ॥
सूरा सीस उतारिया,	छाँडी तनकी आस ।
आगे सें गुरु हरपिया,	आवत देखा दास ॥ १८ ॥

सूर के मैदान में, कायर फंदा आय ।
 ना भाजै ना लडि सकै, मनही मन पछिताय ॥१९॥
 सूर के मैदान में, कायर का क्या काम ।
 सूर सों सूर मिलै, तब पूरा संग्राम ॥२०॥
 सूर के मैदान में, कायर का क्या काम ।
 कायर भाजै पीठ दै, सूर करै संग्राम ॥२१॥
 सूर के मैदान में, कायर का क्या काम ।
 तीर तुपक वरछी बहै, बिगसि जायगा चाम ॥२२॥
 तीर तुपक सों जो लहै, सो तो सूर न होय ।
 माया तजि भक्ति करै, सूर कहावै सोय ॥२३॥
 तीर तुपक सों जो लहै, सो तो सूर नाहि ।
 सूर सोइ सराहिये, बाँटि बाँटि धन खाँहि ॥२४॥
 सूर सनमुख बाहता, कोइ न बाँधै धीर ।
 पर दल मोरन मन अटल, ऐसा दास कबीर ॥२५॥
 सूर नाम धराय करि, अब क्यों हरपै वीर ।
 मैडि रहना मैदान में, सनमुख सहना तीर ॥२६॥
 सूर लहै कपंद हँ, धड सों सीस उतारि ।
 कहें कबीर मारा मुआ, कहें जु मारि हि मारि ॥२७॥
 सूर तो साँचै मतै, सहै जु सनमुख धार ।
 कायर अनी चुमाय के, पीछे झलै अगार ॥२८॥

सूर थोड़ा ही भला, सत का रोपै पग ।
 घना मिला किहि कामका, सावन का सा वग ॥२९॥
 सूर चला संग्राम को, कबहु न देव पीठ ।
 आगे चलि पाछे फिरे, ताको मुख नहि दीठ ॥३०॥
 सूर सनाह न पहिरई, जव रन वाजा तूर ।
 माथा काटै धड़ लहै, तब जानीजै सूर ॥३१॥
 सूर सनाह न पहिरई, मरता नहीं डराय ।
 कायर भाजै पीठ दे, सूर मुँहामुँह खाय ॥३२॥
 सूर न सेरी ताकई, नेजा घालै घाव ।
 सब दल पाछा मोड़ि के, माँझी सेती चाव ॥३३॥
 सूर सार संवाहिया, पहरा सहज सँजोग ।
 ज्ञान गयेद हि चढ़ि चला, खेत परन का जोग ॥३४॥
 खेत न छाँडै सूरमा, जूझै दो दल माँहि ।
 आसा जीवन मरन की, मन में राखै नाँहि ॥३५॥
 अब तो जूझै ही बनै, मुड़ि चालै घर दूर ।
 सिर साहिब को सोपने, सोच न कीजै सूर ॥३६॥
 भागै भला न होयगा, मुँह मोड़ै घर दूर ।
 साँई आगे सोस दे, सोच न कीजै सूर ॥३७॥

३१. सनाह=कनच ।

३३. सेरी=गली । नेजा=माला । माँझी=दोनों दलोंके बीचमें रहनेवाला ।

भागै भला न होयगा, कलु सूरतन सार ।
 भरम बकतर दूर करी, सुमिरन सेल सँभार ॥३८॥
 भागै भला न होयगा, मुडि चाल्यै धसि दूर ।
 खडग उपाडै ना डरै, सो साचा है सूर ॥३९॥
 जाय पूछो उस घायलां, दिवस पीर निसि जागि ।
 वाहनद्वारा जानि है, कै जानै जिस लागि ॥४०॥
 घायल तो घूमत फिरे, राखा रहै न ओट ।
 जतन करै जीवै नही, लगी मरम की चोट ॥४१॥
 साथ सती औ सूरमा, राखा रहै न ओट ।
 सीस कटावै धड लटै, सुन जो पावै चोट ॥ ४२ ॥
 सेल जु जाही मारिये, नहि काहु की ओट ।
 ओलाजा लोपौ नहीं, खाली पडै न चोट ॥ ४३ ॥
 निसंक है रन में रहै, ज्यौ दरिया में दोट ।
 साहिव तबही पाइये, सहिये सिर पर चोट ॥४४॥
 ओटा लिया न ऊगरै, सुनरे मनुवा बूझ ।
 निकसि रहो मैदान में, कर पाचों से जूझ ॥ ४५ ॥
 घायल की गति और है, औरन की गति और ।
 मेष चान हिरदै लगा, रहा कबीरा ठौर ॥ ४६ ॥
 चिन चेतन ताजी करै, ली की करै कगाम ।
 सब्द गुरुका ताजना, पहुँचै संत मुठाम ॥४७॥

सिर राखै सिर जात है,
जैसे वाती दीप की,
धड़ से सीस उतारि के,
कोड़ सूर को सोहसी,
छडने को सब ही चले,
सादिव आगे आपने,
जूझगे तब कहेंगे,
भीड पड़े मन मसखरा,
मेरे संसय कोय नहीं,
काम क्रोध सों जूझता,
जब लग धड़ पर सीस है,
माथा टूटे धड़ लड़े,
रन हि धसा जो ऊवरा,
घरै बघावा वाजिया,
सांई सेति न पाइये,
कवीर सौदा नाम का,
जेता तारा रैन का,
धंढ सूली सिर कंगुरै,
ऐसी मार कवीर की,
कहै कविर सो ऊवरै,

सिर काटे सिर सोय ।
कटि उजियारा होय ॥४८॥
हारि देय ज्यों ढेल ।
घर जानेका खेल ॥४९॥
सस्तर बाधि अनेक ।
जूझगा कोय एक ॥५०॥
अब कुछ कहा न जाय ।
लड़े किर्यों भगि जाय ॥५१॥
गुरु सो लागै हेत ।
चौडै मांढा खेत ॥५२॥
सूर कहावै कोय ।
कर्मद कहावै सोय ॥५३॥
आगे गिरह निवास ।
और न दूजी आस ॥५४॥
वातन मिलै न कोय ।
सिर विन कबहु न होय ॥५५॥
येता वैरी मुझ ।
तउ न बिसारुं तुझ ॥ ५६ ॥
मुआ न दोसै कोय ।
घड पर सीस न होय ॥ ५७ ॥

सीतलता संजोय ले, मूर चढै संग्राम ।
 अवकी भाजन सरत है, सिर साहब के काम ॥ ५८ ॥
 जोग-सुँ तो जौहर भला, घड़ी एक का काम ।
 आठ पहर का जूझना, बिन खाँडै संग्राम ॥ ५९ ॥
 पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया मूर ।
 दिल सौंपा सिर ऊवरा, मुजरा धनी हजूर ॥ ६० ॥
 कठिन कमान कवीर की, पड़ी रहै मैदान ।
 केने जोधा पचि गये, खींचै संत मुजान ॥ ६१ ॥
 कड़ी कमान कवीर की, धरी रहै मैदान ।
 मूरा है सो खींचहीं, नहि कायर का काम ॥ ६२ ॥
 कड़ी कमान कवीर की, न्यारे न्यारे तीर ।
 चुनि चुनि मारै बगतरी, मूरख गिनै न तीर ॥ ६३ ॥
 कड़ी कमान कवीर की, काचा टिकै न कोय ।
 सिर सौंपी मूरा लडै, कालै निरभय होय ॥ ६४ ॥
 कहीं है धारा राव की, काचा टिकै न कोय ।
 सिर सौंपै सीधा लडै, मूरा कहिये सोय ॥ ६५ ॥
 बाँकी तेग कवीर की, अनी पडै दो टुक ।
 मार भीर महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥ ६६ ॥

५८. संजोग ले=मारण करके । अव की भाजन=अव की बेर ।

५९. जौहर—सतीत्य धर्मकी रक्षा के लिये कीति जो जलना ।

६०. पंज असमाना—पाचों शस्त्र, दूसरे पक्षमें पंचज्ञानेन्द्रियां ।

वाँका गढ वाँका मता,	वाँकी गढकी पोल ।
काछ कवीरा नीकसा,	जमसिर घाली रोल ॥ ६७ ॥
रका वहै लोहा झरे,	टूटे जिरह जँजीर ।
अविनासी की फौज में,	गूँजे दास कवीर ॥ ६८ ॥
सार वहै लोहा झरे,	टूटे जिरह जँजीर ।
जम ऊपर साटे करी,	चढिया दास कवीर ॥ ६९ ॥
ज्यों ज्यों गुरुगुन सौंमली,	त्यों त्यों लागै तीर ।
सांटी सांटी झरि पढी,	मलका रदा सरीर ॥ ७० ॥
ज्यों ज्यों गुरु गुन सौंमले,	त्यों त्यों लागै तीर ।
लागे पन भागे नहीं,	सोई साथ सुधीर ॥ ७१ ॥
जौपड मांढी चौदटे,	अरथ उरथ बाजार ।
सतगुरु सेती खेलतां,	कवहु न आवै हार ॥ ७२ ॥
जो हारौ तो सेव गुरु,	जो जीतौ तो दाव ।
सत्तनाम सौ खेलतां,	मिर जावै तो जाव ॥ ७३ ॥
खोजी को डर बहुत है,	पल पल पढै विजोग ।
प्रन राखत जो तन गिरै,	सो वन सादिय जोग ॥ ७४ ॥
भाव बालका सुरति सर,	धरि धीरज कर तान ।
मन की मूठ जहाँ मुँढी,	चोट तहां ही जान ॥ ७५ ॥
भुजा फलके मुन में,	बाजै अनदद दूर ।
सकिया है मैदान में,	पहुँचेगा कोय मूर ॥ ७६ ॥

कहे दरवारी चातरी, क्यों पावै वह धाम ।
 सीस उतारै संचरै, नाहि और को काम ॥ ७७ ॥
 सीस खिसै साई लखै, भल बाँका असवार ।
 कमद कबीरा किलकिया, केता किया सुमार ॥ ७८ ॥
 लालच लोभ न मोह मद, एकल ^१भला अनीह ।
 हरिजन ऐसा चाहिये, जैसा वन का सिंह ॥ ७९ ॥
 रन रोही अति ही हुभा, साजन मिला हजूर ।
 सूर सूर ठाहरा, भाजि गई भकमूर ॥ ८० ॥
 सब ही साथी कलतरो, धीर न बंधै कोय ।
 भागा पीछे बाहुरै, ठाठ सुसाँई सोय ॥ ८१ ॥
^२खाँडा तिस को चाहिये, ^३फिर खाँडे को देय ।
^४कायर को क्या चाहिये, दाँतों तिनका लेय ॥ ८२ ॥
 कोनै परा न छूटि है, सुनरे जीव अवूझ ।
 कबीर भँड मैदान मे, करि इन्द्रियन सों जूझ ॥ ८३ ॥
 इक मारियो इक मारियो, येही विपदा सिद्धि ।
 ना वे कायर मरेंगे, चालै तरकस विद्धि ॥ ८४ ॥
 कायर हुभा न छूटि है, कूचि घुरातन माँहि ।
 मरम भलाका दूरि करि, घुमिरन सेल सनाँहि ॥ ८५ ॥

७८. कमद=बड । ७९. एकल=एकाकी । मल=मिलता है ।

१. पा० मल । २. पा० सेल जो नाहि मारिये । ३. पा० उलटि सेल
को देय । ४. पा० ताही सेल न मारिये ।

कायर मया न छूटि हो,	सुरता, कछु समाय ।
भरम भालका दूरि करि,	सुमिरन सेल मँजाय ॥८६॥
कायर को कौतुक भला,	काहे कसै सनाह ।
भीर परै भगि जायगा,	जीवन का है लाह ॥८७॥
कायर का घर फुसका,	भभकी चहुं पछीव ।
सूरा के कछु डर नहीं,	गज गीरी की भीति ॥८८॥
कायर बहुत पमावई,	अधिक न वोले सूर ।
सार खलक कै जानिये,	किहि के मुँहडै नूर ॥८९॥
कायर सेरी ताकवै,	सूरा मँडै पाँव ।
सीस जीव दोऊ दिया,	पीठ न आया घाव ॥९०॥
कायर भागा पीठ दे,	सूर रहा रन मँहि ।
पटा लिखाया गुरु पै,	खरा खजीना खँहि ॥९१॥
भागि कहाँ को जाइये,	भय भारी घर दूर ।
बहुरि कबीरा खेत रहु,	दल आया मरपूर ॥९२॥
भागै भलो न होयगी,	कहां घरोगे पाँव ।
सिर सौंपी सीधे लहौ,	काहे करौ कुदाव ॥९३॥
सति जो डरपै अगिन ते,	सूरा सर हि डराय ।
हरिजन भागै भक्ति सों,	देस दुनी ते जाय ॥९४॥

८८. गजगोरी की भीति—ऐसी चौड़ी दीवार जिस पर हाथी चल सकता हो ।

१. पा० कायर भागै कालसुं । २. पा० रहै । ६. पा० प्रेमका ।

मानुस खोजत मैं फिरा,	मानुस बड़ा सुकाल ।
जाको देखत दिल थिरे,	ताका पड़ा दुकाल ॥१९५॥
सूर चढ़े संग्राम को,	वाना पहिन अनेक ।
साई के मुख सामने,	मुवा जु कोई एक ॥१९६॥
सूर चढ़े संग्राम कूं,	अरिदल भौंहि धसाय ।
सिर साहिव को दे रहै,	सहज सुरति प्रत खाय ॥१९७॥
सूर चढ़े संग्राम कूं,	पीछै पांव न देह ।
साहिव लाजै भाजतां,	दृष्टि पड़ा तोहि देह ॥१९८॥
सूर चढ़े संग्राम कूं,	पांव न पीछा देह ।
सिर के सटै नूझहीं,	अगम ठौरकूं लेह ॥१९९॥
जो सिर सौपा साई को,	वह सिर भया सनाथ ।
कबीर दे उवरन भये,	जाका ताके हाथ ॥२००॥
जाका ताकूं दीजिये,	कभी उवरना होय ।
पहिले देवै सो सरा,	पीछै तो सब कोय ॥२०१॥
सूरा सोई जानिये,	पावन पीछे पेख ।
आगे चलि पीछा फिरै,	ताका मुख नहि देख ॥२०२॥
देखा देखी सूर चढ़े,	मर्म न जानै कोय ।
साई कारन सीस दे,	सूरा जानौ सोय ॥२०३॥
सिर सटै का खेल है,	सो सरन का काम ।
पहिले मरना आग में,	पीछै कहना राम ॥२०४॥

हरि का गुन अति कठिन है,
 सिर काटो पगतर धरै,
 ऊँचा तरवर गगन फल,
 बहुत सघाने पचि गये,
 दूर भया तो क्या भया,
 जबलग सिर सोंपे नहीं,
 दूर भया तो क्या भया,
 सिर सोंपे उन चरन में,
 यह रन मांही पैठ कर,
 साहिव के सनमुख रहै,
 जबलग घड पर सीस है,
 माथा टूटे घड लडै,
 कवीर साँचा सूरमा,
 जीवन के भेय खोल के,
 कठिनाई कलु है नहीं,
 राम नाम नहि छाँडिये,
 मारग कठिन कवीर का,
 आय चले कोइ सूरमा,
 रन जैग बाजा बाजिया,
 पूरा सो तो लडत है,

ऊँचा बहुत अकथ्य ।
 तब जा पहुँचे हृथ्य ॥१०६॥
 पखी भूआ झूर ।
 फल लागा पै दूर ॥१०६॥
 सिर दे निघरा होय ।
 चाख सकै नहि कोय ॥१०७॥
 सतगुरु मेला होय ।
 कारज सिद्धि होय ॥१०८॥
 पीछै रहै न सूर ।
 धर दे सीस हजूर ॥१०९॥
 मूरा कहिये नाहि ।
 मूरा कहिये ताहि ॥११०॥
 क्यूँ न पहिरे लोह ।
 छाँडै तन का मोह ॥१११॥
 जो सिर बटले लेह ।
 जो सिर करवत देह ॥११२॥
 धरि न सकै पग कोय ।
 जा घड सीसन होय ॥११३॥
 मूरा आये धाय ।
 कायर भागै जाय ॥११४॥

सब कोइ सूर कहावई,	धीर न बंधे कोय ।
आगे पीछे वावरा,	फिदरे कहै सब कोय ॥११५॥
रग वग टोपी सत्र कसी,	रन कुं चलै वजाय ।
फिर फिर भवन चितावई,	बाना विरद लजाय ॥११६॥
कायर का काचा मता,	घडी पलक मन और ।
आगा पीछा है रहे,	जागि मिलै नहि ठौर ॥११७॥
कायर कचरी बैठि के,	मूर्छा मरै मरड ।
सूरा तब ही जानिये,	निकसे सरै सरड ॥११८॥
सूरा कायर दुइ भला,	एक जीव इक प्रान ।
सूर पचवि मापला,	कायर देवै जान ॥११९॥
कान हसिया मुख बकिया,	इक दिन घायल होय ।
टप लागी नहि चुप रहे,	सूरा कहिये सोय ॥१२०॥
हाक बनी जब खेत में,	तब रन दीसै भीत ।
सारा लरकर खलवलै,	कायर दीन्ही पीठ ॥१२१॥
सूर निसाना गाडिया,	लहै धनीकी रीज ।
सिर बहै नीरत सडै,	चहु दिस चमकै बीज ॥१२२॥
धरनि अकासा धर हरै,	गरजै सुनके बीच ।
कहै कविर जब सिर दिया,	लेहो लरकर जीत ॥१२३॥
पारथ मूरा मै सुना,	जाके सारंगपान ।
बाहर बैरी बहु इने,	एक न मारै बान ॥१२४॥

सूरा सबहि निकसिया,	वाना पहिरि अनेक ।
साद्वि के सुख कारनै,	मूआ कोई एक ॥१२५॥
साधू सब ही सूरमा,	अपनी अपनी ठौर ।
जिन ये पांचौ चूरिया,	सो माथे का मोर ॥१२६॥
सूरा सो सनमुख लड़े,	देखि घनी की प्रीति !
जीता जानै जगत कुं,	जक्त न जानै रीति ॥१२७॥
कबीर चढै सिकार को,	दायै लाल कमान ।
मूरख नर सो रहि गये,	मारे संत सुजान ॥१२८॥
कबीर चढै सिकार को,	दायै लाल कमान ।
मेरा मारा फिर उठै,	बहुरि न गहुं कमान ॥१२९॥
मारा हे मरि जायगा,	प्रेम सुरंगी वान ।
मेरा मारा फिरि उठै,	बहुरि न गहुं कमान ॥१३०॥
सब्द सुरति का तीर है,	तरकस भरे जँजीर ।
गीददियाँ पर चाहताँ,	केते खोवे तीर ॥१३१॥
जुझन चाले सूरमा,	घरनी किया मुकाम ।
मगदों के मैदान में,	नहि कायर को काम ॥१३२॥
भलका है गजवेलका,	खरा सरान चढाय ।
सारा लस्कर हूँदिया,	को सिरदार न पाय ॥१३३॥
कायर काम न आवई,	ये सूरका खेत ।
हाथ पाँव विन जुझना,	काया सीस समेत ॥१३४॥

जे मूआ गुरु हेत सुं,	ताकूं चुप न वार ।
साधू साहिव ह्वै रहा,	माय रही सिर मार ॥१३५॥
जो मूआ हरि हेत में,	कोइ न बूझै सार ।
हरिजन हरि सा ह्वै रहा,	माया रहि सिर मार ॥१३६॥
सिर साटै का खेळ है,	छांडि देय सब वान ।
सिर साटै साहिव मिलै,	तोहु हानि मति जान ॥१३७॥
नाम करन नाना भये,	रहे मढ़ा रन मॉय ।
भलका मारे प्रेमका,	खरा खजीना खाय ॥१३८॥
धीरा ह्वै धमका सहै,	ज्यों अहरनका घाव ।
सिर के साटै जब लडै,	कबहुं काज न खाव ॥१३९॥
धतुक वान की चोट है,	पानी का परसंग ।
जिन कूं लागी होय सी,	तिन कूं और हि रंग ॥१४०॥
रम रहै सूर मये,	सूर भये जो सूर ।
सूरा पूरा रहि गये,	भागि गये सब कूर ॥१४१॥
सूरा खांडा जो गहे,	जब रन बजै तूर ।
सीस पडै तो धड लडै,	तब तूं सांचा सूर ॥१४२॥
सबै कहवै लस्करी,	सब लम्कर कूं जाय ।
सेल धमका जो सहै,	खरा मुसारा खाय ॥१४३॥
जुझै ते नर भागिया,	लिया पीठ पर घाव ।
जागीरी सब ऊनरी,	धनी न कहसी आव ॥१४४॥

जूझै ते नर जूझिया,	लिया सीस पर घाव ।
जागीरी दूनी मई,	दिया सीस पर पाव ॥१४५॥
चोट सहै जो सेल की,	ऊठी देह अवास ।
चोट सन्द की जो सहै,	सोइ छुटागो दास ॥१४६॥
रन चढि सन्द पुकार ही,	हो हो हो हुंकार ।
सिर विन घड विन भिड पै,	ता मोंहीं मयकार ॥१४७॥
कोइ मारै तिर तोप सँ,	होत दुवादस घाव ।
कवीर मारै सन्द सँ,	तल मूडी पर पाव ॥१४८॥
मन तरकस तन तोपसी,	सुरति पलीता छाय ।
करो भडाका नाम का,	काल कुबुध उडि जाय ॥१४९॥
ज्ञान कामठा गुन चिला,	तन तरकस मन तीर ।
सन्द भालका सार का,	मारै दास कवीर ॥१५०॥
आस वास मन मेलिया,	जव रन घसिया सूर ।
दल मोटै सर ऊगरे.	भुजरा साम हजूर ॥१५१॥
सूर लडै गुरु दाव सँ,	इक दिस जूझन होय ।
जूझै बीना सूरमा,	मला न कहसी कोय ॥१५२॥
सूरा तो बहुतक मिले,	घायल मिछा न कोय ।
घायल कुं घायल मिले,	नाम भक्ति दृढ होय ॥१५३॥
बाहिर घाव दिसै नहीं,	पढा फलेजे घाव ।
वाकुं औषध का करै,	घायल जीवै नाहि ॥१५४॥

१५०. कामठा—पकावनेकी मूठ । चला—चिह्ना, डोरी । तरकस—भाया ।

भालका—भाला ।

१. पा० चला ।

जान तीरछा भेदिया, लगा भलका सार ।
 भरम बकतर भेदि कर, निकसि गया भौ पार ॥१५५॥
 लगा भलका नाम का, रही गया उर माँहि ।
 लगा ताकुं साल सी, औरों कुं गम नांहि ॥१५६॥

स्वारथ को अंग ।

स्वारथ का सब को सगा, सारा ही जग जान ।
 विन स्वारथ आदर करै, सो नर चतुर सुजान ॥ १ ॥
 निज स्वारथ के कारनै, सेव करै संसार ।
 विन स्वारथ भक्ति करै, सो भावै करतार ॥ २ ॥
 स्वारथ कुं स्वारथ मिले, पडि पडि लूबालूब ।
 निस्पेही निरधार को, कोय न राखै श्रुव ॥ ३ ॥
 माया कुं माया मिले, कर कर लंबे हाथ ।
 निस्पेही निरधार को, गाहक दीनानाथ ॥ ४ ॥
 माया कुं माया मिले, लंबी करके पांख ।
 निरगुन को चीन्है नही, फूटी चारों आंख ॥ ५ ॥
 संसारी सैं मीठडी, सरै न एकौ काम ।
 दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम ॥ ६ ॥

परमार्थ को अंग।



परमाथ पाको रतन, कबहुँ न दीजै पीठ ।
 स्वारथ सेंमळ फूल है, कली अपृथी पीठ ॥ १ ॥
 मरुँ पर माँगूँ नहीं, अपने तन के कान ।
 परमार्थ के कारन, मोहि न आवैं लाज ॥ २ ॥
 पीठ रीठ सब अर्थ की, परमार्थ की नोहि ।
 कहै कविर परमाथी, विरला को(य) कलि मौढ़ि ॥ ३ ॥
 सुख के संगी स्वारथी, दुख में रहते दूर ।
 कहै कविर परमाथी, दुख सुख सदा हजूर ॥ ४ ॥
 जो कोय करे सो स्वारथी, अरस परस गुन देत ।
 धिन किये करै सुरमा, परमार्थ के हेत ॥ ५ ॥
 आप स्वारथी मेदिनी, भक्ति स्वारथी दास ।
 कवीर जन परमाथी, डारी तन की आस ॥ ६ ॥
 स्वारथ सूका लाकडा, छौंढ बिहूना मूल ।
 पीपल परमार्थ भजो, सुख सागर को मूल ॥ ७ ॥
 धन रहै न जोवन रहै, रहै न गाँव न ठाम ।
 कवीर जग में जस रहै, करदे किसिका काम ॥ ८ ॥

१. सेंमळे फूलकी कली उलटी होती है जो कि अपनी ओर गिरती है । भाव यह है कि स्वार्थ से केवल अपने का और परमार्थ से सारे ससार को लाभ पहुँच सकता है ।

१. पा० कवीर नाम स्वारथी, छौंढी तन की आस ।

विपर्यय को अंग ।

सांझ पड़ी दिन ढल गया, वायन घेरी गाय ।
गाय विचारी ना मरै, वाघ न भूखा जाय ॥ १ ॥
पापी को दोजख नहीं, धरमी दोजख जाय ।
यह परमारथ बूझि के, मति कोय धरम कराय ॥ २ ॥
पांच पचीसों मारिया, पापी कहिये सोय ।
या परमारथ बूझि के, पाप करै सब कोय ॥ ३ ॥

१ सांझ-अत अवस्था । दिन-जीवन । वाघ-काल । गाय-आत्मा ।
अत अवस्था आने से जीवन का अत हो गया, अत काल ने
आत्मा को आ दबाया । ऐसी दशा में भी न तो आत्मा ही मरती है और
न काल ही भूखा रहता है ।

जिस प्रकार निर्जन वन में रक्षक के अमात्र से रात को सिंह गाय
को दबाता है, इसी प्रकार अज्ञानियों को काल बार-बार चमेटा करता है ।
यद्यपि आत्मा का नाश नहीं होता, तथापि देह से प्राणपुरुष का वियोग
काल कर देता है, इसी का नाम मृत्यु है । यह एक आश्चर्य है कि न तो
आत्मा ही मरती है और न काल ही भूखा रहता है ।

२ पापी-पांच ज्ञानेन्द्रिय और पचीस प्रकृतियों को मारनेवाला ।
(वश में करनेवाला) दोजख-नर्क । धरमी-पांच और पचीसों को अपने
विषयों में लगानेवाला ।

३ पांच और पचीसों को मारनेवाला पापी कहलाता है । यद्यपि पापी
शब्द सुनने में बुरा लगता है, परन्तु इसका अर्थ अच्छा है, इस लिये
सबों को ऐसा पापकर्म सदैव करना चाहिये ।

आपा मेटे हरि मिले, हरि मेटे सब जाय ।
 अकथ कहानी प्रेम की, कोई ना पतियाय ॥ ४ ॥
 घर जॉर घर उबरै, घर राखै घर जाय ।
 एक अचंमा देखिपा, मुआ काल को खाय ॥ ५ ॥
 तिल समान तो गाय है, घड़ुड़ा नी नी हाथ ।
 मटकी भरि भरि दुहि लिया, पूछ अठारह हाथ ॥ ६ ॥

४ आपा—अहकार । हरि—पापों के हरणकर्ता, साहब ।

अहकार को दूर करनेवाला साहब के दरबार में पहुँच जाता है । और
 मालिक से प्रेम तोड़नेवाले का सब कुछ चला जाता है । प्रेम की इस
 अकथ कहानी पर कोई निश्वास नहीं करता ।

५ घर—प्रपच, विकार । घर—आत्मा । मूआ—जीवितमृतक । ।

प्रपच के विकारों को णला देने से जीवात्मा का उबार (उद्धार)
 होता है । और प्रपच के विकारों को बढ़ाने से जीव चौरासी में चला
 जाता है, यह एक भारी आश्चर्य है कि जीवन्मृतक काल को भी खा
 लेता है ।

भावार्थ—अहकारादिक विकारों का त्यागना जीतेजी करना है ।
 जो ऐसा करता है उसे काल चौरासी में नहीं ले जा सकता ।

६ बाणीरूप गायत्री तो तिल के समान स्वल्प है, परन्तु उसके बड़े
 रूप व्याकरण लम्बे २ नव हैं । और उसका अर्थरूप दूध भी बहुत
 अधिक होने के कारण अपार है । और तो और उसकी पूछ भी अठारह
 पुराणों के रूप में अठारह हाथ की है ।

झाल बढी झोली जली, खपरा फूटम फूत ।
 जोगी था सो रमि गया, आसन रही भभूत ॥ ७ ॥
 आग जु लागी नीरमें, कादौं जरिया झार ।
 उत्तर दिसि का पडिवा, रहा विचार विचार ॥ ८ ॥
 धौं लागी सायर जळे, पंखी बैठे आय ।
 दापी देर न पालि है, सतगुरु गये लगाय ॥ ९ ॥
 जल दासा चीखल जला, विरहा लागी, आग ।
 तिनका बपुरा ऊबरा, गल पूला के लाग ॥ १० ॥

७ झाल ज्ञान त्रिरह । झोली—अत कारण के विकार । खपरा—काया ।
 जोगी—जीवात्मा । आसन—ससार । भभूत—अनुभव ।

ज्ञान त्रिरह के उदय से ज्ञानी पुरुषों के हृदय के विकार नष्ट हो जाते हैं । अनंतर उनके विदेहमुक्त हो जाने पर भी—जोगी के चले जाने पर भभूति की तरह उनका अनुभव ससार के लिये प्रसाद रूप रह जाता है ।

८ नीर रूप हृदय में ज्ञान त्रिरह की अग्नि के जल ठठने से सम्पूर्ण कर्मों का कीचड़ जल गया, इसके फल स्वरूप ज्ञानी जन निर्मल हावर विदेहमुक्त हो गये, परन्तु उपासनाकुशल उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करनेवाले उत्तरीय पडित तो विचार विचार ही करते रह गये ।

९ ज्ञानी के हृदय रूप सागर में ज्ञान त्रिरह की अग्नि के लगने से इन्द्रियों के गुण रूप पक्षी जल गये । सद्गुरु ने जिसको यह अग्नि लगा दी वह अपने शरीर की परवा कदापि नहीं करता ।

१० जल—काया । चीखल—कीचड़, चिन्ता । तिनका—जीव । पूला मालिक ।

हृदय में ज्ञान त्रिरह की अग्नि के प्रकट होने से मन और मनके विकार—चिन्ता आदिक नष्ट गये । केवल जीवात्मा सद्गुरु साहब के शरण पहुचने से बच गया ।

आहेरी घों छाड़या, पिरग-पुकारै रोय ।
 जा धनमें की लाकड़ी, दासत-हे वन सोय ॥११॥
 पानी माहीं परजळी, रुई अपरवल आग ।
 वहती सरिता रह गई, मच्छ-रहे जल त्यागि ॥१२॥
 नदिया जलि-कोइला मई, समुंदर लागी आग ।
 मच्छी विरछा चढि गई, ऊठ कवीरा जागि ॥१३॥
 पच्छी उडानी गगन को, पिंड रहा परदेस ।
 पानी पीया चोंच विन, भूलि गया वह देस ॥१४॥

११ आहेरी—सद्गुरु । घों—वन की अग्नि, ज्ञान विरह । मृग—पंच इन्द्रिय । वन—कामादिक विकार ।

सद्गुरु ने ज्ञान विरह की ऐसी आग लगाई कि उसमें कामादिक विकार रूपी जंगल की लाकड़ियाँ रूप इन्द्रियों जल गई । अपनी रक्षा का तो उपाय उन्होंने बहुत कुछ किया फिर भी न बच सकी ।

१२ पानी—हृदय । आगि—ज्ञान विरह । सरिता—सुरति । मच्छ—मन । जल—माया ।

ज्ञान विरह की अग्नि हृदय में ऐसी प्रज्वलित हुई कि सुरति एकाएक ठहर गई । और मन भी माया को छोड़ भागा ।

१३ हृदय समुद्र में ज्ञान विरह की ऐसी आग लगी कि आशा की नदी जलकर कोयला हो गई । और मछली रूप सुरती दौड़ कर अछे पुरुष रूप बड़े पेड़ पर चढ़ गई ।

१४ सुरति पिंड को छोड़कर गगन मंडल चढ़ गई, अनंतर वहां अंतर-गति से निजानन्दामृत का ऐसा पान किया कि उसे इस देश की सुधि तनिक भी न रहा ।

आकासे , औंधा कुवा, पाताले पनिहार ।
 जल हंसा कोय पीवई, विरला आदि विचार ॥१५॥
 सिव सक्ति मुख को जुवै, पच्छिम दिसि उठे धूर ।
 जलमें सिध जो घर करै, मछरी चढै खजूर ॥१६॥
 जिहि सर घटा न बूढ़ता, मैंगल मलि मलि न्हाय ।
 देवल बूढ़ा कलस सों, पँछि पियासा जाय ॥१७॥
 चोर भरोसै साहुके, लाया वस्तु चोराय ।
 पहिले बांधो साहु को, चोर आप बँधि जाय ॥१८॥

१५ गगन मडल में नीचे मुख का एक अमृतकूप है । गुरुगम युक्ति के बिना उस अमृत को कुडली शक्ति पी लेती है । कोई विरले हस आदि-विचार से उस अमृत का पान करते हैं ।

१६ मेरुदेड में प्राणों के सचार से मन और मनसा का लय होता है । और गगन मडल में सुरति के चढ़ने से हृदय में ज्ञान का सचार होता है ।

१७ 'सद्गुरु के' बिना जिसे निजानन्द सागर में मन जरा भी नहीं पैठता था अब तो वह हाथों के समान विहारपरायण होकर उससे जरा भी निकलना नहीं चाहता । और शरीर भी नख से शिखा तक उस आनन्द से आनन्दित हो गया, परन्तु ससारी उडाकू मन को इससे कुछ आनन्द नहीं मिलता ।

१८ चोर=मन । साहु=शरीर ।

शरीर की सहायता से मन नाना प्रकार के अनर्थ कर बैठता है, अतः शरीर को सप्त यनाना भी अन्यायश्यक है, शरीर के निरोध से मन असहाय बनकर स्वयं हतोसाह हो जाता है ।

चोर मरोसै साहु के, वस्तु पराई लेय ।
जब लग साह न बांधई, चोर वस्तु नहि देय ॥१९॥

भँवरा चारी परिहरी, मेवा विलैया जाय ।
बावन चंदन घर किया, भूलि गया वनराय ॥२०॥

एक दोस्त हमहू किया, जिहि गल काल कवाय ।
सब जग घोवी धोय मरे, तोभी रंग न जाय ॥२१॥

चगुली नीर बिटारिया, सायर चढा कलंक ।
और पखेरु पीविइया, हंस न बोरै चंच ॥२२॥

१९ मन शरीर के उपभोग के लिये माया का सचय करता है; अतः जब तक शरीर सयत न बनाया जाय तब तक मन नहीं रुक सकता ।

२० सद्गुरु की कृपा से अब मन ने त्रिपर्यायी को त्याग दिया और नित्यानन्द रूप में खाने लगा । और पारब्रह्म रूप चन्दन का ऐसा निरासी बन गया कि अब ससार की तनिक भी मुग्धि नहीं करता ।

२१ मैंने ऐसे प्रेमी मन का संग किया जिसके गले तक प्रेम का लाल जामा है । अनेक ससारी लोगों ने तस रंग को फीका करने का उद्योग किया; परन्तु वह ज्यों का त्वा बना रहा ।

२२ कुबुद्धि ने जीव को अपने कर्तव्य से च्युत कर दिया, अतः शरीर को भी कलंक लग गया । ससारी लोग चाहें कुबुद्धि के पीछे पड़े रहें; परन्तु सतजन तो उसका संग कदापि नहीं करते । आत्मा का माया और मया के गुणों से कभी अत होता नहीं ।

जल में अँन जो ना चुरै, घृत में पाक न होय ।
 कहैं कबिर या साखि को, अर्थ करै सब कोय ॥२३॥

तीन गुनन की बादरी, ज्यों तरुवर की छाँहि ।
 बाहर रहै सो ऊबरै, भीजै मन्दिर माँहि ॥२४॥

ऐसी व्याई सो तुई, बेस्या सो रहि पेट ।
 सगो ससुर पाँयन पयो, भइ सतगुरु सों भेट ॥२५॥

सूम सदा ही लुद्धरै, दाता जाय नरक ।
 कहैं कबिर यह साखि सुनि, मति कोय जाव सरक ॥२६॥

२३ कबीर साहब कहते हैं कि इस साखीका अर्थ सब कोई कर सकते हैं, अर्थात् इस बात को सब कोई जान सकते हैं ।

२४ तरुवर की छाया की तरह तीन गुन की बदली रूप माया की छाया भी स्थिर नहीं रहती । जो इस माया मन्दिर से बाहर रहते हैं वे भीजने नहीं पाते और जो इसके अन्दर रहते हैं वे गुणरूप जल से पूरी तरह भीज जाते हैं ।

२५ विवाहिता स्त्रीरूप सुमति का गर्भपातरूप ज्ञान का नाश हो गया । और त्रेष्टारूप माया के गर्भ से अज्ञानरूप पुत्र उत्पन्न हो गया । और सद्गुरु से भेंट होने पर अहंकार रूप शत्रु भी पैरों में आ पड़ा ।

२६ सूम—वीर्य का दान नहीं करनेवाला साधुमन । दाता—वीर्य दान करनेवाला कामी पुम्प ।

दाता नरक सूय वैकुण्ठे, मच्छर अजर जरै ।
 कबीर साखी कठिन है, हिरदै रसै तब अर्थ करै ॥२७॥
 वैसन्दर जाड़े मरै, पानी मरै पियास ।
 भोजन तो भूखा मरै, पाथर मरै इगास ॥२८॥
 नलिनी सायर घर किया, दौं लागी बहु तन ।
 जल ही मांहीं जलि मुई, पूरव जन्म लखन ॥२९॥
 रौने पुरै वासर बैठै, वन अंधियारा होय ।
 लागि रहा फूटा फला, पथ नहि काटा कोय ॥३०॥

२७ नहीं जलनेवाली मत्सरता (दूसरों में तुच्छता बुद्धि) को जलनेवाले पूर्वोक्त सूय को सद्गति होती है और पहले कहे हुए दाता जो तो नरक ही जाना पड़ता है । कबीर साहब कहते हैं कि कठिनता के कारण जिसके हृदय में यह अर्थ बैठना है वही इस साखी का अर्थ कर सकता है ।

२८ कामाग्नि का शील से नाश होता है और तृष्णा के शमन से तृष्णा का नाश होता है । तथा इन्द्रियों के शमन से त्रिषयभोग की निवृत्ति होती है । इसी प्रकार भय से मूर्ख का दमन होता है ।

२९ आत्मा को शरीराध्यास ही के कारण लोभ मोहादिका से अनेक सताप उठाने पड़ते हैं । यह कुछ भाग्य की बात है कि माया ही से इसका सर्व नाश होता है ।

३० जगनी बीत गई और बुढ़ापा भी धीरे २ बीत रहा है । और निर्मलता के कारण इन्द्रिया भी अमपर्य हो गई । अज्ञानी लोग व मृना से ससार में आसक्त रहते हैं । पुत्र और पौत्रादिकों के सुख को उठाने हुए भी चौरासी से नहीं छूटने पाते ।

उलटा ज्ञान विचार के, देखो अपना देस ।
 हरदी चून मिलाय के, रहे न दूजी लेस ॥३१॥
 कबीर उलटा ज्ञान का, कैसे करूं विचार ।
 अस्थिर बैठा पंथ कटै, चला चली नहि पार ॥३२॥
 सायर माहीं सर गया, मच्छी खाया सोय ।
 सो मच्छी तरुवर चढी, बूझै विरला कोय ॥३३॥
 हरि घोडा ब्रह्मा बडी, वासक पीठि पलान ।
 चांद सुरज दुइ पायडा, चढसी संघ सुजान ॥३४॥

३१ ससार से उपरत होकर निजपद की ओर बढ़ो । आत्मा और आत्मचित्तन के प्रताप से द्वेष का लेश तक नहीं रहता ।

३२ इस उलटे ज्ञान का वर्णन नहीं किया जा सकता । जो ससार से उपरत होकर बैठ जाते हैं वे तो चौरासी के मार्ग को पार कर लेते हैं, और जो अनेक विडवनाओं में पडकर इधर उधर दौड़ धूँव करते रहते हैं वे इस मार्ग का अन्त नहीं पाते ।

३३ हृदय में समाये हुए गुरु के सब्द को मुरति ने ग्रहण कर लिया इस कारण वह सर्वोच्चपद को पहुँच गई, इस बात को त्रिलोचन पुरुष जानते हैं ।

३४ आत्मयोगी ओम तमोगुण के घोड़े को रजोगुण की कडी लगाकर कुडलनी सर्पिणा को बश में करते हैं । अनंतर उगला और पिंगला के पापडे बनाकर सुषुम्णा में मुरति को चढ़ाते हैं ।

घटी बढी जानै नहीं, मन में राखै जीत ।
 गाडर लडै गयन्द सों, देखो उलझी रीत ॥३५॥
 कूकर बहुबहु जरि मुआ, सलसै चढी सियार ।
 रोवत आवै गदहरा, बोधत आय बिलार ॥३६॥
 मा मारी धी घर करै, गौ सो बच्छा खाय ।
 ब्राह्मन मारै मद पिये, तो अमरापुर जाय ॥३७॥
 माता मुये एक फल, पिता मुये फल चार ।
 भाई मुये हानि है, कहैं कबीर विचार ॥३८॥

३५ गाडर-काया । गयन्द मन ।

अपने ऊपर आई हुई अनेक आपत्तियों को सहनेवाला मनुष्य शारीरिक-संयम के कारण मन पर विजय पा सकता है । शरीर से मन को रोकना हाथी से भेड़ का लडना है ।

३६ ज्ञानो वारों की ज्ञानाग्नि से कामादिक कुत्तों के झुड जल जाते हैं । और सशय रूपी शियार जीते की चिता पर चढ़ जाता है । गर्व रूपी गदहा रोता है और वादरूप बिलार उसको सान्त्वना देता है ।

३७ जो अधिकारी पुरुष ममतारूप माता को मारता है तथा बुद्धिरूप लडकी को अपने हृदयरूप गृह की गृहिणी बनाता है । इसी प्रकार सुमतिरूप गौ के निकट बछड़े को खाता है, तथा जो वादरूप ब्राह्मण को मारकर गुरुमत रूपी मद्य को खूब पीता है वह स्वर्ग को अवश्य पहुँचना है ।

३८ माता रूप ममता के मरने से चिरशक्तिरूप एक उत्तम फल मिश्रता है । और पिता=वित्त, क्रोध के मरने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चार फलों की प्राप्ति होती है; परन्तु मानरूप भाई के मरने से तो मुक्ति में हानि हो जाती है । यह उपदेश सद्गुरु कबीर ने खूब विचार कर दिया है ।

अचर चरै चर परिदरै, मरै न चरै जाय ।
 वारह मास विलोचना, घुमै एकै माय ॥३९॥
 ऊनै आई वादरी, वरसन लगा अंगार ।
 ऊठि कबीरा धाड़ दै, दासत है संसार ॥४०॥
 बेटि को भाटी ले गई, बेटा को (ले गई) भंगार ।
 माता को लोड़ ले गई, कबीर सिरजनहार ॥४१॥
 अब तो ऐसी है पढ़ी, ना तुम्बरी ना बेलि ।
 जारन आनी लाकड़ी, ऊठी कोंपल मेलि । ४२॥
 बिन पाँवन का पंथ है, मंझ सहर अध्यान ।
 बिकट घाट औघट घना, पहुँचै संत सुजान ॥४३॥

३९ जो पुरुष सदा के लिये निश्चल तत्त्व में स्थिर होकर ससार से नाता तोड़ देता है वह न मरता है और न विचलित ही होता है ।

४० माया की बदरी झुक आई और उससे निकार के अंगारे वासने लगे । ऐ जीव ! इससे निकल भाग, देखो, मारा ससार इससे जल रहा है ।

४१ बेटा-भलाई को भाटी-भलाई ले गई । और बेटा-वाद को भंगार-भजन ले गया । इसी प्रकार माता-ममना को ली-लगन ले गई । और कबीर-जीव को सिरजनहार ले गया ।

४२ सद्गुरु की दया से मायारूप बोल और तृणारूप तुमड़ी दोनों का उच्छेद हो गया । और कायारूप काठी में पाग का अग्नि के लगते ही उससे भक्ति को कांपल निकल आई ।

४३ सद्गुरु का स्थान-निवास मध्यशहर अर्थात् हृदयकमल में है; परन्तु उसका मार्ग बिना पाप का है अर्थात् निष्काम कर्म के द्वारा उसकी प्राप्ति होती है । और उसका घाट द्वार भी औघट अष्टपट है । ऐसी स्थिति में कोई सुजान सन्त ही वहाँ पहुँच सकते हैं । “ क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कनयो वदन्ति ” इति श्रुतेः ।

ऊँचा चढ़ि असमान को, मेरु ऊँचे ऊँचि ।
 पशु पंछी जिव जन्तु सब, रहा मेरुपे गूँचि ॥४४॥
 धरति समानी अघर में, अघर घरा के पाँहि ।
 अघर घरा जब देखिया, दीसै दूसर नाँहि ॥४५॥
 या देखा वा देखिया, वा देखा या थीर ।
 यह वह दो एकै भया, सतगुरु मिलै फवीर ॥४६॥

४४ अम्बासी को उचित है कि गगन मडल में चढ़कर और सुरति के पाखों से उड़कर मेरु अर्थात् मेरु दंड से पार हो जाय; क्योंकि कि पशु पक्षी और सब जीव, जन्तु मेरुदण्ड में ही गड़े पड़े हैं ।

भावार्थ—पशु पक्षियों से यहा पार्श्विक भावनाएँ ली गई हैं जो कि मनुष्यों को ससार की ओर खेंचती हैं । मूलाधार से सहस्रार तक मेरु की सीमा है । सहस्रदल कमल निरंजन का है इसमें मन का निवास है । इसके परे सुरति कमल है, जहापर “सुरति कमल में (पर) सान्निध्याले ” इसके अनुसार सद्गुरु का धाम है । यहा पहुचने से पार्श्विक भावनाएँ दूर हो सकती हैं ।

४५ अम्बासी की धरती—सुरति अघर—निरति (शब्द) में सना गयी, मिल गयी । ऐसा होने से वह अघर (शब्द) घरा—सुरति में ही आ गया । इस प्रकार अम्बासी को सुरति और निरति की एकता के कारण समाधि लाभ होने से—“ तदा द्रष्टुं स्वरूपेऽवस्थानम् ” (योग दर्शन) इसके अनुसार स्वरूपस्थिति होने से “ दीसै दूसर नाँहि ” दूसरा प्रपच कुछ भी नहीं दीखता ।

४६ जीव के स्वरूप का बोध होने पर सादेव का भी साक्षात्कार हो जाता है । और सादेव के साक्षात्कार के अनन्तर ही इस जीव को सच्ची स्थिरता प्राप्त होती है । क्योंकि सादेव कहते हैं कि यह दुर्लभ लाभ तब ही प्राप्त हो सकता है जब सद्गुरु मिलें, सद्गुरु के मिलने पर ही यह और वह अर्थात् जीव मादिक दोनों एक रूप हो जाते हैं ।

पानी हुने पातला, धूँवा हू ते झीन ।
 पवन हू वेग उतावला, दोस्त कवीरा कीन ॥४७॥
 पुहुप वास ते पातला, सूक्ष्म जाको रंग ।
 कवीर तासैं मिलि रहा, कन्हु न छाडै संग ॥४८॥
 पहिल मा का खसम भया, पिछै भया है पूत ।
 अंतर गत की समुझि के, छोडि चले अवधूत ॥४९॥

४७ इस जीव ने ऐसे मन के साथ मित्रता की है,—जो पानी से भी पतला और धूँवा से झीना है । ओर जिसका वेग पवन से भी अधिक है, ऐसे चंचल मन के साथ रहनेवाले जीवात्मा को कदापि शान्ति नहीं मिल सकती ।

“चंचल हिं मन कृष्ण प्रमाथि चल्यद् दृढ, तस्याह निग्रह मये नायोरिव सुदुष्करम्” (गी०)

४८ यह जात्र ऐसे मन के साथ मिल जुल रहता है, ओर उसका साथ कभी नहीं छोड़ता जो कि फूलों की महक से भी पतला है, ओर जिसका स्वरूप बहुत ही सूक्ष्म है । और यही कारण है कि उसको ठीक तरह से यह जात्र नहीं जान पाता है ।

४९ ससार के ऐसे सूक्ष्म रहस्य को समझकर त्यागी पुरुष इसे छोड़ देते हैं । देखिये यह कैसा आश्चर्य है । “तदेव जायाया जायात्र यदस्या जायते पुमान्” तथा “आत्मा ये जायते पुत्र ” इन श्रुतियों के अनुसार पुरुष ही पुत्र रूप से अपनी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होता है । पुत्र की उत्पत्ति के पश्चात् इस कथन से स्त्री माता हो जाती है । “भौ बालक भग द्वारे आया, भग भोगी के पुरुष कहाया ” ससार की यही विचित्र लीला हम साखी में कहा गई है, ‘पहले माका खसम भया, पिछे भया है पूत’ अर्थात् स्त्री प्रसंग के समय पुरुष अपनी माता का पाते बनता है । और वही पुत्रोत्पत्ति के समय पाछे उसका लडका बन जाता है । इसी उलट फेर से डरकर त्यागी पुरुष अलग ही रहते हैं ।

खसप उलटि बेटा भया, माता मिहरी होय ।
 मरख मन समुझै नही, बड़ा अचंभा सोय ॥५०॥
 पानी में की माछली, चढ़ि सो परवत गई ।
 अग्री पीया पुष्ट भई, जल पीया मर गई ॥५१॥
 कफ काया चित चकमका, झाली वारंवार ।
 तीन बार धुंवा उठे, चौथे पडे अंगार ॥५२॥

५० ऊपर की साखी के कथन अनुसार पुत्र की उत्पत्ति के समय पति ही अपनी स्त्री का पुत्र बनता है । इस नाते से स्त्री उस पुरुष की माता बन जाती है । कबीर साहेब कहते हैं कि उस गूढ़ रहस्य को सर्व लोग अपने मन में नहीं समझते हैं, इसका मुझे बड़ा आश्चर्य है ।

५१ ससारी जीवों की सुरति एक विचित्र मछली है, जो कि सतार के विषयों की अग्नि को पी कर मस्त बनी रहती है । सद्गुरु की दया होने पर उनकी सुरति में ऐसी शक्ति पैदा हो जाती है कि वह परब्रह्म के समान सत्र से ऊंचे सद्गुरु के वाम में चढ़ जाती है, और वहा पहुचने पर उसको जल के समान अत्यंत प्रिय निगानद रूपी अमृत पीने को मिलता है । आश्चर्य है कि वह जल के पीते ही सदा के लिये मर जाती है । अर्थात् सतार की सुधि भूल जाती है ।

॥५२ सद्गुरु कहते हैं कि काया के कपडे पर चित्त के चकमक को बार २ झाड़ो, अर्थात् अभ्यास और वंसाय के द्वारा तन में मन का निरोध करो । इस प्रकार बार २ अभ्यास करने से मन की त्रिगुणप्रस्था दूर हो जायगी । त्रिगुणप्रस्था का रहना अग्नि की वह घूमास्था है कि जिसमें प्रकाश का अभाव रहता है । इसी बात को इस साखी में तीन बार

गुरु दाइया चेला जलया, विरहा लागी आग ।
 तिनका वपुरा ऊवरा, गल पूरी के लाग ॥५३॥
 बहनी से बेटा भई, बेटा से भई नार ।
 नारी से माता भई, मनसा लहर पसार ॥५४॥

५३ ज्ञानी के हृदय में ज्ञान विरह की अग्नि के प्रगट होने पर उसके दृष्टि में गुरुभाव और शिष्यभाव नहीं रहता, यही गुरु और चेले का जलना है । इस प्रकार पूरे साहेब की शरण में जाने से वह तुच्छ दास निराला कालाग्नि से बाल २ बच जाता है ।

भावार्थ—“ पूरा साहेब सैइये, सब निधि पूरा होव ”

५४ मन की लहर का दोड़ाव इस प्रकार से होता है कि पहले बहनी=प्रज्ञा से बेटा=इच्छा होती है, और बेटा से नारी=प्रवृत्ति बन जाती है । पश्चात् उसी नारी से माता रूप उत्पत्ति होती है । इस प्रकार की मन की लहरों का वर्णन महामाश्री ने किया है ।

१* (धूँआ) टेठ इस पद से बताया गया है । त्रिगुणानुस्य क दूर होने पर गुणातीत का पद प्राप्त होता है, इसीको तुरीय पद और चौथा पद भी कहते हैं । चौथे पद को प्राप्त होने पर आत्मा का स्वरूप प्रकाश सामने आ जाता है । यही पद पर “ चौथे पडे अगर ” इस पद से अंगारा पदना बताया गया है ।

भावार्थ—त्रिगुणानुस्य मन का है और चौथा पद आत्मा का है
 “ तीन लोक में है परमात्मा, चौथे लोक में नाम निशान, एते कोइ
 त्रिलोक पद निर्माण । ”

चार चरण नौ पाख है, दो मस्तक है ताहि ।
 एक मुख सीप सँवारही, एक मुख भोजन खाहि ॥५५॥
 माता का शिर मूँडिये, पिता कुँ दीजै मार ।
 बन्धु मारि डारै कुआ, पड़ित करो विचार ॥५६॥
 करीर कोठी काठ की, चहुँ दिस छागी छार ।
 ग्राही पड़े सो ऊबरे, दाशे देखन डार ॥५७॥

५५ इस मन पक्षा के मन बुद्धि चित्त और अहंकार रूप चार चरण हैं, आर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति रूप दो पाखे हैं । साकार और निराकार रूप दो मस्तक हैं । उनमें से निराकार रूपी मुख से यह शून्य रूपी सीप का सुख भोगता है और दूसरे साकार मुख से यह नाना प्रकार के भोग रूपी भोजन करता है ।

भावार्थ—मन पक्षी तख्ता उड़े, निरप्य वासना माहि ।

ज्ञान बाज का झपट में, जब लग आयो नाहि ॥

५६ कन्नार साहेब कहते हैं कि हे पड़ितो ! आप लोग इस माखी के अथ का विचार करिये, सुनिये आर समझिये । माता रूप ममता का शिर मूड डालिये और पिता अज्ञान को मार डालिये, इसी प्रकार अहंकार रूपी बन्धुओं को भी मारकर कुर्य में डाल दीजिये । ऐसा करने से हा आप लोगों का कल्याण होगा ।

५७ करीर साहब कहते हैं कि ज्ञान विरही पुरुषों का ऐसा स्थिति होती है कि उनकी कामना रूपी काठ का कोठी के चारों ओर ज्ञान विरह का आग्न जलती रहती है । ऐसी स्थिति में उस आग्न के धरे में आ जाने वाले ज्ञान विरही ससार की आच से बच जाते हैं । और दूर से देखने वाले सत्यसंगी लोग जल मरते हैं, अर्थात् सत्यसंगियों को भी ज्ञान विरह की लपट लग जाती है ।

दब लागी दरियाव में, नदिया कुइला होय ।
 मच्छी परवत चढ़ि गई, बूझै विरला कोय ॥५८॥
 दब लागी दरियाव में, उठी अपरवल आग ।
 सखिता बहती रहि गई, मोन दिया जल त्याग ॥५९॥
 कीडी चली जु सासरे, नौ मन काजल लाय ।
 हस्ती लोन्हा गोद में, ऊँट लपेटे जाय ॥६०॥

५८ प्रेमियों के हृदय में ज्ञान निरह की आगि के लगते ही उनकी सांसारिक कामना रूप नदी जलकर कोयला बन गई । और उनकी सुरति रूप मछली पर्वत रूपी ऊँचे सद्गुरु के देश में पहुँच गई । इस रहस्य को कोई विरले ही पुरुष समझ पाते हैं ।

५९ प्रेमियों के हृदय में ज्ञान निरह की ऐसी प्रचंड आगि जल उठी कि उसकी जगला चारों ओर फैल गई, इस कारण उनकी कामना रूप नदी का बहाव रुक गया और उनको सुरति रूप मछली भी समार समुद्र को छोड़ भागी ।

भावार्थ—ज्ञान निरही जनों के हृदय में सदैव ज्ञान निरह की जगला उठनी रहती है । केवल सद्गुरु के दर्शन के अतिरिक्त उनके हृदय में किसी प्रकार की कामना नहीं रहता और उनकी सुरति भी ससार अलग हो जाती है ।

६० सद्गुरु की कृपा से ज्ञान निरही जनों की सुरति रूप चिन्ती ने, सत्य लोक रूप समुद्र का रास्ता पकड़ लिया । उसके विचित्र शृंगार को सुनिये—उसने अपनी विनेक की आखों में नरधा भक्ति का काजल लगा लिया और मन रूपी हाथी को पकड़कर गोद में बैठा लिया अथवा मन को अपने वश में कर लिया । और अहंकार रूपी ऊँट को गर्दन पकड़कर उसकी हाथ में अधर लटका लिया ।

भावार्थ—नरधा भक्ति के धारण करने से तथा मन और अहंकार के दमन करने से ही प्रेमियों की सुरति सत्य लोक को पहुँच सकती है ।

रपट भैस पीपल चढी, पाहि भांगे दो अंट ।
 गढ्ढे दीनी आंचकी, भये भैस दो दृष्ट ॥६१॥
 भैर लागि सायर तरी, तरी नेह चिन नीर ।
 प्रीतम कुं प्यारी मिली, यी कहि दास कबीर ॥६२॥
 तत्त समाना तत्त में, अनहद समाना जाप ।
 ब्रह्म समाना ब्रह्म में, आप समाना आप ॥६३॥

६१ इस साखी में त्रिकोण और और अत्रिकोण का उगन किया गया है । त्रिकोणस्थिति में प्रकृति रूप भैस तत्काल ही पीपल रूप पुरप पर आच्छादित हो जाता है, अर्थात् प्रकृति का पुरुष में लय हो जाता है । और राजस तथा तामस अन्कार रूपी दोनों उट मो भग जाते हैं । अर्थात् दोनों का अभाव हो जाता है । इसके विरुद्ध अत्रिकोण दशा में अत्रिकोण रूपी गढ्ढा प्रकृति रूप भैस को ऐसा झटका मारता है कि उसके दो टुकड़े हो जाते हैं । इन दोनों टुकड़ों का नाम सारयशास्त्र में प्रकृति और विकृति है ।

‘ मूलप्रकृतिरविकृति गढ्ढाया प्रकृतिविकृतयः सत ।

पोडशकतु विकारो न प्रकृति न विकृति पुरुष ” (साख्यमार्गिका)

६२ प्रेमियों की सुरति प्रेम की नोका पर चढ़ कर ससार समुद्र को तर जाती है । यह ससार समुद्र अपना स्नेह के पानी का है । कपूर सोहन कहते हैं कि इस प्रकार समर से पार पटुच कर प्यारी सुरति अपने प्रियतम सोहन से मिल जाती है ।

६३ जानियों का मुक्तिदशा में उनके पञ्च भौतिक तान (कार्य) पञ्च तान में मिल जाते हैं । और उनका जाप अनहद में समा जाता है । इसी प्रकार कार्य ब्रह्म और कारण ब्रह्म का भी ब्रह्म में लय हो जाता है । ऐसी स्थिति के प्राप्त होने पर उनका स्वरूप अपने आनन्द में स्थित हो जाता है । अर्थात् सर्वों में वसित होकर अलित हो जाता है । इसी को कैवल्य मुक्ति कहते हैं ।

आग लगी आकास में, जरि जरि पड़े अंगार ।
 कहैं कबीर ७ वठ जाग रे, जलन लगा संसार ॥६४॥
 भेरै चढ़िया सरप के, भौसागर के मांढि ।
 जो छादै तो बूढि है, गहि तो दसि है वांढि ॥६५॥
 हम जाये ते भी सुआ, हम भी चालनहार ।
 हमरे पीछे पूंगरा, तिन भी बांधा भार ॥६६॥
 साथी हमरे चलि गये, हम भी चालन हार ।
 कागद में बाकी रही, ताते लागी वार ॥६७॥

रस को अंग ।

कबीर हरि रस जिन पिया, अंतरगत लौ लाय ।
 रोम रोम म रमि रहा, और अमल बया खाय ॥ १ ॥
 कबीर हरि रस भरि पिया, कोय न पीवै नीर ।
 भाग बढ़ा सो पीवसी, भरि भरि पिये कबीर ॥ २ ॥
 कबीर हरि रस चढ़त है, सरवन दोना ओढि ।
 राम चरन काँठा गहो, मति करहु धौं छोढि ॥ ३ ॥
 कबीर हरि रस जिन पिया, माँगै सीस कलाल ।
 दिल ओछा जिन दूबला, बहुत विगूँचे माल ॥ ४ ॥

हरिरस मँगा जन पिये, देवै सीस कलाल ।
 घट ओछा दिन दूबला, बँडेगा बहु काल ॥ ५ ॥
 हरिरस पीया जानिये, उतरै नॉहि सुमारि ।
 मतवाला धूपत फिरै, नहि जो तन को सारि ॥ ६ ॥
 हरिरस मँगा पीजिये, छाँडि जीवकी वानि ।
 सिर के साटै हरि मिले, तबलग सुँगा जानि ॥ ७ ॥
 सिर दीये जो पाइये, देव न कीजै कानि ।
 सिर के साटै हरि मिले, तबलग सुँगा जानि ॥ ८ ॥
 पिया पियाला भेमका, अन्तर लिया लगाय ।
 रोम रोम में रमि रहा, दूजा रस क्या प्याय ॥ ९ ॥
 भेम पियाला भरि पिया, जरा न किया जतन ।
 आवै छकि तब जानिये, रंका धड़ा रतन ॥ १० ॥
 थोरे ही से छाकिया, भौंड़ा पीया धोय ।
 फूल पियाला जिन पिया, रहे कलालों सोय ॥ ११ ॥
 राता माता नाम का, पीया प्रेम अयाय ।
 मतवाला दीदार का, माँगी मुक्ति बलाय ॥ १२ ॥
 राता माता नाम का, मद का माता नॉहि ।
 मद का माता जो फिरै, सो मतवाला काहि ॥ १३ ॥

१०. हृदय में प्रेम की मल्लो का आना रस के घडे में रत्नों का भर जाना है ।

मतवाला " यूपत फिरै, रोम रोम रस पूर ।
 छौंटे आस सरीर की, देखै राम हजूर ॥१४॥
 महयंता आरिगत रता, आसा अकल अजीव ।
 नाम अमल माते रहे, जीवन मुक्त अतीत ॥१५॥
 महयंता नहि बिन चरे, सालै चित्त सनेह ।
 चारिज बंधा कलाल के, डारि रहा सिर खेह ॥१६॥
 आठ गौंठि कोपीन के, साधु न मानै संक ।
 नाम अमल माता रहे, गिनै इन्द्र को रंक ॥१७॥
 दावै दाइन होत है, निरदावै निहसंक ।
 जो जन निरदावै रहे, कहै इन्द्र को रंक ॥१८॥
 पिया पिया सब कोय कहै, हरिजन माता एक ।
 फूल कटावा जे पिये, पढा कलेजे छक ॥१९॥

मन को अंग ।

कबीर मन तो एक है, भावै तहां लगाय ।
 भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥ १ ॥
 कबीर यह मन मसखरा, कहैं तो मानै रोस ।
 जा मारग साहिब मिले, तहाँ न चालै कोस ॥ २ ॥
 कबीर मन परवन मया, अरु पै पाया जान ।
 टाँकी लागी प्रपकी, निकसी कंचन खान ॥ ३ ॥

कवीर मन गाफिल भया, सुमिरन लाग नहि ।
 यनी सहेगा सासना, जम की दरगह भौंहि ॥ ४ ॥
 कवीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार ।
 भजन करन को आलसी, खाने को तैयार ॥ ५ ॥
 कवीर मन हि गयंद है, आंकुम दे दे राखु ।
 विष की बेली परिहरो, अमृत का फल चाखु ॥ ६ ॥
 कवीर मन परकट भया, नेक न कहूँ ठहराय ।
 सत्तनाम बाँधै बिना, जित भावै तित जाय ॥ ७ ॥
 कवीर सेरी सांकरी, चंचल मनुवा चोर ।
 गुन गावै लौलीन है, कलु इक मनमें और ॥ ८ ॥
 कवीर बैरी सबल है, एक जीव रिपु पाँच ।
 अपने अपने म्वाट को, बहुत नचावै नाच ॥ ९ ॥
 कवीर यह मन कित गया, जो मन होता काल ।
 हुँगर चडा मेह ज्यों, गया निर्वाना चाल ॥ १० ॥
 कवीर मनका भौंहिला, अवला बहै असोस ।
 देखत ही दह में परै, देय किसी को दोस ॥ ११ ॥

१०. निवान—तालाब या नदिया । वर्षा के समय ऐसा मालूम होता है कि मानों पहाड मेवजल से डूब गये हैं, परन्तु थोड़े काल में पानी गहकर तालाब या नदियों में चला जाता है । इसी प्रकार क्याप्रसंग में मन क्षान-निमान हो जाता है; परन्तु थोड़े ही काल में फिर विषयों में चला जाता है ।

११. अवला—उलटा । असोस—निर्मय । दह—गढ़वा ।

१. पा० सौ सौ नाच नचाय । २. पा० वृथों ।

कवीर छहरि समुद्र की, वेती आवै जाँहि ।
 बलिहारी वा दास की, उलटि समाधि माँहि ॥१२॥
 कवीर यह गत अटपटी, चटपट लखी न जाय ।
 जो मन की खटपट मिटै, अधर भये ठहराय ॥१३॥
 अघट भया खटपट मिटै, एक निरन्तर होय ।
 कहै कविर तब जानिये, अन्तर पट नहि दोय ॥१४॥
 मन के मते न चालिये, मनके मते अनेक ।
 जो मन पर असवार है, सो साधु कोय एक ॥१५॥
 मन के मने न चालिये, छाँडि जीव की वानि ।
 'कतवारी' के सूत ज्यों, उलटि अपूठा आनि ॥१६॥
 मन पाँचों के बस पड़ा, मन के बस नहि पाँच ।
 जित देखूँ तित दों लगी, जित भागूँ तित आँच ॥१७॥
 मन के मारे बन गये, बन तजि वस्ती माँहि ।
 कहै कविर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाँहि ॥१८॥
 मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोय साध ।
 जो मानै गुरु वचन को, ताका मता अगाध ॥१९॥
 मन को मारूँ पटकि के, टुक टुक है जाय ।
 बिप की बपारी बोय के, लुनता क्यों पछिताय ॥२०॥

१६. कतवारी—कातनेवाली । अपूठा—उल्टा । १९. मुरीद—शिष्य ।

१. पा० ताका केरा तार ज्यू ।

मन को मारूँ पटक के,	टुक टुक हूँ जाय ।
टूटै पीछै फिरि जुरै,	बीच गाँठि परि जाय ॥२१॥
मन ही को परपोधिये,	मन ही को उपदेस ।
जो यह मन को बसि करै,	सीप होय सब देस ॥२२॥
मन गोरख मन गोविंदा,	मन ही औघड़ सोय ।
जो मन राखै जतन कारि,	आपै करता होय ॥२३॥
मन मोटा मन पातरा,	मन पानी मन लाय ।
मन के ऐसी ऊपजै,	तैसी ही हूँ जाय ॥२४॥
मन दाता मन लालची,	मन राजा मन रंक ।
जो यह मन गुरु सौ मिलै,	तो गुरु मिले निसंक ॥२५॥
मन के बहुतक रंग हैं,	छिन छिन बदले सोय ।
एक रंगमें जो रहे,	ऐसा विरला कोय ॥२६॥
मनुवा तो पंछी भया,	उड़ि के चला अकास ।
ऊपर ही ते गिरि पड़ा,	मन माया के पास ॥२७॥
मन पंछी तबलगि उड़ै	विषय वासना माँहि ।
भेष वाज की क्षपट में,	जब लगि आवै नाँहि ॥२८॥
मन कुंजर महमन्त था,	फिरता गहिर गँगीर ।
दुहरी तिहरी चौहरी,	परि गई भेष जँजीर ॥२९॥
मन के हारै हार है,	मन के जीतै जीत ।
कहँ कविर गुरु पाइये,	मन के भेष मतीत ॥३०॥

मन नहि छाड़ै विषय रस, विषय न मन को छाड़ि ।
 उनका यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि ॥३१॥
 मन से मन मिलता नही, तन को करता भंग ।
 मन अब भया जु कामरी, चढ़ै न दूजा रंग ॥३२॥
 मन दीजै मन पाइये, मन विन मान न होय ।
 मन उनमुन ता अँड ज्यौ, अलल अकासा जोय ॥३३॥
 मन जो गया तो जान दे, दृढ करि राख सरीर ।
 बिना चढ़ाय कमान के, कैसे लागे तीर ॥३४॥
 मनवा तो फूला फिरै, कहे जो करूँ धरम ।
 कोटि करम सिर पर चढ़े, चेति न देखै मरम ॥३५॥
 मन नहि मारा मन करि, सका न पाँच महारि ।
 सील सौँच सरधा नही, अजहूँ इन्द्र उघारि ॥३६॥
 मन की घाली हूँ गई, मन की घाली जाँव ।
 संग जो परी कुसंग के, हाटै हाट बिकाऊँ ॥३७॥
 मन चलताँ तन भी चलै, ताते मन को घेर ।
 तन मन दोऊ बसि करै, होय राइ सँ मेर ॥३८॥
 मना मनोरथ छाँड़ि दे, तेरा किया न होय ।
 पानी में घी नोकसै, रुखा खाय न कोय ॥३९॥
 मनुष्य तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय ।
 अमर लोक सुचि पाइया, कबहुँ न न्यारा होय ॥४०॥

मन निरमल गुरु नाम सों, कै साधन के भाय ।
 कोइला दूनी कालिमा, सौ मन साधुन छाय ॥४१॥
 मन जानै सब बात, जानि बूझि औगुन करै ॥
 काहे की कुसलात, ले दीपक कूँये परै ॥४२॥
 महमंता मन मारि ले, घट ही माँहीं घेर ।
 जब ही चालै पीठ दे, आंकुस दे दे फेर ॥४३॥
 मन मनसा को मारि ले, घट ही माँहीं घेर ।
 जब ही चालै पीठ दे, आंकुस दे दे फेर ॥४४॥
 मन मनसा को मारि करि, नन्हा करि ले पीस ।
 तब मुख पावै सुन्दरी, पदुमा झलकै सीस ॥४५॥
 मन मनसा जब जायगी, तब आवैगी और ।
 जब ही निहचल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥४६॥
 यह मन फटकि पछोरि ले, सब आपा मिटि जाय ।
 पिंगुला हूँ पिव पिव करै, ताको काल न खाय ॥४७॥
 यह मन को विसमिल करूँ, दीठा करु अदीठ ।
 जो सिर राखूँ अपना, पर सिर जलौ अंगीठ ॥४८॥
 यह मन तो मिरगा भया, खेत विराना खाय ।
 सूला करि करि सेकसी, धनी पहुँचै आय ॥४९॥
 यह मन तो मैला भया, यामें बहुत विकार ।
 या मन कैसे धोइये, सन्तो करो विचार ॥ ५० ॥

यह मन मेवासी भया,	बसि करि सकै न कोय ।
सनकादिक रिसि सारिखे,	दिन के गया विगोष ॥ ५१ ॥
यह मन वीकारै पडा,	गया स्वाद के साथ ।
गटका खाया वरजतां,	अब क्यों आवै हाथ ॥ ५२ ॥
यह मन साधू ले मिलो,	नहि तो लेगा जान ।
मन मुनसिफ को पूछि ले,	नीकी है तो मान ॥ ५३ ॥
यह मन नीचा मूल है,	नीचा करम सुहाय ।
अमृत छाटै मान करि,	विष हि प्रीत करि खाय ॥ ५४ ॥
जेती लहर समुद्र की,	तेवी मन की दौड़ ।
सहजै हीरा नीपजै,	जो मन आवै ठौर ॥ ५५ ॥
दौडत दौडत दौडिया,	जेती मन की दौर ।
दौडि थके मन धिर भया,	वस्तु ठौर की ठौर ॥ ५६ ॥
खैचू तो आवै नहीं,	जो छाहू तो जाय ।
कबीर मन को पूछरे,	मान टट्टीवा खाय ॥ ५७ ॥
पहिले यह मन काग था,	करता जीवन घात ।
अब तो मन हंसा भया,	मोती चुनि चुनि खात ॥ ५८ ॥
अपने उरझै उरझिया,	दीखै सब संसार ।
अपने सुरझै सुरझिया,	यह गुरु ज्ञान विचार ॥ ५९ ॥

५१. मेवासी-डाकू । ५२. गटका-मिठाई । (त्रिय सुख)

५३. मुनसिफ-इन्साफ करनेवाला ।

५७. पृछे-पछि ।

ट्टीवा-चकर ।

चंचल मनुवा चेतरे, सोधै कह अनजान ।
 जम धर जव ले जायगा, पडा रहेगा म्यान ॥ ६० ॥
 चिन्ता चित्त विसारिये, फिरि बुझिये नहि आन ।
 इन्ट्री पसारा भेटि, सहज मिले भगवान ॥ ६१ ॥
 तन माँहीं जो मन धरै, मन धरि लजल होय ।
 साहिव सों सनमुख रहे, तो अमरापुर जोय ॥ ६२ ॥
 पय पानी की भीवडी, पडा जु कपटी लौन ।
 खंड खंड न्यारे मये, ताहि मिलावै कौन ॥ ६३ ॥
 कबहुँक मन गगनहि चढै, कबहुँ गिरै पताल ।
 कबहुँक मन उतमुनि लगै, कबहुँ जावै चाल ॥ ६४ ॥
 कोटि करम करै पलक में, या मन विषया स्वाद ।
 सतगुरु सब्द न मानही, जनम गँवाया बाद ॥ ६५ ॥
 कागद केरी नावरी, यानी केरी गंग ।
 कहै कविर कैसे तिरै, पाँच कुसंगी संग ॥ ६६ ॥
 इन पाँचोंसे बंधिया, फिर फिर थरे सरीर ।
 जो यह पाँचो वसि करै, सोई लागे तीर ॥ ६७ ॥
 निहचिन्त है करि गुरु भजै, मन में राखै साँव ।
 उन पाँचो को वसि करै, ताहि न आवै आँच ॥ ६८ ॥
 पाँचो वैरी जीव के, दलै इनै इक चित्त ।
 एक देखै एक ध्यावही, औगुन बहुत अमिष ॥ ६९ ॥

पाँच सहाई जीव के, जो गुरु पूरा होय ।
 कोय व्यान कोय नाम रत, काज न बिगडै सोय ॥ ७०॥
 इन्द्री पोषत्र चाह हूँ, मन में संका नांहि ।
 भाव भक्ति को यों कहै, निह करमा क भांहि ॥ ७१ ॥
 काटी कूटी माछरी, छीकै धरी चहोरि ।
 कोय इक औगुन मन बसा, दह में परी बहोरि ॥ ७२ ॥
 काया कजरी बन अहै, मन कुंजर महमन्त ।
 अंकुम ज्ञान रतन है, फेरै साधू सन्त ॥ ७३ ॥
 काया देवल मन धजा, विषय लहर फहराय ।
 मन चलते देवल चले, ताका सरवस जाय ॥ ७४ ॥
 काया कसो कमान ज्यौ, पाच तत्त्व कर वान ।
 मारो तो मन मिरगला, नहि तो मिथ्या जान ॥ ७५ ॥
 विना सीख का मिरग है, चहुँ दिस चरने जाय ।
 बांधि लाओ गुरु ज्ञान सँ, राखो तत्व लगाय ॥ ७६ ॥
 तीन लोक चोरी भई, सब का धन हरि लीन्ह ।
 विना सीस का चोरवा, पडा न काहू चीन्ह ॥ ७७ ॥
 चोरवा भल हम चीन्हिया, चोरवा हमै न चीन्ह ।
 कहै कबीर विचारि के, हम ही दीच्छा दीन्ह ॥ ७८ ॥
 अपने अपने चोर को, सब कोय डारे मार ।
 मेरा चोर मुझ को मिलै, सरवस हाँसु वार ॥ ७९ ॥

तन तुरंग असवार मन,	करम पियादा साथ ।
तृष्णा चली सिकार को,	विषय व'न लिये हाथ ॥८०॥
जहा वाज वासा करे,	पंछी रहै न और ।
जा घट मेम परगट भया,	नहीं करम को ठौर ॥८१॥
कहत सुनत सब दिन गये,	हरि न सुरक्षा मन ।
कहै कविर चेता नहीं,	अजहूँ पहला दिन ॥८२॥
पंडित मूल विनासिया,	कह वयो विग्रह कीज ।
ज्यों जल में प्रतिबिम्ब है,	सकल राम जानीज ॥८३॥
सो मन सोनो सो विषय,	त्रिभुवन पति कहु कम ।
कहै कविर वैदा नरा,	जल परा सकल रस ॥८४॥
सो सो सेरी है तकों,	जो जो मूँदी आव ।
नख सिख पाखरि मनहि के,	करूँ कहाँ जो घाव ॥८५॥
अकथ कथा या मनहि की,	कहै कविर समुझाय ।
जो याको समझा परै,	ताको काल न खाय ॥८६॥
समुद्र लहरि जो थोरिया,	मन लहरै धनियाय ।
केती आय समाय है,	केति जाय विसराय ॥८७॥

८४. वैदानरा-हे अज्ञानी पुरुष ।

कबीर साहब कहते हैं कि हे अज्ञानी नर, इस मन का मैं किसे प्रकार वर्णन करूँ । यह मन तीन लोक का स्वामी और सोने के समान आकर्षक है । और जिस प्रकार जल में संपूर्ण रस विद्यमान रहते हैं, इसी प्रकार मन में भी सर्व विषय भरे रहते हैं ।

८५. सेरी—गली, टपाय । पाखरि—गिलाफ, झूल ।

यह तो गति है, अटपटी,
 जो मन को खटपट मिटे,
 चंचल मन निहचल करे,
 तन मन होऊ वसि करे,
 मेरा मन मकरंद था,
 सूया है मारग चला,
 सुन नर मुनि सब को ठगै,
 जो कोई याते बचे,
 कुंभे बांधा जल रहे,
 ज्ञाने बांधा मन रहे,
 मन फाटे चित ऊचटै,
 पलकों की टाटी दई,
 मन मानिक जय ऊचटै,
 जो कंचन की भूमि है,
 थरती फाटे मेघ मिलै,
 नन फाटे को औषधि,
 मेरे मनमें परि गई,
 फाटा फटिक पपान ज्यै,
 मन फाटे वायक बुरै,
 जैसे दूध तिवास को,

सटपट लावै न कोय ।
 चटपट दरसन होय ॥८८॥
 फिर फिर नाम लगाय ।
 ताका कलु नहि जाय ॥८९॥
 करता बहुत विगार ।
 हरि आगे हम लार ॥९०॥
 मन हि लिया औतार ।
 तीन लोक ते न्यार ॥९१॥
 जल विनु कुंभ न होय ।
 मन विनु ज्ञान न होय ॥९२॥
 नैना नाहि समाय ।
 टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥९३॥
 नेक नहीं ठहराय ।
 हरियल धरै न पाय ॥९४॥
 कपड़ा फाटे और ।
 मन फाटे नहि ठौर ॥९५॥
 ऐसी एक दरार ।
 मिलै न जी वार ॥९६॥
 मिटे सगाई साक ।
 उलटि दुआ जी आक ॥९७॥

९०. मकरंद—हार्थी ।

९७. वायक—वाक्य, वचन । तिवास—डंडा, गृहर । गृह का दूध फटने से आक के समान कड़वा हो जाता है ।

चंदन भांगा गुन करै, जैसे चोली पान ।
 दुइ जो भांगा ना मिलै, इक मोती इक मान ॥९८॥
 मोती भांग्यो वेधतां, मन भांग्यो कुबोल ।
 बहुत सयाना पचि गया, परि गइ गांठी गोल ॥९९॥
 बात बनाई जग ठग्यो, मन परपोथा नाहि ।
 कहै कथिर मन लै गया, लख चौरासी मांदि ॥१००॥
 मनुषा तू क्यौ वावरा, तेरी सुध क्यौ खोय ।
 मौत आय सिर पै खड़ी, ढलने नेर न होय ॥१०१॥
 मन अपना समुझाय ले, आया गाफिल होय ।
 दिन समुझे उठि जायगा, फोगट फेरा तोय ॥१०२॥
 वाय बिड़टा मिरगला, तिहि जनि मारी कोय ।
 आपे ही मरि जायगा, डामा डूला होय ॥१०३॥
 मनुषा तो पंखी भया, जहां तहां उठि जाय ।
 नहँ जैमी संगति करै, तहँ तैसा फल खाय ॥१०४॥
 मन पंखी विन पंखका, लख जोजन उठि जाय ।
 मन भावे ताको मिले, घट में आन समाय ॥१०५॥
 सात समुद्र की एक लहर, मन की लहर अनेक ।
 कोई एक हरिजन ऊवरा, डूबी नाव अनेक ॥१०६॥

१०६. एक लहर—सब समुद्रों में एक ही प्रकार की लहर उठती है, परन्तु मन में तो अनेक प्रकार की तरंगें उठा करती हैं ।

पहिले राखि न जानिया,
 पही गया राता घुरा,
 मन सब पर असवार है,
 मन ही पर असवार रहे,
 कबीर मन मिरतक भया,
 पीछे लागा हरि फिरे,
 मन चाले तो चकन दे,
 मन चकने तन थंभ है,
 यह मन अट्ठयो वावरो,
 मन ममता में गलि चले,
 मन मारी पैदा करुं,
 निभ्या का दुकड़ा करुं,
 तनकूं मन मिलता नहीं,
 रहता काला वोर ज्युं,
 तन का बैरी कोइ नहीं,
 तूं आपा को डारि दे,
 मन राजा मन रंक है,
 सून्य सिखर पर मन रहे,
 तेरि जोतिमें मन धरा,
 आपा खोवे हरि मिले,

अब वयूं आवे हाथ ।
 वैपागी के साथ ॥१०७॥
 पैदा करे अनंत ।
 कोइक विरला संत ॥१०८॥
 दुर्लभ भया सरीर ।
 गूं कहि दास कबीर ॥१०९॥
 फिर फिर नाम लगाय ।
 ताका कछु न जाय ॥११०॥
 राख्यो घटमें घेर ।
 अंकुस दै दै फेर ॥१११॥
 तन की कादूं खाल ।
 हरि विन काढे खाल ॥११२॥
 होता तन का भंग ।
 चढै न दूजा रंग ॥११३॥
 जो मन सीतल होय ।
 दया करे सब कोय ॥११४॥
 मन कापर मन सूर ।
 मस्तक पावि नूर ॥११५॥
 मन धरि होहु पतंग ।
 लुप्त लागा रहे रंग ॥११६॥

यह मन थाकी थिर मया, पग विन चले न पथ ।
 एकै अक्षर अलख का, थाके कोटि गिरंथ ॥११७॥
 यह मन हरि चरने चला, माया मोह से छट ।
 बेहद माहीं घर किया, काल रहा सिर कूट ॥ ११८॥
 मिरतक को धीजों नहीं, मेरा मन धीवै ।
 बाने वाच बिकार की, मूया भी जीवै ॥११९॥
 कवीर मन कू मारि ले, सब आपा मिटि जाय ।
 पगला है पिउ पिउ करै, पीछे काल न खाय ॥१२०॥
 मन मेवासी मारि करि, दुरजन ठावै दूर ।
 आन फिरे सत नाम की, नगर वसैं भर पूर ॥१२१॥
 कवीर मन ताजी भया, लौ की करी लगाम ।
 सब्द गुरु का ताजना, पहुंचे संत सुजान ॥१२२॥

माया को अंग ।



कवीर माया मोहिनी, माँगी मिले न हाथ ।
 मना सतारी जूठ करु, लागी ढोलै साथ ॥ १
 कवीर . माया पापिनी, फँद ले बैठी हाट ।
 सब जग तो फँदै पडा, गया कबीरा काट ॥ २

कबीर माया पापिनी, लोभ भुलाया लोग ।
 पूरी किनहु न भोगिया, इस का यहो बिनोग ॥ ३ ॥
 कबीर माया पापिनी, हरि सों करै हराम ।
 मुख कडियाली कुबुधि की, कहन न देई राम ॥ ४ ॥
 कबीर माया बेसवा, दोनूं की इक जात ।
 आवत को आदर करै, जात न बूझै वान ॥ ५ ॥
 कबीर माया मोहिनी, मोहै जान सुजान ।
 भाँग हूँ छूटै नहीं, भरि भरि मरै वान ॥ ६ ॥
 कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड ।
 सतगुरु की किरपा भई, नातर करतो भांड ॥ ७ ॥
 कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि ।
 कोइ एक साधू करार, तोडो कुल की कानि ॥ ८ ॥
 कबीर माया मोहिनी, भइ अंधियारी लोय ।
 जो सोये सो मुति गये, रहे वस्तु को रोय ॥ ९ ॥
 कबीर माया डाकिनी, सब काहु को खाय ।
 दाँत उपाहुं पापिनी, सन्तो जियै जाय ॥ १० ॥
 कबीर माया रुखड़ी, दो फल की दातार ।
 'खावत' खरचत मुक्ति भय, संचत नरक दुवार ॥ ११ ॥
 कबीर माया भूप की, देखन ही का लाड ।
 जो 'बाप' तौडी चटे, तो हरि सोई दाड ॥ १२ ॥

कवीर माया जात है, सुनो सब्द निज मोर ।
 सखियों के घर सायजन, मूर्खों के घर चोर ॥ १३ ॥
 कवीर या संसार की, झूठी माया मोह ।
 जिहि घर जिता घधावना, तिहि घर नेता दोह ॥ १४ ॥
 कवीर माया यों कहे, तू मति देई धीठि ।
 और हमारै बसि पडा, रखा कवीरा रुठि ॥ १५ ॥
 माया आगे जीव सब, ठदि रहे कर जोरि ।
 जिन सिरजे जल छुँद सों, तासों बैठा तोरि ॥ १६ ॥
 माया करक कदिम है, या भीसागर मॉहि ।
 जंबूक रूपी जीव है, खँचत ही मरि जॉहि ॥ १७ ॥
 माया झोला मारिया, नाभि न बैठे साँस ।
 जिवरा तो संमै गला, राम कहन की आसना ॥ १८ ॥
 माया सेती माति मित्रो, जो सोवरिया देहि ।
 नारद से मुनिवर गले, क्या हि मरोसा तहि ॥ १९ ॥
 माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमिमॉहि परन्त ।
 कोड एक गुरु ज्ञान तें, उबरे साधू सन्त ॥ २० ॥
 माया दोय प्रकार की, जो कोय जानै खाय ।
 एक मिलावै राम को, एक नरक ले जाय ॥ २१ ॥

१३. सखी दाता । १४. वधावना-टत्सव । दोह-दुख, शोक ।

१७. करक अरि पजर । कृदीम सदासे । १८. झाल्य झपाटा ।

१९. सोवरिया देह चाह सोने के समान शरार क्यों न हा ।

माया मेरे राम की, मोदी सब संसार ।
 जाको चीठी ऊतरी, सोई खरचन द्वार ॥ २२ ॥
 माया संचै संग्रहै, वह दिन जानै नाँहि ।
 सहस वरस की सब कौ, परै मूहूरत माँहि ॥ २३ ॥
 माया छाया एक सी, विरला जानै कोय ।
 भगता क पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥ २४ ॥
 माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय ।
 इन माया सब खाइया, माया कोय न खाय ॥ २५ ॥
 माया दासी साधु की, ऊभी देइ असीस ।
 बिच्छसि और छाते छरी, सुमिरि सुमिरि जगदीस ॥ २६ ॥
 माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस ।
 जा ठगने ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥ २७ ॥
 माया सुई न मन सुआ, मरि मरि गया सरीर ।
 आसा तृप्ता ना सुई, यों कयि कहै कवीर ॥ २८ ॥
 माया मरि मन मारिया, राख्या अपर सरीर ।
 आसा तृप्ता मारि कै, धिर है रहै कवीर ॥ २९ ॥
 माया काल का खानि है, धरै त्रिगुन विपरीत ।
 जहाँ जाय तहाँ सुख नहीं, या माया की रीत ॥ ३० ॥
 माया तख्तर त्रिविधि का, सोक दुःख संताप ।
 सीतलना सुपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥ ३१ ॥

जग हटवारा स्वाद टग,	माया वेस्या लाय ।
राम नाम गाढा गहो,	जनि जहु जनम गँवाय ॥३२॥
मैं जानूँ हरिमूँ मिलूँ,	मो मन मोटी आस ।
हरि विच हारै अन्तरा,	माया बढी पिताच ॥३३॥
मोटी माया सब तजै,	झोनी तनी न जाय ।
पीर पैगंबर औलिया,	झोनी सब को खाय ॥३४॥
झोनी माया जिन तजो,	मोटी गई विलाय ।
ऐसे जन के निकट सैं,	सब दुख गये हिराय ॥३५॥
खान खरच बहु अन्तरा,	मन में देखु विचार ।
एक खराबै साधु को,	एक मिलावै छार ॥३६॥
आंधी आइ प्रेम की,	ढही भरम की भीत ।
माया टाटी उडि गई,	लगी नाम सों प्रीत ॥३७॥
पीठा सब कोय खात है,	विष है छागै घाय ।
नीम न कोई पीवसी,	सवै रोग मिटि जाय ॥३८॥
राम हि थोरा जानि के,	दुनिया आगे दीन ।
जीवन को राजा कहै,	माया के आधीन ॥३९॥
सांकर हू ते सबल है,	माया या संसार ।
अपने बल छूटै नहीं,	छुड़वै सिरजनहार ॥४०॥
या माया के कारनै,	हरि सों बैठा तोरि ।
माया करक कदीम है,	केवा गया चंचोरि ॥४१॥

पूत पियारा बाप को,	गोहन लगा धाय ।
लोभ मिठाई हाथ दे,	आपन गया मुलाय ॥४२॥
दीन्ही खाँड पट्टकि कर,	मन में रोस उपाय ।
रोवत रोवत मिलि गया,	पिता पियारे जाय ॥४३॥
मोती उपजे सीप में,	सीप समुन्दर होय ।
रंचक सँचर रहि गया,	ना कछु हुआ न होय ॥४४॥
भूले थे संसार में,	माया के संग आय ।
सनगुरु राह बताइया,	फेरि मिलै तिहि जाय ॥४५॥
हसा तू तौ सबल है,	हल की अरनी चाल ।
रंग कुरंगै रंगिया,	किया और लगार ॥४६॥
रंग तो कुरंग हुआ,	अंग न खाये वान ।
केने मारे जाहिंगे,	इस जाजरी कमान ॥४७॥
जिन को साँई रंग दिया,	कबहु न होय कुरंग ।
दिन दिन बानी आगरी,	चढ़ै सवाया रंग ॥४८॥
सब रंग पानी ते भया,	सब रंग पानी सोय ।
जा रंग ने पानी भया,	सो रंग कैसो होय ॥४९॥
सब रंग पानी ने भया,	सब रंग पानी होय ।
जा रंग ते पानी भया,	सत्त सब्द है सोय ॥५०॥
सो पापन को मूल है,	एक रुपैया रोक ।
साधुजन संग्रह करै,	हारै हरि सो थोक ॥५१॥

साधु ऐसा चाहिये, आई देई चलाय ।
 दोम न लागै तासु को, सिर की टोर बलाय ॥५२॥
 सन्तो खाई रहत है, चोरा लीन्ही जाय ।
 कहै कबीर विचारि के, दरगह मिलि है आय ॥५३॥
 सुकन लागै साधु की, वादि विमुख की जाय ।
 कै तो तल गाड़ी रहे, कै कोय औरै खाय ॥५४॥
 या मारा जग भरमिया, सब को लगी उपाय ।
 येहि तारन के कारने, जग में आये साध ॥५५॥
 कबीर माया सांविनी, जनता ही को खाय ।
 ऐसा मित्र न गारुडी, पकडि पिढारे बाँध ॥५६॥
 माया का सुख चार दिन, कहँ तू गहै गमार ।
 सपने पायो राज धन, जात न लागे बार ॥५७॥
 फरँक पड़ा मैदानमें, कुकर मिले लख कोट ।
 दावा कर कर लड़ि मुए, अंत चले सब छोड ॥५८॥
 माया माथे सींगडॉ, लंवे नौ नौ हात ।
 आगे मारे सींगडॉ, पाछे मारे छात ॥५९॥
 माया ऐसी संखनी, सामी मारे सोय ।
 आपन तो , रीते , रहे, दे औन को बोध ॥६०॥
 गुरु को चेला शीप दे, जो गांठी होय दाम ।
 पृत पिता को मारसी ये माया के काम ॥६१॥

ऊंची डाली मेम की, हरिजन बैठा खाय ।
 नीचे बैठी बाघिनी, गौर पडे तिहि खाय ॥६२॥
 माया दासी संत की, साकट की सिर ताज ।
 साकट की सिर मानिनी, संतो सहेलि लाज ॥६३॥
 एक हरी इक मानिनी, एक मगत इक दास ।
 देखो माया क्या किया, भिन भिन किया प्रकास ॥६४॥
 माया माया सब कहै, माया लखे न कोय ।
 जो मनसे ना ऊतरे, माया कदिये सोय ॥ ६५ ॥
 माया छोरन सब कहै, माया छोरि न जाय ।
 छोदन बी जो बात करु, बहुत तमाचा खाय ॥ ६६ ॥
 मन मते माया तजी, थूं करि निकस बहार ।
 लागी रहि जानी नहीं, भटकी भयो खुवार ॥ ६७ ॥
 माया सप नहि मोहिनी, मन समान नहि चोर ।
 हरिजन सप नहि पारखी, कोइ न दीसे ओर ॥ ६८ ॥
 छोडे विन छूट नहीं, छोदनदारा राम ।
 जीव जनन बहुतहि करे, सरे न एको काम ॥ ६९ ॥
 कबीर माया दाकिनी, खाया सब संसार ।
 खाइ न सके कबीर को, जाके नाम अवार ॥ ७० ॥
 माया षठी हि दाकिनी, करे काल की चोट ।
 कोइ एक हरिजन ऊवरा, पारम्य की ओट ॥ ७१ ॥

माया चार प्रकार की, इक धिलसे इक लाय ।
 एक मिठावे नाम को, एक नरक लै जाय ॥ ७२ ॥
 भसुरी माया आर ही गहि परे न लट्ट ।
 प्रत की सो परमाथी, संत न घाले मूठ ॥ ७३ ॥
 माया जुगवे कौन गुन, अंत न आवे काज ।
 सो सतनाम जोगावहु, भय परमारथ साज ॥ ७४ ॥
 माया सखा पदुम लौं, भक्ति बिहुन जो होय ।
 जम लै ग्रासै सो तेहि, नरक पडे पुनि सोय ॥ ७५ ॥
 मन ते माया ऊपजै, माया तिरगुन रूप ।
 पांच तन्त्र के मेल में, बांधे सकल सरूप ॥ ७६ ॥
 रंक जीव जोइ सोई, होय सोइ धनवंत ।
 धनवंता जो हरि भजे, हरि मिले भगवंत ॥ ७७ ॥
 रंक जु धन को ना चहे, चाहे भेष मतीत ।
 गुरु भक्ता मोहि भावहीं, कहै कबीर अतीत ॥ ७८ ॥

कनक कामिनी को अंग ।

चलो चलो सब को कहै, पहुँचै विरला कोय ।
 एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥ १ ॥
 एक कनक अरु कामिनी, ये लम्बी तरवार ।
 घाले ये हरि मिलनको, बीच हि लीन्हा मार ॥ २ ॥

एक कनक अरु कामिनी,	दोउ अगिन की झाल ।
देखत ही ते परजरै,	परसि करै पैमाल ॥ ३ ॥
एक कनक अरु कामिनी,	बिप फल लिया उपाय ।
देखत ही ते बिप चढै,	चाखत ही मरि जाय ॥ ४ ॥
एक कनक अरु कामिनी,	तजिये भजिये दूर ।
गुरु बिच पाडै अन्तरा,	जम देसी मुख धूर ॥ ५ ॥
जो या घाटी लंगहीं,	सो जन उतरै पार ।
या घाटी तें आखडै,	ताको वार न पार ॥ ६ ॥
अविनासी बिच धार तिन,	कुल कंचन भरु नारि ।
जो कोइ इन ते बचि चलै,	सोई उतरै पार ॥ ७ ॥
नारी की झाँई पड़त,	अंग होत भुजंग ।
कबीर तिन की कौन गति,	नित नारीके संग ॥ ८ ॥
नारि पराई आपनी,	भोगै नरकै जाय ।
आग आग सब एक सी,	हाथ दिये जरि जाय ॥ ९ ॥
जहर पराया आपना,	खायेसँ मरि जाय ।
अपनी रच्छा ना करै,	कहै कविर समुझाय ॥ १० ॥
कृप पराया आपना,	गिरे इनि सो जाय ।
प्रेमा भेद । विचार के,	तुं मति गोहा खाय ॥ ११ ॥
छुरी पराई आपनी,	मारै दर्द जु होय ।
बहुविध कहूँ पुकारि के,	कर छत्रो मति कोय ॥ १२ ॥

नारी निरखि न देखिये,	निरखि नकीमै दौर ।
देखत ही ने बिप चढै,	मन भावै बहुत और ॥१३॥
नारि नसावै तीन गुन	जो नर पास होय ।
भक्ति मुक्ति निज ध्यानमें,	पठि न सकही कोय ॥१४॥
नारी नदी अथाह जल,	बूढ़ि मुवा भंसार ।
ऐसा साधू ना मिला,	जा संग उतरै पार ॥१५॥
नारी कहूँ कि नाहरी,	नख सिल सें यह खाय ।
जल बूड़ा तो ऊवरै,	भग बूड़ा बहि जाय ॥१६॥
नारी नाहीं नाहरी,	करै नैन की चोट ।
कोइ काइ साध ऊवरै,	ले सतगुरु की ओट ॥१७॥
नारी नाहीं जम अहै,	तू मति राच जाय ।
मजारी ज्यों षोलि के,	काढि करेजा खाय ॥ १८ ॥
नारी नदिया सारखी,	वहै अपरबल पूर ।
साहिब सों न्यारा रहै,	अन्त परै मुख घूर ॥ १९ ॥
नारी नदिया सारखी,	और जु भगटे काल ।
सब कालनते वाचि है,	नारी जम का जाल ॥ २० ॥
नारि पुरुष की इस्तरी,	पुरुष नारि का पुत ।
याही ज्ञान विचारि के,	छाडि चला अचधूत ॥ २१ ॥
नारी नजरि न जोरिये,	अंस हि खिस ह जाय ।
जाके चित नारी वसै,	चागि अस ले जाय ॥ २२ ॥

नारी कुंडी नरक की,	विरला थामै वाग ।
कोड साधू जन ऊवरा,	सब जग मूआ लाग ॥ २३ ॥
नारी केरे राचने,	औगुन है गुन नॉहि ।
खार समुन्दर पाछली,	केती बहि बहि जाँहि ॥ २४ ॥
नारि पुरुष सब ही सुनो,	यह सतगुरु की साख ।
विष फल फलै अनेक है,	मति कोइ देखो चाखि ॥ २५ ॥
जिन खाया सोई सुआ.	गन मंथन बड भूप ।
सतगुरु कहै कवार सो,	जगमें जुगति अनूप ॥ २६ ॥
नारी सेती नेह,	बुधि विवेक सब ही हरै ।
कहा गँवावै देह,	कारज कोई ना सरै ॥ २७ ॥
कामिनी काली नागिनी,	तीनों लोक भँझार ।
नाम सनेही ऊवरे,	विषयी खाये झार ॥ २८ ॥
कामिनी सुंदर सर्पिनी,	जो छेटे तिहि खाय ।
जो गुरु चरनन राचिया,	तिन के निकट न जाय ॥ २९ ॥
इक नारी इक नागिनी,	अपना जाया खाय ।
कवहँ सरपट नीकसे,	अपज नाग बलाय ॥ ३० ॥
नैनो वाजर देय के,	गाढे बांधे केस ।
हाथों बेहदी लाय के,	वाघिनि खाया देस ॥ ३१ ॥
परनारी पैनी छुरी.	मति कोइ करी प्रसंग ।
रावन के दस तिर गये,	परनारी के संग ॥ ३२ ॥

परनारी पैनी छुरी, विरला बँचै कोय ।
 कबहुँ छेडि न देखिये, हसि हसि खावै रोय ॥ ३३ ॥
 परनारी पैनी छुरी, विरला बाधै कोय ।
 ना वह पेट भँचारिये, जो सोना की होय ॥ ३४ ॥
 परनारी के राचनै, सीधा नरकै जाय ।
 तिन को जम छोडै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥ ३५ ॥
 परनारी का राचना, ज्यूँ लहसुन की खान ।
 कोनै बैठे खाइये, परगट होय निदान ॥ ३६ ॥
 परनारी राता रहे, चोरी बैठत खाय ।
 दिवस च्यारि सरसा रहै, अन्त ममूला जाय ॥ ३७ ॥
 परनारी पर सुन्दरी, जैसे सून्नी साल ।
 नित कलेस भुगतै सही, वह न छोडै खाल ॥ ३८ ॥
 छोटी मोटी कामिनी, सब ही बिप की बेल ॥
 बैरी मारै दाव सँ, यह मारै हँसै खेल ॥ ३९ ॥
 देखत ही दह में परै, कनक कामिनी भाय ।
 कहँ कविर कौतुक भया, मन को रहा समाय ॥ ४० ॥
 जो कबहुँ के देखिये, चीर बहिन के भाय ।
 आठ पहर अलगा रहे, ताको काल न खाय ॥ ४१ ॥

३६ खान-खाना । निदान-अन्त में ।

४१ स्त्री को पापदृष्टि से न देखे, अधिक आयुवाली को माता और समयस्क को बहिन के भाव से देखना चाहिये । जो इस प्रकार पवित्र व्यनहार से रहता है वह काल के चक्र से बच सकता है ।

सरव सोने की सुन्दरी, आवै वास सुवास ।
 जो जननी है आपनी, तऊ न बैठे पास ॥४२॥
 गाय रोग हँसि खेलि के, हरत मयन के प्रान ।
 कहै कविर या घात को, समझै संत सुजान ॥४३॥
 गाय भैंस घोड़ो गरी, नारि नाम है तास ।
 जा मंदिर में ये बसै, तहाँ न कीजै वास ॥४४॥
 जग में भक्त कहावई, चुम्की चून न देय ।
 सिप जोरु का है रहा, नाम गुरु का लेय ॥४५॥
 सेवक अपना करि लिया, आज्ञा भेटै नाँहि ।
 भग मंतर दे गुरु भई, सिप है सबै कर्माँहि ॥४६॥
 फाटे कानों बाघिनी, तीन लोक को खाय ।
 जीवत खाय कलेजरा, पुये नरक ले जाय ॥४७॥
 कविर नारि की प्रीति से, केते गये गढन्त ।
 केते औरों जाहिंगे, नरक हसन्त हसन्त ॥४८॥
 जोरु झूठनि जगत की, भले बुरे के बीच ।
 उत्तम सो अलगा रहे, मिलि खेलै सो नीच ॥४९॥
 सुन्दरी ते सुली भली, विरला बाँचै कोय ।
 लोहलुहालै अगिनिमें, जरि वरि कुइला होय ॥५०॥
 राज वीरज की कोठरी, तापर साज्यो रूप ।
 एक नाम बिन बूढ़ी, कनक कामिनी कृप ॥५१॥

जहाँ जराई सुन्दरी, तूँ जनि जाय कवीर ।
 उडि के भमम जो लागसी, मृता होय सरीर ॥५३॥
 नागिन के तो दोष फन, नारी के फन बीस ।
 जाका दसा न फिर जियै, मरि है विसरा बीस ॥५३॥
 जगमें डोढी कामिनी, पीवै सब संसार ।
 सोफी है करि जो पिये, ताहि उतारै पार ॥५४॥
 दीपक झोला पवन का, नरका झोला नारि ।
 साधू झोला सब्दका, बोलै नाहि विचार ॥५५॥
 केता बहाया बहि गया, केता बहि बहि जाय ।
 ऐसा भेद विचारि के, तुं मति गोता खाय ॥५६॥
 कपास विनूठा कापडा, रुदे सुरंग न होय ।
 कवीर त्यागो ज्ञान करि, कनक कामिनी दोष ॥५७॥
 नारी काली ऊनली, नेक विपासी जोष ।
 सब ही डारे फंदमें, नीच लिये सब कोय ॥ ५८ ॥
 नारी मदन तलावडी, भव सागर की पाल ।
 नर मच्छा के कारने, जीवत मांडी जाल ॥ ५९ ॥

५३. इस साखी में सुन्दरी की गीत अगुनियों को सब का फन बताया गया है, क्यों कि कामीजन उनको देखकर मोहित हो जाते हैं ।

५४ डोढी—पोस्ते का छतरा । सोफी—हल्का नशा करनेवाला । भाव यह है कि जो गृहस्थी अपनी स्त्री के साथ अनासक्ति व्यवहार करता है, वह क्रमशः मुक्ति मार्ग पर जाता है ।

५७. कपास विनूठा—खराब कपास से बना हुआ ।

नारी नरक न जानिये, सब संतन की खान ।
 जामें हरिजन ऊपजे, सोइ रतन की खान ॥ ६० ॥
 कबीर मन मिरतक भया, इंद्रो अपने हाथ ।
 तोभी कबहु न कीजिये, कनक कामिनी साथ ॥ ६१ ॥
 मांस पांस सब एक है, क्या हरनी क्या गाय ।
 नारि नारि सब एक है, क्या मेहरी क्या माय ॥ ६२ ॥
 त्रिपा कृतघ्नी पापिनी, तासों भीति न जोड ।
 पछी चढिया आखडै, लागे मोटी खोड ॥ ६३ ॥
 सात दीप नव खंड में, सबमें फगुवा लीन ।
 ठाढी कहै कबीर सों, तुपने कछु न दीन ॥ ६४ ॥

काल को अंग ।

काल जीव को ग्रासई, बहुत कयो समुझाय ।
 कहै कविर भैं क्या करूँ, कोई नहि पतियाय ॥ १ ॥
 काल हमारे संग है, कस जीवन की आस ।
 दस दिन नाम सँभार लै, जव लग पिंजर सांस ॥ २ ॥
 काल चिचाना है खड़ा, जाग पियारे मीत ।
 नाम मनेही बाहिरा, क्यों सोवै निहचीत ॥ ३ ॥

अठ्ठा सुख को सुख कहै,	मानत है मन मोद ।
जगत चबेना काल का,	कलु मूठी कलु गोद ॥ ४ ॥
आज काल पल छिनक में,	मारग मेला हित ।
काल चिचाना नर चिड़ा,	औजह औ अवचित ॥ ५ ॥
सब जग सूना निंद भरि,	मोहि न आवै निंद ।
काल खड़ा है वारनै,	(ज्यों) तोरन आया बिंद ॥ ६ ॥
ढालै डूलै दिन गयो,	व्याज बढ़ता जाय ।
ना हरि भजा न खत कटा,	काल पहुँचा आय ॥ ७ ॥
कबीर दुग दुग चोपतां,	पल पल गई बिदाय ।
जिन जंजाले पड़ि रहा,	दिया दमाया आय ॥ ८ ॥
मैं अकेल बह दो जना,	सेरी नहीं कोय ।
जो जप आगे ऊवरो,	तो जरा बैरि होय ॥ ९ ॥
जरा आय जोरा किया,	पिय अपना पहिचान ।
अन्त कलु पल्ले पड़े,	ऊठत रे खलिशन ॥ १० ॥
जरा आय जोरा किया,	नैनन दीनी पठ ।
आँखी ऊपरि आगुली,	वीष भरै पल नीद ॥ ११ ॥
जीवन सिकंदारी तजी,	चला निमान बजाय ।
सिर पर सेव सिरायचा,	दिया बुढ़ाये आय ॥ १२ ॥

६. चिड़ा—चिड़िया । ६. वारनै—द्वार पर । बिंद—दुल्हा, वर ।

८. दुगर चौवना—दुख २ देखते ।

११. वीष—विष । आँखों पर अगुलियों की लापा करने से एक निना तब मुश्किल से देखने में आता है ।

१२. सिकंदारी—सरदारा । सेव सिरायचा—सफेद पगटे ।

कान लगी सुनहा कहे, कालै पानी हार ।
 राज विराजी होत है, सकै तो नाम सम्हार ॥१३॥
 राम कहा जिन कहि लिपा, जरा पहुँची आय ।
 मंदर लागो द्वार सों, अब कह्यु कही न जाय ॥१४॥
 विरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये और ।
 विगरा काज सँभारि लै, करि छूटन की ठौर ॥१५॥
 विरिया बीती बल घटा, औरौ बुरा कपाय ।
 हरिजन छाँडा हाथ तें, दिन नोरा ही आय ॥१६॥
 जरा कुत्ता जोवन ससा, काल अहेरी निज ।
 दो बैरी बिच झोंपडा, कुसल कहाँसों पित्त ॥१७॥
 कुसल कुसल जो पूछा, जग में रदा न कोय ।
 जरा मुई ना भय सुभा, कुसल कहाँ ते होय ॥१८॥
 यहि जो याँजै राज दर, सुनता है सब कोय ।
 आयु घटे जीवन खिसै, कुसल कहाँ ते होय ॥१९॥
 कै कुसल अनजान के, अथवा नाम जपन्त ।
 जनम मरन होवा नहीं, तो नूझो कुसलन्त ॥२०॥
 कुसल जो पूछो असल की, आसा लागी होय ।
 नाम बिहूना जग सुआ, कुसल कहाँ ते होय ॥२१॥
 माला आवत देखि के, कलियाँ करे पुकार ।
 फूली फूली चुनि लई, काल हमारी वार ॥२२॥

बढही आवत पेखि के, तरुवर रुदन कराय ।
 मै अपग संसै नहीं, पच्छी वसते आय ॥२३॥
 फागन आवत देखि के, बन रोना मन माँहि ।
 ऊँची डारी पात था, पिपरा है ह जॉहि ॥२४॥
 पात जो तरुवर सो कहै, बिलंब न मानै मोर ।
 आय रिनु जो वसंत की, जँड जाओ तँड तोर ॥२५॥
 तरुवर पात सों यों कहै, सुनो पात इक बात ।
 या घर याही रीति है, इक आवन इक जान ॥२६॥
 पात झरन्ता यों कहै, सुन तरुवर बनराय ।
 अब के बिलुड़े ना मिले, दूर पढ़ेंगे जाय ॥२७॥
 कहै पात वा झाड सो, कडा पढ़ी अब तोहि ।
 ज्यों वा तरुवर ही तजो, चलो जान दे मोहि ॥२८॥
 पीपल पान झरनिया, हँसी आय को घेरि ।
 यॉही बसिया होयगा, अपनी अपनी बैरि ॥२९॥
 मेरा चार लुहारिया, तू मति जारै मोहि ।
 इक दिन ऐमा होयगा, मै जारौगी तोहि ॥३०॥
 जारनहारा भी मुआ, मुआ जलानहार ।
 है है करते भी मुये, कासों करूँ पुकार ॥३१॥
 जो ऊँगे सो आयमे, फूँडे सो कुम्हिलाय ।
 जो चूने सो ढाँहि पड़े, जामै सो मरि जाय ॥३२॥

निश्चय काल गरामही, बहुत कहा समुझाय ।
 कहै कवीर मैं का कहूं, देखत ना पतियाय ॥३३॥
 कवीर जीवन कुछ नही, खिन खारा खिन मीठ ।
 कालिह अलहजा मारिया, आज मसाना दीठ ॥३४॥
 कवीर मंदिर आपने, नित उठि करता आल ।
 मरहत देखी हरपता, चौडै दीया जाल ॥३५॥
 कवीर पगरा दूरि है, बीच पड़ी है रात ।
 ना जानौं क्या होयगा, ऊगन्ता परभात ॥३६॥
 कवीर गाफिल क्यों फिरै, क्यों सोता घन घोर ।
 तेरे सिराने जम खड़ा, ज्युं अंधियारे चोर ॥३७॥
 कवीर हरि सों हेत कर, कोरै चित न लाय ।
 बांध्यो वारि खटीक के, ता पसु कैतिक आय ॥३८॥
 कवीर सब सुख राप है, और हि दुख की रासि
 सुर नर मुनि अरु असुर सुर, पड़े काल की फांशि ॥३९॥
 धमन धमती रहि मई, बूझि गया अंगार ।
 अहरन का ठमका रहा, जब उठि चला लुहार ॥४०॥
 पैथी ऊमा पंथ सिर, बगुचा बांरा पूंठ ।
 मरना मुंह आगे खड़ा, जीवन का सब झूठ ॥४१॥

३४. अलहजा=आलोजा, घोर । ३८. वारि=दरवाजे । खटीक=कसाई ।

४०. धमन=धूमनी । ४१. बगुचा=गट्टी ।

यह जीव आया दूर ते, जाना है बहु दूर ।
 बिच के वासै बसि गया, काल रहा तिर पुर ॥४२॥
 काचो काया मन अधिर, धिर धिर करम करन्त ।
 ज्यों ज्यों नर निधडक फिरै, त्यों त्यों काल हसन्त ॥४३॥
 हम जाने थे खादिने, बहुत निर्मो बहु माल ।
 ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकडि ले गया काल ॥४४॥
 चहुँ दिस पाका कोट था, मन्दिर नगर मैझार ।
 खिरकि खिरकि पाहरू, गन बंधा दरबार ॥४५॥
 चहुँदिस ठाढ़े सुरमा, हाथ लिये धारियार ।
 सब ही यह तन देखताँ, काल ले गया मार ॥४६॥
 आस पास जोधा खड़े, सबै बजावै गाल ।
 मंझ महल तेँ ले चला, ऐसा परवल काल ॥४७॥
 धरती करते एक पग, कते समुद्र फाल ।
 हाथों परवत तोलने, तेभी खाये काल ॥४८॥
 हाथों परवत फाडने, समुद्र घूट भराय ।
 ते मुनिर धरती गले, का कोय गरव कराय ॥४९॥
 ताजी छटा सहरते, कसबै पड़ी पुकार ।
 दरवाजा जडा हि रहा, निकस गया असवार ॥५०॥
 वेष्ट जाये क्या हुआ, कटा बजावै थाल ।
 आवन जावन है रहा, ज्यों कीडी का नाल ॥५१॥

जाया जाया सब कहै, आया कहैं न कोय ।
 जाया नाम जनम का, रहन कहाने होय ॥५२॥
 बालपना भोले गया, और जुवा महमंत ।
 बृद्धपने आलस भयो, चला जरन्ते अन्त ॥५३॥
 संसै काल सरीर में, विषम काल है दूर ।
 जाको कोइ जानै नहीं, जारि करै सब धूर ॥५४॥
 जारि वारि मिस्सी करै, मिस्सी करि है छार ।
 कहै कविर कोइला करै, फिर दे दै औतार ॥५५॥
 ऐसे साँच न मानई, तिल ही देखो जोय ।
 जारि वारि कोइला करै, जमत। देखा सोय ॥५६॥
 संसै खाया सकल जग, संसा किनहु न बढ़ ।
 जो बंधा गुन अच्छरा, संसा चुनि चुनि खड्ड ॥५७॥
 संसै काल सरीर में, जारि करै सब धूर ।
 काल से वाचै दास जन, जिनपै बाल इजूर ॥५८॥
 घाट जगाती धर्मराय, सब का झारा लेय ।
 सत्त नाम जानै विना, उलटि नरक में देय ॥५९॥
 जिनके नाम निसान है, तिन अटकावै फौन ।
 पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवा गौन ॥६०॥
 घाट जगाती धर्मराय, गुरुमुख ले पहिचान ।
 छाप विना मननाम कै, माकट रहा निर्दान ॥६१॥

५३. जुवा—जवानो । महमंत—गम्ता । ५९. घाट जगाती—मइमूर
 लेनेवाला, चूंगी टगा देनेवाला ।

गुरु जहाज हम पावना, गुरुमुख पारि पडै ।
 गुरु जहाज जानै विना, रोवे घाट खडै ॥६२॥
 खुलि खेलो संसार में, बांधि न सकै कोय ।
 घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट न होय ॥६३॥
 जम्पन जाय पुकारिया, डंडा दीया डार ।
 संत मवासी है रहा, फासि न पडे हमार ॥६४॥
 जाता है जिस जान दे, तेरी टसी न जाय ।
 केवटिया की नाव ज्यौ, घना चढेगा आय ॥६५॥
 चाकी चली गुपाल की, सब जग पीसा झार ।
 रुडा सज्ज कबीर का, डारा पाट उबार ॥६६॥
 चलती चाकी देखिके, दिया कबीरा रोय ।
 दो पाटन विच आयके, सावत गयान कोय ॥६७॥
 आसै पासै जो फिरै, निपट पिमावै सोय ।
 कीला सों लागा रहै, ताको विपन न होय ॥६८॥
 सब जग हरपै काल सो, ब्रह्मा विष्णु महेस ।
 सुर नर मुनि औ लोक सब, सात रसातल सेस ॥६९॥
 चंद्र मूर घर पवन लौं, खंड ब्रह्मंड मोस ।
 जम डरै काल कपोर सों, जै जै तू आदेस ॥७०॥

६२. मवासी-जगा । ६५. डसी-डसी, फन्दा । ६६. रुडा—
 बड़ा ककर ।

१. पा० उबार । २. पा० बचा ।

मूसा डरपे काल सुं,	कठिन काल का जोर ।
स्वर्ग भूमि पातालमें,	जहा जाव तहँ घोर ॥७१॥
फागुन आवत देखि के,	मन झूरे वनराय ।
जिन डाली हथ केलि किय,	सोही व्यारे जाय ॥७२॥
पान झरता देखि के,	हसती कूपलियां ।
हथ चाले तुम चालियो,	धीरी बापलियां ॥७३॥
काल पाय जग उपजो,	काल पाय सब जाय ।
काल पाय सब विनसि है,	काल काल कहँ खाय ॥७४॥
काल काल सब कोइ कहे,	काल न चीन्हे कोय ।
जेती मन की कल्पना,	काल कहावे सोय ॥७५॥
काल फिर फिर ऊपर,	हाथों धरी कपान ।
कहँ कविर गहु नाम को,	छोड़ सकल अभिमान ॥७६॥
जाय झरोखे सोवता,	फूलन सेज विछाय ।
सो अब कहँ दीखै नहीं,	छिनमें गयो विलाय ॥७७॥
अधम कला सब काल की,	देखहु उलटी रीत ।
करै प्रतीति दृढ चोर सों,	साहब से नहि प्रीत ॥७८॥
कवीर पगरा दूर है,	आय पहुँची सांझ ।
जन जन को मन राखतां,	बेस्या रहि गई बांझ ॥७९॥

समरथ कौ अंग ।



साहिव सौ सत्र होत है, बंदे से कुछ नाँहि ।
 राई से परबत करै, परबन राई माँहि ॥ १ ॥
 साहिव सम समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर ।
 औगुन छाडै गुन गई, छिनक उतारै तीर ॥ २ ॥
 वहन वहन्ता थल करै, थल कर वहन बहोय ।
 साहिव हाथ बढाइया, जस भावै तस होय ॥ ३ ॥
 वहन वहन्ता थिर करै, थिरता करै बहैन ।
 साहिव हाथ बढाइया, जिस भावै तिस दैन ॥ ४ ॥
 ना कुछ किया न करि सका, (नहि)करने जोग शरीर ।
 जो कुछ किया साहिव किया, ताते भया कथीर ॥ ५ ॥
 जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ कीया नाँहि ।
 कहँ कहीं जो मैं किया, तुम ही थ मुझ माँहि ॥ ६ ॥
 कीया कुछ न होत है, अन कीया ही होय ।
 कीया जो कुछ होत तो, करता औरै कोय ॥ ७ ॥
 ना कुछ किया न करि सका, ना कुछ करने जोग ।
 मैं मेरी जो ठानि के, दूजी थापै लोग ॥ ८ ॥

इत कूवा उत बावडी, इत उत थाह अथाह ।
 दह दिसा फनि फन कटै, समरथ पार लगाह ॥ ९ ॥
 घट समुद्र लखि ना परै, ऊठै लहरि अपार ।
 दिल दरिया समरथ बिना, कौन लगावै पार ॥ १० ॥
 धन धन सौई तू बडा, तेरी अनुपम रीत ।
 सकल भवन पति सौइया, है करि रहे अतीत ॥ ११ ॥
 सौई मै तुझ बाहरा, कौढी हू नहि पाउं ।
 जो सिर उपर तुम धनी, मंहगे मोल बिकाऊं ॥ १२ ॥
 सौई मेरा चानिया, सहज करै व्योपार ।
 बिन हांढी बिन पालडे, तोलै सब संसार ॥ १३ ॥
 सौई केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाँहि ।
 जो दिल खोजूं आपना, सब औगुन मुझ माँहि ॥ १४ ॥
 तेरे बिन जोर जुल्म है, मेरा होय अकाज ।
 विरद तुम्हारे नाम की, सरन पड़े की लाज ॥ १५ ॥
 वाटरिया दूमर भई, पति कोय कायर होय ।
 जिन यह भार उठाइया, निरवाहेगा सोय ॥ १६ ॥
 हाथी अटवयो कीचमें, काँढे को समरथ ।
 की बल निकलै आपनै, की साई पसारै हथ ॥ १७ ॥
 जिस नहीं कोय तिस हि तू, जिस तू तिस सब होय ।
 दरगह तेरी साईया, भेटि न सकै कोय ॥ १८ ॥

जिसके ; कोई संग नहीं, तिसका तू सब होय ।
 सब पर तेरा हुक्म है, सकै नहि कोय ॥१९॥
 मेरा किया न कुछ भया, तेरा कीया होय ।
 तू करत सब कुछ करै, करता और न कोय ॥२०॥
 अंगुन हारा गुन नहीं, मनका बडा कठोर ।
 ऐसे समर्थ साइया, ताहि लगावे ठौर ॥२१॥
 तुम तो समर्थ साइया, गहि करि पकड़ो बाँह ।
 धूरहि ले पहुँचाइयो, मत छोड़ो मग पाँहि ॥२२॥
 बालक रूपी साइया, खेलै सब घट माँहि ।
 जो चाहै सो करत है, मय काहूँका नाँहि ॥२३॥
 एक खडा ही ना लहे, एक जमा बिललाय ।
 समर्थ मेरा साइया, सूता देय जगाय ॥२४॥
 समर्थ धोरी कंध दे, रथ को दे पहुँचाय ।
 मारग माहि न छाँडिये, पिय विन विरद लजाय ॥२५॥

२४. ना लहे—नहीं पाता है । जमा—खडा । बिललाय—बिगड़
 करता है ।

जिस पर मालिक की दया नहीं होती वह सदैव तत्पर रहने पर भी
 स्वामिष्ट को नहीं पाता और कोई तो उसकी प्रतीक्षा में वरुण—ऋतु
 भी करने लगता है । और जिस पर समर्थ की कृपा होती है उसको व
 वस्तु अचानक मिल जाती है ।

२५ धोरी—धुरीण, आगे चलनेवाला, नैल ।

वारी हरिके नाम पर, कीया राई लौन
जिसै चलावै पंथ तू, तिसै मुलावै कौन ॥२६॥

मुझमें औगुन तुझहि गुन, तुझ गुन औगुन मुझ ।
जो मैं बिसरूं तुझ को, तू मात बिसरै मुझ ॥२७॥

साहिब तुम जनि बीसरो, लाख लोग मिलि जाहि ।
हम से तुमको बहुत हैं, तुम सम हम को नाहि ॥२८॥

तुम्है बिसारै क्या बने, किसके सरनै जाय ।
सिव विरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहि समाय ॥२९॥

मेरा मन जो तुझसें, तेरा मन कही और ।
फहै कविर कैसे बने, एक चित्त दुइ ठौर ॥३०॥

जो मैं भूल विगाडिया, ना करु मैला चित्त ।
साहिब गरुवा चाहिये, नफर विगाडै नित्त ॥३१॥

कबीर भूल विगाडिया, करि करि मैला चित्त ।
नफर तो दीन अधीन है, साहिब राखै हित्त ॥३२॥

मुझमें गुन एकौ नहीं, सुनो सन्त सिर मौर ।
तेरे नाम प्रतापसें, पाऊँ आदर ठौर ॥३३॥

अन्तरजामी एक तू, आत्म के आधार ।
जो तुम छाँडो हाथ तें, कौन चतारे पार ॥३४॥

भौसागर भारी भया, गहिरा अगम अथाह ।
 तुम दयाल दाय करो, तब पाकं कुछ थाह ॥३५॥
 सतगुरु बड़े दयाल है, सन्तन के आधार ।
 भौसागर अथाह सों, खेद छतारै पार ॥३६॥
 साहिब तुम हि दयाल हो, तुम लग मेरी दौर ।
 जैसे काग जहाज को, झूझ और न ठौर ॥३७॥
 मेरा मन जो तोहि धूँ, यों जो तेरा होय ।
 अहरन ताता छोड़ ज्यों, संघि लखै नहि कोय ॥३८॥
 कबीर करत है विनती, भौसागर के ताई ।
 चन्दे जोरा होत है, जम को वरजु गुसाई ॥३९॥
 घर्मराय दरबार में, दई कबीर तलाक ।
 भूले चूके हंस को, मति कोइ रोको चाक ॥४०॥
 बोलै पुरुष कबीर सें, घर्मराय कर जोर ।
 तुझरे हंस न चंपि हो, दुहाइ लाख करोर ॥४१॥
 जो जाकी शरनै गहे, ताको ताकी लाज ।
 छलटि मीन जल चढ़त है, बहो जात गजराज ॥४२॥
 और पुरुष सब कूप है, तू है सिंधु समान ।
 मोहि टेक तुव नाम की, सुनिये कृपा निधान ॥४३॥
 चिडिया प्यासी समुंद गई, नीर न घटिया जाय ।
 ऐसा वासन ना घना, जामें समुंद सपाय ॥४४॥

अजगर करै न चाकरी, पंखी करै न काम ।
 दास कवीरा यूँ बहै, सब के दाता, राम ॥४५॥
 यदपि हम कायर कुटिल, खेर चाकरी चोर ।
 तदप्री कृपा न, छाड़िये, चितै आपनी ओर ॥४६॥
 जाको रखै साइया, मारि न सकै कोय ।
 बाल न बाँका करि सके, जो जग बैरो होय ॥४७॥
 साँई करे बहुत गुन, लिखे जु हिरदै मांछि ।
 पिऊँ न पानी डरपता, मत वै धोये जांछि ॥४८॥
 अनेक बंधनसे बांधिया, एक विचारा जीव ।
 अपने बळ छूटे नहीं, जो न छुडारै जीव ॥४९॥
 तन की जानै मन की जानै, जानै चित की चोरी ।
 वह साहिव सँ क्या छिपावै, जिनके हाथमें डोरी ॥५०॥
 जो जाको बाँही लगो, नाही के सिर भार ।
 हलकी फइरी, तूबरी, लेई उतारै पार ॥५१॥

चानक को अंग ।

कवीर तस्ना टोकना, लीये डोलै स्वाद ।
 रामनाम जाना नहीं, जनम भँगाया बाद ॥ १ ॥
 कवीर कलिपुग, कठिन है, साधु न मानै कोय ।
 कामी, क्रोधी, मसखरा, तिनका आदर होय ॥ २ ॥

नाचै गावै पद कहै, नौही गुरु सौ हेन ।
 कहै कविर कथो नीपजै, बीज बिहना खेत ॥ ३ ॥
 कै खाना कै सीवना, और न कोई चित्त ।
 हरि सा मोतप बीसरा, बालापन का मित्त ॥ ४ ॥
 उस उदर के कारनै, जग जाच्यो निसि जाम ।
 स्वापिनो सिर पर चढ्यो, सख्यो न एको काम ॥ ५ ॥
 कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहे बंधाय ।
 देव पैसा व्याज को, लेख करते दिन जाय ॥ ६ ॥
 कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धरे खदय ।
 राजदुवारै यो फिरै, ज्यौ हरियाई गाय ॥ ७ ॥
 राज दुवारै रापजन, तीन वस्तु को जाय ।
 कै भीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥ ८ ॥
 हरि सुमिरन साँची कथा, कोय न सुनि है कान ।
 कलिजुग पूजा दम की, बाजारी का मान ॥ ९ ॥
 तारा मंडल बैठ के, चाँद बढाई खाय ।
 उदै भया जब सूर का, तब तारा छिपि जाय ॥ १० ॥
 देखन का सब क्रिय भला, जैसे सिव का कोट ।
 रवि के उदय न दीसही, बंधे न जलकी पोट ॥ ११ ॥
 पद गावै मन हरिपि के, साखी कहै अनंद ।
 सचनाम नहि जानिया, गलम परिगा फंद ॥ १२ ॥

करता दोसै कीरतन, ऊँचा करि करि दंम ।
 जानै बूझै कलु नहीं, यौही अंग रंभ ॥१३॥
 स्वामी होना सेव का, पैसे केर पचास ।
 राम नाम धन बेचि कं, करै सीप की आस ॥१४॥
 राम नाम जाना नहीं, जपा न अजपा जाप ।
 स्वामिपना माथे पड़ा, कोइ पुरवळे पाप ॥१५॥
 स्वामी के सहमी पड़ी, माया की मुँह मार ।
 मान दि में राता रहे, बूडै पम् गँवार ॥१६॥
 महंत तो माया गळा, समझै नहीं गँवार ।
 भेष बनाया भोंड का, घर घर जाचा छार ॥१७॥
 सकल स्वामी सँ कहो, सुनरे चेत अचेत ।
 पीतल ही का पारखू, हरि सँ नाही हेत ॥१८॥
 कबीर स्वामी कोय नहीं, स्वामी सिरजन हार ।
 स्वामी है करि बैठही, बहुत सहेगा मार ॥१९॥
 जो मन कागा एक सों, तौ निरुवारा जाय ।
 वरा दो मुख बाजता, न्याय तमाचा खाय ॥२०॥
 कबीर बंटा टोकनी, लीया फिरै सुभाय ।
 राम नाम चीन्हे नहीं, पीतल ही की चाय ॥२१॥
 कबीर व्यास कथा कहै, भीतर मेदे नांछि ।
 औरों कं परमोघतां, गये मुहरका माहि ॥२२॥

कबीर कहहिं पीर को, समझावै सब कोय ।
 संसय पड़ेगा आयकुं, और कहे का होय ॥२३॥
 कबिर सुनावत दिन गये, उलझि न सुलझ्या मन ।
 कहै कबिर चेता नहीं, अजहुं पहला दिन ॥२४॥
 अमरापुर को जात हों, सबसे फहों पुकार ।
 आवन होय तो आयो, सूरी ऊपर यार ॥२५॥
 कहै कबीर धर्मदास सों, परदा दर्ई उधार ।
 जब सेवक स्वामी मये, संतो करो विचार ॥२६॥
 चित चटकी लागी नहीं, क्यों पावै करतार ।
 कीट भिरंगी होत है, नरको केतिक वार ॥२७॥
 नर नारायण होत है, जो करि बूझै कोय ।
 कीट भिरंगी होत है, गुरु बलिहारी तोय ॥२८॥
 इन्द्रो एको बस नहीं, छोड़ चले परिवार ।
 दुनिया पीछे यों फिरै, जैसे चाक कुम्हार ॥२९॥

आत्म अनुभव को अंग ।

आत्म अनुभव सूख की, जो कोई बूझै बात ।
 कै जो कोई जानई, के अपनो ही गात ॥ १ ॥
 आत्म अनुभव जब भयो, तब नहि हर्ष विपाद ।
 चित्र दीप सम है रहे, तमि करिवाद विवाद ॥ २ ॥

आत्म अनुभव ज्ञान को,
 सो गूंगा गुड़ खाय के,
 ज्यों गूंगा के सेन को,
 त्यों ज्ञानी के सुख को,
 नर नारी के सुख को,
 त्यों ज्ञानी के सुख को,
 ताको लच्छन को कहे,
 साथ असाथ न देखि,
 कागद लिखै सो कागदी,
 आत्म दृष्टि कहाँ लिखै,
 लिखा लिखी को है नहीं,
 दुलहा दुलहिन मिलि गये,
 स्याम सबज विधि पंच जे,
 चक्षुमान अचक्षु को,

जो कोय पूछे बात ।
 कहे कोन मुख स्वाद ॥ ३ ॥
 गूंगा ही पहिचान ।
 ज्ञानी हे सो जान ॥ ४ ॥
 खसी नहीं पहिचान ।
 अज्ञानी नहि जान ॥ ५ ॥
 जानो अनुभव ज्ञान ।
 क्यों करि करुं बखान ॥ ६ ॥
 को ब्योहारी जीव ।
 जित देखे तित पीव ॥ ७ ॥
 देखा देखी बात ।
 फीकी पढ़ी बरात ॥ ८ ॥
 पीव अरुन अरु सेव ।
 ज्यों नहि उपमा देत ॥ ९ ॥

ज्ञान भक्ति वैराग सुख,
 आत्म अनुभव सज सुख,
 ज्ञानी जुक्ति सुनाइया,
 मुरदास की इस्नरी,
 ज्ञानी भूले ज्ञान कथि,
 बाहिर खोजे वापुर्,

पीव ब्रह्म लौं धाय ।
 त्यों न दूजा जाय ॥ १० ॥
 को सुनि करे विचार ।
 का पर करे सिंगार ॥ ११ ॥
 निकट रहा निज रूप ।
 भीतर वस्तु अनूप ॥ १२ ॥

भीतर तो भेदा नहीं, बाहिर कथे अनेक ।
जो पै भीतर लाख परै, भीतर बाहिर एक ॥ १३ ॥
नैन समाने, नैन में, वैन समाने वैन ।
जीव समाने, ब्रह्म में, रहै ऐन के ऐन ॥ १४ ॥
झारी फासी कूप में, भभकी पानी माँहि ।
सहै भभकी सब मिटि गई, अशुक्ल कदनी नाँहि ॥ १५ ॥
भरा होय तो रीतई, रीता होय भराय ।
रीता ॥ भरा न पारये, अतुभव सोय कहाय ॥ १६ ॥
कहा सिखापन देखे हो, समुझि देख मनु माँहि ।
सबै हरफ है दात में, दात में हरफन माँहि ॥ १७ ॥
सुखपत माँहि सब गले, मन सुधि चित परेकास ।
छिनक माँहि परलै भया, को ठाकुर को दास ॥ १८ ॥
जागृत जागृत साँच है, मोचन सपना साँच ।
देह गये दोऊ गये, ज्यों भगली का नाच ॥ १९ ॥
अंधरे को हाथी ज्यों, सब काहु को ज्ञान ।
अपनी अपनी कहत है, काँको धरिये ध्यान ॥ २० ॥
अंधे मिलि हाथी लुभा, अपने अपने ज्ञान ।
अपनी अपनी सब कहे, किसको दीजे कान ॥ २१ ॥

—१४. ऐन—एक—१७. हरफ—अक्षर—

१८. सुखपत—सुपुष्टि अवस्था । १९. भगली—जादूगरी ।

अँधरन को हाथी सही, हँ साचे सघरे ।
 हाथन की कोई बटै, आँखिन के अँधरे ॥२२॥
 अँधों का हाथी सही, हाथ टटोल टटोल ।
 आँखों सँ नहि देखिया, ताते भिन भिन बोल ॥२३॥
 दूजा है तो बोलिये, दूजा झगरा सोदि ।
 दो अँधों के नाच में, काँपै चाको मोहि ॥२४॥
 निरजानी सों कहिये कदा, कहत कवीर लजाय ।
 अँधे आगे नाचते, कला अकारय जाय ॥२५॥
 वचन वेद अनुभव जुगति, आनंद की परछाँहि ।
 मोघ रूप पुरुष अखाँडित, कदवे में कटु नाहि ॥२६॥
 बूझ सरीखी बात है, कदन सरीखी नाँहि ।
 जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसै माँहि ॥२७॥
 ज्ञानी तो निरमय भया, पानै नाहीं संक ।
 इन्द्रिन धरे वासि पडा, भुगते नरक निसंक ॥२८॥
 ज्ञानी मूछ गँवाइया, आप भये करता ।
 ताते संसारी भला, जो सदा रहै डरता ॥२९॥

सहज को अंग ।



सहज सहज सब कोय कहै,	सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजै साधिव मिलै,	सहज कहावै सोय ॥ १ ॥
सहज सहज सब कोय कहै,	सहज न चीन्है कोय ।
पाँचौ राखै पसरती,	सहज कहावै सोय ॥ २ ॥
सहज सहज सब कोय कहै,	सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजै विषया तनै,	सहज कहावै सोय ॥ ३ ॥
सहजै सहजै सब भया,	मन इन्द्रो का नास ।
निहकामी सौ मन मिला,	कटी करम की फाम ॥ ४ ॥
सहजै सहजै सब गया,	सुन बिन काम निकाम ।
एक मेक है मिलि रदा,	दास कवीरा राम ॥ ५ ॥
काहे को कलपत फिरै,	दुखी होत बेकाम ।
सहजै सहजै होयगा,	जा बहु रचिया राम ॥ ६ ॥
जो कल्पै तो दूरि है,	अनकलरै है सोय ।
सतगुरु मेटी बलपना,	सहज होय सो होय ॥ ७ ॥
जो कहु आवै सहज में,	सोई मीठा जान ।
बहुना लागै नीम सा,	जामैं ऐचातान ॥ ८ ॥

२. पसरती=फली गइ । पचज्ञानेन्द्रियों के अपने २ विषयों में रहने पर भी चित्त की एकाग्रता होना सहज-वस्था है ।

५. सुन बिन काम-निकाम-निष्काम । २ पुत्रेय्या, त्रितीय्या और लोकैय्या को धीरे २ छोड़कर निष्काम हो जाना ही सज्जन-वस्था है ।

मध्य को अंग ।



मध्य अंग लगा रहै,	तरत न लागै वार ।
दो दो अंग सो लागता,	यो बूझा संसार ॥ १ ॥
कवीर दुविधा दरि कर,	एक अंग है लाग ।
वा सीतल वा तैपत है,	दोऊ कहिये आग ॥ २ ॥
अनल अकासै घर दिया-	मध्य निरंतर वास ।
बसुधा वास विरक्त रहै,	बिना ठौर विस्वास ॥ ३ ॥
अनलपंख आवै नहीं,	सुत अपने को लैन ।
वह अलीन यह लीन है,	उलटि मिलै ते चैन ॥ ४ ॥
अनलपंख का चेटवा,	गिरने किया विचार ।
सुरति बांधि चेतन भया,	जाय मिला परिवार ॥ ५ ॥
वासर गम नहि रैन गम,	नहि सपनेतर गाम ।
'तहाँ कवीर विलंबिया,	जहाँ छोड़ नहि घाम ॥ ६ ॥
नर्क स्वर्ग ते में रहा,	सतगुरु के परसादि ।
चरन कमल की मौज में,	रहसी अंत रु आदि ॥ ७ ॥
कावा फिर कासी भया,	राम जु भया रहीम ।
मोटा चुन मैदा भया,	बैठ कवीरा जीम ॥ ८ ॥
दास कविर काढ़ी भली,	दोऊ राह बिच राह ।
अंधे लोग अचरज करै,	सारे करै सराह ॥ ९ ॥

धरती और अकास में, दो तुंवरी अवद्ध ।
 पट्ट दरसन धोखे पड़े, औ चौरासी सिद्ध ॥१०॥
 सुरति निरति दो तुंवरी, आवा गवन अवद्ध ।
 अन समझा धोखे पड़ा, समझा सोई सिद्ध ॥११॥
 भगट गुप्त की संधिमें, जो यह अस्थिर होय ।
 ज्यौ देहल का दीवला, अंदर बाहर सोय ॥१२॥
 पाया कहे ते बावरे, खोया कहें ते कूर ।
 पाया खोया कलु नहीं, ज्यों का त्यों भरपूर ॥१३॥
 मज्जू तो को है भजन को, तज्जू तो को है आन ।
 भजन तजन के मध्यमें, सो कबीर मन मान ॥१४॥
 लेऊँ तो महा प्रतिग्रह, देऊँ तो भोगन्त ।
 लेन देन के मध्य में, सो कबीर निज सन्त ॥१५॥
 दुआ देऊँ तो दोऊख जाऊँ, वद दूआ भी नाँहि ।
 दुआ बददुआ किसको देऊँ, साहिव है सब माँहि ॥१६॥
 मँडि रहना मैदान में, सनमुख सहना तीर ।
 जमरा औ जगदीस के, मधिमें वसै कबीर ॥१७॥
 गुरु नहीं चेला नहीं, मुरीद हू नहि पीर ।
 एक नहीं दूजा नहीं, बिलमै दास कबीर ॥१८॥

१०. दो तुंवरी-साहब और साधु । ये दोनों किसी के बन्धन में नहीं पड़ते ।

११. पट्ट दर्शन=जोगी, जंगम, सपड़ा, संन्यासी, दरवेश और ब्राह्मण ।

१२. देहल—देहली । १५. प्रातमह-दान । १६. बददुआ शपथ ।

हिन्दू ध्यावै देहरा, मुसलमान मसीत ।
 दास कबिर तहँ ध्यावही, दोनों की परतीत ॥ १९ ॥
 हिन्दू तुरक के बीच में, मेरा नाम कबीर ।
 जिव मुक्तावन कारनै, अविगत धरा सरीर ॥ २० ॥
 हिन्दू तुरक के बीच में, सब्द कहँ निरवान ।
 बंधन काहँ जगत का, मैं रहिता रहमान ॥ २१ ॥
 हिन्दू मुआ राम कहि, मुसलमान खुदाय ।
 कहँ कबिर सो जीवता, दोउ के संग न जाय ॥ २२ ॥
 हिन्दू कहँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहि ।
 पांच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माँहि ॥ २३ ॥
 गैबी आया गैब ते, इहाँ लगाया ऐव ।
 छलति समाना गैब में, (तब) कहँ रहेगा ऐव ॥ २४ ॥
 गैबी तो गलियाँ फिरे, अज गैबी कोय एक ।
 अज गैबी हू जो लखै, जाके हिये विवेक ॥ २५ ॥
 आगे खोजी पचि मुआ, पीछे रहा भुलाय ।
 मध्य माँहीं वासा करै, ताको काल न खाय ॥ २६ ॥
 सौचै कोई न मानई, झूठ कहा - नहि जाय ।
 सौच झूठ के मध्य में, रहा कबीर समाय ॥ २७ ॥

अतिका भला न बोलना, अति की भली न चूप ।
 अतिका भला न बरसना, अति भी भली न धूप ॥ २८ ॥
 सबही भूमि बनारसी, सब निर गंगा तोय ।
 ज्ञानी आत्म राम है, जो निर्मल बट होय ॥ २९ ॥

भेद को अंग ।



कबीर भेदी भक्त सों, मेरा मन पतियाय ।
 सेरी पावै सब्द की, निरभय आवै जाय ॥ १ ॥
 भेदी जानै सर्व गुन, अनभेदी क्या जान ।
 कै जानै गुरु पारखी, कै जिन लागी बान ॥ २ ॥
 भेद ज्ञान तौ लौ भलो, जौ लौ मुक्ति न होय ।
 परम जोति प्रगटे जहाँ, तहँ विकल्प नहि कोय ॥ ३ ॥
 भेद ज्ञान मातुन भया, छुमिरन निरमल नीर ।
 अंतर धोई आत्मा, धोया निरगुन चीर ॥ ४ ॥
 समझे को सेरी घनी, अन समझे को नौहि ।
 द्वार न पावै सब्द का, फिर फिर गोताँ खाँहि ॥ ५ ॥
 समझा समझा एक है, अन समझे सब एक ।
 समझा सोई जानिये, जाके दिये विवेक ॥ ६ ॥

समझा समझा एक है, अनसमझे सों मौन ।
 बातें बहुत मिलावई, तासों शीखै कौन ॥ ७ ॥
 समझा सोई जानिये, समझ समानी मोहि ।
 जघ लग कछु न आवही, तव लग समझा नहि ॥ ८ ॥
 कोटि सयाने पचि मुये, कथे विचारै लोय ।
 समझा बट तव जानिये, रहित विचार जु होय ॥ ९ ॥
 भारी कहें तो बहु डरूं, हलका कहें तो शीठ ।
 मैं क्या जानूं राम को, नैना कछु न दीठ ॥ १० ॥
 दीठा है तो कस कहें, कहें तो को पतियाय ।
 हरि जैसा तैसा रहै, हरपि हरपि गुन गाय ॥ ११ ॥
 ऐसी अदभुत मति कथो, कथो तो धरो छिपाय ।
 घेद कुराना नहि लिखा, कहें तो को पतियाय ॥ १२ ॥
 जो देखै सो कहै नहि, कहै सो देखै नाहि ।
 सुनै सो समुझावै नहि, रसन स्वन द्विग काहि ॥ १३ ॥

१०. शीठ-तुच्छ ।

१३. आख देखती है, परन्तु वह कह नहीं सकती और जीभ कहती है, परन्तु वह देख नहीं सकती । इसी प्रकार कान सुनता है, परन्तु वह समझा नहीं सकता, क्यों कि कान के जीभ और जीभ के कान नहीं हैं । इसी प्रकार जीभ के आख और आख के जीभ भी नहीं हैं । भाव यह है कि वह तत्त्व अदृश्य, अग्राध्य और अश्राव्य है ।

“ श्रोत्रस्य श्रोत्र मनसो मनो यद्वाचोहवाचय स उ प्राणस्य प्राण-
 धक्षुपथश्चरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माह्लोकादमृता भवन्ति ” (केनोपनिषद्)

जो पकरै सो चलै नहि,	चलै सो पकरै नाहि ।
कहै कविर या साखि को,	अरथ समुझ मन मांहि ॥१४॥
जो पकरै सो चले नहि,	चलै सो पकरै नाहि ।
कर पद को तुम कहत हो,	समुझि लीन मन मांहि ॥१५॥
जानि के अनजान हुआ,	तत्त्व लिपा पहिचानि ।
गुरु किये ते लाभ है,	चेला किये न हानि ॥१६॥
बाद विवादे विष घना,	घोले बहुत उपाधि ।
मौन गहि हरि सुमिरिये,	जो कोय जानै साध ॥१७॥
पंडित सेती कहि रहा,	कहा न मानै कोय ।
वह अगाध ये क्यों कहै,	भारी अचरच होय ॥१८॥
बने अपिंडी पिंड में,	ताको ललै न कोय ।
कहै कवीरा संवजन,	बड़ा अचंभा होय ॥१९॥
घटमें है सृजै नहि,	कर सों गहा न जाय ।
मिट्ठा रहै औ न मिलै,	तासों कहा बयाय ॥२०॥
आठ पहर चौबिस घड़ी,	मो मन यही अंदेस ।
या नगरी प्रीतम वसे,	मैं जानूँ परदेस ॥२१॥
प्रीतम को पतिया लिखूं,	जो वह है परदेस ।
तनमें मनम नैन में,	ताको कहा सँदेस ॥२२॥
समदर्शी सतगुरु किया,	भरम भया सब दूर ।
भया उजारा ज्ञान का,	निरमल जगा मूर ॥२३॥

समदर्सी सतगुरु किया,	भरम किया सब दूर ।
दूजा कोय दीखै नहि,	राम रहा भरपूर ॥ २४ ॥
* समदर्सी सतगुरु किया,	दीया अविचल ज्ञान ।
जहँ देखो नहँ एक ही,	दूजा नाँही आन ॥ २५ ॥
समदर्सी सतगुरु किया,	मेदा भरम विकार ।
जहँ देखो तहँ एक ही,	साहब का दीदार ॥ २६ ॥
समदर्सी सतगुरु किया,	पाया मन विसराम ।
जो हमको दिन घालता,	सो गय ब्रह्म के धाम ॥ २७ ॥
समदर्सी तब जानिये,	मीतल समता होय ।
सब जीवन की आत्मा,	लखै एक सी सोय ॥ २८ ॥
जो मन समझै ज्ञान में,	ज्ञान दि होय सहाय ।
सो फिर तोही ना रुचै,	जाकुं तूं कहै माय ॥ २९ ॥
समझै का घर और है,	अन समझै का और ।
जा घट में साहब बसै,	सो बिरला जानै ठौर ॥ ३० ॥
समझै का मत और है,	अन समझै का और ।
समझै पीछे जानिये,	राम वसै सब ठौर ॥ ३१ ॥
भटकि मुआ भेदी बिना,	बौन बतावे धाम ।
चलते चलते जुग गया,	पाव कोस पर गाम ॥ ३२ ॥
जा वारन हम दूढ़ने,	करते आस उमेद ।
सो तो अंतर गत मिला,	शुरू मुख पाया भेद ॥ ३३ ॥

जो देखा सो तीन में,	चौथा मिले न कोय ।
चौथे कं परगट करै,	हरिजन कहिये सोय ॥३४॥
जो बह एक न जानिया,	बहु जाने क्या होय ।
एके ते सब होत है,	सबने एक न होय ॥३५॥
दौड़ धूप छोड़ो मखी,	छोड़ो कथा पुरान ।
उलटि वेद को भेद गहु,	सार सबद गुरु ज्ञान ॥३६॥
ईलम से उद्योग खिले,	खिले नेकि से नूर ।
ईलम विन संसार में,	समुझ अंधेरो धूर ॥३७॥
मुख में रहे सो मानवी,	मनसै रहे सो देव ।
सुरत रहे सो संन है,	इस विधि जानो भेव ॥३८॥
बोलत ही विष वाद है,	पूछन ही है वाद ।
ऐसे मन में समुझि के,	चूप रहे सोड साथ ॥३९॥
अंतर कमल प्रकासिया,	ब्रह्म वास तहं होय ।
मन भौंरा जहं लुवधिया,	जानेगा जन कोय ॥४०॥
जिन पाया तिन सुगह महा,	रसना लागी स्वाद ।
रतन निराला पाइया,	जगत ढंढोला वाद ॥४१॥
कवीर दिल साविन भया,	फल पाया समर्थ ।
सापर मांदि ढंढोरतां,	हीरा पड़ि गया इथ्य ॥४२॥
चार ईट चौरासि कुवा,	सौलह सो पनिहार ।
भट पंडित खोजत मुवे,	संतन किया विचार ॥४३॥

४३. चार ईट—चार अनकरण । चौरासीकूया—चौरासी योनियों ।

सौल सो पनिहार—सोड़शकल ।

कहने जैसी बात नहि, कहै कौन पतयाय ।
जहँ लागे तहँ लगि रहे, फिर पूछेगा काय ॥४४॥

साक्षी भूत को अंग ।

जा घट में साँई बसै, सो क्यों छाना होय ।
जतन जतन करि दात्रिये, तउ उजियारा सोय ॥ १ ॥
मय घट मेरा साँईया, सुनो सेज न कोय ।
बलिदारी वा घट की, जा घट परगट होय ॥ २ ॥
जा घट में संसै बसै, ता घट राय न होय ।
राम सनेही साधु विच, तिना न संचर जोय ॥ ३ ॥
जो मानौ तो भय नहि, सनमुख रहा न जाय ।
सूना सिंघ न जगाइये, जो छेरै तिहि खाय ॥ ४ ॥
राय राय जिन ऊचरा, छिन छिन बारंवार ।
ते मुग्य भये जु ऊजला, कहै कवीर विचार ॥ ५ ॥
कवीर पछै राम सों, सकल भवन पतिराय ।
सबही करि न्यारा रहे, सोई देहु बताय ॥ ६ ॥
जिहि विरियां साहिव मिले, ता सपान नहि और ।
सब कूं सुख दे सबद करि, अपनी अपनी छौर ॥ ७ ॥

साहिब तेरी साहिबी, सब घट रही समाय ।
 ज्युं मँहदीके पातों, डाली छखी न जाय ॥ ८ ॥
 म्नास सुरति के मयही, न्यारा कमी न होय ।
 ऐसा साखी रूप है, सुरति निरतिमें जोय ॥ ९ ॥

एकता को अंग ।



अलख इलाही एक है, नाम धराया दीय ।
 कहें कविर दो नाम सुनि, भरम पढो मति कोय ॥ १ ॥
 राम रहीमा एक है, नाम धराया दीय ।
 कहें कविर दो नाम सुनि, भरम पढो मति कोय ॥ २ ॥
 कृष्ण करीमा एक है, नाम धराया दीय ।
 कहें कविर दो नाम सुनि, भरम पढो मति कोय ॥ ३ ॥
 कासी काया एक है, एकै राम रहीम ।
 मैदा इक पकवान बहु, बैठि कबीरा जीम ॥ ४ ॥
 राम कबीरा एक है, दूजा कबहुँ न होय ।
 अंतर टाटी भरम की, तातै देखै दीय ॥ ५ ॥
 राम कबीरा एक है, कहन सुनन को दीय ।
 दो करि सोई जानई, सतगुरु मिला न होय ॥ ६ ॥

एक वस्तु के नाम बहु, लीजै वस्तु पिछानि ।
 नाम पच्छ नहि कीजिये, सार तत्त ले जानि ॥ ७ ॥
 नाम भनन्त जो ब्रह्मका, तिनका चार न पार ।
 मन मानै सो लीजिये, कहै कबीर विचार ॥ ८ ॥
 सब काहु का लीजिये, साचा सब्द निहार ।
 पच्छपात ना कीजिये, कहै कबीर विचार ॥ ९ ॥
 हरिका बना सरूप सब, जेता यह आकार ।
 अन्तर अर्थ यौ भाखिये, कहै कबीर विचार ॥ १० ॥
 देखन ही की बात है, कइने को कहु नौहि ।
 आदि अन्त को मिलि रहा, हरिजन हरि हि माँहि ॥ ११ ॥
 सबै हमारे एक है, जो सुपिनै हरि नाम ।
 वस्तु लही पहिचानि के, वासन सौ कया काम ॥ १२ ॥
 खौद खिलौना ठो नही, खौद खिलौना एक ।
 तैमे सब जग देखिये, किये कबीर विचार ॥ १३ ॥
 खौद खिलौना तुम कहाँ, एक अहै नहि दीय ।
 नाम रूप दोसै पृथक्, हस्ती घोडा सोय ॥ १४ ॥
 उपजै एकै खौद त, हस्ती घोडा जंट ।
 खौद बिचारै पाइया, नाम रूप सब झूठ ॥ १५ ॥
 कबीर लोहा एक है, घडने में है फेर ।
 ताहोका बखतर बना, ताही की समसेर ॥ १६ ॥

त्योंही एकै ब्रह्म ते, जीव ईस जग जान ।
 ब्रह्म विचारै पाइया, नाम रूग को हान ॥१७॥
 जीव ब्रह्म व्यौरा नहीं, जीव ब्रह्म एक अंग ।
 ज्यों कनक कुँडल मृदुघट, सारा फेन तरंग ॥१८॥

व्यापक को अंग ।



जेता घट तेता मता,	बहु बानी बहु भेख ।
सब घट व्यापक साँझा,	अगम अपार अलेख ॥ १ ॥
पारब्रह्म सूभर भरा,	जाका वार न पार ।
खालिकु विन खाली नहीं,	सुइ जेता संचार ॥ २ ॥
जाति जानि के पाहुने,	जाति जाति के जाय ।
साहिव सब की जाति है,	घट घट रहा समाय ॥ ३ ॥
ज्यों नैनों में पूतली,	त्यों खालिकु घट मांदि ।
मूरख लोग न जानहीं,	बाहिर नूँढ़न जांदि ॥ ४ ॥
ज्यों तिल मांही तेल है,	चक्रमक मांही आग ।
तेरा भीतप तुझ में,	जागि सकै तो जाग ॥ ५ ॥
पुहुप मय्य ज्यौ वास है,	व्यापि रहा जग मांदि ।
सन्तो मांहीं पाइये,	और कहीं कलु नांदि ॥ ६ ॥

भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बधि गइ वेळ ।
 तेरा साँई तुझ हि में, ज्यों तिल मांहीं नेल ॥ ७ ॥
 पावक रूपी साँइया, सब घट रहा समाय ।
 चित्त चकमक लागै नहीं, ताँनै बुझि बुझि जाय ॥ ८ ॥
 काया कफ चित चकमकै, झारों वारं वार ।
 तीन बार धूँआ भया, चौथे पडा अंगार ॥ ९ ॥
 जैसी लकड़ी ढाक की, ऐसा यह तन देख ।
 वामे केसू छिपि रहा, यामे पुरुष अलेख ॥ १० ॥
 तेरा साँई तुझ में, ज्यों पुहुपन में वास ।
 कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि हूँदै वास ॥ ११ ॥
 कस्तूरी नाभी वसै, मिग हूँदै बन माँहि ।
 ऐसे घटों पीव है, दुनिया जानै नाँहि ॥ १२ ॥
 कस्तूरी नाभी वसै, नाभि कमल हरि नाम ।
 नर हूँदै पावै नहीं, गुरु बिन ठाम हि ठाम ॥ १३ ॥
 सो साहिव तनमें वसै, परम न जानै तास ।
 कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि हूँदै वास ॥ १४ ॥
 जा कारन जग हूँदिया, सो तो घट हि माँहि ।
 परदा दीया भरम का, ताँनै मूँझै नाँहि ॥ १५ ॥
 समझै तो घर में रहे, परदा पलक लगाय ।
 तेरा साहिव तुझमें, अन्त कहूँ मति जाय ॥ १६ ॥

मैं जानूँ हरि दूरि है, हारि हिरदै भरपूर ।
 मानुष हूँ बाहिरा, नियरै होकर दूर ॥१७॥
 तिलके ओटे राम है, परबत मेरे माय ।
 सतगुरु भिलि परिचै भया, तब पाया घट माँय ॥१८॥
 कबीर खोजी रामका, गया जु सिंगल दीप ।
 साहिब तो घटमें बसै, जो आवै परतीत ॥१९॥
 घट बढ कहं न दखिये, प्रेम सरल भरपूर ।
 जानै ही ते निकट है, अनजानै ते दूर ॥२०॥
 कबीर बहुत भटकिपा, मन ले विषय विराम ।
 हँदत हँदत जग फिग, तिनका ओटे राम ॥२१॥
 राम नाम तिहं लोक में, सकल रहा भरपूर ।
 जो जानै तिहि निकट है, अन जानै तिहि दूर ॥२२॥
 सबै खिलौने खोड के, खोड खिलौना माँहि ।
 तैसे सब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जान क माँहि ॥२३॥
 ज्यों ही एकै महल में, प्रतिभा विविध प्रकार ।
 कहै कबिर त्योंही बसै, ब्रह्म मध्य संसार ॥२४॥
 दाह मध्य ज्यौ पूतरी, पूतरी मये दाह ।
 कहै कबिर त्यों ब्रह्म में, भासत जग व्योहा ॥२५॥
 ज्यों मृत्तिका घर मध्यमें, मृत्तिका मये जोय ।
 त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जग सोय ॥२६॥

ज्यों बधूरा वाव मध्य,	मध्य बधूरा वाव ।
त्यों ही जग मधि ब्रह्म है,	ब्रह्म मधि जगत सुभाव ॥२७॥
ज्यों मृत्तिका घट फेन जल,	कुंडल कनक सो आय ।
त्यों कवीर जग ब्रह्म ते,	भिन कहुँ न दिखाय ॥२८॥
जैसे तरुवर बीज महुँ,	बीज तरुवरै माँहि ।
कहे कवीर विचारि के,	जगत ब्रह्म के माँहि ॥२९॥
जैसे मूरज धूप मधि,	मूरज मध्ये धूप ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म मध्य जग रूप ॥३०॥
जैसे स्याही अंक मधि,	स्याही मध्ये अंक ।
त्यों ही जग मधि ब्रह्म है,	ब्रह्म मधि जगत निसंक ॥३१॥
भूषण मध्ये कनक ज्यों,	भूषण कनक मंझार ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म मधि जग निरधार ॥३२॥
दरिया मध्ये लहर ज्यों,	लहर मध्य दरियाव ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत सुभाव ॥३३॥
देह मध्य ज्यों अंग है,	अंग मध्य सरीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत कवीर ॥३४॥
नीर मध्य ज्यों बुदबुदा,	बुदबुद मध्ये नीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत कवीर ॥३५॥
चीर मध्य ज्यों तंतु है,	तंतु मध्य ज्यों चीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत कवीर ॥३६॥

आँधो यथा समीर मधि,
 त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,
 तम मध मीत न पाइये,
 जीव ईस जग जोइले,
 ईश्वर में अरु जीव में,
 तिरविधि भेद न देखिये,
 कवीर भिन्न न देखिये,
 सब ही मध्ये ब्रह्म है,
 ज्योम मध्य ज्यों घट मठ,
 कहै कविर यों ब्रह्म में,
 हथियार में लोह ज्यों,
 कहै कविर त्यों देखिये,
 पानी मध्ये लीक ज्यों,
 त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,
 अहज स्वदेज उदभिज,
 कहै कवीर विचारि के,
 पावक एक अनेक जो,
 कहै कविर त्यों जानिये,
 मोमें तोमें सरवमें,
 राम विना छिन एक ही,

आँधो मध्य समीर ।
 ब्रह्म में जगत कवीर ॥३७॥
 ज्यों पावक विस्तार ।
 त्यों ही ब्रह्म विचार ॥३८॥
 ब्रह्म मध्य कवीर ।
 सिंधु बुदबुदा नीर ॥३९॥
 जगत ईस अरु ब्रह्म ।
 ब्रह्म मध्य सब भर्म ॥४०॥
 अरु चिदाकास आकास ।
 जीव ईस जग भास ॥४१॥
 लोह मध्य हथियार ।
 ब्रह्म मध्य संसार ॥४२॥
 लीक मध्य ज्यों पानि ।
 ब्रह्म जगत में जानि ॥४३॥
 पिंडज आतम रूप ।
 यो ज्यों सूरज धूप ॥४४॥
 दीपक और मसाल ।
 ब्रह्म मध्य जग जाल ॥४५॥
 जहँ देखूँ तहँ राम ।
 सरै न एकौ काम ॥४६॥

खालिक विन खाली नहीं, सूइ धरन को ठौर ।
 आगे पीछे राम है, राम विना नहि और ॥४७॥
 घट विन कहं न देखिये, राम रहा भरपूर ।
 जिन जाना तिस पास है, दूर कहा उन दूर ॥४८॥
 बाहिर भीतर राम है, नैनन का अभिराम ।
 जित देखूं तित राम है, राम विना नहि ठाम ॥४९॥
 ज्यों पत्थर में आग है, यों घट में करतार ।
 जो चाहो दीदार को, चकपक होके जार ॥५०॥
 साई तेरा तुझहि में, ज्युं पत्थर में आग ।
 जोत सखी राम है, चित चकपक हो लाग ॥५१॥

जीवित मृतक को अंग ।



जीवित मिरतक है रहै, तमै खळक की आस ।
 रच्छक समरथ सतगुरु, मति दुख पावै दास ॥ १ ॥
 जीवित में मरना मला, जो भरि जाने कोय ।
 मरना पहिले जो मरै, अजर अपर सो होय ॥ २ ॥
 मरने मगते जग मुआ, औसर मुआ न कोय ।
 दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥ ३ ॥

वैद सुआ रोगी सुआ, सुआ सकल संसार ।
 एक कवीरा ना सुआ, जाके नाम आधार ॥ ४ ॥
 कवीर मन मिरतक मया, दुरवल भया सरीर ।
 पाछे लागे हरि फिरै, कहै कवीर कवीर ॥ ५ ॥
 काया माँहि समुद्र है, अन्त न पावै कोय ।
 मिरतक है करि जो रहै, मानिक लावे सोय ॥ ६ ॥
 मैं मरजीवा समुंदका, हुनकी मारी एक ।
 मूठी लाया ज्ञान की, जामे वस्तु अनेक ॥ ७ ॥
 हुनकी मारी समुद्र में, जायुं निकस आकास ।
 गगन भंडलवें घर किया, हीरा पाया दास ॥ ८ ॥
 हरि हीरा क्यों पाडये, जिन जीवै की आस ।
 गुरु दरियाँस काढसी, कोइ मरजीवा दास ॥ ९ ॥
 गुरु दरिया सुमर भरा, जामे मुक्ता लाल ।
 मरजीवा ले नीकमे, पहिरि छिपाकी खाल ॥ १० ॥
 मैं मरजीवा समुंद का, पैठा सात पताल ।
 लाज कानि कुल मेटिके, गडि ले निकसा लाल ॥ ११ ॥
 तन समुद्र मन मरजीवा, एक बार धमि लेय ।
 कै लाल लड़ नीकमै, कै लालच जिव देय ॥ १२ ॥
 मोती निरजै सीप में, सीप समुंदर माँहि ।
 कोय मरजीवा काढसी, जीवन की गम नाँहि ॥ १३ ॥

मन को मिरतक देखि के, मति मानै विमवास ।
 साध तहाँ लौं भय करै, जबलग पिंजर साँस ॥१४॥
 मैं जानूं मन मरि गया, मरि करि हुआ भूत ।
 मूये पीछै उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥१५॥
 मनकी मनसा मिटि गई, अहं गई मव छट ।
 गगन मंडलमें घर किया, काल रहा सिर कट ॥१६॥
 मोहि मरन की चाव है, मरूँ तो राम दुवार ।
 मति हरि घूँसै वानरी, दास मुआ दरबार ॥१७॥
 मोहि मरन की चाव है, मरूँ तो राम दुवार ।
 की तनका कुटका करूँ, की ले उतरूँ पार ॥१८॥
 जा मरना सो जग डरै, मेरे मन आनंद ।
 कब मरि हों कब भेटि हों, पूरन परमानंद ॥१९॥
 उंचा तरुवर गगन फल, विरला पंछी खाय ।
 इस फल को तो सो चखै, जो जीवत मरि जाय ॥२०॥
 जब लग आस सरीर की, मिरतक हुआ न जाय ।
 काया माया मन तजै, चौडै रहै बजाय ॥२१॥
 खरी कसौटी राम की, खोटा टिकै न कोय ।
 राम कसौटी सो टिकै, जीवत मिरतक होय ॥२२॥
 राम कदो तो मरि रहो, जीवत मिले न राम ।
 जबलग जीवत राम है, तब लव काचा काम ॥२३॥

मूयें को क्या रोइयें, जो अपने घर जाय ।
 रोइये बंदीवान को, हाटै हाट विकाय ॥२४॥
 भक्त परे क्या रोइये, जो अपने घर जाय ।
 रोइये साकिट वापुरे, हाटों हाट विकाय ॥२५॥
 मिरतक को धीजों नही, मेरो मन वह वाज ।
 वाजै वाव विकार की, कब फिर जीवै आज ॥२६॥
 मिरतक को दावा किता, अहं रहे नहि कोय ।
 सुआ मसाना पाजलै, यह कहु अचरज होय ॥२७॥
 कबीर मरि मरघट गया, किनहूँ न चुझी सार ।
 हरि आगे आदर लिया, गऊ बन्हा की लार ॥२८॥
 पैडा मांहि पडि रहो, दुरवल मिरतक होय ।
 जिहि पैडे जम लूटिया, बात न चुझै कोय ॥२९॥
 मरना मला विदेसका, जहँ अपना नहि कोय ।
 जीव जन्तु भोजन करै, सहज महोछा होय ॥३०॥
 कबीर चेरा सन्त का, दासन हूँ का दास ।
 अब तो ऐसा है रहु, पाव तले का घास ॥३१॥
 रोडा है रहु बाट का, तजि आपा अभिमान ।
 लोभ मोह तुना तजै, ताहि मिले भावान ॥३२॥

२७. सुआ मसाना—धार्मिक बलिदान ससार में आत्म प्रकाश
 कर देता है । अह—अहकार । ३०. महोछा—मृतकभोज ।

रोदा है तो क्या भया, पंथी को दुख देह ।
 साधू ऐसा चाहिये, जस पैदे की खेह ॥३३॥
 खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागे अंग ।
 साधू ऐसा चाहिये, जैसा नीर निपग ॥३४॥
 नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा होय ।
 साधू ऐसा चाहिये, हरि ही जैसा होय ॥३५॥
 हरी भया तो क्या भया, करता हरता होय ।

कवीर मिरतक देखकर	मति धारो विश्वास ।
कवहं जागै भूत होय,	करे पिंड को नास ॥४३॥
मिरतक तो नव जानिये,	आपा धरे उठाय ।
सहज सुन में घर करे,	ताको काल न खाय ॥४४॥
सहज सुन में पाइये,	जहँ मरजीवा मन ।
कवीर चुनि चुनि ले गया,	भीतर राम रतन ॥४५॥
फूले थे सो गिर पड़े,	चरन कमल से दूर ।
कलियों की गति अगम है,	ताते राम हजूर ॥४६॥
पांचो इन्द्री छठा मन,	सत संगति सूचंत ।
कहै कविर जम क्या करें,	सातों गांठि निचंत ॥४७॥
सब्द विचारी जो चले,	गुरु मुख होय निहाल ।
काम क्रोध व्यापै नही,	कबू न ग्रासे काल ॥४८॥
सूर सती का सहल है,	घड़ी एक का घमसान ।
मरै न जियै मरजीवा,	धमकत रहै मसान ॥४९॥

सजीवन को अंग ।



जरा भीच व्यापै नहीं,	पुआ न सुनिये कोय ।
चल कविर वा देस को,	वैद रमैया होय ॥ १ ॥
भौसागर ते यौं रहो,	ज्यौं जल कमल निहाल ।
मनुवा वहाँ ले राखिया,	जहां नहीं जम काल ॥ २ ॥

रोडा है तो क्या भया, पंथी को दुख देह ।
 साधू ऐसा चाहिये, जस पैर की खेह ॥३३॥
 खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागे अंग ।
 साधू ऐसा चाहिये, जैसा नीर निपग ॥३४॥
 नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा होय ।
 साधू ऐसा चाहिये, हरि ही जैसा होय ॥३५॥
 हरी भया तो क्या भया, करता हरता होय ।
 साधू ऐसा चाहिये, हरि भजि निरमल होय ॥३६॥
 निरमल भया तो क्या भया, निरमल मांगै ठौर ।
 मल निरमल सों रहित हैं, ते साधु कोइ और ॥३७॥
 जिन पाँवन भुँई बहु फिरा, देखा देस विदेस ।
 तिन पाँवन थिति पकड़िया, आंगन भया विदेस ॥३८॥
 मन उलटी दरिया मिला, लागा मल मल न्दान ।
 याहत याह न पावई, तूं पूरा रहमान ॥३९॥
 अजहूँ तेरा सब मिटे, जो जग मानै हार ।
 घरमें झगरा होत है, मो घर लारो जार ॥४०॥
 अजहूँ तेरा मय मिटे, जो मन राखे ठौर ।
 गम हो ते मय छोड़ दे, अगम पथऊँ दौर ॥४१॥
 मैं मेरा घर जालिया, लिया पलीता हाथ ।
 जो घर जारो अपना, चलो हमारे साथ ॥४२॥

कवीर मिरतक देखकर,	मति धारो विश्वास ।
कवहूँ जागै भूत होय,	करे पिंड को नास ॥४३॥
मिरतक तो नव जानिये,	आपा धरे उठाय ।
सहज सुन में घर करे,	ताको काल न खाय ॥४४॥
सहज सुन में पाइये,	जहँ मरजीवा मेंन ।
कवीर चुनि चुनि ले गया,	भीतर राम रतन ॥४५॥
फूले थे सो गिर पडे,	चरन कमल सँ दूर ।
कलियों की गति अगम है,	ताते राम हजूर ॥४६॥
पांचौ इन्द्री छठा मन,	सत संगति सूचंत ।
फहँ कविर जम क्या करें,	सातों गांठि निचंत ॥४७॥
सब्द विचारी जो चले,	गुरु मुख होय निहाल ।
काम क्रोध व्यापै नहीं,	कबू न ग्रासे काल ॥४८॥
सूर सती का सहल है,	घड़ी इक का घमसान ।
भरै न जियै मरजीवा,	धमकत रहै मसान ॥४९॥

सजीवन को अंग ।



जरा भीच व्यापै नहीं,	मुआ न सुनिये कोय ।
चल कविर वा देस को,	वैद रमैया होय ॥ १ ॥
भौसागर ते यौ रहो,	ज्यौ जल कमल निराल ।
मनुवा वहाँ ले राखिया,	जहाँ नहीं जम काल ॥ २ ॥

कबीर जोगी वन वसा, खनि खाया कंद मूल ।
 ना जानौं किस जडीसैं, अमर भया अस्थूल ॥ १ ॥
 कबीर तो पिव पै चला, माया मोह सैं तोरि ।
 गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि ॥ ४ ॥
 कबीर मन तीखा किया, लाय विरह खरसान ।
 चित चरनोंसों चपटिया, (का)करै काल का वान ॥ ५ ॥
 काची रती मति करो, दिन दिन बढै बियाध ।
 राम कबीरा रुचि भई, याहि औषधि साध ॥ ६ ॥
 मनुष्य भया दिसन्तरी बोलै सब्द रसाल ।
 वात दिसावर की कहै, तहाँ नही जम काल ॥ ७ ॥
 ऐसी ताखी सुरति है, फोडि गई ब्रह्मंड ।
 राम निराला देखिया, सात दीप नौ खंड ॥ ८ ॥
 राम रमत अस्थिर भया, ज्ञान कथत गग लीन ।
 सुरनि सब्द एकै भया, जल ही हमा मीन ॥ ९ ॥
 राम मरै तो हम मरै, नातर मरै बलाय ।
 अविनासी के चेट्या, मरै न मारा जाय ॥ १० ॥
 कबीर संसय जीव में, कोय न कहि समुझाय ।
 विधि विधि बानी बोलता, सो कित गया बिलाय ॥ ११ ॥
 कबीर संसय दूरि कर, जनम मरन अरु भरम ।
 पंच तन्त्र तन्त्रो मिला, सुन समाना परम ॥ १२ ॥

जप जोरा तो नही, सवे राम का रूप ।
 संतै खाई पिरपत्री, रटा कवीरा कूक ॥१३॥
 तरुवर तासु विलंघिया, वारह पास फन्त ।
 सीतल छाया सवन फन्त, पंजी केलि करन्त ॥१४॥
 मुक्ता बाये दाहिने, मुक्ता आगे पीठि ।
 मुक्ता घरनि अकासमें, मुक्ता मेरी दीठि ॥१५॥
 मुक्ता पैदा जब भया, पान मुक्ति निरवान ।
 रूप मुक्ति तब जानिये, देखे दृष्टि पिछान ॥१६॥

वेहद को अंग ।

हृद छोड़ा वेहद गया, लिया ठीकरा हाथ ।
 भया भिखारी नाम का, दरसन पाय सनाथ ॥ १ ॥
 हृद वेहद दोऊ वजी, अवरन किया मिलान ।
 कहें कविर वा दास पर, वारों सकल जहाँन ॥ २ ॥
 हृद छाड़ी वेहद गया, अवरन किया मिलान ।
 दास कविरा मिलि रहा, सो कहिये रहिमान ॥ ३ ॥
 हृद छाड़ी वेहद गया, सुन किया अस्थान ।
 मुनिजन महल न पावहीं, तहाँ लिया विसराम ॥ ४ ॥

इरष सोक का घर नहीं, नही लाभ नहि हान ।
 ऐसा परमानंद में, धरै पुरुष को ध्यान ॥२४॥
 नहि देवी नहि देव है, नहि पट करम अचार ।
 नहि तीरथ नहि दरइ है, नहीं वेद उचार ॥२५॥
 उग्रपति परछै रहै नहीं, नहीं पुन्य नहि पाप ।
 ऐसा परमानंद में, सुमिरै सजगुल आप ॥२६॥
 नहि सागर सेंतार है, नहीं पवन नहि पानि ।
 नहि भरती आकास है, नहि अह्मा न नितानि ॥२७॥
 समुद्र सूर का घर नहीं, नहीं करम नहि काल ।
 गगन होय नाम दि गई, छुटि गयो जंमाल ॥२८॥
 देही गौहि बिदेह है, साहब सुरति सरूप ।
 भक्त लोक में रमि रहा, जाको रंग न रुच ॥२९॥
 कबीर गुरु है हृदका, बेहद का घर नौहि ।

गगन महल भाठी रुपी, चुवै अगर की धार ।
 जिन रहनी पाथै रहै, पीवत संत सुभार ॥३३॥
 गंगा जमुना सुरसती, हो तिरवैनी तीर ।
 साहिब कबिर बेहद छकै, अम्पर होत सरीर ॥३४॥
 सरगुन की सेवा करो, निरगुन का कह ज्ञान ।
 निरगुन सरगुन के परै, तहाँ हमारा न्यान ॥३५॥
 निरालंम की खोज में, सब जग पडो भुझाय ।
 जब सतगुरु दाया करै, तब ही पडै लखाय ॥३६॥

अविहड को अंग ।



अविहड अखँडित पीव है, ताका निरभय दास ।
 तीनों गुन को मेलि के, चौथे किया निवास ॥ १ ॥
 कबीर साथी सोइ किया, दुख सुख जाहि न कोय ।
 हिलमिल के संग खेलै, कबहु बिछोह न होय ॥ २ ॥
 आदि अन्त अरु मध्य लौ, अविहड सदा अभग ।
 कबीर उस करतार का, कभी न छाडै संग ॥ ३ ॥
 जेहि घट जान बिजान, तेही घट अवटन बना ।
 जिन खांडे संग्राम, नित उदि मनमंजूखना ॥ ४ ॥
 कबीर सिरजन हार दिन, मेरा हित न कोय ।
 गुन औगुन बेहै नहीं, स्वारथ बंधा लोय ॥ ५ ॥

अनदृष्ट बाजे निझर झरै, उपजे ब्रह्म गियान ।
अविगति अंतर परगटै, लागे परम गियान ॥ ६ ॥

भ्रमविध्वंस को अंग ।



पाहन केरी पूरै, करि पूजै करतार ।
बाहि भरोसै मति रहो, बूढो काली धार ॥ १ ॥
पाहन को नया पूजिये, जो नहि देय जयाय ।
अंधा नर आसा मुखी, यौही खोवै आव ॥ २ ॥
पाहन पूनै हरि मिलै, तो मैं पुजै पछार ।
ताने तो चक्की भली, पीसि खाय संसार ॥ ३ ॥
पाहन पानि न पूजिये, सेवा जासी बाद ।
सेवा कीजै साधु की, सत्तनाथ कर याद ॥ ४ ॥
पाहन हो का देहा, पाहन हो का देव ।
पूजनद्वारा आंधरा, क्यों करि पानै सेव ॥ ५ ॥
पाहन पानी पूजि के, पचि मूत्रा संसार ।
भेद अलहदा रहि गया, भेदबंश सो पार ॥ ६ ॥
पाहन ले देवल - चुना, मोटी मूर्ति भौंहि ।
विह फूटि परबस रहै, सो ले तारे बाहि ॥ ७ ॥

कवीर पाहन पूजि के,	होन चहै मौ पार ।
भीजि पानि वैरै नदी,	बूढ़े जिन तिर मार ॥ ८ ॥
कवीर दुनिया देखै,	सीस नवावन जाय ।
दिरदै मांहीं हरि वसै,	तू ताही लो लाय ॥ ९ ॥
कवीर जेता आतमा,	सेता सालिंग राम ।
चोलनद्वारा पूजिये,	नहि पाहन सों काम ॥ १० ॥
कवीर सालिंग रामका,	मोहि भरोसा नाँहि ।
काल कहर की चोटमें,	बिनसि जाय छिनमाँहि ॥ ११ ॥
पूजै सालिंगराम को,	मन की भ्रांति न जाय ।
सीतलता सपनै नहीं,	दिन दिन अधिकी लाय ॥ १२ ॥
सैवै सालिंगराम को,	माया सेती हेन ।
पहरै काली कामली,	नाम धरावै सेव ॥ १३ ॥
काजर केरी कोठरी,	मसिके किये कपाट ।
पाहन भूली पिरथवी,	पंडित पाही बाट ॥ १४ ॥
हम भी पाहन पूजने,	होते वनके रोज ।
सतगुरु की किरपा भई,	डारा सिरका बोज ॥ १५ ॥
मूर्ति धरि यंग रचा,	पाहन का जगदीस ।
मोल लिया बोलै नहीं,	खोटा विसवा बीस ॥ १६ ॥
धरि गिरिवर करता किया,	सो क्यों रहै अपून ।
पाहन फोडि देख रु रचा,	परमेश्वर सों दून ॥ १७ ॥

कागद केरी नावरी,	पाहन गहवा भार ।
कहे कबीर विचारि के,	मन बूझा संसार ॥१८॥
मन मथुरा दिल द्वारिका,	काया कासी जान ।
दम छरै का देहरा,	तामै जोति पिछान ॥१९॥
कांकर पाथर जोरिके,	मसजिद लई चुनाय ।
ता चढि मुल्ला वांग दे,	बहिरा हुभा खुदाय ॥२०॥
मुल्ला चढि किलकारिया,	अलह न बहिरा होय ।
जिहि कारन तू वांग दे,	दिल हो अंदर जोय ॥२१॥
तुरक मसीते देहरै हिन्दू,	आप आप को धाय ।
अलख पुरुष घट भीतरै,	ताका पार न पाय ॥२२॥
पूजा ; सेवा नेम बन,	गुडियन का सा खेल ।
जबलग पिव परसे नहीं,	तबलग संसै मेल ॥२३॥
कबीर या संसार को,	समझायो मौ बार ।
पूँछ जु पकडै भेड की,	उतरा चाहै पार ॥२४॥
जप तर . दोखै थोथरा,	तीरथ व्रत विश्वास ।
सूआ सेंभल सेंहया,	यौ जग चला निरास ॥२५॥
तीरथ व्रत करि जग सुआ,	जूड़े पानी न्हाय ।
सचनाम जानै बिना,	काल जुगन जुग खाय ॥२६॥
तीरथ चालै दुइ जना,	चिन चंचल मन चोर ।
एकौ पाप न काढ़िया,	लायें दस मन और ॥२७॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय ।
 पीन सदा जल में रहे, धोये वास न जाय ॥२८॥
 मछरी तुरकै पकड़िया, वसै गंग के तीर ।
 धोय कुलाधि न भाजही, राम न कहे सरीर ॥२९॥
 तीरथ कांठे घर करै, पीवै निरमल नीर ।
 मुक्ति नहीं हरि नाम विन, यों कथि कहै कबीर ॥३०॥
 निरमल गुरु के नाम सों, निरमल साधू भाय ।
 कोइला होय न ऊतला, सौ मन साधुन लाय ॥३१॥
 मनही में फूला फिरै, करता हूँ मैं धर्म ।
 कोटि करम विरपर चढ़ै, चेति न देखै मर्म ॥३२॥
 और धरम सब करम है, भक्ति धरम निह कर्म ।
 नादे इतियारी को कहे, कुना वावरी मर्म ॥३३॥
 करम हमारे काटि हैं, कोइ गुरुमुख कलि माँहि ।
 कहे हमारी वासना, गुरुमुख कहियत नाँहि ॥३४॥
 अहिरन भारै कांख में, करै मूढ़ का दान ।
 ऊँचै चढ़ि के देखई, केतिरु दूर विमान ॥३५॥
 परती विरियाँ दान दे, जीवत बड़ा कठोर ।
 कहैं कबिर क्यों पाइये, खांडा का वै चोर ॥३६॥
 बहुत दान जो देत है, करि करि बहुतै आस ।
 काहू के गज होयंगे, खैंहैं सेर पचास ॥३७॥

मुफ्त दान जो देत हैं, मुफ्त ही लेत असीस ।
 ऊँट काहू के होयगे, लादेंगे मन वीस ॥३८॥
 सब वन तो तुलसी भई, परबत सालिगराम ।
 सब नदियें गंगा भई, जाना आत्म राम ॥३९॥
 पाँच तत्त्व का पूतरा, रज वीरज की वृंद ।
 एकै घाटी नीमरा, ब्राह्मन छत्री सुंद ॥४०॥
 अकिल बिहूना आदमी, जानै नही गँवार ।
 जैसे कपि परबस पर्यो, नाचै घर घर वार ॥४१॥
 अकिल 'बिहूना' सिंग ज्युं, गयो ससा के मंग ।
 अपनी प्रतिमा देखि के, कीयो नन को भंग ॥४२॥
 अकिल बिहूना आंधरा, गज फंदे पड़ो आय ।
 ऐसे सब जग बंधिया, काहि कहू समुझाय ॥४३॥
 पंगव होत पखवम पर्यो, मूभा के बुधि नाँहि ।
 अकिल बिहूना आदमी, यौ 'पधा' जग माँहि ॥४४॥
 अकिल अरस सों ऊतरी, विधना दीन्ही वांट ।
 एक अभागी रहि गया, एकन लई उछांट ॥४५॥
 अलछ अकिल जानै नहीं, जीव जहदम लोय ।
 हरदम हरि जाना नहीं, मिस्त कहौ ने होय ॥४६॥
 बिना बसीले चाकरी, बिना बुद्धि की देह ।
 बिना ज्ञान का जोगना, फिरै लताये खेह ॥४७॥

पंडित सेती कहि रहा, भीतर बेधा नाहि ।
 औरन को परमोधताँ, गया मोहरका माँहि ॥४८॥
 दुविधा जाके मन बसै, दयावंत जिय नाहि ।
 कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देह जनि चाहि ॥४९॥
 सत्तनाम कहु भा लौ, पीठा लागै दाम ।
 दुविधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ॥५०॥
 चिऊंटी चावल ले चली, बिच में मिलि गई दार ।
 कहै कविर दो ना मिलै, इक ले दूजी डार ॥५१॥
 आगा पीछा दिख करै, सहनै मिलै न आय ।
 सो वासी जम लोक का, बांधा जमपुर जाय ॥५२॥
 कै तूं लोरै मुकदमी, कै तूं साहिव लोर ।
 दो दो घोड़ा मति चढ़ै, तेरे घर है चोर ॥५३॥
 तकत तकावत रहि गया, सका न बेझी पार ।
 सबै तीर खाली पडा, चला रुमाना डार ॥५४॥
 बेझा पारै थिर रहै, खरा महीना खाय ।
 साहिव के दरवार में, भागि न कबहुं जाय ॥५५॥
 पढ़ा सुना सीखा सभी, मिटी न समै सुल ।
 कहै कविर कासों कहूं, यह सब दुख का मूल ॥५६॥

५१. चिऊंटी से अभिप्राय सुरति से है । चावल से अभिप्राय राम से और दार से माया अभिप्रेत है ।

५३. लोरै—चाहना । मुकदमी—ससार । ५४. बेझी—निशाना ।

नगर चैन तब जानिये, एकै राजा होय ।
 याहि दुराजी राज में, सुखी न देखा कोय ॥५७॥
 तेरे हिरदै राम है, ताहि न देखा जाय ।
 ताको तो तब देखिये, दिल की दुविधा जाय ॥५८॥
 देह निरंतर देहरा, तामें परतछ देव ।
 राम नाम सुमिरन करो, कह पाथर की सेव ॥५९॥
 पाथर मुख ना बोलही, जो सिर डारी कूट ।
 राम नाम सुमिरन करो, दूजा सबही झूठ ॥६०॥
 कुबुधी को सूझै नहीं, उठि उठि देवल जाय ।
 दिल देहरा की खबर नहि, पाथर ते कहँ पाय ॥६१॥
 मक्के मदिने मै गया, वहँ भी हरिका नाम ।
 मै तुझ पूछे हे सखी, किन देखा किस ठाम ॥६२॥
 सिद्धक सवूरी बाहिरा, कहा हज्ज को जाय ।
 जिन का दिल सावित नहीं, तिन को कहाँ खुदाय ॥६३॥
 आत्म दृष्टि जानै नहीं, न्हावै मात हि काल ।
 लोक लाज लीया रहे, लागा भरम कपाल ॥६४॥
 जप तप तीरथ सब करै, घड़ी न छाड़े ध्यान ।
 कहै कबीरा भक्ति विन, कबहु न है कल्याण ॥६५॥

५७. दुराजी—दो राजाओं का राज्य ।

६३. सिद्धक—सत्य । सवूरी—सन्तोष ।

सुख को सागर में रचा, दुख सुख मेला पाव ।
 धिति ना पकड़े आपनी, चले रंक औ राव ॥६६॥
 लिवा पड़ी में सब पड़े, यह गुन नजै न कोय ।
 सबै पड़े भ्रम जाल में, डारा यह जिय खोय ॥६७॥
 सत्तनाम निजमूल है, कहै कविर समुझाय ।
 दोइ दीन खोजत फिरै, परम पुरुष नहि पाय ॥६८॥

सारग्राही को अंग ।



साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
 सार सार को गहि रहे, देइ असार बहाय ॥ १ ॥
 सत संगति है मूष ज्यों, त्यागे फटकै असार ।
 कहै कविर गुरु नाम ले, परसै नाहि विकार ॥ २ ॥
 पहिले फटकै छाज के, पोथा सब उडि जाय ।
 उत्तम भाँडे पाइया, जो फटकै ठहराय ॥ ३ ॥
 औगुन को तो ना गहे, गुन ही को ले बीन ।
 घट घट महकै मधुप ज्यों, परमात्म ले चीन ॥ ४ ॥
 हंसा पय को काढि ले, छीर नीर निस्वार ।
 ऐसे गहे जु सार को, सो जन उतरै पार ॥ ५ ॥

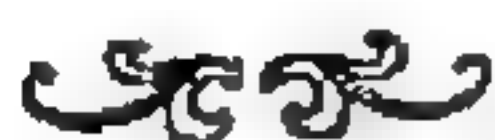
छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यौहार ।
 हंस रूप कोइ साधु है, तन का छांननहार ॥ ६ ॥
 पारा कंचन काढि ले, जो रे मिलावै आन ।
 कहै कबीरा सारमत, परगट किया बखान ॥ ७ ॥
 चुंवक काढै सार कूं, जो रे मिलावै रेत ।
 साधू काढै जीव को, उर अन्तर के हेत ॥ ८ ॥
 रक्त छांड़ि पय को, गहै, ज्यौ रे गड का वच्छ ।
 औगुन छाड़ै गुन गहै, सार गिराही लच्छ ॥ ९ ॥
 वसुधा वन बहु भांति है, फूलै फूल अगाध ।
 मिष्ट वास कबिरा गहै, विषम गहै कोइ साध ॥ १० ॥
 कबीर सब घट आतमा, सिरजी सिरजन हार ।
 राम कहै सो राम सप, रहता ब्रह्म विचार ॥ ११ ॥

असारग्राही को अंग ।

कबीर कीट सुगंध तजि, नरक गहै दिनरात ।
 असार गिराही मानवा, गहै असार हि बात ॥ १ ॥
 पच्छी मल को गहत है, निरमल वस्तु हि छांड़ि ।
 कहै कबीर असार मत, पाँड़ि रहा मन पाँड़ि ॥ २ ॥
 आटा तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहार ।
 कबीर साग हि छांड़िके, गहै असार मसार ॥ ३ ॥

रस छाँडै छूटी गई, कोल्हू परगट देख ।
 गई असार असार को, हिरदै नाँहि विवेक ॥ ४ ॥
 रस छाँडै छूटी गई, सो कोल्हू का काम ।
 गई असार हि सार तजि, निस दिन आठों जाय ॥ ५ ॥
 दूध त्यागि रक्त हि गई, लगी पयोधर जोक ।
 कहें कबीर असार मति, छलना राखे पोख ॥ ६ ॥
 लोहू गहि दूधै तजै, जोक सुभाव परख ।
 ऐसा ही नर आंधरा, सार तें जाय सरक ॥ ७ ॥
 बूटी बाटी पान करै, कहै दुःख जो जाय ।
 कहें कबीर सुख ना गई, यही असार सुभाय ॥ ८ ॥
 पापी पुन न भावई, पाप हि बहुत सुहाय ।
 माखि सुगंधी परिहरै, जहँ दुरगंध तहँ जाय ॥ ९ ॥
 निरमल छाँडै मल गई, जनम असारै खोय ।
 कहें कबीर सार तजि, आन गये विगोय ॥ १० ॥

पारख को अंग ।



कबीर देखी परखि ले, पारखी के मुख खोल ।
 साधु असाधु जानि ले, सुनि सुनि मुख का बोल ॥ १ ॥
 कबीर देखी परखि ले, परखि के मुखों बुलाय ।
 जैसी अन्तर होयगी, मुख निकसैगी आय ॥ २ ॥

पहिले सब्द पिछानिये, पीछे कीजै मोल ।
 पारख परखै रतन को, सब्द का मोल न तोल ॥ ३ ॥
 हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाट ।
 कसि करी बांधो गांठरी, उठि करि चालो वाट ॥ ४ ॥
 हीरा परखै जौहरी, सब्द हि परखै साध ।
 कबीर परखै साधु को, ताका पता अगाध ॥ ५ ॥
 हरि हीरा जन जौहरी, ले ले मांढी हाट ।
 जब रे मिलेगा पारखी, तब हीरा की साट ॥ ६ ॥
 हरि हीरा मन जौहरी, परखि निरखि हिय लेय ।
 लै लुहार करि गहन में, ज्ञान चोट धन देय ॥ ७ ॥
 हरि हीरा सन मेहटा, पटन प्रान सुभट ।
 गाहक बिना न खोलिये, हीरा केरी हट ॥ ८ ॥
 हरि मोतियन की माल है, पोई काचै घाग ।
 जतन करो झटका घना, टूटेगी कहुँ लग ॥ ९ ॥
 राम रतन धन मोटरी, गाहक आगे खोल ।
 जबही मिलेगा पारखी, लेगा महंगे मोल ॥ १० ॥
 राम रसायन भेष रस, अमृत सब्द अपार ।
 गाहक बिना न नीकमै, मानिक कनक कुठार ॥ ११ ॥

६. साट—मोल तोल । ११. कनक कुठार—मोने का मडार ।

१. पा० कुजरी का ।

तन सेंदूक मन रतन है,	चुपकी दे दृढ तालं ।
गाइक विन नहि खोलिये,	पूँजी सब्द रसाल ॥१२॥
जो जैसा उनमान का,	तैसों तासों बोल ।
पोतः को गाइक नहीं,	हीरा गांठि न खोल ॥१३॥
जब गुन को गाइक मिलै,	तब गुन लाख बिकाय ।
जब गुन को गाइक नहीं,	कौड़ी बदले जाय ॥१४॥
एक ही बार परखिये,	ना वा बारं बार ।
बालू तौह किरकिरी,	जो छाने सौ बार ॥१५॥
ज्ञानी जन हैं जौहरी,	करमी सकल मजूर ।
देह भार का टोकरा,	लिये सीम भरपूर ॥१६॥
कवीर जग के जौहरी,	घट की आँखी खोल ।
तुला सम्हारि विवेक की,	तोलै सब्द अमोल ॥१७॥
गाइक मिले तो कुछ कहं,	नातर झगडा होय ।
अन्धों आगे रोइये,	अपना दीदा खोय ॥१८॥
जो हंसा मोती चुगै,	कांकर क्यों पतियाय ।
कांकर माथा ना नवै,	मोती मिले तो खाय ॥१९॥
मोती है विन सीप का,	जगर मगर उजियार ।
कहें कविर जब पावई,	भोजन मिले हप्तर ॥२०॥
हंसा देस सुदेस का,	पड़े कुदेसा आय ।
जाका चारा मोतिया,	घोंघै क्यों पतियाय ॥२१॥

१३. पोता—काच का पोत ।

हैना वगुला एक सा,	मान सरोवर मँहि ।
वग ढिंढोरै माछरी,	हंसा मोती खँहि ॥२२॥
गावनिपा क मुख वसूँ,	स्रोता के पै कान ।
ज्ञानी के ढिरदै वसूँ,	भेदी का निज प्रान ॥२३॥
किरतनिया पे कोस बिस,	संन्यासी सों तीस ।
विरहा के ढिरदै वसूँ,	बैरागी के सीस ॥२४॥
जो कह्यु है तो कुछ कहूँ,	कहौं तो झगडा सोद ।
दो अन्गो का नाचना,	कहिये काको मोह ॥२५॥
उत्तर दन्डिन पुरव पच्छिम,	चारों दिसा समान ।
उत्तम देव कबीर का,	अमरापुर अस्थान ॥२६॥
ढही पारि हारा लहा,	नौ करोड को हीर ।
जा मारग हारा लहा,	सो ज्यों तजै करीर ॥२७॥
मंसै नहि साधु पिलै,	मिलि मिलि करै विचार ।
बोला पीछै जानिये,	जो जाको बेवहार ॥२८॥
पारख कीजै साधु की,	साधु हि परखै कौन ।
गगन मंडल में घर करै,	अनदद राखै मौन ॥२९॥
चंदन गया बिदेसरे,	सब कोय कहे पलास ।
ज्यो ज्यो नूहै झोंकिया,	त्यों त्यों अधिक सुवास ॥३०॥
चंदन रोया रात भरि,	मेरा हित न कोय ।
जिस को राख्या पेट में,	सो फिर बेरी होय ॥३१॥

चंदन काटा जड़ खनी,	बांधि लिया सिर भार ।
कालि जो पंछी बसि गया,	तिसका यह उपकार ॥३२॥
पौष पदारथ पेलिया,	कांकर लीन्हा हाथ ।
जोड़ी बिलुरी हस की,	चला बुगों के साथ ॥३३॥
हसा तो महा रान का,	आया थलिया पौंहि ।
चगुला बगि करि मारिया,	मरम जु जानै नाँहि ॥३४॥
हंस बुगा के पावना,	कोइ एक दिन का फेर ।
चगुला कोहे गरविया,	बैठा पंगव बिलेर ॥३५॥
चगुला हंस मनाय ले,	नीरां रुकां बहोर ।
या बैठा तू ऊजला,	वासो भीति न तोर ॥३६॥
एक अचंभौ देखिया,	हीरा हाट बिकाय ।
परखनदारा बाहरी,	कौड़ी बदले जाय ॥३७॥
पायो पर पायो नहीं.	हीरा हड्डी मार ।
कहै कविर यौ ही गयो,	परखे बिना गँवार ॥३८॥
कविरा चुनता कन फिर.	हीरा पाया बाट ।
ताको मरम न जानिया,	ले खलि खार्ट हाट ॥३९॥
हीरा का कलु ना घटा,	घटा जु बेचनदार ।
जनम गँवायो आपनो,	अंधे पसू गँवार ॥४०॥
ठिरदे हीरा ऊपजै,	नाभि नवल के बीच ।
जो कबहू हीरा लखै,	कदै न आवै मीच ॥४१॥

होरा साहिब नाम है, हिन्दै भीतर देख ।
 बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा आप अलेख ॥४२॥
 बाट वकै दम जात है, सुरति निरति ले बोल ।
 निन प्रति होरा सब्द का, गाइक आगे खोल ॥४३॥
 मान उनमान न तोलिये, सब्द न मोल न तोल ।
 मूरख लोग न जानसी, आपा खोयो बोल ॥४४॥
 कबीर गुदरी बीखरी, सौदा गया विकाय ।
 खोटा बांधा गांठरी, खरा लिया नहि जाय ॥४५॥
 कबीर खांड हि छांडि के, कांकर चुनि चुनि खाय ।
 रतन गंवाया रेतमें, फिर पाछे पछिताय ॥४६॥
 कबीर ये जग आंधरा, जैसी अंधी गाय ।
 बलरा या सो भरि गया, ऊभी चाम चटाय ॥४७॥
 पप्पा सों परिचै नहीं, दहा गहिगा दूर ।
 लल्ला लौ लागी रहै, नन्हा सदा हजूर ॥४८॥
 पैडे मोती बीखरा, अंधा निकसा आय ।
 जोति बिना जगदीस की, जगत उलौंढा जाय ॥४९॥
 सागर में मानिक बसै, चीन्हत नहि कोय ।
 या मानिक कुं सो लखै, जाको गुरुगम होय ॥५०॥

अनजाने का कूकना, कूकर का सा सोर ।
 ज्यों अंधियारी रैन में, साह न चीन्है चोर ॥५१॥
 ये भारन सब ज्ञानिया, कथत वक्त दिन जाय ।
 साह चोर चीन्है नहीं, काग हंस लगाय ॥५२॥
 कोई कुरंग जब चित मिलै, रहै सब्द लौ लाय ।
 मैस के आगे चीन ज्यों, वह बैठी पगुराय ॥५३॥
 हंस काग की परख को, सतगुरु दर्इ बताय ।
 हंसा तो मोती चुगै, काग नरक पर जाय ॥५४॥
 परदेसाँ खोजन गया, घर होरा की खान ।
 काच मनी का पारखी, क्यों पावै पहिचान ॥५५॥
 मैं जानू हरि दूर है, हरि है हरिदै माँहि ।
 आही टायी कपट की, तासे टीसतू नॉहि ॥५६॥
 जाको आहा अंतरा, ताको दिसे न कोय ।
 जान दूअ जड है रहे, बल तजि निरबल होय ॥५७॥
 कोई एक ज्ञानी पारखी, परखै खरा रु खोट ।
 कहै कविर तब वांचही, रहै नाम की ओट ॥५८॥
 वक्ता ज्ञानी जगन में, पंडित कवि अनंत ।
 सत्य पदारथ पारखी, बिटला कोडे संत ॥५९॥
 ज्ञान जीव को धर्म है, धर्म त्रास जो भेट ।
 साँध पंथ पावै परखि, जव तिहि सतगुरु भेट ॥६०॥

हीरा पड़ा जु गैल में, दुनिया जायें डोल ।
 जहाँ हीरा का पारखी, तहाँ हीरा का मोल ॥६१॥
 अंधे औघट जात है, चारों लोचन नाँहि ।
 संत उपकारी ना मिला, छोड़े वस्ती माँहि ॥६२॥
 गौ को अंधी मति कहो, गौ है स्याम सुपेन ।
 वल्लुवा था सो मरि गया, तऊ न छाँड़े हेत ॥६३॥
 रंक कनक चुनता फिरै, वस्तू आई हाथ ।
 ताका मरप न जानिया, ले देखाया हाट ॥६४॥
 जवलग लाल समुद्र में, तवलगिलखौ न जाय ।
 निकमि लाल बाहिर भया, मंहगे मोल विकाय ॥६५॥
 हीरा बनिजै जौहरी, ले ले मांडा हाट ।
 जवहि मिलेंगे पारखी, तब हीरों की साट ॥६६॥
 नाम हिरा धन पाइया, औ हीरा धन मोल ।
 चुनि चुनि बांधो गांठरी, पल पल देखो खोल ॥६७॥
 लाखों में दीसै नही, कोटिन में जाय देख ।
 कोटिन में कोई एक है, जो जानै कोई लेख ॥६८॥
 साधु परखिये सब्द में, रहनी तैसी भास ।
 नाना विधि के पुहुप हैं, फूले तैसी वास ॥६९॥

वेली को अंग ।

आंगन वेलि अकास फल,	अनव्याही का दूध ।
समा सिंग के धनुस को,	खैच बाझ सुत्र सूध ॥ १ ॥
आंगन वेली अलख है,	फल करना अभिलास ।
गगन मंडल में सोधि ले,	सतगुरु बोलै साख ॥ २ ॥
अनव्याही आकास है,	सुपमनि सुरति विलोप ।
अहनिसि तो तारी लगी,	मेघ दूर जरि होय ॥ ३ ॥
छाया माया रहित है,	सुन्दर है अनसूत ।
आव गवन सो रहित है,	सोड बाझ का पूत ॥ ४ ॥
ससा सिंग के धनुस का,	पाया सन्द विवेक ।
भय छटा निरभय भया,	सब घट देखा एक ॥ ५ ॥
सहज सुन में खर पड़ी,	वन में लागी लाय ।
कबीर दाया होय तब,	आस पास मिटि जाय ॥ ६ ॥
पारिया वन लाइया,	जला जु वन खंड पास ।
बीज जला वेली जली,	नहीं उगन की आस ॥ ७ ॥
मूल जला वेली जली,	हुआ बीज का नास ।
सुरति समानी सन्द में,	नहि उगन की आस ॥ ८ ॥
जो लगे तो ब्रह्म में,	अन्त कहै नहि जोय ।
हरिरस सींची वेलडी,	कधी न कडवी होय ॥ ९ ॥

जो मन में तो ब्रह्म में, अनत न कहूं समाय ।
 हरिरस सींची बेलही, कौद न निस्फल जाय ॥१०॥
 सिद्ध सहज ही खिर पड़ी, अगन जु लागी माँहि ।
 सिद्ध बेलि दोऊ जरी, अब फिर ऊँ नहि ॥११॥
 जो काटै तो डहडही, सीचै तो कुम्हिलाय ।
 इस गुनवंती बेलि का, कछु गुन कहा न जाय ॥१२॥
 बिना बीज का वृक्ष है, विन धरती अंकुर ।
 विन पानी का रंग है, तहाँ जीव का मूर ॥१३॥

कथनी को अंग ।



कथनी कथै तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय ।
 कलावूत का कोट ज्यों, देखत ही ढहि जाय ॥ १ ॥
 कथनी काची है गई, करनी करी न सार ।
 सोता बक्ता मरि गया, मूरख अनैत अपार ॥ २ ॥
 कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय ।
 कथनी से करनी करै, विष से अमृत होय ॥ ३ ॥
 कथनी बदनी छांड दे, करनी सोँचित लाय ।
 नर को जल प्याये बिना, कबहुँ प्यास न जाय ॥ ४ ॥

१३. बिना बीज का वृक्ष—अविनाशी पुरुष । विनधरती अंकुर—ज्ञान ।
 विन पानी का रंग—माया ।

कथनी कथि फूला फिरै,	मेरे द्वियै उचार ।
भान भक्ति समझै नहीं,	अंधा मुढ़ गँवार :
कथनी थोथी जगत में,	करनी उत्तम सार ।
कहै कविर करनी मली,	उतरै मौजल पार ॥ ६ ॥
कथनी के गोजूँ नहीं,	करनी मेरा जीव ।
कथनी करनी दोउ पकी,	महल पवार पीव ॥ ७ ॥
कथनी के मुरे घने,	थोथे बाये तीर ।
विरह वान जिनके लगा,	तिनके विकल सरीर ॥ ८ ॥
कथनी को तो भानि के,	करनी देय बहाय ।
दास कवीरा यों कहै,	ऐसा है तो आय ॥ ९ ॥
कथते हैं करते नहीं,	मुँह के बड़े लवार ।
मुँह काळा तो होयगा,	साहिव के दरवार ॥ १० ॥
बधते हैं करते सही,	साँच सरोतर सोय ।
साहिव के दरवार में,	आठ पहर सुग्व होय ॥ ११ ॥
कुकस कूटै कन बिना,	पिन करनी का ज्ञान ।
ज्यों बडुक गोली बिना,	भडक न मारै आन ॥ १२ ॥
आप राखि परमोधिये,	सुनै ज्ञान अकरायि ।
सुस कूटै कन बाहिरी,	बहु न आवै दायि ॥ १३ ॥
पट जोरै साखी कहै,	सावन पड़ि गइ रोस ।
काढा जल पीवै नहीं,	काढि पीवन की होस ॥ १४ ॥

मारग चलते जो गिरै, ताको नहीं टोस ।
 कहैं कबिर बैठा रहै, ता सिर करै कोस ॥१५॥
 सोता तो बरही नहीं, बक्ता बकै सो वाद ।
 सोता बक्ता एक घर, तब कथनी का स्वाद ॥१६॥
 कथते बक्ते पचि सुये, मूरख कोटि हजार ।
 कथनी काची पड़ि गई, रहाने रहै सो सार ॥१७॥
 कुल करनी छूटै नहीं, ज्ञान हि कयै अगाध ।
 कहैं कबिर वा दास को, मुख देखै अपराध ॥१८॥
 रहनी के भेदान में, कथनी आवै जाय ।
 कथनी पीसै पीसना, रहनी अमल कमाय ॥१९॥
 जैसी करनी आपनी, तैसा ही फल लेय ।
 कुरे करम कमाय के, साईं दोष न देय ॥२०॥
 राम झरुखै बैठि के, सब का मुजरा लेय ।
 जैसी जाकी चाकरी, तैसा तिन को देय ॥२१॥
 साहेब के दरवार में, क्यों करि पावै दाद ।
 पहिले बुरा कमाय के, वाद करै फरियाद ॥२२॥
 दाता नदिया एक सम, सब काहु को देत ।
 हाथ कुंभ जिसका जिसा, तैसा ही भरि लेत ॥२३॥
 कबीर हमने घर किया, गलकटों के पास ।
 करेगा सो पाइगा, तुम क्यों भये उदास ॥२४॥

१. पा० कबीर का घर चौक में । २. पा० भरेगा । ३. पा० तू
 क्यों फिर उदास ।

एक हमारी सीख सुन, जो तू हुआ सीप ।
 करूं करूं तो क्या कहे, कीपा है सो देख ॥२५॥
 जब तू आया जगत में, लोग हँसे तू रोय ।
 ऐसी करनी ना करो, पिछे इसे सब कोय ॥२६॥
 जैसी कथनी मैं कपी, तैसी कथे न कोय ।
 करनी से साहिव मिले, कथनी झूठी होय ॥२७॥
 पशु की होती पनहिया, नरका कछून होय ।
 नर उत्तम करनी करै, नर नारायन होय ॥२८॥
 सप ही ते सब कछु बनै, विन सप मिले न काहि ।
 सीधी अंगुली धी जम्पो, कबहुं निकसै नाहि ॥२९॥
 कैसा भी सामर्थ हो, विन उद्यम दुख पाय ।
 निकट असन विन कर चले, कैसे मुख में जाय ॥३०॥
 सप ही ते सब होत है, जो मन राखै धीर ।
 सप ते खोदत कूप ज्युं, थल में प्रगटे नीर ॥३१॥
 कथनी कथे अगाध की, ज्यों अकास का गीध ।
 चारा चाका भूमि पर, उडे भया क्या सीध ॥३२॥
 करनी करै सो पूत हमारा, कथनी कथे सो नाती ।
 रहनी रहे सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी ॥३३॥

लगनी को अंग ।



लौ लागी तव जानिये,	छूटि न कबहुं जाय ।
जीवत लौ लागी रहे,	मूये तहाँ समाय ॥ १ ॥
लौ लागी तो डर किसा,	आप विसरजन देह ।
अमृत पीवै आतमा,	गुरु सों जुडै सनेह ॥ २ ॥
लौ लागी तव लौ लगूं,	कहुं न आऊं जाँव ।
लै बूझूं तो लै तरुं,	लै लै तेरा नाँव ॥ ३ ॥
जैसी लौ पहिले लगी,	तैसी निवहै ओर ।
अपने देह को को गिनै,	वारै पुरुष करोर ॥ ४ ॥
लै पाऊं तो लै रहूं,	लेन कहुं नहि जाँव ।
लै बूडै सो लै तिगै,	लै लै तेरो नाँव ॥ ५ ॥
जैसी लौ प्रथमहि लगी,	तैसी ही रहि जाय ।
जाके हिरदै लौ बसै,	मो मोहि माँहि समाय ॥ ६ ॥
लागी लागी क्या करै,	लागी बुरी बलाय ।
लागी सोई जानिये,	बार पार है जाय ॥ ७ ॥
लागी लागी क्या करै,	लागी नांही एक ।
लागी सोई जानिये,	पडे कलेजे छेक ॥ ८ ॥
लागी लागी क्या करै,	लागी सोइ सराह ।
लागी तव ही जानिये,	उठे कराह कराह ॥ ९ ॥

लगी लगन लूटै नहीं, जीम चोंच जरि जाय ।
 मीठा कहा अंगार में, जाहि चकोर चवाय ॥१०॥
 जो तू पिय की प्यारनी, अपना करि ले गी ।
 कलह कल्पना भेटि कर, चरनो चित दे गी ॥११॥
 सोऊं तो सुपन मिलूं, जागू तो मन मोहि ।
 लोयन राता सुधि हरी, विदुरत कबहुं नोहि ॥१२॥
 और मुरति विसरी सकल, लौ लागी रहे संग ।
 आव जाव कासो कहू, मन राता हरि रग ॥१३॥
 जबलग कयनी हम कथी, दूर रहा जगदीस ।
 लौ लागी कल ना पडै, अब बोलै न हदीस ॥१४॥
 ग्रंथन माहीं अर्थ है, अर्थ मोहि है भूल ।
 लौ लागी निरभय भया, पिटि गया सँसै मूल ॥१५॥
 गग जमुन के बीच में, महज मुन लौ पाट ।
 तहाँ कवीरा मठ रचा, मुनिजन जोवै वाट ॥१६॥
 जिहि न सिय न संचरै, पच्छी उडि ना जाय ।
 रैन दिवस की गप नहीं, तहाँ कविर लौ लाय ॥१७॥
 काय कपंडल भरि लिया, ऊजल निरमल नीर ।
 पीवत तृषा न भाजई, तिरपावत कवीर ॥१८॥

१४ हदीस-कुरान । अर्थात् शिक्षा की आवश्यकता नहीं ।

१६. गगजमुन-इगल पिंगल । १७ सिंह से तात्पर्य जीन । औ पच्छी से मन है ।

सुरति दीकुली नेज लौ, मन नित ढोलन हार ।
 कमल कृप में बह जल, पीवै बारंवार ॥१९॥
 मन उलटा दरिया मिला, लगा मलि मलि न्हान ।
 थाहत थाह न पावई, सो पूरा रहमान ॥२०॥
 नाम न जानै गाँव का, पीछै लगा जाय ।
 कालिह जो कांठ भांगसी, पहिले क्यों न खुराय ॥२१॥
 सीख भई संसार सो, चला जु साई पास ।
 अविनासी मोहि ले चला, पुरई मेरी आस ॥२२॥
 इन्द्र लोक अचरज भयो, ब्रह्मा पडा विचार ।
 कबीर चाला राम पै, कौतिकहार अपार ॥२३॥
 सद पानी पाताल का, कादि कबीरा पीव ।
 वासी पावक पडि मुआ, विषय विलंबा जीव ॥२४॥
 कबीर हरि का डरपता, ऊन्हा धान न खाव ।
 हिम्मा भीतर हरि बसै, दाशन ते जुडराव ॥२५॥
 अथ तो मैं ऐसा भया, निरमोलिक निजनाम ।
 पहिले काच कथीर था, फिरता ठाम हि ठाम ॥२६॥
 भौसागर जल विष भरा, मन नहि वाँचै धीर ।
 सबल सनेही हरि मिला, उतरा पार कबीर ॥२७॥
 भला सुहेला कतरा, पूरा मेरा भाग ।
 सत्तनाम बाँका गहा, पानी पग नहि लाग ॥२८॥

१९. नेज-रस्ती । मन को डोल बनाकर सुरती की ढेकली और लव की रस्ती बनानी चाहिये । २८. सुहेला-अरब देशवालों का एक मांगलिक तारा ।

सुपना में साईं मिला, सोवत लिया जगाय ।
 आंखि न मीचौं डरपता, पति सुपना है जाय ॥२९॥
 कवीर केसो की दया, संसे मेला खोय ।
 जो दिन गया हरि भजन दिन, सो दिन सालै मोय ॥३०॥
 कवीर जांचन जाय था, आगे मिला अजाच ।
 आप सरीखा करि लिया, भारी पाया साच ॥३१॥
 लौं कागी निरमय भया, भरप भया सब दूर ।
 वन वन में कहैं द्रुंढता, राय इहां भरपूर ॥३२॥

निजकर्ता को अंग ।

अछै पुरुष एक पेढ है, निरंजन वाकी डार ।
 तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥ १ ॥
 नाद बिंदु ते अगम भगोचर, पांच तत्त्व ते न्यार ।
 तीन गुनन ते भिन्न है, पुरुष अलेख अपार ॥ २ ॥
 तीन गुनन की भक्ति में, भूलि पड़ा संसार ।
 कहैं कविर निजनाम बिन, कैसे उतरै पार ॥ ३ ॥
 हरा होय मुखै मही, यों तिरगुन विस्तार ।
 प्रथमहि ताको सुमिरिये, जाका सकल पसार ॥ ४ ॥
 सब्द सुरति के अंतरै, अलेख पुरुष निरवान ।
 लखनेहारै छवि लिया, जाको है गुरु ज्ञान ॥ ५ ॥

राम क्रिष्ण औनाग हैं,
 जिन साहिव सृष्टि किया,
 राम क्रिष्ण को जिन किया.
 अंग ज्ञान न बूझई,
 संपुट साहि समाख्या,
 सकल मांड में रमि रहा.
 साहेब मेरा एक है,
 दूजा साहिव जो कहें,
 जाके मुँह पाथा नहीं,
 पुहुप वास ते पातला,
 बूझो करता अपना,
 पाच तत्व के भीतर,
 निबल सबल जो जानि के,
 कहें करि जन्मै मरै,
 जन्म परन से रहित है,
 बलिदारी वही पीव की,
 समुँद पायी लका गयो,
 ताहि अगस्त अचै गयो,
 गिरिवर धार्यो कृष्णजी,
 सेसनाग रानी धरी,

इन की नाहीं मांड ।
 किन्हु न जाया रांड ॥ ६ ॥
 सो तो करता न्यार ।
 रुहे कबोर विचार ॥ ७ ॥
 मो साहिव नहि होय ।
 मेरा साहिव सोय ॥ ८ ॥
 दूजा कहा न जाय ।
 साहेब खरा रिसाय ॥ ९ ॥
 नाहीं रूप अरूप ।
 ऐसा तत्व अनूप ॥ १० ॥
 मानो वचन हमार ।
 जाका यह मंसार ॥ ११ ॥
 नाम धरा जगदीस ।
 ताहि अरुं नहि सीस ॥ १२ ॥
 मेरा साहिव सोय ।
 जिन सिरजा सब कोय ॥ १३ ॥
 सीता को भरतार ।
 इन में को करतार ॥ १४ ॥
 डोना गिरि हनुमंत ।
 इन में को भगवत ॥ १५ ॥

अविगति	पीसै	पीसना,	गौसा	बिनै	खुदाय ।
निरँजन	तो	रोटी करै,	गैवी	वैठा	खाय ॥१८॥
तीन देव को सब कोइ ध्यावै,	चौथे	देव का मरम न पावै ।			
चौथा छोड पंचम चित लावै,	कहैं	कविर हमरै ठिग आवै ॥१९॥			
जो ओकार निश्चय किया,	यह	करता पति जान ।			
साचा सब्द कवीर का,	परदे	में पहिचान ॥२०॥			
अलख अलख सब कोउ कहै,	अलख	लखै नहि कोय ।			
अलख लखा जिन सब लखा,	लखा	अलख नहि होय ॥२१॥			
कथत कथत जुग थाकिया,	धाकी	सबै खलक ।			
देखत नजरि न आइया,	हरि	को कहा अलख ॥२०॥			
तीन लोक सब राम जपत,	जानि	मुक्ति को धाम ।			
रामचंद्र के बसिष्ठ गुरु,	काह	सुनायो नाम ॥२१॥			
जग में चारों राम हैं,	तीन	राम ब्याहार ।			
चौथा राम निज सार है,	ताका	करो विचार ॥२२॥			
एक राम दसरथ घर डोलै.	एक	राम घट घट में बोलै ।			
एक राम का सकल पसारा,	एक	राम तिरगुन ते न्यारा ॥२३॥			
कौन राम दसरथ घर डोलै,	कौन	राम बट बट में बोलै ।			
कौन राम का सकल पसारा,	कौन	राम तिरगुन ते न्यारा ॥२४॥			

१६. अविगति—माया । गौसा—कडा । गैवी—अगम पुरुष ।

अर्थात्—माया, ईश्वर और निरजन जगत के कारणकलाप हैं और गैवी साक्षी पुरुष है ।

भाकार राम दसरथ घर डोलै,
 बिंदु राम का सकल पसारा,
 जाकी थापी मांड है,
 जो थापा है मांड का,
 रहै निराला मांड ते,
 कबीर सेवै तासुको,
 चार भुजा के भजन में,
 कबीर सुमिरै तासु को,
 काटे बंधन विपति में,
 चीन्हो रे नर मानिया,
 कहै कविर चित चैनहु,
 राम हि करता कहत हैं,
 जाहि रोग उत्पन्न भया,
 बैद्य ब्रह्म बाहिर रहा,
 असुर रोग उत्पति भया,
 कहै कबीर या साखि को,
 कबीर कारज भक्ति के,
 कहै कबीर विचारि के,
 हम कर्ता सब सृष्टि के,
 कहै कविर हमही चीन्है,

निराकार घट घट में बोलै ।
 निरालंब सबही ते न्यारा ॥२५॥
 ताकी करहु सेव ।
 सो नहिं हमरा देव ॥२६॥
 सकल मांडतिहि मांदि ।
 दूजा सेवै नांदि ॥२७॥
 भलि पड़े सब संत ।
 जाके भुजा अनंत ॥२८॥
 कठिन किया संग्राम ।
 गरुड बड़े की राम ॥२९॥
 सब्द करो निरुवार ।
 भूलि पर्यो संसार ॥३०॥
 औषधि देय जु ताहि ।
 भीतर धसा जु नाहि ॥३१॥
 औतार औषधि दोन्ह ।
 अरथ जु लीजो चीन्ह ॥३२॥
 भुक्ति हि दीन्ह पठाव ।
 ब्रह्म न आवै जाय ॥३३॥
 हम पर दूसर नांदि ।
 नहि चौरासी मांदि ॥३४॥

अनैत कोटि ब्रह्मपंड का, एक रती नहि भार ।
 साहब पुरुष कवीर है, कुल का सिरजनहार ॥३५॥
 साहब सब का बाप है, वेदा किसीका नाहि ।
 वेदा होकर ऊतरा, सो तो साक्षि नाहि ॥३६॥
 पिंड मान नहि तासु वे, दप देही नहि सीन ।
 नाद विन्द आवै नहीं, पांच पचीस न तीन ॥३७॥
 राम राम तुम कहत हो, नहि सो अकथ सरूप ।
 वह तो आये जगत में, भये दसरथ घर भूप ॥३८॥
 रत्न रूप विनु वेद में, औ कुरान बेचून ।
 आपस में टोक लहै, जाना नहि दोहन ॥३९॥
 सहज सुन्न में साइया, ताका वार न पार ।
 धरा सकल जग धरि रहा, आप रहा निरधार ॥४०॥
 देखन सरिखी बात है, कहने सरखी नाहि ।
 अदभुत खेला पेखि के, समुझि रहो मन माँहि ॥४१॥

कसौटी को अंग ।

संत सरवस दे मिले, गुरु कसौटी खाय ।
 राय दोहाइ सत कहूँ, फेरि न उदर समाय ॥ १ ॥
 खरी कसौटी राम की, वाचा टिकै न कोय ।
 राय कसौटी जे सहै, जीवत मिरतक होय ॥ २ ॥

खरी कसौटी तोलताँ, निकसि गई सब खोट ।
 सतगुरु सेना सब हनी, सब्द बान की चोट ॥ ३ ॥
 हीरा पाया पारखी, बन महुँ ढीन्हा आन ।
 चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचान ॥ ४ ॥
 सोने रूपे घाह दइ, उत्तम हमरी जात ।
 वन ही में की घूबची, तोली हमरे साथ ॥ ५ ॥
 तोल बराबर घूबची, मोल बराबर नाँहि ।
 मेरा तेरा पत्तरा, ढीज आगी मौहि ॥ ६ ॥
 विपति भलि हरि नाम लेत, काय कसौटी दूख ।
 नाम बिना किस कामकी, पाया संपति मूख ॥ ७ ॥
 कांच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै भेम ।
 कहै कविर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम ॥ ८ ॥
 कसत कसौटी जो टिके, ताको सब्द सुनाय ।
 सोइ हमारा वस है, कहै कविर समुझाय ॥ ९ ॥

सूक्ष्म मार्ग को अंग ।



कवीर मारग कठिन है, रिपि मुनि बैठे थाक ।
 तहाँ कवीरा चहि गया, मा सतगुरु की साक ॥ १ ॥
 सुर नर थाके मुनिजना, तहाँ न कोई जाय ।
 मोटा भाग कवीर का, तहाँ रहा ली लाय ॥ २ ॥

मुर नर थाके मुनिजना, थाके विस्तु महेस ।
 तहाँ कवीरा चढि गया, सतगुरु के उपदेस ॥ ३ ॥
 अगम हूँ ते जो अगम है, अपरम पार अपार ।
 वहाँ मन धीरज वर्यो धरै, पंथ खरा निरधार ॥ ४ ॥
 अगम पंथ मन धिर करै, बुद्धि करै परवेस ।
 तन मन धन सब छोडि कै, तब पहुँचै वा देस ॥ ५ ॥
 अगम हटा सो गम किया, सतगुरु दिया बताय ।
 कोटि कलष का पंथ था, पलमें पहुँचा जाय ॥ ६ ॥
 भव हम चले अपरापुगी, टारै टरै टाट ।
 आवन होय सो आइयो, मूली ऊपर बाट ॥ ७ ॥
 मूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार ।
 ताको काल कहा करै, आठ पहर हुसियार ॥ ८ ॥
 गागर ऊपर गागरी, चोली ऊपर हार ।
 मूली ऊपर साधा, जहाँ बुलावै यार ॥ ९ ॥
 यार बुलावै भाव सों, मो पै गया न जाय ।
 धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकि है पाय ॥ १० ॥
 जिस कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय ।
 सौँई तो सनमुख खडा, लाग कवीरा पाय ॥ ११ ॥

७. टारे — प्रपंच को हटाकर । ८. मूली ऊपर — कठिन मार्ग है ।

९. गगनमंडल में सुरति लगाकर हृदय में सत्यगुण को धारण करे ॥

१०. धन — प्रिया, सुरति । पिव — साहचर ।

जो आवै तो जाय नहि, जाय तो कहँ समाय ।
 अकथ कहानी प्रेम की, कैसे बूझी जाय ॥१२॥
 जो आवै तो जाय नहि, जाय तो आवै नाँहि ।
 अकथ कहानी प्रेम की, समुझि लेहु मन मोहि ॥१३॥
 कौन देस कहाँ आइया, जानै कोई नाँहि ।
 चढ़ पारग पावै नही, भूलि परै जग मोहि ॥१४॥
 नाँव न जानै गाँवका, विन जानै कहँ जाँव ।
 चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥१५॥
 सतगुरु दीन दयाल है, दया करि मोहि आय ।
 कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥१६॥
 उत ते कोई न आइया, जासों बूझूं धाय ।
 इत ते सब कोय जात है, भार लदाय लदाय ॥१७॥
 उत ते सतगुरु आइया, जाकी पुधि है धीर ।
 भीसागर के जीव को, खेड़ लगावै तीर ॥१८॥
 सब को पूछन मैं फिरा, रहनि कहै नहि कोय ।
 प्रीति न जोड़े नाम सों, रहनि कहाँ से होय ॥१९॥
 चलन चलन सब कोय कहै, मोहि अंदेसा और ।
 साहब सों परिचै नहीं, पहुँचेंगे किस ठौर ॥२०॥
 जाने की तो गम नहीं, रहने को नहि ठौर ।
 कहै कविर सुन साधवा, अविगत की गति और ॥२१॥

जहाँ न चिञ्जो चढ़ि सकै,	राई ना ठहराय ।
मनुवा तहाँ ले राखिपा,	सोई पहुँचा जाय ॥२२॥
वह मारग कित को गया,	मारग पहुँचे साद ।
मैं तो दोऊ गहि रहा,	लोभ बढ़ाई वाद ॥२३॥
बिन पौवन की राह है,	बिन वस्ती का देस ।
बिना पिंड का पुरुष है,	कहे कबिर संदेस ॥२४॥
घाट हि पानी सब भरै,	औघट भरै न कोय ।
औघट घाट कबीर का,	भरै सो निरमल होय ॥२५॥
चलते चलते पगु धके,	निपट करारी कोस ।
बिन दयाल झलका परै,	काको दीजै दोस ॥२६॥
जहाँ चतुरकी गम नहीं,	तहाँ मुख किमि जाय ।
बाह विधाता नाथ है,	काग कपूर हि खाय ॥२७॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे,	बाहि देस की सीच ।
अवही कहाँ तिगाडिये,	बेढी पायन बीच ॥२८॥
करता की गति अगम है,	चल गुरुके उनमान ।
धीरे धीरे पाँव दे,	पहुँचेंगे परमान ॥२९॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे,	अब कछु कहा न जाय ।
सिंधु समाना बुँदमें,	दरिया लहर समाय ॥३०॥

२५. घाट—वेद, मत, वर्ण और आश्रम की मर्यादा । औघट—सनागत, त्रिगुणातीत ।

२७. काग कपूर—अनधिकारी सत्य मार्ग को पकटना चाहते हैं ।

२८. तिगाडना—लम्बी चौड़ी बातें बनाना ।

मान पिंड को तजि चला, सुआ फरै सब कोय ।
 जीव छुता जायै मरै, मून्डप लखै न कोय ॥३१॥
 मान पिंड को तजि चला, छूटि गया जंजार ।
 ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥३२॥
 सूक्ष्म सुरति का मरम है, जीवन जानत जाल ।
 कहै कवीरा दूरि कर, आत्म आदि हि काल ॥३३॥
 अंतःकरण ही मन महीं, मन हि मनोरथ पाँहि ।
 उपजत उपजत जानिये, विनसत जानै नाँहि ॥३४॥
 साखी सैन सही करो, श्रवण सुनी ना जाय ।
 जैमे तेजी बायको, नाद हि कय लै जाय ॥३५॥
 हती साईं सब सुन लई, सैन सुनी नहि जाय ।
 नैन वैन दोइ थकै, सैन हि माहि लखाय ॥३६॥

३१. शूल जन्म और मरण से सारा संसार परिचित है; परन्तु सूक्ष्म जन्म और मरण को कोई नहीं जानता । वह सूक्ष्म जन्म और मरण मनुष्य के जीते जी प्रतिदिन ही होता है । नई २ वासनाओं को प्रतिदिन हृदय में स्थान देना ही सूक्ष्म जन्म और मरण है ।

३२. दिन में सौ सौ बार—अनेक प्रियों में चित्त को अटकाना ही दिन में सौ सौ बार मरना है ।

३५. जिस प्रकार हवा का झपाटा शब्द को उड़ा ले जाता है, इसी प्रकार मन की चंचलता श्रवण इन्द्रिय से पूरा ज्ञान नहीं होने देती, इस लिये साखी में बताई हुई सैन से निजानुभव करना चाहिये ।

सुरज किरन रोकी रहै, कुंम नीर ठहराय ।
 सुरति जु रोकी ना रहै, जहाँ पुरुष तहँ जाय ॥३७॥
 कवीर दीपक जोइये, देखा अपरं देव ।
 चार वेद की गम नहीं, तहाँ कवीरा सेव ॥३८॥
 पहुँचेंगे तो कहेंगे, मीलेंगे उस ठाय ।
 अजहं मेरा समुँद में, बोलि विगूचे काय ॥३९॥
 अगम पंथ कुं पग थरै, सो कोइ बिरला संत ।
 मत वाडा में पडि गये, ऐसे जीव अनंत ॥४०॥
 मत वाडा में पडि गये, मूरख वारै वाट ।
 ऐसा कवहुं ना मिले, उलटे घटै घाट ॥४१॥

भाषा को अंग ।



संस्कृत है कूप जल, भाषा वहता नीर ।
 भाषा सतगुरु सहित है, सत मत गहिर गंभीर ॥ १ ॥
 संस्कृत हि पंडित कहे, बहुत करै अभिमान ।
 भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान ॥ २ ॥
 संस्कृत हि संसार में, पंडित करै बखान ।
 भाषा भक्ति हठावही, न्यारा पद निरवान ॥ ३ ॥

पूरन बानी वेद की, सोहत परम अनूप ।
 आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रुर ॥ ४ ॥
 बानी नो पानी भरै, चारों वेद मजूर ।
 न्यूका सेवक बंदगी, किया चाकरी दूर ॥ ५ ॥
 वेद कहै मैं कहूँ न जानूँ, स्वाँसा के संग आय ।
 दरस हेत कहँ बंदगी, गुन अनेक मैं गाय ॥ ६ ॥
 चेद हमारा भेद है, हम वेदोंके मांहि ।
 जौन भेद में मैं वसूँ, वेदो जानत नांहि ॥ ७ ॥

पंडित को अंग ।



पंडित और पसालची, दोनों सुझत नाँहि ।
 औरन को करै चाँदना, आप अंधेरे माँहि ॥ १ ॥
 पंडित केरी पोथियाँ, उघों तीतर का ज्ञान ।
 औरन सगुन बतावहीं, आपन फंद न जान ॥ २ ॥
 पंडित पोथी बांधि के, दे सिरहाने सोय ।
 वह अच्छर इन में नहीं, हसि दे भावै रोय ॥ ३ ॥
 पंडित बोडौ पातरा, कानी छाँड कुरान ।
 वह तारीख बताय दे, थे न जिमी असमान ॥ ४ ॥

पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया,	लिखि लिखि भया जु चोर ।
जिस पढ़ने सादिव मिले,	सो पढ़ना कह्यु और ॥ ५ ॥
पढ़ै गुनै सीखै सुनै,	मिट्टी न संसै मूल ।
कहै कविर कासों कह्यु,	येही दुख का मूल ॥ ६ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ,	पंडित हुआ न कोय ।
एकै अच्छर प्रेम का,	पढ़ै सो पंडित होय ॥ ७ ॥
कवीर पढ़ना दूर कर,	पोथी देहु बढाय ।
बावन अच्छर सोधि कै,	सत्तनाम लौ लाय ॥ ८ ॥
कवीर पढ़ना दूर कर,	अति पढ़ना संसार ।
पीर न ऊपजै जीव की,	क्यों पावै करतार ॥ ९ ॥
मै जानौ पढ़ना मला,	पढ़ने ते भल जोग ।
सत्तनाम सौ प्रीति कर,	भावै सिंदो लोग ॥ १० ॥
नहि कागड नहि लेखनी,	निह अच्छर है सोय ।
वांचहीं पुस्तक छोडि कं,	पंडित कहिये सोय ॥ ११ ॥
धरती अंबर ना दता,	को पंडित था पास ।
कौन मुहरम थापिया,	चाँट सुरज आकास ॥ १२ ॥
कवीर ब्राह्मण की कथा,	सो चोरन की नाव ।
सब अंधे बिलि बैठिया,	भावै तहँ ले जाव ॥ १३ ॥
कवीर ब्राह्मण बूडिया,	जनेऊ केरे जोर ।
लख चौरासी माँगि लइ,	सतगुरु सेती तोर ॥ १४ ॥

ब्राह्मन गुरु है जगत का, संतन के गुरु नाँहि ।
 अरुशि परुझिके मरि गये, चारौ वेदौ माँहि ॥१५॥
 ब्राह्मन गढहा जगत का, तीरथ लादा जाय ।
 यजमान कहि पै पुन किया, वह महेनत का खाय ॥१६॥
 ब्राह्मन ते गढहा भला, आन देव ते कुत्ता ।
 मुलना ते मुरगा भला, सदर जगावै सुत्ता ॥१७॥
 कलि का ब्राह्मन ममखरा, ताहि न दीनै दान ।
 कुटुब सहित नरकै चला, माथ लिया यजमान ॥१८॥
 पढै पढावै कलु नहीं, ब्राह्मन भक्ति न जान ।
 व्याहै श्राद्धै कारनै, बैठा मंडा तान ॥१९॥
 पारोसीमं रूठना, तिल तिल मुखकी हान ।
 पंडित भया सरावगी, पानी पीवै छान ॥२०॥
 चारि अठारह नव पढी, छौ पढि खोया मूल ।
 कबीर मुल जानै बिना, ज्यों पंछी चंडूल ॥२१॥
 लिखना पढ़ना चातुरी, यह संसारी जेव ।
 जिस पढ़ने सों पाइये, पढ़ना किसी न सेव ॥२२॥
 चारि वेद पढ़वो करै, हरि से नाही हेत ।
 माल कबीरा ले गया, पंडित हूँ खेत ॥२३॥
 पढी गुनी पाठक भये, समुझाया संसार ।
 आपन तो समुझै नहीं, वृथा गया अवतार ॥२४॥

पढी गुनी ब्राह्मन भये, कीर्ति भई संसार ।
 वस्तु की तो समुझ नहीं, ज्युं खर चंदन भाग ॥२५॥
 पढत गुनत रोगी भयो, बढा बहुत अभिमान ।
 भीतर ताप जु जगत का, यही न पडती सान ॥२६॥
 पढे गुने सब वेद को, समुझे नहीं गमार ।
 आसा लागी भरमकी, ज्युं करोल की जाल ॥२७॥
 पंडित पढने वेद को, पुस्तक हसती लाल ।
 भक्ति न जाने राम की, सबे परीक्षा बाद ॥२८॥
 पढते गुनते जनम गया, आसा लागी हेत ।
 बोधा बीज हि कुपतिने, गया जु निर्मल खेत ॥२९॥
 पाहि पढि और समुझावइ, खोजि न आप सरीर ।
 आपहि संशयमें पेड़, यं कहि दास कवीर ॥३०॥
 चतुर्गई पोपट पढी, पाहि सो पिंजर माँहि ।
 फिर परमोधे और को, आपन समुझै नाँहि ॥३१॥
 हरि गुन गावे हरपिके, हिरदय कपट न जाय ।
 आपन तो समुझै नहीं, और हि ज्ञान सुनाय ॥३२॥
 ज्ञानी ज्ञाता बहु मिले, पंडित कवी अनेक ।
 राम रता इंद्रि जिता, कोटी मध्ये एक ॥३३॥
 कुल मारग छोड़ा नहीं, रह मायामें मोह ।
 पारस तो परसा नहीं, रटा लोह का लोह ॥३४॥

आत्म तत्व जानै नहीं, कोटिक कथे जु ज्ञान ।
 तारे तिमिर न मागहीं, जब लग उगे न भान ॥३५॥
 अजहं तेरा सब मिटे, गुरु मुख पावे भेद ।
 पंडित पास न बैठिये, बैठि न सुनिये वेद ॥३६॥

निंदा को अंग ।



निंदक एकहु मति मिलै, पापी मिलै हजार ।
 इक निंदक के सीस पर, लाख पाप का भार ॥ १ ॥
 निंदक ते कुत्ता भला, हट कर मांढै रार ।
 कुत्ते से क्रोधी बुरा, गुरु दिलावै गार ॥ २ ॥
 निंदक तो है नाक विन, सोहै नकटों माहि ।
 साधुजन गुरु भक्त जो, तिनमें सोहै नाहि ॥ ३ ॥
 निंदक तो है नाक विन, नित दिन विष्टा खाय ।
 गुन छँडै औगुन गहै, तिसका यही सुमाय ॥ ४ ॥
 निंदक नेरै राखिये, आंगन कुटी छ्वाय ।
 विन पानी साबुन विना, निरमल करै सुमाय ॥ ५ ॥
 निंदक दूर न कीजिये, कीजै आदर मान ।
 निरमल तन मन सब करै, वकै आन ही आन ॥ ६ ॥

निंदक हमरा जनि मरो, जीवो भ्रादि जुगाटि ।
 कवीर सतगुरु पाइया, निंदक के परसाटि ॥ ७ ॥
 कवीर निंदक मरि गया, अब क्या कहिये जाय ।
 ऐसा कोई ना मिले, बीडा लेय उठाय ॥ ८ ॥
 सातों सायर में फिरा, जंबुद्वीप दै पीठ ।
 परनिंदा नाहीं करै, सो कोय विरला दीठ ॥ ९ ॥
 दोष पराया देखि करि, चले हसन्त हसन्त ।
 अपना याद न आवई, जाका आदि न अन्त ॥ १० ॥
 तिनका कबहुँ न निन्दिये, पाँव तलै जो होय ।
 कबहुँ उहि आँखों पड़े, पीर घनेरी सोय ॥ ११ ॥
 माखी गहै कुवास को, फूल वास नहि लेय ।
 मधु माखी है साधुजन, गुनहि वास चित देय ॥ १२ ॥
 कवीर मेरे साध को, निंदा करो न कोय ।
 जो पै चंद्र कलक है, तउ अनियारी होय ॥ १३ ॥
 जो कोय निन्दै साध को, संकट आवै सोय ।
 नरक जाय जनमै परै, मुक्ति कबहुँ नहि होय ॥ १४ ॥
 जो तू सेवक गुरुन का, निंदा की तज चान ।
 निंदक नेरे आय जब, कर आदर सनमान ॥ १५ ॥
 काहु को नहि निन्दिये, चाहै जैसा होय ।
 फिर फिर ताको बन्दिये, साधु लच्छ है सोय ॥ १६ ॥
 ऐसा कोई जन एक है, दूजे मेष अनेक ।
 निन्दा बन्दा क्या करै, जो नहि हिरदा एक ॥ १७ ॥

निन्दा कीजै आपनी, बंदन सतगुरु रूप ।
 औरन सों क्या काम है, देख न रंक न भूप ॥१८॥
 आपन को न सराहिये, पर निन्दिये नाह कोय ।
 चढ़ना लंबा धौहरा, ना जानै क्या होय ॥१९॥
 आपन पौ न मराहिये, और न कहिये रंक ।
 क्या जानौं किहि रूप तर, कूरा होय करंक ॥२०॥
 लोग विचारा निन्दही, जिनहु न पाया ज्ञान ।
 सत्तनाम जानै नहीं, वके आनही आन ॥२१॥
 निन्दक न्हाग गगन कुरुखेत, अरु नारि सिंगार समेत ।
 चौसठ कूवा बाय दिखावै, तोभी निन्दक नरक हि जावै ॥२२॥
 अडपठ तीरथ निन्दक न्हाइके, दहे पलोसे मैल न जाहि ।
 छपान नोटि धरती फिरि आवै, तोभी निन्दक नरक हि जावै ॥२३॥
 निंदा हमरी जो करै, मित्र हमारा सोय ।
 विन साबुन विन पानिसे, मैल हमारा धोय ॥२४॥
 काहुको नहि निन्दिये, सबको कहिये संत ।
 करनी अपनी से तरे, मिलि भजिये भगवंत ॥२५॥
 कंचन को तजवो सदल, महल त्रिया को नेह ।
 निंदा केरो त्यागवो, बड़ो कठिन है येह ॥२६॥
 कबीर बह तो राम है, निंदने को कछु नाहि ।
 कोइ विधि गोविंद सेविये, राम बसा सब माँहि ॥२७॥

आनदेव को अंग ।

आनं देव की आस करि, मुख मेलै पट पांस ।
जाके जन भोजन करै, निश्चय नरक निवास ॥ १ ॥
होम कनागत कारनै, साकुट राधा खाय ।
जीवत विष्ठा खान की, मूआ नरकै जाय ॥ २ ॥
आरा नारा कारनै, जेता रत्नमल खाय ।
जीवत जनम हि खान का, पीछै नरकै जाय ॥ ३ ॥
साकुट हित कुं जाय के, सरमा सरमी खाय ।
कोटि जनम नरकै पड़े, तऊ न पेट अघाय ॥ ४ ॥
कन्या बल अरु कारनै, आनदेव को खाय ।
सो नर ढोले बाजते, निश्चय नरकै जाय ॥ ५ ॥
कामी तिरै क्रोधी तिरै, लोभी की गति होय ।
सलिल भक्त संसार में, तरत न देखा कोय ॥ ६ ॥

प्रकृति गुन को अंग ।

पहिले तेर पचीस का, सन्तो करो अहार ।
गुरु सब्दै लागे रहो, दुख न होय लगार ॥ १ ॥
सुपमन दिव्यी पीत करि, दीन्ही आगि चढाय ।
तेर पांच को रांघि करि, सन्त होय सो खाय ॥ २ ॥

सेर पांच को खाय करि, सेर तीन को खाय ।
 सेर तिन खाड ना सकै, सेर दुई को खाय ॥ ३ ॥
 सेर दुई को खाय करि, पाया अगम अलेख ।
 सतगुरु सर्वद यों कहा, जाके रूप न रेख ॥ ४ ॥
 दुख महल को दाहने, सुख महल रह जाय ।
 अभि अन्तर है उनमुनी, तामें रहो समाय ॥ ५ ॥
 कालज तजे न स्यामला, मुखटा तजे न स्वेत ।
 दुर्जन तजे न कुटिलता, सज्जन तजे न हेत ॥ ६ ॥
 दुर्जन की करुणा बुरी, भलो सज्जन को नास ।
 सूरज जब गरपी करे, तब वरसन की आस ॥ ७ ॥
 कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न बाको संग ।
 पत्थर डारे कीच में, उछलि विगाड़े अंग ॥ ८ ॥
 चंदा सूरज चलत न दीसे, बढत न दीसे बेल ।
 हरिजन हरिभजता ना दिसे, ये कुदरत का खेल ॥ ९ ॥
 जो जाको गुन जानता, सो ताको गुन लेत ।
 कोयल आमही खात है, काग लिबोरी लेत ॥ १० ॥
 इक खुन्नस खांसि जो, औ पीवे मदपान ।
 ये छपाया ना छुपे, परगट होय निदान ॥ ११ ॥

काम को अंग ।

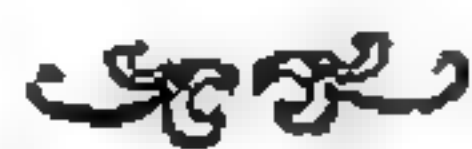


कामी का गुरु कामिनी,	लोभी का गुरु दाम ।	
कवीर का गुरु सन्त है,	संतन का गुरु राम ॥ १ ॥ २	
कामी कबहुँ न गुरु भजै,	मिटै न संसै मूल ।	
और गुनह सब बरिह है,	कामी डाल न मूल ॥ २ ॥	
कामी कुत्ता तीस दिन,	अन्तर होय उदास ।	
कामी नर कुत्ता सदा,	छह रितु बारह मास ॥ ३ ॥	
कामी क्रोधी लालची,	इन से भक्ति न होय ।	
भक्ति करै कोय मूरमा,	जाति वरन कुछ खोय ॥ ४ ॥	
कामी लज्जा ना करै,	मन माहीं अहलाद ।	
नींद न मांगै साथग,	भूख न मांगै स्वाद ॥ ५ ॥	
कामी तो निरभय भया,	करै न काह संक ।	
इन्द्री करै बसि पदा,	सुगतै नरक निभंक ॥ ६ ॥	
कामी अमी न भावई,	विष को लै सौय ।	
कुबुधि न भाजै जीव की,	भावे ज्यों पापीय ॥ ७ ॥	
कामी करम की केंचुली,	पहरि दृष्टा नर नाग ।	
सिर फोड़ै मूत्र नहीं,	कोइ पूखला भाग ॥ ८ ॥	

सह कामी दीपक दसा, - सोखै तेल निवास ।
 कबीर हीरा संतजन, सहजै सदा प्रकास ॥ ९ ॥
 दीपक सुंदर देखि करि, जरि जरि मरे पतंग ।
 बड़ी लहर जो विषय की, जरत न मोरै अंग ॥ १० ॥
 भक्ति बिगाड़ी कामिया, इन्द्रिज करे स्वाद ।
 हीरा खोया हाथ सों, जनम गँवाया वाद ॥ ११ ॥
 काम काम सब कोय कहै, काम चीन्है कोय ।
 जेती मन की कल्पना, काम कहवै सोय ॥ १२ ॥
 जहाँ काम तहाँ नाम नहि, जहाँ नाम नहि काम ।
 दोनों कबहु ना मिलै, रवि रजनी इक ठाम ॥ १३ ॥
 काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घट्यो खान ।
 कबीर मूरख पंडिता, दोनों एक समान ॥ १४ ॥
 कहता हूँ कहि जात हूँ, मानै नहीं गँवार ।
 वैरागी गिरहो कहा, कायो वार न पार ॥ १५ ॥
 काम कहर असवार है, सब को मारै घाय ।
 कोइ एक हरिजन ज्वरा, जाके नाम सहाय ॥ १६ ॥
 कबीर कामी पुरुषका, संसै कबहु न जाय ।
 साहिव सो अलगा रहै, वाके हिरदै लाय ॥ १७ ॥

कामी से कुचा भला, रितु सर खोलै काछ ।
 राम नाम जाना नहीं, बाची जाय न वाच ॥१८॥
 बुंद खिरी नर नारि की, जैसी आतम घात ।
 अक्षानी मान नहीं, येहि वान उतपात ॥१९॥
 भग भोगै भग ऊपनै, भगते वचै न कोष ।
 कहै कबिर भगते वचै, भक्त कहावै सोय ॥२०॥
 तन मन लज्जा ना रहे, काम वान उर साल ।
 एक काम सब वश किये, सुर नर मुनि बेहाल ॥२१॥

क्रोध को अंग ।



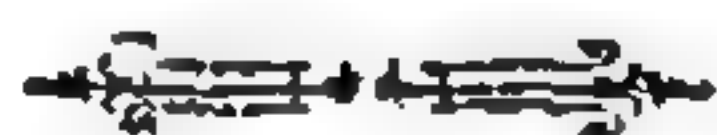
क्रोध अगनि घर घर बढ़ो, जलै सकल संसार ।
 दीन लीन निज भक्त जो, तिन के निकट उबार ॥ १ ॥
 कोटि करम लागे रहे, एक क्रोध की लार ।
 किया कराया सब गया, जय आया हंकार ॥ २ ॥
 जगत माहि गोखा घना, अह क्रोध अह काल ।
 पौरी पहुँचा मारिये, ऐसा जम का जाल ॥ ३ ॥
 दसों दिमा से क्रोधकी, उठी अपराध आग ।
 सीतल संगति साधकी, तहाँ उवाग्ये माग ॥ ४ ॥

१८. काछ खोलना—भोग करना ।

१९. बुन्द-बोधि । ३ पौरी-शुक्ति का द्वार, विवेकादिक ।

यह जग कोठी काठकी, चहुँदिस लागी आग ।
 भीतर रहै सो जलि मुये, साधु उबरे भाग ॥ ५ ॥
 गार अंगारा क्रोध झल, निंदा धूँवाँ होय ।
 इन तीनों को परिहरै, साधु कहावै सोय ॥ ६ ॥

लोभ को अंग ।



जब मन लागे लोभ सों, गया विषय में भोय ।
 कहै कबीर विचारि के, केहि प्रकार धन होय ॥ १ ॥
 जोगी जंगम सेवदा, ज्ञानी गुनी अपार ।
 पट दरसन से क्या वनै, एक लोभ की लार ॥ २ ॥
 कबीर औधी खोषड़ी, कबहुं धापै नाँहि ।
 तीन लोक की संपदा, कब आवै घर माँहि ॥ ३ ॥
 मूम पैली अरु स्वान भग, दोनों एक समान ।
 चालत में मुख ऊपरै, काढ़न निकसै प्रान ॥ ४ ॥
 बहुत जतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय ।
 कबीर संचै मूम धन, अन्त चोर ले जाय ॥ ५ ॥

मोह को अंग ।

मोह फंद सब फंदिया, कोय न सकै निवार ।
 कोइ साधू जन पारखी, विरला तत्व विचार ॥ १ ॥
 मोह मगन संसार है, कन्या रही कुपारि ।
 काहु सुरति जो ना करी, ताते फिरि औतारि ॥ २ ॥
 मोह सलिल की धार में, बहि गये गहिर गंभीर ।
 मूच्छम मछली सुरति है, चढ़ती उलटी नीर ॥ ३ ॥
 जब घट मोह समाइया, सबै भया अंधियार ।
 निर्मोह ज्ञान विचारि कें, साधू उतरे पार ॥ ४ ॥
 जहाँ लगि सब संसार है, मिरग सवन को मोह ।
 सुर नर नाग पताल अरु, ऋषि मुनिवर सब जोह ॥ ५ ॥
 अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौं, तुष सौं रहे निनार ।
 मिरग हि बांधि बिडारहु, कहै कबीर विचार ॥ ६ ॥
 मधम फंदे सब देवता, बिलसै स्वर्ग निवास ।
 मोह मगन सुख पाइया, मृत्यु लोक की आस ॥ ७ ॥
 दूजे ऋषि मुनिवर फँसे, तासों रुचि उपजाय ।
 स्वर्ग लोक सुख मानही, धरनि परत है आय ॥ ८ ॥
 सुरनर ऋषि मुनि सब फँसे, मृग त्रिम्ना जग मोह ।
 मोह रूप संसार है, गिरे मोहनिधि जोह ॥ ९ ॥

कुरुक्षेत्र सब मैदिनी,
 मोह मिरग सब चरि गया,
 काहु जुगति ना जानिया,
 नहि बंदगी नहि दीनता,
 अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौ,
 त्याग मोह की वासना,
 अपना तो कोई नहीं,
 पार पहुँची नाव जब,
 अपना तो कोई नहीं,
 अपना अपना क्या करै,
 मोह नदी विकराल है,
 सतगुरु केवल साथ ले,
 एक मोह के कारनै,
 ते नर कैसे छूटि हैं,

खेती करै किसान ।
 आसन रहि खलिहान ॥१०॥
 किहि बिधि वचै सुखेन ।
 नहि साधू संग इत ॥११॥
 सबही मोह की खान ।
 कहै कबीर सुजान ॥१२॥
 हम काहु के नाहि ।
 मिलि सब बिछुडे जाहि ॥१३॥
 देखा ठोकि बजाय ।
 मोह भरम लिपटाय ॥१४॥
 कोई न उतरै पार ।
 हंस होय जम न्यार ॥१५॥
 भरत धरी दो देह ।
 जिनके बहुत सनेह ॥१६॥

जहाँ आपा तहाँ आपदा, जहाँ संसै तहाँ सोग ।
 कहैं कविर कैसे मिटै, चारों दीरघ रोग ॥ २ ॥
 अहं भई जो इस्तरी, माया हुआ मान ।
 यों वसि पड़े खटीक के, पकड़ी आनी कान ॥ ३ ॥
 हरिजन हरि तो एक है, जो आपा मिट जाय ।
 जा घट में आपा वसै, साक्षि कहाँ समाय ॥ ४ ॥
 अइता नहि आनिये, हरि सिंहासन देय ।
 जो दिक्क राखै दीनता, सांइ आप करि लेय ॥ ५ ॥
 कबीर गर्व न कीजिये, रंक न इसिये कोय ।
 अमह नाव समुद्र में, ना जानौं क्या होय ॥ ६ ॥
 आपा सब हो जात है, किया कराया सोय ।
 आपा तजि हरि को भजै, लाखन मध्ये कोय ॥ ७ ॥
 दीप कुं झोला पवन है, नरकू झोला नारि ।
 ज्ञानी झोला गर्व है, कहैं कबीर पुकारि ॥ ८ ॥
 अभिमानी कुंजर भये, निज सिर लोन्हा भार ।
 जम द्वारै जम कूटहीं, लोहा घटै लुहार ॥ ९ ॥
 मद अभिमान न कीजिये, कहैं कविर समुझाय ।
 जा सिर अहं जु संचरै, पड़े चौरासी जाय ॥ १० ॥

मान को अंग ।



मान	बड़ाई	कूकरी,	धर्मराय	दरवार ।
दीन	लकुटिया	बाहिरै,	सब जग	खाया फार ॥ १ ॥
मान	बड़ाई	कूकरी,	संतन	खेदी जान ।
पांडव	जग	पावन भया,	सुपच	विराजै आन ॥ २ ॥
मान	बड़ाई	जगत में,	कूकर	की पहिचान ।
प्यार	किये	मुख चाटई,	वैर किये	तन दान ॥ ३ ॥
मान	बड़ाई	ऊरपी,	ये जग	का व्यवहार ।
दीन	गरीबी	बढ़ी,	सतगुरु	का उपकार ॥ ४ ॥
मान	बड़ाई	देखि कर,	भक्ति	करै संसार ।
जब	देखै	कलु हीनता,	अवगुन	धरै गँवार ॥ ५ ॥
मान	दिया	मन हरषिया,	अपमाने	तन छीन ।
कहे	कविर	तब जानिये,	माया	में लौ लीन ॥ ६ ॥
मान	तजा	तो क्या भया,	मन का	मता न जाय ।
संत	वचन	मानै नहीं,	ताको	हरि न सुहाय ॥ ७ ॥
कंचन	तजना	सहन है,	सहज	तिरिया का नेह ।
मान	बड़ाई	ईरपा,	दुर्लभ	तजना येह ॥ ८ ॥
माया	तजी	तो क्या भया,	मान	तजा नहि जाय ।
मान	बड़े	मुनिवर गले,	मान	सवन को खाय ॥ ९ ॥

काळा मुख कर मान का,	आदर लावो आग ।
मान बढ़ाई छाँडि के,	रहौ नाम लौ लाग ॥१०॥
कबीर अपने जीवते,	ये दो बातों धोय ।
मान बढ़ाई कारनै,	अछता मूल न खोय ॥११॥
खंभा एक गयंद टो,	क्यों करि बंधू वारि ।
मान करुं तो पिय नहीं,	पिय तो मान निवारि ॥१२॥
बड़ी बढ़ाई ऊंट की,	छादे जहँ लग सोंस ।
मुहकम सलिला लादि के,	ऊपर चढ़ै फरास ॥१३॥
बड़ा बढ़ाई ना करे,	बड़ा न बोलै बोल ।
हीरा मुख से ना कहे,	लाख हमारा मोल ॥१४॥
बड़ी विपति बढ़ाई है,	नन्हा करम से दूर ।
तारे सब न्यारे रहें,	गद्दे चंद्र औ सूर ॥१५॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ,	जैसे पेठ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं,	फल लागे अति दूर ॥१६॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ,	जो रे बड़ मति नाँहि ।
जैसे फूल उगाढ़ का,	मिथ्या ही झड़ि जाँहि ॥१७॥
हरिजन को ऊंचा नवै,	ऊंट जनम का होय ।
तीन जगह देहा मया,	ऊंचा तारै सोय ॥१८॥
ऊँचे कुल में जनमिया,	देह धरी अस्थूल ।
पार ब्रह्म को ना चढ़े,	चास बिहना फूट ॥१९॥

मान को अंग ।



मान	बड़ाई	कूकरी,	धर्मराय	दरवार ।
दीन	लकुटिया	बाहिरै.	सब जग	खाया फार ॥
मान	बड़ाई	कूकरी,	संतन	खेदी जान ।
पांडव	जग	पावन भया,	सुपच	विराजै आन ॥
मान	बड़ाई	जगत में,	कूकर	की पहिचान ।
प्यार	किये	मुख चाटई,	वैर किये	तन हान ॥
मान	बड़ाई	ऊरपी,	ये जग	का व्यवहार ।
दीन	गरीबी	बढ़ी.	सतगुरु	का उपकार ॥
मान	बड़ाई	देखि कर,	भक्ति	करै संसार ।
जब	देखै	बहु हीनता,	अवगुन	धरै गँवार ॥
मान	दिया	मन हरपिया,	अपमाने	तन छीन ।
कहै	कविर	तब जानिये,	माया	में लौ लीन ॥
मान	तजा	तो क्या भया,	मन का	पता न जाय ।
संत	वरन	मानै नहीं,	ताको	हरि न सुहाय ॥ ७
कंचन	तजना	सहज है,	सहज	तिरिया का नेह ।
मान	बड़ाई	ईश्या,	दुखलभ	तजना येह ॥ ८
माया	तजी	तो क्या भया,	मान	तजा नहि जाय ।
मान	बड़े	मुनिवर गले,	मान	सवन को खाय ॥ ९

काला मुख कर मान का,	आदर लावो आग ।
मान बढ़ाई छाँड़ि के,	रहौ नाम लौ लाग ॥१०॥
कवीर अपने जीवने,	ये दो बातों धोय ।
मान बढ़ाई कारनै,	अछता मूल न खोय ॥११॥
खंभा एक गयंद दो,	क्यों करि बंधु वारि ।
मान करुं तो पिय नहीं,	पिय तो मान निवारि ॥१२॥
बड़ी बढ़ाई ऊँट की,	लादे जहाँ लग साँस ।
मुहकम सलिला लादि के,	ऊपर चढ़ै फरास ॥१३॥
बड़ा बढ़ाई ना करै,	बड़ा न बोलै बोल ।
हीरा मुख से ना कहै,	लाख हमारा मोल ॥१४॥
बड़ी विपति बढ़ाई है,	नन्हा करम से दूर ।
तारे सब न्यारे रहें,	गहै चंद्र औ सूर ॥१५॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ,	जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं,	फल लागे अति दूर ॥१६॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ,	जो रे बड़ मति नाँहि ।
जैसे फूल उजाड़ का,	मिथ्या ही झड़ि जाँहि ॥१७॥
हरिजन को ऊँचा नवै,	ऊँट जनम का होय ।
तीन जगह टेढ़ा मया,	ऊँचा तारै सोय ॥१८॥
ऊँचे कुल में जनमिया,	देह धरी अस्थूल ।
पार ब्रह्म को ना चढ़ै,	वास बिहना फूल ॥१९॥

ऊँच कुल नीचा पता, नाहीं हरि सों हैर ।
 शीन गिनै हरि भक्त को, खासी खता अनेक ॥२०॥
 ऊँचै कुल के कारनै, भूलि रहा संसार ।
 तब कुल की क्या लाज है, जब तन होगा छार ॥२१॥
 ऊँचै कुल की कापिनी, भजै न सारंग पान ।
 कुल ही लजवान औतरी, सुधी सापिन जान ॥२२॥
 कबीर ऊँची नाक को, ऐठत है संसार ।
 जातै हरि हाथी किया, नाक दिया गज चार ॥२३॥
 हाथी चढ़ि के जो फिरै, ऊपर चँवर दुराय ।
 लोग कहैं सुख भोगवै, सीधे दोजख जाय ॥२४॥
 कबीर हरि जाना नहीं, जाना कुल परिवार ।
 गदहा है करि औतरी, भांडा ज़ादि कुम्हार ॥२५॥
 ऊँचा देखि न राचिये, ऊँचा पेड़ खजूर ।
 पंखि न बैठे छांपड़े, फल लागा पै दूर ॥२६॥
 ऊँच पानी ना टिकै, नीचै ही ठहराय ।
 नीचा है सो भरि पिये, ऊँच पियासा जाय ॥२७॥
 नर मूरख ते खर भला, जिहि मुख नाहीं राम ।
 सुकुन बतावै और को, पंथ चलैता गाव ॥२८॥
 प्रभुता को सब कोइ भजै, प्रभु को भजै न कोय ।
 कहै कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय ॥२९॥

लघुता में प्रभुता वसै, प्रभुता से प्रभु दूर ।
 कीदी सो मिसरी चुगै, हाथी के सिर धूर ॥३०॥
 जौन मिला सो गुरु मिला, चेला मिला न कोय ।
 चेला को चेला मिलै, तब कछु हँ तो होय ॥३१॥
 बड़ा बड़ाई ना करै, छोटा बहु उतराय ।
 ज्यों प्यादा फरजी भया, टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥३२॥
 बग ध्यानी ज्ञानी घने, अरथी मिले अनेक ।
 मान रहित कजीर कहैं, सो लाखन में एक ॥३३॥
 भक्त रु भगवत एक है, बूझत नहीं अजान ।
 सीस नैवावत संत को, बड़ा करै अभिमान ॥३४॥
 लेने को सतनाम है, देने को अँनदान ।
 तरने को है दीनता, चूडन को अभिमान ॥३५॥

आसा तृत्ना को अंग ।



आसा तो गुरुदेव की, दूजी आस निराम ।
 पानी में घर भीन का, सो क्यों मरै पियास ॥ १ ॥

३२. प्यादा—सिपाही । फरजी—वजीर । शतरंज के खेल में वजीर की चाल टेढ़ी और प्यादा की सीधी होती है । जब वजीर के घर में जाने से प्यादा वजीर को मारकर वजीर बन जाता है तब वह सीधी चाल छोड़ कर टेढ़ी चाल पकड़ लेता है ।

आसा एक जु नाम की, दुजि आस निवार ।
 दुजो आसा मारसी, ज्यों चौपर की सार ॥ २ ॥
 आसा एक हि नाम की, जुग जुग पुरखे आस ।
 ज्यों पंडल कोरो रहे, वसै जु चदन पास ॥ ३ ॥
 आसा जोखै जग मरै, लोग मरै मरि जाहि ।
 धन संचै ते भी भरै, उकरै सो धन खाहि ॥ ४ ॥
 आम बास जग फंदिया, रहै उरख लपटाय ।
 नाम आस पूरन करै, सकल आस मिटि जाय ॥ ५ ॥
 आमा बेठी करम बन, गरजै मत के साथ ।
 तृप्ता फूल चौगान में, फल करता के हाथ ॥ ६ ॥
 आसा तृप्ता सिंधु गति, तहाँ न मन ठहराय ।
 जो कोइ आसा में फसा, लहर तमाचा खाय ॥ ७ ॥
 आसा तृप्ता दो नदी, तहाँ न मन ठहराय ।
 इन दोनों को लंघ करि, चौड़े बैठे जाय ॥ ८ ॥
 चौड़े बैठे जाय के, नाँव घरा रनजीत ।
 सादेच न्यारा देखिवा, अन्तर गति की प्रीति ॥ ९ ॥
 आसा तरकस बाधिवा, नै नै गये सुजान ।
 घने परखेरु मारिया, हासरि जोरि कमान ॥ १० ॥
 आसा को ईयन करुं, मनसा करुं भभूत ।
 जोगी फिरि फेरि करुं, यों वनि आवि सुत ॥ ११ ॥

कवीर जोगी जगत गुरु, वज्रै जगत की आस ।
 जो जग की आसा करै, जगत गुरु वह दास ॥१२॥
 जोगी है जग जीतता, वहि रत है संसार ।
 एक अंदेसा रहि गया, पीछे पड़ा अहार ॥१३॥
 बहुत पसारा जनि करै, कर थोड़े की आस ।
 बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास ॥१४॥
 आसन मारै कह भयो, मरी न मनकी आस ।
 तेली केरे बैल ज्यौ, घर ही कोस पचास ॥१५॥
 सब आसन आसा तनै, निवरत कोई नाँहि ।
 निवृत्ति को जानै नही, प्रवृत्ति परपंच पाँहि ॥१६॥
 बाड चढन्ती बैलरी, उरझी आसा फंद ।
 टूटे पर जूटे नहीं, मई जो वाचा बंध ॥१७॥
 कवीर जग को कह कहं, मौजल बूडे दास ।
 सतगुरु सय पति छाँडि के, करै मनुष की आस ॥१८॥
 आस आस घर घर फिरै, सहै दुखारी चोट ।
 कहै कविर भरमत फिरै, ज्यौ चौरस की गोट ॥१९॥
 आसा तो गुरुदेव की, और गले की फांस ।
 चंदन ढिग चंदन भये, देखौ आक्र पलास ॥२०॥
 कवीर सो धन संचिये, जो आगे को होय ।
 सीस चढाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥२१॥

राम हि छोटा जानि के, दुनिया आगे दीन ।
 जीवन को राजा कहै, तृप्ता के आधोन ॥२२॥
 कबीर तृप्ता पापिनी, तासों मोति न जोर ।
 पैठ पैठ पाछे पड़े, लागै मोटी खोर ॥२३॥
 तृप्ता सीची ना बुझै, दिन दिन बहती जाय ।
 जावासा का खाव ज्यौ, बन मेरा कुम्हिलाय ॥२४॥
 आस आस जग फदिया, गले भरम की फांस ।
 जन्म जन्म भरमत फिरै, तबहु न छूटी आस ॥२५॥

कपट को अंग ।



कबीर तहाँ न जाइये जहाँ कपट का हेत ।
 जानो कली अनार को, तन राता मन सेत ॥ १ ॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चीत ।
 परपृष्ट औगुन बना, मुंहडे ऊपर भीत ॥ २ ॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जु नाना भाव ।
 लागे ही फल ढहि पडे, बाजै कोई कुवाव ॥ ३ ॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट को हेत ।
 नौ मन बीज जु बोयके, खाली रहिगा खेत ॥ ४ ॥

४. ननवा भाक्ति को करने पर भी चित कपटो का हृदय खाली ही रह जाता है ।
 १ पा० माया ।

हेत प्रीति सों जो मिले,	तासों मिलिये धाय ।
अन्तर साखी जो मिलै,	तासों मिलै बलाय ॥ ५ ॥
चित कपटी सब सों मिलै,	माहीं कुटिल कठोर ।
इक दुरजन इक आरसी,	आगे पीछे और ॥ ६ ॥
दिल ही पर जो दिल मिलै,	तो दिळ दगा न होय ।
सो दिळ कबहुँ न बीसै,	कोटि करे जो कोय ॥ ७ ॥
ठिकली का नमना कहा,	यह ना बहुरै वीर ।
पहिले चरनों लागि के,	पीछे सोखे नीर ॥ ८ ॥
नमन नवा तो क्या हुआ,	मृधा चित्त न ताहि ।
पारधिया दूना नैवै,	मिरग दि टूकै जाहि ॥ ९ ॥
नमन नमन बहु अन्तरा,	नमन नमन बहु वान ।
ये तीनों बहुते नैवै,	चीता चोर कमान ॥ १० ॥
कपटी का गुरु चातुरी,	गुरु गुन छन छन जाय ।
औगुन केरी कांकरी,	रही कलेजे छाय ॥ ११ ॥
कैसं भँवर न बैठही,	जो अति फूले फूल ।
खार कपट हिरदै वसै,	मधुकर तजे समूल ॥ १२ ॥
कहा बनावै बाहिरै,	भीतरिया सों काम ।
छानै छिप कै तू करै,	सारा जानै राम ॥ १३ ॥

६. दर्पण का आगे का भाग उजल्य और पीछे का मैल्य होता है
इसी प्रकार दुर्जन भी सामने सीधा और पीछे कुटिल होता है ।

आगे दर्पण ऊजला, पीछे विषम विकार ।
 आगे पीछे आरसी, क्यों न पड़े मुख छार ॥१४॥
 कपटी कभी न ऊधरे, सौ साधुन के संग ।
 मुँज पखालै गंग में, ज्यों भीमै त्यों तंग ॥१५॥
 कपटी मित्र न कीजिये, पेट पैठि बुधि लेत ।
 आगे राह दिखाय के, पीछे धक्का देत ॥१६॥
 कपटी के मन कपट है, साधू के मन राग ।
 कायर तो सब भगि चले, मूरा के मैदान ॥१७॥
 अंत कतरनी जीभ रस, नैनो उपला नेह ।
 ताकी संगति रामजी, सपनेहु मति देह ॥१८॥
 हिये कतरनी जीभ रस, मुख बोलन का रंग ।
 आगे भल पीछे बुरा, ताको तजिये संग ॥१९॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ पुराना भाव ।
 लागत ही फीके पड़े, कोइ लगायो दाव ॥२०॥
 ऊजल वस्तर सिर जग, एक चित्त सूँ ध्यान ।
 फुंकि फुंकि पाँव उठि धरै, तामे कपट निदान ॥२१॥

१४. दर्पण को साफ करने के लिये उस पर छार डाला करते हैं ।
 जिस पुण्य का आगा और पीछा दर्पण के समान हो—अर्थात् सामने
 -निर्मलता दिखानेवाला और पीछे से कपटाचार करनेवाला हो उसके
 मुँह में लोग अवश्य धूर डालते हैं ।

सरस मखा ऊजल वरन, एक पगा मूं ध्यान ।
 मैं जानां कुल हंस है, कपटी मिला निदान ॥२२॥
 जानी नमि गुरु मुख नमै, नमै चतुर मुजान ।
 दगावाज दूना नमै, चित्ता चोर कमान ॥२३॥

दुख को अंग ।



जा दिन ने जिव जनमिया, कबहु न पाया सुख ।
 डालै डालै मैं फिरा, पातै पातै दुख ॥ १ ॥
 कबीर सुख मूं जाय था, बिचमें मिलि गया दुख ।
 सुख जाहू वर आपने, मैं 'अरु मेरा दुख ॥ २ ॥
 सुखिया द्रवत मैं फिरुं, सुखिया मिलै न कोय ।
 जाके आगे दुख कहू, पहिले ऊठै रोय ॥ ३ ॥
 जाके आगे इक कहू, सो कश्ये इकवीस ।
 एक एक ते दासिया, कहां ने काठे बीस ॥ ४ ॥
 बिपका खेत जु खेडिया, बिप का बोया झाड ।
 फल लागे अंगार से, दुखिया के गल हार ॥ ५ ॥
 झल बाँये झल दाहिने, झल ही में व्यवहार ।
 आगे पीछे झल हि है, राखै सिरजन हार ॥ ६ ॥

मैं रोऊँ संसार कूं, मुझ न रोवै कोय ।
 मुझ को रोवै सो जना, नाम सनेही होय ॥ ७ ॥
 कबीर दरिया परजला, दासै जल थल झोळ ।
 वस नाहीं गोपाल सूं, बिनसै रतन अमोल ॥ ८ ॥
 संख समुंदा वीछुरा, लोग कहैं बाजंत ।
 प्रीतम आपन कारनै, घर घर धाह दयंत ॥ ९ ॥
 करनि विचारी क्या करै, हरि नहि होय सहाय ।
 जिहि जिहि डाली पग धरूं, सोँ सोँ नयि नयि जाय ॥ १० ॥
 सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रह्मंड ।
 कहै कविर सब को लगै, देह धरै का दंड ॥ ११ ॥
 देह धरै को दंड है, सब काहू को होय ।
 ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगतै रोय ॥ १२ ॥
 भूप दुखी अवधूत दुखि, दुखी रंक विपरीत ।
 कहै कविर ये सब दुखी, सुखी संत मनजीत ॥ १३ ॥
 वासर सुख नहि रैन सुख, ना सुख धूप न छांह ।
 कै सुख सरनै राम के, कै सुख सन्तों मांह ॥ १४ ॥
 भुवर्ग मृत्यू पाताल में, पूर तीन सुख नांहि ।
 सुख साधिव के भजन में, अरु संतन के मांहि ॥ १५ ॥
 संपति देखि न हरिये, विपति देखि पति गोय ।
 संपति है तहाँ विपति है, करता करै सो होय ॥ १६ ॥

संपत्ति तो हरि मिलन है, विपत्ति जु राम वियोग ।
 संपत्ति विपत्ति राम कहूँ, आन कहै सब लोग ॥१७॥
 लछमी कहै मैं नित नवी, किसकी न पूरी आस ।
 किते सिंहासन चढ़ि चले, कितने गये निरास ॥१८॥
 दुख नहि था संसार में, नहि था सोग वियोग ।
 सुख ही में दुख ला दिया, बोली बोळें लोग ॥१९॥

कर्म को अंग ।



करम कचोई आत्मा, निज कन खाया सोधि ।
 अंकुर बिना न ऊगसी, भावै ज्यों परमोधि ॥ १ ॥
 मोह कुटी में जलि मुआ, करम किंवाही वारि ।
 कोइ एक हरिजन ऊवरा, भागा राम पुकारि ॥ २ ॥
 काया खेत किसान मन, पार पुन तो घीव ।
 बोया लूँ अपना, काया कसकै जीव ॥ ३ ॥
 काला मुँह करुं करमका, आदर लावूँ आग ।
 लोम बडाई छाँडि के, राचो गुरु के राम ॥ ४ ॥
 जीव करम में जलि गया, कहै कहां ते राम ।
 कंचन जला कथीर में, जाको ठौर न डाम ॥ ५ ॥
 मरम करम की जेवरी, बळ बंधा संसार ।
 वे क्यों छूटे बापुरे, जो बांधे करतार ॥ ६ ॥

कबीर सजड़ै ही जड़ा, झूठा मोह अपार ।
 अनेक लुहारे पचि मुये, उझड़त नहीं लगार ॥ ७ ॥
 कहा करुं मैं जलि गया, अन्तर लागी आग ।
 राम नाम काठी करी, गया कबीरा भाग ॥ ८ ॥
 कबीर चंदन परजला, तीतर बैठा मोहि ।
 हृष तो दासत पैख विन, तुम दासत हो काहि ॥ ९ ॥
 कबीर कमाई आपनी, कबहु न निष्फल जाय ।
 सात समुद्र आढ़ा पड़े, मिले अगाड़ी आय ॥ १० ॥
 करै बुगई सुख चरै, कैसे पावै कोय ।
 रोपै पेड़ वबूल का, आम कहां ते होय ॥ ११ ॥
 पूरव का रवि पश्चिमै, गर जो उगै प्रभात ।
 लिखा पिटे नहि करम का, लिखा जु हरि के हाथ ॥ १२ ॥
 चूंद पड़ी जा पलक में, उस दिन लिखिया लेख ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूट अनेक ॥ १३ ॥
 जई यह जियरा पगु धरै, बखत बराबर साथ ।
 जो है लिखा नसीब में, चलै न अविचल बात ॥ १४ ॥
 जाको जितना निर्माण किय, ताको तितना होय ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटो कोय ॥ १५ ॥
 पराख्य पहिले बना, पीछे बना सरीर ।
 कबीर अचंभा है यही, मन नहि बांधे धीर ॥ १६ ॥

कवीर रेखा करम की, कबहु न मिटि है राम ।
 भेटनहार समर्थ है, समझि किया है काम ॥१७॥
 कवीर घर में राम है, रजक मौत जिव साथ ।
 कहा जु चारा मनुष का, कलम धनी के हाथ ॥१८॥
 बखत कहो या करम कहूँ, नसिब कहो निरवार ।
 सहस नान हैं करम के, मनही सिरजनहार ॥१९॥
 बाहिर सुख दुख देन को, हुकुम करै मन माँय ।
 जब ऊठे मन बखत को, बाहिर रूप धरि आय ॥२०॥
 बखत बलै भोजल तिरै, निबल मया विकार ।
 यह सब किया नसीब का, रह निश्चय निरधार ॥२१॥
 करम आपना परखि ले, मन नहि कीजै रीस ।
 हरि लिखिया सोइ पाइये, पाथर फोडै सीस ॥२२॥
 कीन्दे बिना उपाय कहुँ, देव कबहु नहि देत ।
 खेत बीज बोवै नहीं, तो क्यों जायै खेत ॥२३॥
 दुख लैने जावै नहीं, आवै आचा घूच ।
 सुख का पहरा होयगा, दुख करेगा कूच ॥२४॥
 होनहार सोइ होत है, बिसर जात सब सुद्ध ।
 जैसी लिखी नसीब में, तैसी उकलत बुद्ध ॥२५॥
 रे मन भाग्य हो भूळ मन, जो आया मन भाग ।
 सो तेरा टलता नहीं, निश्चय संसै त्याग ॥२६॥

कबीर सजड़े ही जड़ा, झूठा मोह अपार ।
 अनेक लुहारे पचि मुये, उझड़त नहीं लगार ॥ ७ ॥
 कहा करुं मैं जलि गया, अन्तर लागी आग ।
 राम नाम काठी करी, गया कबीरा भाग ॥ ८ ॥
 कबीर चंदन परजला, तीतर बैठा माहि ।
 हम तो दासत पंख बिन, तुम दासत हो काहि ॥ ९ ॥
 कबीर कमाई आपनी, कबहु न निष्फल जाय ।
 सात समुद्र आढ़ा पड़े, मिले अगाड़ी आय ॥ १० ॥
 करै बुगई सुख चहै, कैसे पावै कोय ।
 रोवै पैड बबूल का, आप कहाँ ते होय ॥ ११ ॥
 पूरब का रवि पश्चिमै, गर जो उगै प्रभात ।
 लिखा मिटै नहि करम का, लिखा जु हरि के हाथ ॥ १२ ॥
 चूंद पड़ी जा पलक में, उस दिन लिखिया लेख ।
 मासा घटे न तिल बढ़े, जो सिर कूट अनेक ॥ १३ ॥
 जई यह नियरा पगु धरै, वखत बराबर साथ ।
 जो है लिखा नसीब में, चलै न अविचल बात ॥ १४ ॥
 जाको जितना निर्मान किय, ताको तितना होय ।
 मासा घटे न तिल बढ़े, जो सिर कूटो कोय ॥ १५ ॥
 पराखर पहिले बना, पीछे बना सरीर ।
 कबीर अचंभा है यही, मन नहि बांधे धीर ॥ १६ ॥

कबीर रेखा करम को, कबहु न मिटि है राम ।
 सैठनहार समर्थ है, समझि किया है काम ॥१७॥
 कबीर चट में राम है, रजक मौत जिव साध ।
 कहा जु चारा मनुष का, कलम धनी के हाथ ॥१८॥
 बखत कहो या करम कहु, नसिव कहो निरवार ।
 सहस नाम हैं करम के, मनही सिरजनहार ॥१९॥
 बाहिर सुख दुख देन को, हुकुम करै मन माँय ।
 जब ऊठे मन बखत को, बाहिर रूप धरि आय ॥२०॥
 बखत चलै भौजल तिरै, निबल मया विकार ।
 यह सब किया नसीब का, रह निश्चय निरधार ॥२१॥
 करम आपना परखि ले, मन नहि कीजै रीस ।
 हरि लिखिया सोइ पाइये, पाथर फोडै सीस ॥२२॥
 कीन्हे बिना उपाय कहु, देव कबहु नहि देत ।
 खेत बीज बोवै नहीं, तो क्यों जामै खेत ॥२३॥
 दुख लैने जावै नहीं, आवै आचा बूच ।
 सुख का पहरा होयगा, दुख करेगा कूच ॥२४॥
 होनहार सोइ होत है, विसर जात सब सुद्ध ।
 जैसी लिखी नसीब में, तैसी उकलत बुद्ध ॥२५॥
 रे मन भाग्य ही भूळ मत, जो आया मन भाग ।
 सो तेरा टलता नहीं, निश्चय संसै त्याग ॥२६॥

मन की संका मेदि कर, निसंक रहु निरधार ।
 निश्चय होय सो होयगा, जो करसी करतार ॥२७॥
 दुनी कहे मैं दोरंगी, पल में पलटि जु जावैं ।
 सुख में जो सूता रहे, वाको दुखी बनावैं ॥२८॥
 नेरा बैरी कोइ नहीं, तैरा बैरी फैल ।
 अपने फैल मिटाय ले, गली गली कर सैल ॥२९॥
 अकास जा पाताल जा, फोड़ि जाहु ब्रह्मंड ।
 कहैं कविर मिटिहै नहि, देह धरे का दंड ॥३०॥
 लिखा मिटै नहि करमका, गुरु कर भज हरिनाम ।
 सीधै मारग नित चलै, दया धर्म विसराम ॥३१॥

स्वाद को अंग ।

खड़ा मीठा चरपरा, जिभ्या सब रस लेय ।
 चोरो कुतिया मिळि गई, पहरा किसका देय ॥ १ ॥
 खड़ा मीठा देखि के, रसना मेलै नीर ।
 जब लग यन पाको नहीं, काचो निपट कपीर ॥ २ ॥
 जीभ स्वाद के कूप में, जहाँ हलाहल काय ।
 अंग अविद्या ऊपजै, जाय द्विये ते नाम ॥ ३ ॥
 अहार करै मन भावता, जिभ्या करै स्वाद ।
 नाक तलक पूरन भरै, वयो कहिये वे साध ॥ ४ ॥

माखी गुह में गडि रहा, पंख रहा लपटाय ।
 तारी पीटै सिर धुनै, लालच बुरी बलाय ॥ ५ ॥
 मुंड मुंडाया मुक्ति को, सालन कुं पछिताय ।
 गोडा फूटै जोग विन, लोगन सों सिथलाय ॥ ६ ॥
 रुखा सुखा खाय के, ठंडा पानी पीव ।
 देखि पराई चुपडी, मत ललचावै जीव ॥ ७ ॥
 आपी औ रुखी भली, सारी सोग सँताप ।
 जो चाहैगा चुपडी, बहुत करैगा पाप ॥ ८ ॥
 कबीर साईं मूझ को, रुखी रोटी देय ।
 चुपडी मांगन में हरुं, मत रुखी छिन लेय ॥ ९ ॥
 अँन पानी का हार है, स्वाद संग नहि जाय ।
 जो चाहै दीदार को, चुपडी चरै बलाय ॥ १० ॥
 जिभ्या कर्म कछोटरी, तानों गुह में त्याग ।
 कबीर पहिले त्यागि के, पीछे ले त्रेराग ॥ ११ ॥
 जिभ्या कर्म कछोटरी, जो तीनों वम होय ।
 राजा परजा जमपुरी, गंजि सकै नहि कोय ॥ १२ ॥
 खाद्य मीठा खाय कर, करे इन्द्रियाँ मोग ।
 सो कैमे जा पहुँचही, सादिवजी के लोग ॥ १३ ॥

६. सालन—मधुरव्यजन । गोडा ... दिम्बाऊ आसनोंसे ।

१०. हार—आहार । ११. जिम्प्या—स्वाद । कर्म—कुकर्म ।

कछोटरी—त्रिपय ।

मासाहार को अंग ।



मांसाहारी	मानवा,	परतछ राछस अंग ।
ताकी संगति मति करो,		पडत भजन में भंग ॥ १ ॥
मांसाहारी	मानवा,	परतछ राछस जान ।
ताकी संगति मति करै,		होय भाक्ति में दान ॥ २ ॥
मांस खाय ते ढेड सब,		मद पीवै सो नीच ।
कुल की, दुरमति परिहरे,		राम कहै सो ऊंच ॥ ३ ॥
मांस मछलियाँ खात हैं,		सुरा पान सो दैत ।
ते नर नरके जाहिगे,		माता पिता समेत ॥ ४ ॥
मांस मछलियाँ खात हैं,		सुरा पान सो दैत ।
ते नर जड से जाहिगे,		ज्यों मूरी का खेत ॥ ५ ॥
मांस भखै मदिरा पिबै,		धन बेन्वासो खाय ।
जूआ खेलि चोरी करै,		अन्त समूला जाय ॥ ६ ॥
मांस मांस सब एक है,		मुरगी हिरनी गाय ।
आँख देखि नर खान हैं,		ते नर नरक हि जाय ॥ ७ ॥
यह कूकर को भक्ष है,		मनुष देह क्यों खाय ।
सुख में आमिष मेलिहै,		नरक पडे सो जाय ॥ ८ ॥
ब्राह्मन राजा वरन का,		औरों कौम छनीस ।
रोटी ऊपर माछली,		सवही वरन खवीस ॥ ९ ॥

कलियुग केरे ब्राह्मना,	मांस मछलियाँ खाय ।
पाँच लगेँ सुख मानही,	राप कहै जरि जाय ॥१०॥
पाँच पुजावै बैठि के,	भक्षै मांस मद द्योय ।
तिनकी दीच्छा मुक्ति नहीं,	कोटि नरक फल होय ॥११॥
सकल वरन एकत्र है,	सक्ति पूजि मिलि खाँटि ।
हरि दासन की भ्रान्ति करि,	केवल जपपुर जॉहि ॥१२॥
चिष्टा का चौका दिया,	हांडी सीझै हाड ।
छत बरावै चाम की,	ताका गुरु है रांड ॥१३॥
जीव इनै हिंसा करै,	प्रगट पाप सिर होय ।
पाप सबन जो देखिषा,	पुन न देखा कोय ॥१४॥
जीव इनै हिंसा करै,	प्रगट पाप सिर होय ।
निगम सुनी अस पाप ते,	भिस्त गया नहि कोय ॥१५॥
इनिया सोई हनसी,	भावै जान बिजान ।
कर गहि चोटी तानसी,	साहिव के दीवान ॥१६॥
तिल भर मछली खाय के,	कोटि गऊ दे दान ।
कासी करवत ले मरै,	तौ भी नरक निदान ॥१७॥
काटा कूटी जो करै,	तै पाखंड को भेष ।
निश्चय राम न जानहीं,	कहै कविर संदेस ॥१८॥
वकरी पाती खात है,	ताकी काढ़ी खाल ।
जो वकरी को खात है,	तिनका कौन हवाल ॥१९॥

आठ बाट बकरी गई,	मांस मुल्लों गय खाय ।
अजहं खाल खटोक के,	भिरन कहां ते जाय ॥२०॥
अंडा किन विसमिल किया,	घुन किन किया हलाल ।
मछली किन जवहै करी,	सब खाने का खयाल ॥२१॥
अंडे किन विसमिल किये,	मछली किया हलाल ।
जिभ्या के रस स्वाद में,	यह नर भया बेहाल ॥२२॥
मुलना तुझ करीम का,	कब आया फरमान ।
दया भाव हिरदै नहीं,	जवह करै हैवान ॥२३॥
काजी तुझ करीम का,	कब आया फरमान ।
घट फोडा घर घर किया,	साहिब का नोसान ॥२४॥
काजी का बेटा मुआ,	उरमें सलै पीर ।
बह माहेब सबका पिता,	मला न मानै बीर ॥२५॥
पीर मवन को एकसी,	मूरख जानै नाँहि ।
अपना गला कटाय के,	भिस्त वसै क्यों नाँहि ॥२६॥
सुरगी मुलना सो कहै,	जवह करत है मोहि ।
साहिब लेखा मांगसी,	संकट पडि है तोहि ॥२७॥
कबीर काजी स्वाद बस,	जीव हनत है मोय ।
बहि ममीन एकै कहै,	दरगह सांचा होय ॥२८॥
काजी मुलना गरमिया,	चले दुनी के साथ ।
दिल सों दीन निवारिया,	करद लई अब हाथ ॥२९॥

काका मुँह करि करद का, दिल सों दुई निवार ।
 सबही रुह सुभान की, अदमक मुला न मार ॥३०॥
 जोर करी जिवहै करै, मुख सों कहै हलाल ।
 साहिब लेखा मांगसी, होसी कौन दवाल ॥३१॥
 जोर किये ते जुलुम है, माँगै जवाब खुदाय ।
 खालिक दर सूनी पडा, मार सुँही मुँह खाय ॥३२॥
 गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल ।
 साहिब लेखा मांगसी, तबही कौन दवाल ॥३३॥
 गला काटि विसमिल करै, ते काफिर बेवृझ ।
 औरन को काफिर कहै, अपना कुफर न सूझ ॥३४॥
 गला गुसा को काटिये, मियाँ कहर को मार ।
 जो पांचौं विसमिल करै, तब पाँच दीदार ॥३५॥
 यह सब झूठी बंदगी, बिरिया पाच निमाज ।
 सौच हि मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥३६॥
 कबीर चाला जाय था, आगे मिले खुदाय ।
 मीरां तुझ सो कब कही, कब फरमाई गाय ॥३७॥
 सेख सख्खी चाहिरा, हाँका जम के जाय ।
 जिन का दिल साजुत नहीं, तिन को कहा खुदाय ॥३८॥

३०. सुभान—खुदा। रुह—जीव । ३२. खालिक—माजिक ।

३३. कुफर—अपराध ।

कवीर तेई पीर हैं, जे जानै पर पीर ।
 जे पर पीर न जानहीं, ते काफिर बेपीर ॥४९॥
 खुश खाना है खीचड़ी, माँहि पडा दुक लौन ।
 मास पराया खाय के, गला कटावै कौन ॥४०॥
 कहना हू कहि जात हू, कहा जु मान हमार ।
 जाका गल तुम काटिहो, सो फिर काटि तुम्हार ॥४१॥
 हिन्दू के दाया नही, मिहर तुरक के नाँहि ।
 कहैं कविर दोनों गये, लख चौरासी माँहि ॥४२॥
 मुसलिम मारै करद सों, हिन्दू मार तरवार ।
 कहैं कविर दोनों मिली, जै हैं जम के द्वार ॥४३॥
 अजामेय गोमेष जग, अश्वमेध नरमेध ।
 कहैं कवीर अधर्म को, धर्म बतावै वेद ॥४४॥
 अंकुर भवै सो मानवा, मांस भवै सो स्वान ।
 जीव वधै सो काल है, सदा नरक परमान ॥४५॥
 जीव जीव सब एक हैं, जिव का करो विचार ।
 विन सांसा का जीव है, ताका करो अहार ॥४६॥
 जो जाको काटे, सो फिर ताहे वाटे ।
 कहैं कविर ना छूटे, सामा सामी साटे ॥४७॥

नशा को अंग ।



कलियुग काल पठाइया,	मांग तमाखू फीम ।
ज्ञान ध्यान की सुधि नही,	वसै इन्हीं की सीम ॥ १ ॥
मांग तमाखू छतरा,	आफू और सराव ।
कौन करेगा बंदगी,	ये तो भये खराव ॥ २ ॥
अमल मांढि औगुन कठा,	कहो मोहि समुझाय ।
उत्तर प्रश्न हि में सुनो,	मन की संसै जाय ॥ ३ ॥
मांग भलै बल बुद्धि को,	आफू अहमक होय ।
दोय अमल औगुन कठा,	ज्ञानवंत नर जोय ॥ ४ ॥
औगुन कहं सराव का,	ज्ञानवंत सुनि लेय ।
मानुष सों पसुवा करै,	द्रव्य मांढि का देय ॥ ५ ॥
काम हरकत बल घटै,	तृष्णा नाहीं ठौर ।
ढिग ह्वै बैठे दीन के,	एक चिलम मर और ॥ ६ ॥
पानी पिरथी के हते,	धूँवा सुनि के जीव ।
हुके में हिंसा घनी,	क्यों करि पावै पीव ॥ ७ ॥
छाजन भोजन हक है,	और अनाहक लेय ।
आपन दोजख जात है,	औरों दोजख देय ॥ ८ ॥
गड जो बिष्टा भच्छई,	निम तमाखू भंग ।
सस्तर बांधे दरसनी,	यह कलियुग का रंग ॥ ९ ॥

अमल अहारी आनमा,	कचहुं न पावै पार ।
कहैं कबीर पुकारि के,	त्यागो ताहि विचार ॥१०॥
मद तो बहुतक भाति का,	ताहि न जानै कोय ।
तन मद मन मद जाति मद,	माया मद सब लोय ॥११॥
विद्या मद औ गुन हि मद.	राज मद उन मद ।
इतने मद को रट करै.	तब पावै अनहद ॥१२॥
मैं मतवाला नाम का,	मद मतवाला नाँहि ।
याप पियाला जो पिये,	सो मतवाला भाहि ॥१३॥
भाग तमाखू छूतरा,	जन कबीर जे खाँहि ।
योग यज्ञ जप तप किये,	सवै रसातल जाँहि ॥१४॥
भाग तमाखू छूतरा,	सुरापान लै घूट ।
कहैं कविर ता जीव का,	धर्मराय सिर कूट ॥१५॥
भाग तमाखू छूतरा,	इनसे करै पियार ।
कहैं कविर सो जीयरा,	बहुत सहै सिर मार ॥१६॥
भाग तमाखू छूतरा,	परनिदा परनार ।
कहैं कविर इनको तजे,	तब पावै दीदार ॥१७॥
भाग तमाखू फीम को,	दौड दौड करि लेहि ।
कहैं कविर हरि नाम को,	पीछे ही पग देहि ॥१८॥
भाग तमाखू गाहका,	राम नाम के नाँहि ।
कहैं कविर जनमे मरै,	लख चौरासी माँहि ॥१९॥

सुरापान अचबन करै, पिये तमाखू भंग ।
 कहै कवीरा राम जन, तामें दंग कुदंग ॥२०॥
 सुरापान अचबन करै, पिये तमाखू भंग ।
 कहै कवीरा राम जन, ताको करो न संग ॥२१॥
 राखे वरत एकादसी, करै अन्न को त्याग ।
 भांग तमाखू ना तजै, कहै कवीर अभाग ॥२२॥
 हरिजन को सोहै नही, हुका हाथ के माँहि ।
 कहै कवीरा रामजन, हुका पीवै नाँहि ॥२३॥
 हुका तो सोहै नहीं, हरिदासन के हाथ ।
 कहै कवीर हुका गई, ताको छोडो साथ ॥२४॥
 अमली के बैठी मती, एक पलक हू पास ।
 संग दोष तोहि लागि है, कहै कवीरा दास ॥२५॥
 अपली हो बहु पापसे, नमुझत नाहीं अंध ।
 कहै कवीरा अमलि को, काल चढ़ावै कंध ॥२६॥
 जह लग अमल हराम सब, दोउ दीन के माँहि ।
 कहै कवीरा रामजन, अमली हुई नाँहि ॥२७॥
 मौँडी आवै वास मुख, हिरदा होय मलीन ।
 कहै कवीरा रामजन, मांगे चिलम नहि लीन ॥२८॥
 मुख में थूकन दे नहीं, मूँहर कोइ जन देहि ।
 कहै कवीर या चिलम को, जूठ जगत मुख छेदि ॥२९॥

आन अमल मव त्यागि के, राम अमल जव खाय ।
 जन कबीर भाजै भरम, और न कछु मुहाय ॥३०॥
 नाम अमल को छोड़ि के, और अमल जो खाय ।
 कहैं कविर नेहि परिहरो, गुरु के सद्द समाय ॥३१॥
 कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय ।
 रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥३२॥

विवेक को अंग ।



फूटी आंख विवेक की, लखै न संन असंत ।
 जाके संग दस बीस हैं, ताका नाम महंत ॥ १ ॥
 जबलग नही विवेक मन, तब लग लगै न तोर ।
 भीसागर नामी तिरै, सतगुरु कहै कबीर ॥ २ ॥
 मगटे प्रेम विवेक दल, अपय निसान बजाय ।
 ऊग्र ज्ञान उर आव ते, जग का मोह नसाय ॥ ३ ॥
 गुरु पसु नरपसु नारि पसु, वेद पसू संसार ।
 मानुष ताको जानिये, जाको विमल विचार ॥ ४ ॥

कहैं कवीर पुकारि कै, स-त विवेकी होय ।
 जामें सब्द विवेक है, छत्र धनी है सोय ॥ ५ ॥
 जीव जन्तु जल हर बसै, गये विवेक जु भूल ।
 जल के जलचर यौ कहैं, हम उडगन सम दूल ॥ ६ ॥
 मान काल के जाल में, आय गये तिहि पाँहि ।
 जल के जलचर यौ कहैं, उडगन पति जु नाँहि ॥ ७ ॥
 हरिजन ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान विवेक ।
 बाहर मिलवा सों मिलै, अन्तर सब सो एक ॥ ८ ॥
 राम राम सब कोइ कहै, कहने पाँहि विवेक ।
 एक अनेकै फिर मिलै, एक समाना एक ॥ ९ ॥
 साधू मेरे सब बडे, अपनी अपनी ठौर ।
 सब्द विवेकी पारखी, सो माधे की पौर ॥ १० ॥

विचार को अंग ।



कवीर सोच विचारिया, दूजा कोइ नाँहि ।
 आपा पर जब चीन्हिया, उलटि समाना पाँहि ॥ १ ॥
 राम राम सब कोइ बहै, कहने पाँहि विचार ।
 सोइ राम जो सति कहै, सोई कीतिकहार ॥ २ ॥

६. जलहर—नदी तानात्र । ९. एक—वाचकज्ञानी । एक—तन्त्रज्ञानी ।

२. कीतिकहार—तमाशा देखनेवाले ।

आग कहै दासै नहीं, पाँव न दीसै माँहि ।
 जो पै भेद न जानहीं, राम कहा तो काहि ॥ ३ ॥
 पानी केरा पूतला, राखा पवन सँचार ।
 नाना बानी बोलता, जोति धरी करतार ॥ ४ ॥
 आधी माखी सिर कटै, जोरे विचारी जाय ।
 मन हि प्रतीत न ऊपजै, रात दिवस भर गाय ॥ ५ ॥
 आधी साखि कबीर की, जो निरुवारी जाय ।
 चंचल चित निहचल करै, ज्ञान भक्ति फल पाय ॥ ६ ॥
 कबीर आधा साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान ।
 सत्तनाम जग झूठ है, सुरति सब्द पहिचान ॥ ७ ॥
 सत्तनाम जाना नहीं, पाना नहीं विचार ।
 कहै कबिर यह क्या लहे, मोक्ष मुक्ति का द्वार ॥ ८ ॥
 एक सब्द में सब कहा, सब ही अर्थ विचार ।
 भजिये निस दिन नाम को, तजिये विषय विकार ॥ ९ ॥
 कबीर भूला दगा में, लोग कहै यह भूल ।
 करम हि बाट बतावहीं, भूलत भूला भूल ॥ १० ॥
 नौ मन सूत अरुशिया, कबीर घर घर वार ।
 तिन सुलझाया बापुने, जानी मुक्ति सुरार ॥ ११ ॥

३. मुख की अग्नि की भांति मुख का राम झूठा और सच्ची अग्नि की तरह हृदय का राम सच्चा होता है ।

ज्यों आवै त्यों ही कहै, बोलै नहीं विचार ।
 हते पराई आत्मा, जीभ लेय तरवार ॥१२॥
 सब काहु का लीजिये, सांचा सव्द निहार ।
 पक्षपात ना कीजिये, कहै कबीर विचार ॥१३॥
 बोली हमरी पलटिया, या तन याही देस ।
 खारी सों मीठी करी, सतगुरु के उपदेस ॥१४॥
 कबीर हम सब की कहै, हमरी कही न जाय ।
 पूरव की वाता कहै, पच्छिम जाय समाय ॥१५॥
 अपनी अपनी सब कहै, हमरी कहै न कोय ।
 हम अपनी आप हि कहै, करता करै सो होय ॥१६॥
 आज्ञा को घर अमर है, बेटा के सिर भार ।
 तीन लोक नाती ठगा, पडित करो विचार ॥१७॥
 जो कहु करै विचार के, पाप पुन ते न्यार ।
 कह कबीर इक जानि के, जाय पुरुष दरवार ॥१८॥
 आचारी सब जग पिछा, विचारी मिछा न कोय ।
 कोटि आनारी वारिये, एक विचारी होय ॥१९॥
 सोइ अच्छर सोई भनै, सोइ जन जावन ।
 अकिलमंद कोइ कोइ मिलै, अपि महारस हि पिवन ॥२०॥
 मेरा तो कोइ है नहीं, अरु मैं किमका नाँहि ।
 अन्तर दृष्टि विचारतौ, राम बनै मव मौहि ॥२१॥

नरपसु गुरुपसु वेदपसु, त्रिया पसु संसार ।
 कहै कबीर सो पसु नहीं, जाके विमल विचार ॥२२॥
 मानुष सोई जानिये, जाहि विवेक विचार ।
 जाहि विवेक विचार नहीं, सो नर होर गँवार ॥२३॥
 आभी साखि कबीर की, सीखी सुनी न जाय ।
 रति इक वट में संचरै, अमर लोक ले जाय ॥२४॥

धीरज को अंग ।

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कटु होय ।
 माली सीचै केवडा, रितु आये फल जोय ॥ १ ॥
 धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कटु होय ।
 माली सीचै सौ घड़ा, रितु आये फल जोय ॥ २ ॥
 धीरा है धमका सहै, ज्यों अहरन सिर घाव ।
 मेघा परबत है रहो, इत उत कहं न जाव ॥ ३ ॥
 कबीर धीरज के धरे, हाथी मनभर स्वाय ।
 टुक एक के फारनै, स्वान घरै घर जाय ॥ ४ ॥
 कबीर तू काहे डरे, सिरपर सिरजन हार ।
 हाथी चढ़ि करि होलिये, कृकर भुत्तै हजार ॥ ५ ॥

कबीर भँवर में बैठिके, मौचक मना न जोय ।
 हवन का भय छाँड़ि दे, करता करै सो होय ॥ ६ ॥
 मैं मेरी सब जायगी, तव आवेगी और ।
 जब यह निहचल होयगा, तव पावेगा ठौर ॥ ७ ॥
 बहुत गई थोरी . रही, व्याकुल मन मत होय ।
 धीरज सब को मित्र है, करी कमाइ न खोय ॥ ८ ॥
 धीरज बुधि तव जानिये, समुझे सब की रीत ।
 उनका अवगुन आप में, कबहु न लावै मीत ॥ ९ ॥
 साहिव की गति अगम है, चल अपने अनुमान ।
 धीरे धीरे पांव धर, पहुँचेगा परमान ॥ १० ॥
 फिकिर (तो) सब को खा गई, फिकिर ही सबका पीर ।
 फिकीर का फाका' करै, ताका नाम फकीर ॥ ११ ॥

क्षमा को अंग ।

। ॐ ॐ ॐ

क्षमा बडन को चाहिये, छोटन को उत्पात ।
 कहा विस्तु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥ १ ॥
 क्षमा क्रोधको छे' करै, जो काहू पे होय ।
 कहै कविर ता दास को, गंजि सकै नहि कोय ॥ २ ॥

भली भली सब कोइ कहै, रही क्षमा ठहराय ।
 कहै कबिर सीतल भया, गई जु अगन बुझाय ॥ ३ ॥
 भली भली सब कोइ कहै, भली क्षमा का रूप ।
 जाके मन हि क्षमा नहीं, सो बूढ़ै भव कूप ॥ ४ ॥
 करगस सम दुर्जन बचन, रहै संतजन टार ।
 विजुली पड़े समुद्र में, कहा सकेगी जार ॥ ५ ॥
 काच कथीर अधीर नर, जतन करत है भंग ।
 साधू कंचन ताइये, चढ़ै सबाधा रंग ॥ ६ ॥
 काचै को क्या ताइये, होत जतनमें भंग ।
 साधू कंचन ताइये, चढ़ै सबाधा रंग ॥ ७ ॥
 बाद विवादैं विष घना, बोलै बहुत उपाध ।
 मौन गहै सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥ ८ ॥
 सबल क्षमी निर्गर्व, धनी, कोमल विद्यावंत ।
 भव में भूपन तीन हैं, औरों सबै अनंत ॥ ९ ॥

शील को अंग ।



शील क्षमा जब उपजै, अलख दृष्टि तब होय ।
 बिना शील पहुँचै नहीं, लाख कथे जो कोय ॥ १ ॥

सील गहे कोइ सावधान,	चेतन पहरे जाग ।
वासन वासन के खिसै,	चोर न सकई लाग ॥ २ ॥
सील मिलावै नाम को,	जो कोइ जानै राख ।
कहै कविर मैं क्या कहूं,	शुकदेव बोलै साख ॥ ३ ॥
सील हि राखि विरक्त मै,	हरि के मार्ग जाँहि ।
साखी गोरख नाथ जो,	अपर भये कलि माँहि ॥ ४ ॥
सीलवत सब सों बड़ा,	सब रतनों की खान ।
तीन लोक की संपदा,	रही सील में आन ॥ ५ ॥
सीलवत निरमल दसा,	पाँव पड़े हे चहुं खूट ।
कहै कविर ता दास की,	आस करै वैकुण्ठ ॥ ६ ॥
ज्ञानी ध्यानी संयमी,	दाता सूर अनेक ।
जपिया नपिया बहुत हैं,	सीलवत कोइ एक ॥ ७ ॥
घायल ऊपर घाव लै,	दोटे त्यागी मोय ।
भर जोवन में साखवत,	विरला होय सो होय ॥ ८ ॥
सुख का सागर सील है,	कोइ न पावै थाह ।
सब्द विना साधू नहीं,	द्रव्य बिन नहि साह ॥ ९ ॥
विषय पियारे प्रीति सों,	सतगुरु अंतर नाँहि ।
जब अन्तर सतगुरु बसै,	विषया सों रुचि नाँहि ॥ १० ॥
आव कहै सों औलिया,	बैठे कहै सो पीर ।
जा घर आव न बैठे है,	सो काफिर बेपीर ॥ ११ ॥

सन्तोष को अंग ।



संतोष हि सद्बिदान है,	सद्वद् हि भेद विचार ।
सतगुरु के परताप ते,	सहज सील मत सार ॥ १ ॥
गोधन गजधन वाजिधन,	और रतन धन खान ।
जब आवै सन्तोष धन,	सब धन धूलि समान ॥ २ ॥
साधु संतोषी सर्वदा,	जिन के निरमल वैन ।
जिन के दरसन परस ते,	जिय उपजै सुख चैन ॥ ३ ॥
चाह गई चिन्ता मिटी,	मनुष्य वे परवाह ।
जिन को कछु न चाहिये,	सो साहन पति साह ॥ ४ ॥
निज आमन संतोष में,	सहज रहनि की ठौर ।
गुरु भजने आमा भई,	ताते कछु न और ॥ ५ ॥
जग सारा दरिद्र भया,	धनवंता नहि कोय ।
धनवंता सोः जानिये,	राम पदार्थ होय ॥ ६ ॥
देनेद्वारा राम है,	जाय जंगल में बैठ ।
हरि को लेई ऊबरे,	सात पताले पैठ ॥ ७ ॥
कबहुं क मंदिर मालियां,	कबहुं क जंगल वास ।
सब ही ठौर सुहावना,	जो हरि होवै पाम ॥ ८ ॥

५. जिनका हृदय सन्तोष और सहज भाव में स्थिर हो गया वे गुरु भजन के अधिकारी हैं ।

साहेब मेरे मुख को, लूखी रोटी देय ।
 चुपड़ी मांगत मैं डरू, लूखी छीन नहि लेय ॥ ९ ॥
 सात गांठ कौपीन की, मन नहि मानै संक ।
 नाप थपल माता गद्दे, गने इन्द्र को रंक ॥ १० ॥
 चिन्ता मत कर निचिन्त रह, पूरनहार समर्थ ।
 जल थल में जो जीव है, उनकी गांठि न अर्थ ॥ ११ ॥
 चिन्ता ऐसी डाकिनी, काटि करेजा खाय ।
 बैठ विचारा क्या करें, कहांतक दवा लगाय ॥ १२ ॥

साच को अंग ।



साँच सब्द हिरदै गढ़ा, अलख पुरुष भरपूर ।
 प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरै दास हजूर ॥ १ ॥
 साँच बिना सुमिरन नहीं, भय विन भक्ति न होय ।
 पारस में पड़टा गद्दे, कंचन किहि विधि होय ॥ २ ॥
 साँचै कोइ न पतोजई, झूठे जग पतियाय ।
 पाँच टका की धोपटी, सात टक विक जाय ॥ ३ ॥
 साँचै कोइ न पतोजई, झूठे जग पतियाय ।
 गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठ विकाय ॥ ४ ॥

साँच कहै तो मारि है, यह तुरकानी जोर ।
 वात कहें सतलोक की, कर गहि पकड़ै चोर ॥ ५ ॥
 साँच कहें तो मारि है, झूठे जग पतियाय ।
 यह जग काली कुनरी, जो छेड़ै तो खाय ॥ ६ ॥
 साँचै को साँच मिलै, अधिका बढ़ै सनेह ।
 झूठै को साँचा मिलै, तड़ दे तूटै नेह ॥ ७ ॥
 साँच कहै अरु सच सुनै, सत्तनाम की आस ।
 सत्तनाम को जानि करि, जग से रहै उदास ॥ ८ ॥
 साँच हुआ तो क्या हुआ, नाम न साँचा जान ।
 साँचा है साँचै मिलै, साँचै माँहि समान ॥ ९ ॥
 साँई सो साँचा रहो, साँई साँच सुहाय ।
 भावै लंबे केस रख, भावै घोट मुँहाय ॥ १० ॥
 जाकी साची सुरति है, ताका साँचा खेल ।
 आठ पहर चौमठ घडी, है साँई सो मेल ॥ ११ ॥
 जिन नर साँच पिछानिया, करता केवल सार ।
 सो पानी काहे चलै, झूठे कुल की छार ॥ १२ ॥
 कवीर लज्जा लोक की, बोलै नाहीं साँच ।
 जानि बूझि कंचन तजै, क्यों तू पकड़ै काँच ॥ १३ ॥
 तरे अंदर साँच जो, बाहर नाहि जनाव ।
 जिननदारा जानि है, अन्तर गति का भाव ॥ १४ ॥

अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काँच ।
 सतगुरु की किरपा भई, दिल अपने का साँच ॥१५॥
 कबीर पूंजी साहु की, तू मति खोवै ख्वार ।
 खरी विगुरचन होयगी, लेखा देती बार ॥१६॥
 कंचन केवल गुरुभजन, दूजा नाच कथीर ।
 झूठा आल जंजाल तजि, पकड़ा साँच कबीर ॥१७॥
 झूठ बात नहि बोलिये, जबलग पार बसाय ।
 अहो कबीरा साँच गहु, आवागवन नसाय ॥१८॥
 झूठ को झूठा मिलै, अधिका बढै सनेह ।
 झूठा को सीचा मिलै, तब ही दूँदै नेह ॥१९॥
 साहेब के दरवार में, साँचे को सिरपाव ।
 झूठ तमाचा खायगा, क्या रंक क्या राव ॥२०॥
 कबीर झूठ न बोलिये, जबलग पार बसाय ।
 ना जानो क्या होयगा, पलके चौथै भाय ॥२१॥
 साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
 जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप ॥ २२ ॥

दया को अंग ।



दया भाव हिरदै नहीं, ज्ञान कथै बेहद ।
 ते नर नरक हि जाहिगे, सुनि सुनि साखी सज्ज ॥ १ ॥

दया कौन पर कीजिये, कापर निर्दय होय ।
 हमतो भये तमाशगी, नाटक बाजी जोय ॥ २ ॥
 दया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय ।
 साई के सब जीव है, कीडी कुंजर सोय ॥ ३ ॥
 दया दिल में राखिये, तू क्यों निर्दय होय ।
 साई के सब जीव है, कीडी कुंजर सोय ॥ ४ ॥
 भावै जाओ यादरी, भावै जाय हु गया ।
 कहै कबीर सुनो भाइ साधू, सब ते वड़ी दया ॥ ५ ॥
 दाध कलापी अब दुखो, सुखी न देखी कोय ।
 को पुत्र को बान्धवा, को बनहीना होय ॥ ६ ॥
 दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखी कोय ।
 जहँ जहँ भक्ति कबीर की, तहँ तहँ धीरज होय ॥ ७ ॥
 वैरागी है घर तजा, पग पहिरै पैजार ।
 अन्तर दया न ऊपनै, बनी सहेना मार ॥ ८ ॥
 वैरागी ह घर तजा, अपना रांघा खाय ।
 जीव हते जौहर करै, बांश जमपुर जाय ॥ ९ ॥
 आग जलावै अँन दहै, मोटा आरंभ यह ।
 दीखै जम की जोट में, कीट पतंगा देह ॥ १० ॥
 पाकी ते डाकी भला, तिथि त्योंदारा लेय ।
 जीव सतावै राम का, नित उठि चौका देय ॥ ११ ॥

पाकी को मन पानरे,	कै गोवर कै गार ।
और जनम कहा पाइये,	यह तो चाला / द्वार ॥१२॥
चौकै चिकंटी चूल्ह चुन,	किरप बहुत जो नाज ।
कहे कविर आचार यह,	जिव को होय अक्राज ॥१३॥
आचारी सब जग मिला,	बीचारी नहि कोय ।
जाके ढिरटे गुरु नहीं,	जिया अकारथ सोय ॥१४॥
जहां दया बहै बर्म है,	जहां लोभ तहै पाप ।
जहां क्रोध बहै काल है,	जहां क्षमा बहै आप ॥१५॥
कुंजर मुख से कन गिरा,	खुटे न चाको (आ) द्वार ।
कीडी कन लेकर चली,	पोषन दे परिवार ॥१६॥
दाता दाता चलि गये,	राह गये मन्खी चूप ।
ठान मान समुझे नहीं,	लड़ने को मजबूत ॥१७॥
दया का लज्जन भक्ति है,	भक्ति में होवै ध्यान ।
ध्यान से मिलता ज्ञान है,	यह सिद्धांत डरान ॥१८॥
दया दया सब कोड कहे,	मर्म न जानै होय ।
जात जीव जानै नहीं,	दया कहां से होय ॥१९॥
दया सब हि पर कीजिये,	तू क्यों निद्रिय होय ।
जाकी बुद्धि ब्रह्म में,	सो क्यों खूनी होय ॥२०॥
कवीर मोटे पीर है,	जो जानै पर पीर ।
जो पर पीर न जानई,	सो काफिर बेपीर ॥२१॥

दया धर्म का मूल है, पाप मूल संताप ।
जहां क्षमा तहां धर्म है, जहाँ दया तहाँ आप ॥२२॥

दीनता को अंग ।



दीन गरीबी बंदगी, साधुन सों आधीन
ताके संग में यों रहें, ज्यों पानी संग मीन
दीन गरीबी बंदगी, सब सों आदर भाव
कहैं कबिर सोई चढ़ा, जॉम बड़ा सुभाव
दीन गरीबी दीन को, दुंदर को अभिमान
दुंदर तो विष यों भरा, दीन गरीबी जान
दीन लखै मुख सवन को, दीन हि लखै न कोय
भली विचारी दीनता, नर हु देवता होय
इक बानी सो दीनता, सब कलु गुरु दरवार ।
यही भेट गुरु देव की, संतन कियो विचार
जल थल जीव जिने तिते, रहे सकल भरपूर ।
जो दिळ आवै दीनता, सांई मिले हजूर ॥ ६ ॥
नहीं दीन नहि दीनता, संत नहीं मिटमान ।
ता घर जम देगा दिया, जीवत भया मसान ॥ ७ ॥

कविर नवै सो आप को,	पर को नवै न कोय ।
घालि तराजू तोलिये,	नवै सो भारि होय ॥ ८ ॥
आपा मैटे पिव मिलै,	पिव में रहा समाय ।
अकथ कहानी प्रेमकी,	कहै तो को पतियाय ॥ ९ ॥
नीचै नोचै मय तिरै,	संत चरन लौ लीन ।
जाति हि के अभिमान ते,	बूढे सकल कुलीन ॥ १० ॥
नीचै नीचै सब तिरै,	जिहि तिहि बहुत अधीन ।
चढ़ि बोहित अभिमान की,	बूढे ऊंच कुलीन ॥ ११ ॥
बुग जो देखन मै चला,	बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल्ख खोजो आपना,	मुझ सा बुरा न होय ॥ १२ ॥
कवीर सब ते हम बुरे,	हम ते भल मय कोय ।
जिन ऐसा करि बुझिया,	मीत हमारा सोय ॥ १३ ॥
दरसन को तो साधु है,	सुभिरन को गुरु नाम ।
तरवे को आधीनता,	इवन को अभिमान ॥ १४ ॥
नमन नमन अरु दीनता,	सब कूं आदर भाव ।
कहै कविर सोई बड़े,	जामें बड़ो सुभाव ॥ १५ ॥
मिसरी बिखरी रेत में,	हस्ती चुनी न जाय ।
कीडी है करि सब चुनै,	तब साहब कूं पाय ॥ १६ ॥

विनती को अंग ।



विनवत हूं करजोरि के,	सुन गुरु कृपा निधान ।
संतन को मुख दीजिये,	दया गरीबो ज्ञान ॥ १ ॥
क्या मुख ले विनती करूं,	लाज आवत है मोहि ।
तुम देखत औगुन किया,	कैसे भाऊ तोहि ॥ २ ॥
वनजारी विनती करै,	नरियर लाई हाथ ।
टांडा था सो लटि गया,	नायक नहीं साथ ॥ ३ ॥
औगुन किया तो बहु किया,	करत न मानी द्वार ।
भावै बंदा बख्शिये,	भावै गरदन मार ॥ ४ ॥
औगुन मेरे बापजी,	बख्शो गरीब निवाज ।
मैं तो पूत कपूत हूं,	तोहि पिता को लाज ॥ ५ ॥
मैं खोया साईं खरा,	मैं गाया मैं गार ।
मैं अपराधी आतमा,	साईं सरन उधार ॥ ६ ॥

३. टांडा—बेलों का झुंड । दूसरे पक्ष में शरीर । वनजारी से अभिप्राय सुरति से है । और नरियर से मन का अर्थ लिया गया है । और नायक से जीवात्मा का भाव है । 'मन पतंग माने नहीं चले सुरती के साथ' इस वचन के अनुसार मन सुरति के पीछे दौड़ता है । मन को वश में करने का एक मात्र साधन सुरति को स्थिर करना है । चौका आरती में नरियर चलाने के समय गाया जाता है कि—'वनजारिन विनती करे सुनु साजना, नरियर लीन्हों हाथ सन्त मुनु साजना । इस शब्द में समाहित सुरति का वर्णन है जो कि सत्य लोक को ले जानेवाली है ।

मैं अपराधी जनपका, नख सिख भरा विकार ।
 तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो सम्हार ॥ ७ ॥
 सुरति करो मम सांझा, मैं हूँ भौजल माँहि ।
 आपै हि मरि जाऊंगा, जो नहि पकड़ो बाँहि ॥ ८ ॥
 और पतित तो कृप हैं, मैं हूँ समुँद समान ।
 एक डेक गुरु नाम की, मुनियों कृपा निधान ॥ ९ ॥
 औसर बीठा अल्पनन, पीव रहा परदेस ।
 कलंक उतारो सांझा, भानो मरम अंदेस ॥ १० ॥
 साँई मेरा सावधान, मैं ही भया अचेत ।
 मन बच करम न गुरु भजा, ताते निष्फल खेत ॥ ११ ॥
 अन्न की जो साँई मिले, सब दुख आवूँ रोय ।
 चरनों ऊपर सिर धरुं, कहूँ जो कहना होय ॥ १२ ॥
 कबीर साँई मिलहिंगे, पछेंगे कुसलात ।
 आदि अन्त की सब कहूँ, उर अन्तर की बात ॥ १३ ॥
 कर जोरै बिनती करुं, भीसागर हि अपार ।
 बंदा ऊपर मिहर करी, आवा गवन निवार ॥ १४ ॥
 मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
 तेरा तुझ को सोंपते, क्या लागत है मोर ॥ १५ ॥
 तेरा तुझ में कछु नहीं, जो कुछ है सो मोर ।
 मेरा मुझ को सोंपते, दिल धडकंगा तोर ॥ १६ ॥

दरस दान मोहि दीजिये, गुरु देवन के देव ।
 और नहीं कलु चाहिये, निस दिन तेरी सेव ॥१७॥
 तुम गुरु दीन दयाल हो, दाता अपरम पार ।
 मैं बूढ़ मँझ धार में, पकड़ि लगावो पार ॥१८॥
 अवरन को क्या वरनिये, मो पै वरनि न जाय ।
 अवरन वरनै बाहिरै, करि करि थका जुपाय ॥१९॥
 मुझ में इतनी शक्ति क्या, भावूं गला पसार ।
 बन्दे को इतनी घनी, पड़ा रहूं दरबार ॥२०॥
 जव का माई जनमिया, कितै न पाया सुख ।
 डारी डारा मैं फिरूं, पात पात में दूख ॥२१॥
 कबीर मैं तव ही ढरूं, जो मुझ ही में होय ।
 बीच बुढापा आपदा, सब कह को जोय ॥२२॥
 कबीर करत है विनति, सुनो संत चितलाय ।
 मारग सिरजनहार का, दीजै मोहि बताय ॥२३॥
 कबीर यह विनती करै, चरनन चित वसाय ।
 मारग सांचा संत का, गुरु मोहि देव बताय ॥२४॥

जन कबीर वंदन करै,

किस विधि कीजै सेव ।

चार पार की गम नहीं,

नमो नमो निज देव ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

चौरासी अंग

की

साखी ।

॥ सम्पूर्ण ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

प्रश्नोत्तर को अंग ।



गुरु तुम्हाग कदा वसै,	चेला कहां वसाय ।
वयौ फरिके मिलना भया,	बिछुडे आवै जाय ॥ १ ॥
गुरु हमारा गगन मे.	चेला है चित मॉहि ।
सुरति सब्द मेला भया,	बिछुडन कबहु नॉहि ॥ २ ॥
कदा बुद सायर मिला,	किहि विधि कौन सनेह ।
यह मन में संमै भया,	समुझि अर्थ कहि देह ॥ ३ ॥
गगन बुद सायर मिला,	उत्तम परम सनेह ।
मन का संसै दूर कर,	समुझि अर्थ गहि येह ॥ ४ ॥
सब्द कहां ते उठत है,	कहु कहाँ जाय समाय ।
हाथ पाँव बाके नहीं,	कैसे पकड़ा जाय ॥ ५ ॥
नाभि कमल ते उठत है,	सुन्न में जाय समाय ।
हाथ पाँव बाके नहीं,	सुरति से पकड़ा जाय ॥ ६ ॥
सब्द कहां से आइया,	कहां सब्द का भाव ।
कहां सब्द का सोस है,	कहां सब्द का पाँव ॥ ७ ॥

सब्द ब्रह्मण्ड ते आड्या,	मध्य सब्द का भाव ।
ज्ञान सब्द का सीस है,	अज्ञान सब्द का पाँव ॥ ८ ॥
कौन सब्द की नावरी,	कौन सब्द असवार ।
कौन मब्द की डोर है	कौन उतारै पार ॥ ९ ॥
साँच सब्द की नावरी,	अकट सब्द असवार ।
सुरति सब्द की डोर है,	दुजै उतारै पार ॥ १० ॥
कौन सरोवर पानि विन,	कौन मीच विन काल ।
कौन सु परिमल वास विन,	कौन त्रिच्छ विन डाल ॥ ११ ॥
मान सरोवर पानि विन,	निंद मीच विन काल ।
मब्द सु परिमल वाम विन,	सुरति त्रिच्छ विन डाल ॥ १२ ॥
कौन कसै कमवाव को,	कौन जु लेय लुडाय ।
यह संसै जिय है रहा,	साधु कहीं समुझाय ॥ १३ ॥
काल कसै कसवाव करम,	सतगुरु लिया लुडाय ।
कहै कवीर पुकारि के,	सुनो मंत चित लाय ॥ १४ ॥
कवीर मन मैला भया,	याँपे बहुत विकार ।
यह मन कैसे धोइये,	साधू करो विचार ॥ १५ ॥
गुरु धोवी सिप कापडा,	साधुन सिरजनहार ।
सुरति सिला पर धोइये,	निकसे रंग अपार ॥ १६ ॥
कवीर काया को झगो,	साई साधुन नाम ।
राम हि, राम पुकारता,	धोया पाँचों ठाम ॥ १७ ॥

इस तन में मन कहँ वसै,
 गुरुगम है तो परखि ले,
 नैनो माहीं मन वसै,
 गुरु गम भेद बताइया,
 दूध फाटि घृत कहँ गया,
 तन छूटै मन कहाँ रहै,
 दूध फाटि घृत दूध मिला,
 तन छूटै मन तहँ गया,
 कौन पवन घर संचरै,
 नाद बिंदु जब ना हता,
 हुलस पवन घर संचरै,
 नाद बिंदु जब ना हता,
 सकल पसारा पवन का,
 कौन नाम उस पवन का,
 सकल पसारा पवन का,
 सोहं नाम उस पवन का,
 कौन पवन धरती वसै,
 कौन पवन मध्ये वसै,
 धीर पवन धरती वसै,
 मधुर पवन मध्ये वसै,

निकसि जाय किहि ठौर ।
 नातर कर गुरु और ॥१८॥
 निकसि जाय नौ ठौर ।
 सब संतन सिर मोर ॥१९॥
 कांसा फूटी नाद ।
 जानै विरला साध ॥२०॥
 नाद मिली आकास ।
 जहाँ धरी मन आस ॥२१॥
 कहां किया परकास ।
 तब कहँ किया निवास ॥२२॥
 पंचम किय परकास ।
 तत्त्व हि किया निवास ॥२३॥
 सात दीप नौ खंड ।
 जो गरजै ब्रह्मंड ॥२४॥
 सात दीप नौ खंड ।
 जो गरजै ब्रह्मंड ॥२५॥
 कौन पवन आकास ।
 कौन पवन परकास ॥२६॥
 अगह पवन आकास ।
 अगर पवन परकास ॥२७॥

कौन पवन ले आवई,	कौन पवन ले जाय ।
कौन पवन भरमत फिरै,	सो मोहि देहु बताय ॥२८॥
सहज पवन ले आवई,	सुरति पवन ले जाय ।
जीव पवन भरमत फिरै,	कहैं कविर समुझाय ॥२९॥
तन का मंजन नीर है,	नीर हि मंजन पौन ।
कहैं कविर सुन पंडिता,	पौन का मंजन कौन ॥३०॥
तन का इन्दी मैल है,	मन पवना ले धोय ।
ज्ञान जु गुरु सों पाइये,	पौन का मंजन सोय ॥३१॥
कौन देस ते आइया,	कौन तुम्हारा ठाम ।
कौन तुम्हारी जाति है,	कौन पुरुष को नाम ॥३२॥
अमर लोक ते आइया,	सुखसागर है ठाम ।
जाति अजाति मेरी है,	सत्त पुरुष का नाम ॥३३॥
कौन तुम्हारी जाति है,	कौन तुम्हारा नाँव ।
कौन तुम्हारा इष्ट है,	कौन तुम्हारा गाँव ॥३४॥
जाति हमारी आत्मा,	पान हमारा नाँव ।
अलग्व हमारा इष्ट है,	गगन हमारा गाँव ॥३५॥
कहां से आया जीव यह,	किस में जाय समाय ।
कौन डोर से चढ़ि चला,	कहो मुझे समुझाय ॥३६॥
सुरगुन आया जीव यह,	निगुन जाय समाय ।
सुगति डोरि ले चढ़ि चला,	सतगुरु दिया बताय ॥३७॥

कौन सुरति ले आवई,
 कौन सुरति द अस्थिरी,
 वास सुरति ले आवई,
 परिचय सुरति अस्थिरी,
 कौन राम दशरथ घर डोलै,
 कौन राम का सकल पसारा,
 आकार राम दसरथ घर डोलै,
 हुंद राम का सकल पसारा,
 धरती तो रोटी भई,
 पुछो अपन गुरु को,
 धीरज तो रोटी भई,
 कहे कबीरा बैठि के,
 कौन साधू का खेल है,
 कौन अमी का रूप है,
 छिमा साधू का खेल है,
 सतगुरु अमृत रूप है,
 धरती अन्न जायंगे,
 एकमेक है जायंगे,
 एकामेकी । होन दे,
 धरती अन्न जान दे,

कौन सुरति ले जाय ।
 सो गुरु देहु बताय ॥३८॥
 सबद सुरति ले जाय ।
 सो गुरु दिया बताय ॥३९॥
 कौन राम घट घट में बोलै ।
 कौन राम तिगुन से न्यारा ४०
 निराकार घट घट में बोलै ।
 निरालंब सब ही सो न्यारा ४१॥
 कागा लीया जाय ।
 कहीं बैठि के खाय ॥४२॥
 कुइयि कागलिय जाय ।
 वाद वृत्त पर खाय ॥४३॥
 कौन सुरति का दाव ।
 कौन वज्र का घाव ॥४४॥
 सुमति सुरति का दाव ।
 सबद वज्र का घाव ॥४५॥
 विनसैगा कैलास ।
 तब कह रहेंगे दास ॥४६॥
 विनसन दे कैलास ।
 मोमें मेरे दास ॥४७॥

कै रती भर सुरति है, कै रती भर काम ।
 कै रती भर माया है, कै रती निज नाम ॥४८॥
 सोरा रतिभर सुरति है, छत्तीस रति भर काम ।
 माया महम रती भरै, एक रती निज नाम ॥४९॥
 कौन जगावै ब्रह्म को, कौन जगावै जीव ।
 कौन जगावै सुरति को, कौन मिलावै पीव ॥५०॥
 विरह जगावै ब्रह्म को, ब्रह्म जगावै जीव ।
 जीव जगावै सुरति को, सुरति मिलावै पीव ॥५१॥
 जीवत जीव कहँवाँ बसै, मुये वसै किहि ठौर ।
 कै नो याको अर्थ कर, नातर गुरु कर और ॥५२॥
 जीवत जीव हिरदै बसै, मुये पुरुष के पास ।
 दया भड जव कबीर की, तब पायो उर्मदाम ॥५३॥
 कै मासे भर नाम है, कै मासे भर पान ।
 कै मासे भर पुरुष है, जाको धरिये ध्यान ॥५४॥
 अठ मासे भर नाम है, नौ मासे भर पान ।
 सोरा मासे पुरुष है, जाको धरिये ध्यान ॥५५॥

५३, नामजप या जपयोग आठ मासा है अर्थात् आठ फल का देनेवाला है । और अमृत पान नव मासा अर्थात् उससे कुछ अधिक फलदायक है । और पुरुष साक्षात्कार तो सोरह मासा है अर्थात् पूर्णपद को देनेवाला है । “ पुरुषान्न पर किंचिन् सा काष्ठा सा परा गति ”

श्रोता वक्ता कौन घर,	जब नर आवै नींद ।
सब्द विराजै कौन घर,	बूझौ कपिल सुनींद्र ॥५६॥
सब्द जाय दरवार में,	ब्रह्म रत्न के नीर ।
श्रोता वक्ता सब्द संग,	मुनि सों कहै कबीर ॥५७॥
नाद नहीं था बिंदु नहीं था,	करम नहीं था काया ।
अलख पुरुष के जीभ नहीं थी,	सब्द कहा ते आया ॥५८॥
नाद नहीं था बिंदु नहीं था,	करम नहीं था काया ।
अलख पुरुष के जीभ नहीं थी,	सब्द सुन ते आया ॥५९॥
बोलता बहु कहै वसै,	केतिक रूप सरूप ।
कै पखुरि की सुरति है,	केतिक वस्तु अनूप ॥६०॥
बोलता मध्य द्वि में वसै,	हरा परन सरूप ।
सात पखुरि की सुरति है,	किंचित् वस्तु अनूप ॥६१॥
साखी सब्दी कब कही,	मौन रहै मन माँहि ।
बिडुग था कब ब्रह्म मो,	कहिवे को कहु नाँहि ॥६२॥
साखी सब्दी जब कही,	तब कछु जाना नाँहि ।
बिडुग था तब ही मिला,	अब कछु कहना काँहि ॥६३॥
हाथ पाँव मुख सीस धरि,	वेगर वेगर नाम ।
कहै कबीर विचारि के,	तोर नाम कहै ठाय ॥६४॥
हाथ पाँव मुख सीस धरि,	वेगर वेगर नाम ।
कहै कबीर विचारि के,	मोर नाम सब ठाय ॥६५॥

सोई सीप समुद्र में,	सोइ सीप नदी नाल ।
मोती क्यों नहि नीपजै,	पंडित करो विचार ॥६६॥
सीप सीप सब एक है,	सब जग बरसै स्वांति ।
मोती यों नहि नीपजै,	कोह कुबुधि बहु भाति ॥६७॥
सीप भई जो गरमसी,	ढरकि जाय सब नीर ।
स्वांति सनेही ना मिलै,	यों कहै दास कवीर ॥६८॥
माटी में पाटी मिली,	मिला पवन सों पौन ।
में तोहि घुंघूं पंडिता,	दो में मूआ कौन ॥६९॥
कुमति हती सो मिटि गई,	पिटयो बाद हंकार ।
दोनों का भेला मुआ,	कहै कवीर विचार ॥७०॥
कुमति किसकी मिटि गई,	किसका मिटा हंकार ।
क्यों करिके भेला हुआ,	सो मोहि कहो विचार ॥७१॥
कुमति चित की मिटी गई,	मिट गय मन हंकार ।
दोनों का झगडा मिटा,	कहै कवीर विचार ॥७२॥
काम क्रोध मृतक सदा,	मृतक लोभ समाय ।
ये मृतक संग देह के,	कहु कैसे करि जाय ॥७३॥
काम क्रोध मृतक सदा,	मृतक लोभ समाय ।
झील सरोवर न्हाइये,	तब यह मृतक जाय ॥७४॥

॥ सन्ध्याम ॥

श्री विचार साहेब
की
विरल टीका-टिप्पणी के सहित
सद्गुरु कबीर साहब
का
साखी-ग्रंथ ।

॥ समाप्त ॥

अनुक्रमणिका ।

(अकाशदिक्रमसे)

अ	अग ।	पृष्ठ ।	साखी ।
अकार निधै भया,	सुमिरन ।	११८,	२४
अकय क्या या मन हि की,	मन ।	२४६,	८६
अकल अरस सौ ऊतरी,	भर्मनिधिस ।	२७३,	४५
अकल बिहना आदमी,	,,	,,	४१
अकल बिहना आंधरा,	,,	,,	४३
अकल बिहना सिव ज्यों,	,,	,,	४२
अकास जा पाताल जा,	कर्म ।	४१८,	३०
अकास बेरी अमृत फल,	परिचय ।	१५०,	१३०
अगन नहीं जहँ तप करै,	,,	१४४,	८३
अगम अगोचर गम नहीं,	,,	१४१,	४०
अगम पथ कू पग बरे,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७९,	४०
अगम पथ को चालतौ,	गुरु पारख ।	३२,	१०
अगम पथ को मन गया,	बेहद ।	३३९,	२०
अगम पथ मन धिर करै,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७५,	५
अगम हतासो सुगम किया,	,,	,,	६
अगम हुते जो अगम है,	,,	,,	४
अगर तिलक मर सोहइ,	भेष ।	७०,	८
अगह गँइ अगइ कहै,	बेहद ।	३३०,	१८

अगुवानी तो आइया,	परिचय ।	१४०,	३९
अघट मया खटपट मिटे,	मन ।	२६६,	१४
अचर चौर चर परिहरै,	विपर्यय ।	२५४,	३९
अछे पुरुष एक पेड़ है,	निजकर्ता ।	३६९,	१
अजगर करै न चाकरी,	समर्थ ।	३०६,	४५
अजर जु धान अतीत का,	भेष ।	८७,	८१
अजपा सुमिरन घट विषे,	सुमिरन ।	१३०,	१३४
अजहू तेरा सत्र मटे,	गुरु मुख पावे भेद । पडित ।	३८४,	३६
” ” ” जो जग माने हार । जीवतमृतक ।	” ”	३३४,	४०
” ” ” जो मन रखै ठौर ” ”	” ”	”	४१
” ” ” जो मानै गुरु सीख । सीख ।	” ”	८८,	६
अजामेध गोमेय जग,	मासाहार ।	४१६,	४४
अठ मासे भर नाम है,	प्रश्नोत्तर ।	४४९,	५५
अडसठ तीरथ निंदक न्हाइ,	निन्दा ।	३८६,	२३
अतिका भला न बोलना,	मध्य ।	३१७,	२८
अति हठ मति कर बाबरे,	उपदेस ।	३०१,	८१
अग्रम कथ्य सत्र काल के,	काल ।	३००,	७८
अधिक सनेही माछी,	प्रेम ।	१५४,	४१
अनल अकासे घर किया,	मध्य ।	३१४,	३
अनल पखि आये नहीं,	” ”	”	४
अनल पखि का चेट्या,	” ”	”	५
अनहद बाजे निशर शेर,	अविहट ।	३४२,	६
अनजाने का कूकना,	पारख ।	३५७,	५१
अनमागा उत्तिम कही,	सीख ।	८८,	२

जनमाणा तो क्षति भला,	”	”	८
अनमिलता सौ सग कोरे,	सगति ।	९७,	७५
अनराते सुख सोयना,	सेवक ।	१०१,	२७
अन वैभव कोई नहीं,	साधु ।	६१,	७३
अनन्त कोटि ब्रह्मांड का,	निजकर्ता ।	३७३,	३५
अन-याही आकास है,	बेली ।	३५९,	३
अनेक बधन सें प्राधिया,	समर्थ ।	३०६,	४९
अपना तो कोई नहीं, देखा ठोकि बजाय ।	मोह ।	३९४,	१४
” ” ” हम काहू के नाहि ।	”	”	१३
अपनी अपनी सब कहैं,	विचार ।	४२३,	१६
अपने अपने चोर को,	मन ।	२७९,	७९
अपने उरसे उरझिया,	”	२७०,	५९
अपने पहरे जागिये,	सुमिरन ।	१२३,	७६
अब की जो साई मिले,	चिन्ती ।	४३७	१२
अब तू काहे को डरे,	विश्वास ।	२१३,	३३
अब तो ऐसी द्वे पडो, ना तुवरी ना बेलि ।	विपर्यय ।	२५४,	४२
” ” ” मन अति निरमल कीन्ह ।	सती ।	२१४,	१
अब तो जूझे हि बने,	सुरमा ।	२२९,	३६
अब तो मैं ऐसा भया,	लगनी ।	३६८,	२६
अब तो हम कचन भये,	साच ।	४३१,	१५
अब हम चले अमरापुरी,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७५,	७
अवरन को क्या बरनिये,	चिन्ती ।	४३८,	१९
अवरन बरन अमूर्त जो,	गुरुदेव ।	११,	५९
अविहड अखडित पीत है,	अविहड ।	३४१,	१

अबुध सुबुध सुत मातपितु,
 अभिमानो कुजर भये,
 अमर कुज कुरलाइया,
 अमर लोक ते आइया,
 अमरापुर को जात हों,
 अमल अहारी मानवा,
 अमल मौहि अवगुन कहा,
 अमली के बैठो मति,
 अमली हो बहु पापसें,
 अमृत केरी मोटरी,
 अमृत पाने ते जना,
 अलख अलख सब कोइ कहै,
 अलख इलाही एक है,
 अलख पुरुष की आरसी,
 अलख लखा लालच लगा,
 अलख अकिल जानै नहीं
 अकमस्त फिरै क्या होत है,
 अविगति पिसै पीसना,
 अविनासी की सेज का,
 अविनाशी की सेज पर,
 अविनासी बिच धार तिन,
 अस औसर नहि पाइ हो,
 असुर रोग उत्पति भया,
 असुरी माया आप हि,

गुरुदेव ।	१५,	८०
मद ।	३९५,	१०
विरह ।	१६०,	२
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३३
चानक ।	३०९,	२५
नशा ।	४१८,	१०
”	४१७,	३
”	४१९,	२५
”	”	२६
प्रेम ।	१५६,	५३
”	”	५४
निजकर्ता ।	३७१	१९
एकता ।	३२३,	१
साधु ।	५९,	५५
परिचय ।	१३७,	२०
भर्मविषय ।	३४६,	४६
उपदेस ।	१९३,	६३
निजकर्ता ।	३७१,	१६
विरह ।	१६९,	८४
”	”	८५
कनक-कामिनी ।	२८६,	७
सुमिरन ।	१२१,	५५
निजकर्ता ।	३७२,	३२
माया ।	२८५,	७३

अहार करे मन भावता,
 अहिरन की चोरी करे,
 अहिरन मोरे काख में,
 अहं अग्नि हिरदै नरे,
 अहं भई - जो इस्तरी,
 अहंता नहि आनिये,
 अंक भरे भरि भेटिया,
 अंकुर भक्षे सो मानुषा,
 अँखियन तो झाँई पडी,
 अँखिया प्रेम कसाइया,
 अँडज स्येदज उदभिज,
 अँडा किन विसमिल किया,
 अँडा पाले काछुई,
 अँडे किन विसमिल किये,
 अन्त कतरनी जीम रस,
 अन्तर कमल प्रकासिया,
 अन्तर जपिये रामजी,
 अन्तर जामी एक तू,
 अन्तर पाहि विचारिया,
 अन्तर हरि हरि होत है,
 अन्तःकरण मन मही,
 अँन पानी का हार है,
 अँदेसो नहि भागसी,
 अँधरन को हाथी सही,

स्वाद ।	४१०,	४
चितावनी ।	१९१,	१८६
भर्मविध्वंस ।	३४५,	३५
मद ।	३९४,	१
मद ।	३९५,	३
मद ।	,,	५
विरह ।	१६८,	८०
मांसाहार ।	४१६,	४५
विरह ।	१६५,	५१
,,	,,	५५
व्यापक ।	३२९,	४४
मांसाहार ।	४१४,	२१
विश्वास ।	२११,	१२
मांसाहार ।	४१४,	२२
कपट ।	४०४,	१८
मेद ।	३२१,	४०
सुमिरन ।	१३३,	१६५
समर्थ ।	३०४,	३४
उपदेस ।	१९३,	२
सुमिरन ।	१३३,	१६४
सूक्ष्म मार्ग ।	३७८,	३४
स्वाद ।	४११,	१०
विरह ।	१६४,	३९
आत्म अनुभव ।	३१२,	२२

अंग्रे को हाथो उधो,	॥	३११,	२०
अंधा ऊबट जात है,	सतगुरु ।	२७,	८२
अधा गुरु अधा जगत,	गुरु पारख ।	३१,	६
अधे औबट जात है,	पारख ।	३५८,	६२
अधे मिलि हाथी छुआ,	आत्म अनुभव ।	३११,	२१
अधों का हाथी सही,	॥	३१२,	२३
अच्छर आदि जगत में,	सतगुरु ।	२९,	९९
अर्ध कपाले झुलता,	चितावनी ।	१९०,	१८५
अर्ध पवन चढाय ले,	बेहद ।	३४०,	३२
अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौ, तुमसों रहे निनार । मोह ।		३९३,	६
॥ ॥ ॥ सब हि मोह की खान । ॥		३९४,	१२

आ

आकार राम दशरथ घर डोलै,	निजकर्ता ।	३७२,	२५
॥ ॥ ॥ ॥	प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४१
आकासे औंधा कुवा,	विपर्यय ।	२४८,	१५
आग कहै दाझे नहीं,	विचार ।	४२२,	३
आग जलावै अँन दहै,	दया ।	४३२,	१०
आग जु लगी नीर में,	विपर्यय ।	२४६,	८
आग लगी आकास में, कहै कपिर उठ जागरे (३), ॥		२६२,	६४
॥ ॥ कबीर जलि कंचन भया (३) विरह ।		१६९,	८७
आगा पीछा दिक करै,-	भर्मविज्यस ।	३४७,	५२
आगे औचि सद्गुण सुगम,	प्रेम ।	१५७,	७२
आगे अधा कृप में,	गुरु पारख ।	३१,	८
आगे खोजी पविमुभा,	मध्य ।	३१६,	२६

आगे दरपन ऊंगला,	कपट । ४०४,
नागे पीछे हरे खड़ा,	विश्वास । २१२,
आचारी सब बग मिला, कौटि अचारी वारिये (३) विचार । ४२३,	
आगे पीछे जाके हिरदे गुरु नहीं (३) दया । ४२३,	
आठे दिन पाछे मये,	चितावनी । १७७,
आज कहै मैं काल मजुंगा,	॥ ॥
आज काल के बीच में,	॥ १७६,
आज काल के भोग हैं ।	साधु । ७०,
आज काल दिन पांच में,	॥ ७६,
आज काल पल छिनक में,	काल । २९२,
आमा को घर अमर है,	विचार । ४२३,
आठ तमि भूसा गहे,	भारमाही । ३५०,
आठ गांठ कोपीन के,	रस । ३६४,
आठ पहर चौत्रिस घड़ी, मो मन पही भेदेस । भेद । ३१९,	
आठ पहर चौसठ घड़ी, भेरे और न कोष । पतिव्रता । २१९,	
आगे पीछे लागि रहे अनुराग । प्रेम । १५९,	
आठ पहर पौड़ी गंया,	चितावनी । १८५,
आठ बाट बकरी गई,	मांसाहार । ४१४,
आत्म अनुभव जब भयो,	आत्म अनुभव । ३०९,
आगे पीछे सुखकी,	॥ ३०९,
आगे पीछे ज्ञान को,	॥ ३१०,
आत्म दष्टि जाने नहीं,	भर्मविषय । ३४८,
आत्म पूजा जिन दया,	उपदेस । २८०,
आदि अंत अय को नहीं,	गुरुशिष्य हेरा । ४१,

आदि अन्त अरु मध्य लैं,
आदिनाम निज मूल है,
आदिनाम निज सार है,

आदिनाम पारस अहे,

आदिनाम बीरा अहे,

आदि हती सब आप में,

आध सन्द गुरु देव का,

आधी औ खूबी भकी,

आधी साखि कबीर की, जो निरुवारी जाय ।-विचार ।

” ” ” सीखी सुनी न जाय । ”

आधी साखी सिर कटे,

आन अमल सब त्यागि के,

आन कया अन्तर पडे,

आन देव की आस करि,

आन भने सो आधार,

आप रखि परमोधिपे,

आप साधु करि देखिये,

आप स्वार्थी मेदिनी,

आपन को न सराहिये,

आपन पै न सराहिये,

आपा भेटे पिय मिले,

आपा भेटे हरि मिले,

आपा सब ही जात है,

आपन सकि हो तोहि पे,

अभिहड । ३४१, ३

सुमिरत । ११६, २६

” ” १४

” ११६, १३

” ” १२

गुरुशिष्यहेरा । ४२, २८

गुरुदेव । १५, ८३

स्वाद । ४११, ८

” ४२२, ६

” ४१४, २४

” ४२२, ५

नशा । ४२०, ३०

उपदेस । १९७, ४७

आनदेव । ३८७, १

विभिचारिन । २२५, १९

कथनी । ३६१, १३

साधु । ६१, ७४

परमार्थ । २४३, ६

निन्दा । ३८६, १९

” ” २०

दीनता । ४३५, ९

विपर्यय । २४५, ४

मद । ३०५, ७

विरह । १६४, ४०

आया अन आया भया,
 आया एक हि देस ते,
 आया था ससार में,
 आया प्रेम कहा गया,
 आया बबुला प्रेम का,
 आया बबुला प्रेम का,
 आये हैं ते जायगे,
 आरत सों गुरु भक्ति करु,
 आरत है गुरुभक्ति करु,
 आरा नारा कारनै,
 आन कहै सो आलिया,
 आव गया आदर गया,
 आवत गारी एक है,
 आवत माधु न हरिया,
 आस आम घर घर फिरै,
 आस आस जग बधिया,
 आम करे बैकुण्ठ को,
 आस पास योधा खडे,
 आस वास जग फदिया,
 आस वास मन मेलिया,
 आसन तो इकान्त करे,
 आसन मारै कहा भयो,
 आसा एक जो नाम को, दूनी आस निहार ।
 आसा एक हि नाम को, जुग जुग पुरै आस ।

चितावनी ।	१२१,	१८८
परिचय ।	१४७,	१०५
"	१४०,	४३
प्रेम ।	१५२,	२४
"	१५२,	२४
"	१५४,	४०
चितावनी ।	१८३,	११४
भक्ति ।	१११,	४१
"	"	४०
आनदेव ।	३८७,	३
शील ।	४२७,	११
भोख ।	८८,	११
उपदेस ।	१९६,	३३
साधु ।	५८,	५१
आसातृत्ना ।	४०१,	१९
"	४०२,	२५
सेवक ।	१०१,	१८
काल ।	२९७,	४७
आसातृत्ना ।	४००,	५
सूरमा ।	२४१,	१५१
साधु ।	७३,	१७४
आसातृत्ना ।	४०१,	१५
"	४००,	"
"	"	३

इक मरिचो इक मारिचो,
 इत कूना उत चानली,
 इत परघर उत ह घरा,
 इन अटकाया ना रहै,
 इन पाचौं से बधिया,
 इस उदर के कारने,
 इस तन मे मन कहँ बसै,
 इन्द्र राज सुख भोग कर,
 इन्द्र लोक अचरज भयो,
 इन्द्रिय मन निग्रह करन,
 इन्द्रो एको प्रस नहौं,
 इन्द्रो पोषत चाह सू,
 इक खुनस ग्वाँसि जो,
 इष्ट मिले अरु मन मिले,

सूरमा ।	२३४,	८४
समरथ ।	३०२,	०
चितापनी ।	१८२,	१०१
साधु ।	५५,	१७
मन ।	२७१,	६७
चानक ।	३०७,	५
प्रश्नोत्तर ।	४४२,	१८
भक्ति ।	११३,	५६
लगनी ।	३६८,	२३
साधु ।	६६,	११३
चानक ।	३०९,	२९
मन ।	२७२,	७१
प्रकृति गुन ।	३८८,	११
उपदेश ।	१९६,	३०

इ

ईलम से उद्याग खिलै,
 ईश्वर में अरु जीव में,

भेद ।	३२१,	३७
व्यापक ।	३०९,	३९

उ

उगन भीन सुधाकरा,
 उत्पति परलय उहँ नहौ,
 उत त कोई न आइया,
 उत ते सनगुरु आइया,

साधु ।	६८,	१३३
वेहद ।	३४०,	२६
गूढमार्ग ।	३७६,	११७
		१८

उत्तिम भोग्य है अजगरी,	भोग्य ।	८८,	१३
उदर समाता अन्न ले,	"	"	७
उदर समाता माँगि ले,	"	"	५
उन्मुनि चढ़ी अकास को,	परिचय ।	१३८,	२५
उन्मुनि लागी सुन्न में,	"	"	२४
उन्मुनि सों मन लागिया, उन्मुनि नहीं मिलिगि।	"	"	२७
" " " गगन हि पहुँचा जाय । "	"	"	२६
उपजे एकै खाड ते,	एकता ।	३२४,	१५
उलटा ज्ञान विचार के,	निर्णय ।	२५२,	३१
उलटि समाना आप में,	परिचय ।	१३५,	४
उलटे सुलटे नचन क,	सेवक ।	१०३,	३५
उत्तर दक्षिण पूरव पच्छिम,	पारम्य ।	३५४,	२६

ऊ

ऊजड, खेडे देवरां,	चितायनी ।	१७६,	४२
ऊजड घर में बैठि के,	निगुरा ।	५२,	५०
ऊनी आई बादरी,	निर्णय ।	२५४,	४०
ऊजल देवि न धोजिये,	भेष ।	८,	१३
ऊजल देवि न भरमिये,	"	"	१२
ऊजल पहिनी कापडा,	चितायनी ।	१८१,	८३
ऊजल बुद अघाम की,	सगति ।	९३,	४०
ऊजल बस्तर मिर जटा,	कापट ।	४०४,	२१
ऊचा कुल नाँचा मता,	मान ।	३०८,	२०
ऊचा चटि असमान को,	निर्णय ।	२५५,	४४

ऊंचा तरवार गगन फल, पंखी मूआ झूर ।	सूरमा ।	२३७,	१०६
ऊंचा तरवार गगन फल, बिरला पंछी खाय ।	जोवतमृतक ।	३३२,	२०
ऊंचा दोसै धौहरा,	चितावनो ।	१७७,	५६
ऊंचा देखि न राचिये,	मान ।	३९८,	२६
ऊंचा महल चुनाहया,	चितावनो ।	१७७,	५८
ऊंचा महल चुनावते,	"	१७८,	५९
ऊंचा मंदिर मेडिया,	"	१७७,	५७
ऊंची जाति पपीहरा,	पतिव्रता ।	२२१,	४६
ऊंचे कुल कह जनमिया,	संगति ।	९३,	४७
ऊंचे कुल की कामिनो,	मान ।	३९८,	२२
ऊंचे कुल के कारने, बांस बध्यौ हंकार ।	निगुरा ।	४८,	१९
" " " भूलि रहा संसार ।	मान ।	३९८,	२१
ऊंचे कुल में जनमिया,	मान ।	३९७,	१९
ऊंचे डाली प्रेम की,	माया ।	२८४,	६२
ऊंचे पानी ना टिकै,	मान ।	३९८,	२७
ऊंडा चित अरु समदसा,	साधु ।	६९,	१४१

ए

एक अनूपम । हम किया,	निगुरा ।	५१,	४९
एक अचंभो देखिया,	पारख ।	३५५,	५०
एक कनक अरु कामिनो, तजिये भजिये दूर ।	क०का० ।	२८६,	५
" " " दोउ अगनिकी झार ।	" "	"	३
" " " विष फल लिया उपाय ।	" "	"	८
" " " ये लंबी तरवार ।	"	२८५,	२

एक खड़ा ही ना लहे,	समर्थ ।	३०३,	२४
एक घड़ी आधी घड़ी,	सगति ।	९०,	९
एक चित होय न पित्र मिले,	पतिव्रता ।	२२०,	३६
एक जान एकै समझ,	"	२२१,	४४
एक दिन ऐसा होयगा, को काहु का नॉहि । चिताननी ।		१८५,	१३५
" " " सब सँ पडे विठोह । "		१७६,	४१
एक दिना नहि करि सवै,	साधु ।	५४,	४
एक दृष्टि दो नन हैं,	प्रेम ।	१५९,	८६
एक दोस्त हमहु किया,	विपर्यय ।	२४९,	२१
एक नाम को जानि कर, दूजा दिया बहाय । पतिव्रता ।		३२०,	३२
" " दूजा देइ बहाय । सुमिरन ।		१२०,	५०
" " " मेटु करम का अक । "		"	४९
एक हि जार परखिये,	पारख ।	३५३,	१५
एक बुद के कारने,	चिताननी ।	१९०,	१७७
एक बुद ते सब किया, नरनारी का नाम । "		१८८,	१५६
" " ये देह का विस्तार । "		"	१५७
एक मोह के कारने,	मोह ।	३९४,	१६
एक राम दशरथ घर डोले,	निजवर्ता ।	२७१,	२३
एक वस्तु के नाम बहु,	एकता ।	३२४,	७
एक सोम का मानवा,	चिताननी ।	१८४,	१२१
एक सन्द सुख खानि है,	सन्द ।	२०४,	१५
एक सन्द सुपियार है,	सन्द ।	२०९,	६८
एक सन्द में सज किया,	विचार ।	४२२,	९
एक हमारी सोख सुन,	करनी ।	३६५,	२५

एकामेका	होन	दे,	प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४७
एक	साथे	सम	सधे,	२२०,	२०

ऐ

ऐसा अदबुद मति कयो,	भेद ।	३१८,	१२
ऐसा अविगति अलख है,	परिचय ।	१४७,	१०१
ऐसा अविगति रूप है,	"	१४९,	१२३
ऐसा कोई जन ण्व है,	निंदा ।	३८५,	१७
ऐसा कोई ना मिला, अपना करि भिरपा करै(३)गु शि हे ।		४०,	६
" " " घर दे अपन जराय ।	"	३९,	२
" " " जलना जोति बुझाय ।	"	४०,	८
" " " जामों कहें दुख रोय ।	"	३९,	३
" " " जासों कहें निसक ।	"	४०,	७
" " " जासों रहिये लग । गुरु पारख ।		३७,	५१
" " " ठौर मनका रोस । गुरुशिष्यहेरा ।		४०,	९
" " " ढाल दमामा ना सुनै (३)	"	३९,	५
" " " सत्र विधि देय बताय ।	"	"	४
" " " सत्तनाम का मीत । गुरुदेव ।		१०,	५२
" " " सब्द देखें जतलाय । गुरुशिष्यहेरा ।		४०,	१०
" " " हमका दे उपदेस ।	"	३९,	१
ऐसा कौन अभागिया,	निश्वास ।	२१३,	३६
ऐसा गुरु ना कानिये,	गुरुपारख ।	३५,	४१
ऐसा मारा सब्द का	सब्द ।	२०५,	२७
ऐसा साधू ग्वानि के,	साधु ।	६९,	१४०
ऐसा गति समार का,	चितायना ।	१८४,	१२०
ऐसा ठाठा ठाठिये,	भेष ।	८१,	२७
ऐसी तोखी सुरति है,	मजीवन ।	३३६,	८

ऐसी गनी बोलिये,
ऐसी व्याई सो तुई,
ऐसी भाति जो सती है,
ऐसी मार कमीर की,
ऐसे तो सतगुरु मिले,
ऐसे महंगे मोल का,
ऐसे सौच न मानई,

उपदेस ।	१९५,	२६
विपर्यय ।	२५०,	२५
सती ।	२१५,	११
सूरमा ।	२३१,	५७
गुरु पारख ।	३७,	५२
सुमिरन ।	१३०,	१४०
काल ।	२९८,	५६

ओ

ओटा लिया न ऊगरे,
ओठ कठ हाले नहीं,

सूरमा ।	२३०,	४५
सुमिरन ।	१३३,	१६३

औ

औगुन बहू सराव का,
औगुन किया तो बहु किया,
औगुन को तो ना गहै,
औगुन मेरे बापजी,
औगुन हारा गुन नहीं,
और धर्म सब कर्म है,
और देव नहि चित वसै, मन गुरु चरन बसाया।
और देव नहि चित वसै, विन प्रतीति भगवान।
और धर्म सब कर्म है,
और पतित तो कूप हैं,
और पुरुष सब कूप हैं,
और सुरति बिसरी समल,
औसर पीना अल्प तन,

नशा ।	४१७,	५
बिनती ।	४३६,	४
सारग्राही ।	३४९,	४
बिनती ।	४३६,	५
समरथ ।	३०३,	२१
भक्ति ।	११३,	५४
साधु ।	६६,	११४
साधु ।	,,	११५
भर्मविप्रस ।	३४५,	३३
बिनती ।	४३७,	९
समरथ ।	३०५,	४३
लगाती ।	३६७,	१३

कवीर

कविर कुसग न कानिये, लाहा जल न तिराय ।	सगति ।	९२,	३६
कविर कुसग न कीजिये, जाका नाँव न ठाँव ।	सगति ।	,,	३७
कविर नै सो आपको,	दीनता ।	४३९,	८
कविर नारि की प्रीति से,	वनक कामिनी ।	२९०,	४८
कविर नैन झर लाइये,	सुमिरन ।	११९,	४१
कविर निर्भय नाम जपु,	सुमिरन ।	१०२,	६८
कविर भये हैं केनका,	दासातन ।	१०६,	२०
कविर सुनावत दिन गये,	चानक ।	३०९,	२४
कविर क्षुधा हैं कूपरी,	सुमिरन ।	१२४,	८०
कविरा चुनता कन पिर,	पारख ।	३५५,	३०
कवीर अन हुआ हुआ,	चितावनी ।	१७४,	२१
कवीर अपने जीवत,	मान ।	३९७,	११
कवीर आद् एक ह,	परिचय ।	१४९,	१२१
कवीर आधी साखि यह,	विचार ।	४२२,	७
कवीर आप ठगाइये,	उपदेस ।	१९३,	७
कवीर आपन राम कहि,	सुमिरन ।	११९,	३६
कवीर उलटा ज्ञान का,	प्रियर्थ ।	२५२,	३२
कवीर ऊँची नाक को,	मान ।	३९८,	२३
कवीर औँधी खोपडी,	लोभ ।	३९२,	३
कवीर कठिनाई खरी,	सुमिरन ।	१२०,	४२
कवीर कमठ प्रकासिया,	परिचय ।	१४१,	५२
कवीर कमलन जल वसै,	साधु ।	७०,	१४०
कवीर कमाई आपना,	कर्म ।	४०८,	१०
कवीर मरत हैं जानती, भवसागर के ताड़ ।	समर्थ ।	३०५,	३०
” ” ” सुनो मत चित लाय	प्रियता ।	४३८,	- ३

कमीर करनी आपनी,
 कमीर करनी क्या करै,
 कमीर कहूँ रु कल्पना,
 कमीर कलियुग आई के,
 कमीर कलियुग कठिन है,
 कमीर कहते क्यो बने,
 कमीर कहहि पीर को,
 कमीर काजी स्वाद बस,
 कमीर कामो पुरुष का,
 कमीर काया को जगो,
 कमीर काया पाहुनी,
 कमीर काज भक्ति के,
 कमीर काहे को डरे,
 कमीर कीट सुगव तजि,
 कमीर कुल सोही मला,
 कमीर केवल नाम कह,
 कमीर केवल नाम को,
 कमीर केसो को दया,
 कमीर कोठी काठ को,
 कमीर कचन भासिया,
 कमीर खाई कोट को,
 कमीर खात्रि जागिया,
 कमीर खेत किसान का,
 कमीर खोजी राम का,

करनी ।	३६२,	१
”	३६२,	२
सगति ।	९१,	२२
विभिचारित ।	२२३,	१
चानक ।	३०६,	२
सगति ।	९३,	३९
चानक ।	३०९,	२३
मासाहार ।	४१४,	२८
काम ।	३९०,	१७
प्रभोत्तर ।	४४१,	१७
चिन्तामनी ।	१८९,	६८
निजकर्ता ।	३७२,	३३
उपदेस ।	१९५,	२५
असारप्राही ।	३५०,	१
दासातन ।	१०५,	१८
चिन्तामनी ।	१७५,	३४
”	१८८,	१६५
लगनी ।	३६९,	३०
विपर्यय ।	२५९,	५७
परिचय ।	१४२,	५८
सगति ।	९१,	२१
दासातन ।	१०४,	६
चिन्तामनी ।	१७४,	२०
व्यापक ।	३२७,	१९

कनौर म्वाड हि छाडि के	पारख ।	३५६	४६
कनार गाफिल क्यों कर,	चिताननी ।	१७५,	३१
कनार गाफिल क्यों फिर,	कार ।	२९६,	३७
कनौर गुदडी बीखरी,	पारख ।	३५६,	४५
कनौर गुरु औ साधु कू,	सेनक ।	१०३,	३०
कनौर गुरु को भक्ति कर,	भक्ति ।	१०९,	२२
कनौर गुरु को भक्ति का,	"	"	२४
कनौर गुरु को भक्ति निनु, नारि कूकरी होर ।	निगुरा ।	४७,	११
" " धिक् जीवन ससार ।	भक्ति ।	१०९,	२३
" " राजा रामन होय ।	निगुरा ।	४७,	१२
कनौर गुरु को भक्ति सें,	भक्ति ।	१०९,	२५
कनौर गुरु के देसमें,	सगति ।	९२,	३८
कनौर गुरु के भाव ते,	दासातन ।	१०४,	५
कनौर गुरु ने गम कहो,	गुरुदेन ।	९५,	४२
कनौर गुरु सत्र को चहै,	दासातन ।	१०४,	४
कनौर गुरु हैं हृद का,	बेहद ।	३४०,	३०
कनौर गुरु हैं घाट के,	गुरु पारख ।	३३,	२२
कनौर गर्व न कोनिये, अस जीवन की आस ।	चिता० ।	१७२,	२
कनौर गर्व न कोजिये, ऊचा देखि अयास ।	"	"	३
कनौर गर्व न कोजिये, काल गह कर केम ।	"	"	१
कनौर गर्व न कोजिये, चाम लपेटे हाड ।	"	"	४
कनौर गर्व न कोजिये, देगा काल उखाड ।	"	"	५
कनौर गर्व न कोजिये, देही देगि सुरग ।	"	"	६
कनौर गर्व न कोजिये, एक न हभिये कोय ।	गद ।	३९५,	६
कनौर घट में राम ह,	कर्म ।	४०९,	१८

कबीर घोड़ा प्रेम का,	सूरमा ।	२२६,	५
कबीर चढ़ै सिकार को, मूरख नर सो रहि गये (३) ,,		२३९,	१२८
” ” मेरा मारा फिर उठै (३) ,,		”	१२९
कबीर चाला जाय या, आगे मिले खुदाय । मासाहार ।		४१५,	३७
” ” पूछि लिया एक नाम । वेहद ।		३३९,	२१
कबीर चित-चचल भया,	सुमिरन ।	१२७,	११३
कबीर चिनगी विरह को,	विरह ।	१६३,	३४
कबीर चेरा सत का,	जीवतमृतक ।	३३३,	३१
कबीर चंदन के निकट,	सगति ।	९१,	३३
कबीर चंदन के भिरै,	निगुरा ।	४८,	२०
कबीर चंदन परजला,	कर्म ।	४०८,	९
कबीर चंदन संग स,	सगति ।	८९,	७
कबीर चिंता क्या करू,	विश्वास ।	२१०,	९
कबीर चित्त चमाकिया	चितावनी ।	१७५,	३३
कबीर जग के जौहरों,	पारख ।	३५३,	१७
कबीर जग को क्या कहू,	आसातृस्ना ।	४०१,	१८
कबीर जब हम गावते,	परिचय ।	१४२,	५६
कबीर जाचन जाय या,	लगनी ।	३६९,	३१
कबीर जिन कछु जानिया,	विरह ।	१७०,	९५
कबीर जीवन कछु नहीं,	काल ।	२९६,	३४
कबीर जेता आत्मा,	भर्मनिधुस ।	३४३,	१०
कबीर जो कोड सुदरी,	विभिचारिन ।	२२४,	११
कबीर जो दिन आज है,	चितावनी ।	१७३,	१७
कबीर जोगी जगत गुरु,	आमातृस्ना ।	४०१,	१२

कबीर जोगी बन बसा,	संजिवन । ३३६, ३
कबीर जंत्र न बाजही,	चितावनो । १७५, ३०
कबीर झूठ न बोलिये,	सांच । ४३१, २१
कबीर दुग दुग चोषताँ,	काल । २९३, १८
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जो कुल को हेत । उपदेस । १९५, २९	
„ „ जहाँ सिद्ध को गाँव । „ „ ३०	
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत । कपट । ४०२, १	
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ पुराना भाव । कपट । ४०४, २०	
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जो नानाभाव । कपट । ४०२, ३	
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चाँखा चित्त । कपट । „ - २	
कबीर तहाँ न जाइये, नी मन बीज जु बोइये(३) „ „ ४	
कबीर तासे प्रीति कर,	प्रेम । १५४, ३८
कबीर तासों संग कर,	संगति । ९०, १८
कबीर तुरी पलानिया,	सूरमा । २२६, ६
कबीर तूं काहे डरे,	धीरज । ४१४, ५
कबीर ते नर अंध हैं,	गुरुदेव । ८, ३९
कबीर तेई पोर हैं,	मांसाहार । ४१६, ३९
कबीर तेज अनंत का,	परिचय । १४१, ५०
कबीर तो पिय पै चला,	सजीवन । ३३६, ४
कबीर तोडा मान गढ़, मारे पांच गनीम । सूरमा । २२६, ८	
कबीर तोडा मान गढ़, छूटी पांची खान । सूरमा । २२७, १०	
कबीर तृष्णा टोकना,	चानक । ३०६, १
कबीर तृष्णा पापिनी,	आसातृष्णा । ४०२, २३
कबीर थोरा जीवना,	चितावनो । १७२, १

कत्तीर दरसन साधु का, करत न कीजै वान	साधु ।	५३,	२
कत्तीर दरसन साधु के, ग्वाली हाथ न जाय ।	साधु ।	५५,	२३
कत्तीर दरसन साधु के, बड़े भाग दरसाय ।	साधु ।	५३,	४
कत्तीर दरसन साधु के, साहिब आये याद ।	साधु ।	,,	१
" दरिया परजला,	दुख ।	४०६,	८
" दिलदरिया मिला, पापा फल समर्थ ।	परिचय ।	१४१,	५५
" दिल दरिया मिला, बैठा दरगह आय ।	परिचय ।	१४२,	५७
" दिल सावित भया,	भेद ।	३२१,	४२
" दीपक जोह्या,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७९,	३८
" दुनिया देहरै,	भर्मप्रियस ।	३४३,	९
" दुनिया दूर कर,	मन्य ।	३१४,	२
" दुख सुख सब गया,	परिचय ।	१४९,	१२५
" देखा एक अग,	परिचय ।	१४१,	५१
" देखिके परखि ले, परखिके मुखको खोल ।	पारख ।	३५१,	१
" देखिके परखि ले, परखिके मुखो बुलाय ।	पारख ।	"	२
" देवल हाड का,	चिताननी ।	१७२,	९
" देवल बहिपडा, ईट भई सहार ।	चिताननी ।	१७३,	१०
" देवल बहि पडा, ईट रही सगार ।	चिताननी ।	"	११
" धीरज के धरै,	धीरज ।	४२४,	४
" धूर सकेलि के,	चिताननी ।	१७३,	१२
" धधे धरि रहे,	चिताननी ।	,,	१६
" नाव तो झांसरि,	चिताननी ।	१७४,	२८
" नौबत आपनी,	चिताननी ।	१७२,	७
" निन्दक मरि गया,	निन्दा ।	३८५,	८

कबोर पगरा दूर है, आय पहुँची साझ ।	काल ।	३००,	७२
॥ पगरा दूर है, बीच पड़ी है रात ।	काल ।	२९६,	३६
॥ पड़ना दूर करु, आयि पड़ा ससार ।	पडित ।	३८१,	९
॥ पड़ना दूर करु, पोथी देहु बहाय ।	पडित ॥	॥	८
॥ परगट राम कहू,	सुमिरन ।	११९,	३५
॥ पाहन पूजि के,	भर्मविच्यस ।	३४३,	८
॥ पानी होज का,	चितावनी ॥	१७५,	१२
॥ पौर पिरानना,	त्रिरह ।	१७१,	१०९
॥ पूछ राम सों,	साक्षोभूत ।	३२२,	६
॥ पय निहारतों,	त्रिभिचारिन ।	२२४,	९
॥ पाच पखेरुना,	चिनावनी ।	१७४,	२४
॥ पान्नी बलधिया,	दासातन ।	१०४,	७
॥ पाची मारिये,	सूरमा ।	२२७,	११
॥ पूजा साहु की, तू जिन करे खुमार ।	चितावनी ।	१७५,	३५
॥ पूजा साहु की, तू मति खोने खमार ।	सौँच ।	४३१,	१६
॥ पैदा दूर है,	चितावनी ।	१७४,	२५
॥ फन कारिनां,	चितावनी ।	१९२,	१८७
॥ प्याला प्रेम का,	नशा ॥	४२०,	३२
॥ मन मन में फिरा,	सगति ।	९०,	१७
॥ बहुत भइधिया,	व्यापक ॥	३२७,	२१
॥ बेडा जरजग,	चितावनी ।	१७४,	२३
॥ बेडा सार का,	गुरु पारख ।	३५,	४०
॥ वेद बुलाइया, जिहिर औषध गुरु मिले ।	गु.शि है ।	४३,	३१
॥ वेद बुलाइया, पकरि के देखी गह ।	त्रिरह ।	१६३,	३७

कबीर वैद बुलाइया, जिहिर औषध हरि मिले ।	विरह ।	१६३,	३६
॥ वैरी सबल है,	मन ।	२६५,	९
॥ बंटा टोकनी,	चानक ।	३०८,	२१
॥ ब्राह्मण की कथा,	पंडित ।	३८१,	१३
॥ ब्राह्मण बूडिया,	" "	" "	१४
॥ भाठी प्रेम की,	प्रेम ।	१४४,	३६
॥ भूल विगारिया,	समरथ ।	३०४,	३२
॥ भूला दगा में,	विचार ।	४२२,	१०
॥ भेदी भक्त सों,	भेद ।	३१७,	१
॥ भेरै बैठि के,	पतिव्रता ।	२१८,	१५
॥ भेष अतीत का,	भेष ।	७९,	१
॥ भेष भगवंत का,	"	८७,	७६
॥ भँवर में बैठिके,	धोरज ।	४२५,	६
॥ भिन्न न देखिये,	व्यापक ।	३२९,	४०
॥ मनका माहिला,	मन ।	२६५,	११
॥ मन कुं मारि ले,	"	२७७,	१२०
॥ मन गाफिल भया,	"	२६५,	४
॥ मन ताजी भया,	"	२७७,	१२२
॥ मन तीखा किया,	सजीवन ।	३३६,	५
॥ मन तो एक है,	मन ।	२६४,	१
॥ मन दीया नहीं,	विभिचारिन ।	२३३,	७
॥ मन निश्चल करो,	सुमिरन ।	१३३,	१६६
॥ मन परवत भया,	मन ।	२६४,	३
॥ मन पंछी भया,	संगति ।	९१,	२०

कत्रीर	मन मधुकर भया,	परिचय ।	१४१,	५३
"	मन मेरकट भया,	मन ।	२६५,	७
"	मन मिरतक भया, इन्डा अपन हाथ ।	ऊ०ऊा० ।	२९२,	६१
"	" " कहै कत्रीर कत्रीर (४) जी० प्र० ।		३३१,	५
"	" " गृ कहि दाम कत्रीर (४)	मन ।	२७६,	१०९
"	मन मंठा भया,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१५
"	मन हि गयद हं,	मन ।	२६५,	६
"	मनगा मोर है,	चिन्तामनी ।	१९२,	२०१
"	मरि मरघट गया,	जीवनमृतक ।	३३३,	२८
"	माया जात हं,	माया ।	२७९,	१३
"	माया डाकिनी, गवाया सत्र ससार ।	माया ।	२८४,	७०
"	माया डाकिनी, सत्र काहू को गवाय ।	माया ।	२७८,	१०
"	माया पापिनी, फट ले बैठी हाट ।	माया ।	२७७	२
"	माया पापिना, मागी मिले न हाथ ।	माया ।	२७७,	१
"	माया पापिनी, लोभ भूलाया लोग ।	माया ।	२७८,	३
"	माया पापिनी हरि सो को हराम ।	माया ।	२७८,	४
"	माया बेसना,	माया ।	२७८,	५
"	माया मोहिनी, जग अधियारी लोय ।	माया ।	२७८,	९
"	माया मोहिनी, नैसो मीठी ग्वाड ।	माया ।	२७८,	७
"	माया मोहिनी, मोहे जान सुजान ।	माया ।	२७८,	६
"	माया मोहिनी, सत्र जग वाला घानि ।	माया ।	२७८,	८
"	माया यौ कहं,	माया ।	२७९,	१५
"	माया रुग्णडी,	माया ।	२७८,	११
"	माया सापिनी,	माया ।	२८३,	५६

कानोरे	माया मूढको,	माया । २७८,	१२
११	मारग कठिन हं,	मूढमार्ग । ३७४,	१
११	माला काट का, पहरो मुगद डुलाय ।	सुमिरन । १३२,	१५८
	माला काट की, बहुत जनन का फेर ।	सुमिरन । १३१,	१४९
	मिरतक देखि कर,	जीवनमृतक । ३३५,	४३
	मुख से राम कहू,	सुमिरन । १२८,	११६
	मुख साई भला,	सुमिरन । ११९,	३७
११	मेरे साधु की,	निन्दा । ३८५,	१३
११	मेरी सुमिरनी,	सुमिरन । १२७,	११४
११	मोतिन की लडी,	परिचय । १४१,	५४
११	मदिर ' आपने,	काल । २९६,	३५
११	मदिर छार का,	चिन्तावनी । १७३,	१३
११	मे तन ही डरू,	विनती । ४३८,	२२
११	यह गन अटपटो,	मन । २६६,	१३
११	यह चिन्तामनी,	चिन्तावनी । १८७,	१५१
	यह तन जान है, सके तो ठौर लगान ।	चिन्ता । १७४,	१९
११	११ ११ भकी तो रासु बहोरि ।	उपदेस । १९५,	२१
११	यह तन बन भया,	चिन्तावनी । १७४,	२६
११	यह विनती कर,	विनती । ४३८,	२४
११	यह मन मसखरा,	मन । २६४,	२
११	यह मन लालची,	मन । २६५,	५
११	यह ससार है, जसा सेंगल फल ।	चिन्तावनी । १७३,	१५
११	यह तो राम ह,	निन्दा । ३८६,	२७
११	या समार की,	माया । २७९,	१४

क्योंर	या संसार को,	भर्मविध्वंस ।
११	या संसार हं, घना मनुस मति हीन ।	चिता० ।
११	ये जग आंधरा,	पारख ।
११	रन में आय के,	सूरमा ।
११	रसरो पोंव में,	चितावनो ।
११	राम रिझाय ले, जिभ्या के रस स्वाद ।	सुमिरन ।
११	राम रिझाय ले, जिह्वा सों कर मोत ।	सुमिरन ।
११	राम रिझाय ले, मुख अमृत गुन गाय ।	सुमिरन ।
११	रामानंद को,	सतगुरु ।
११	रेख सींदूर अरु,	पतिव्रता ।
११	रेखा कर्म को,	कर्म ।
११	लहरि समुद्र की, कभी न निष्फल जाय ।	संगति ।
११	लहरि समुद्र की, केती आवै जाँहि ।	मन ।
११	लहरि समुद्र की, मोती बिखरै आय ।	निगुरा ।
११	लोहां एक है,	एकता ।
११	लौंग इलायची,	साधु ।
११	लज्जा लोक का,	सौच ।
११	वह तो एक है,	भेष ।
११	वह मन कित गया,	मन ।
११	रा दिन याद कर,	चितावनो ।
११	विष धर बहु मिले,	संगति ।
११	व्यास कथा करै,	चानक ।
११	संजडे ही जडा,	कर्म ।
११	सतगुरु सरन को,	चितावनो ।

करीर सतगुरु भेप्रिये,	सगति ।	९६,	६५
" सतियो कसतियो,	सती ।	२१६	१६
" मय पट आनमा,	साग्राही ।	३५०,	११
मय जग निरधना,	सुमिरन ।	११९,	३३
मय जग हेरिया	साधु ।	७०,	१४५
सय ते हम बुरे,	दानता ।	४३५,	१३
मय सुख राम है,	काल ।	२९६,	३९
समझा कहत ह,	मतगुरु ।	२८,	९३
साकट मी सभा,	निगुरा ।	५१,	४२
सागी सा मिया,	अत्रिहट ।	३४१,	२
माधू दुरमति,	माधु ।	७७,	२०८
सालिग रामका,	भर्म पिद्यस ।	३४३,	११
" सिरजन हार पिन,	अत्रिहड ।	३४१,	५
" सीतल जल नही,	साधु ।	६२,	७८
" सीप समुद्रकी, खारा जलनहि लेय ।	पतिव्रता ।	२१८,	१४
" " " रटै पियास पियास ।	"	,	१३
" सुखकु जाय था,	दग्व ।	४०५,	२
" सुपन रैन के, उधरी आयै नैन ।	चिन्तापनी ।	१७३,	१४
" " ' पडा कलेजे छेका ।	प्रिह ।	१६३,	३५
" सुमिरन अग का,	सुमिरन ।	१३४,	१७७
" सुमिरन सार ह,	,	१२७,	१११
" सूरत मित्र की	प्रेम ।	१५८,	७९
" सूता क्या करे, उठिन भजो भगवान ।	सुमिरन ।	१२३,	७०
" " " ऊठि न रोयो दूख ।	'	'	७३

करीर सूता क्या करै, काहे न देखै जाग ।	सुभिरन	१२३	७५
" " ' गुन सतगुरुका गाय ।	'	'	७१
" " " जागन को कर चौप ।	'	"	७४
" " ' जागो जपो मुरार ।	"	१२२,	६९
" " " सूते होय अकान ।	"	१२३,	७२
' सेरी साकरी,	मन ।	२६५,	१८
" सेवा दाउ भला,	साधु ।	७३,	१७०
" सो धन सचिये,	आसा तृत्ता ।	४०१,	२१
" सोचि प्रिचारिया,	प्रिचार ।	४२१,	१
" सोई दिन भग,	साधु ।	५३,	३
" सोई पौर है,	दया ।	४३३,	२१
" मोई सुमा, जाके पाचौ हाथ ।	सूरमा ।	२२६,	३
' ' " पाचौ राखा चूर ।	'		२
" " ' मन मा माटे जूझ ।		"	१
करीर सगति साधुकी, करहु न निरफल जाय ।	सगति	८९,	२
" " " जो करि नाने कोय ।	'	"	६
करीर सगति साधु का, जो की भूखो गाय ।	सगति ।	"	३
करीर सगति साधु की, नित प्रति कीनै जाय ।	सगति ।	"	१
करीर सगति साधु की, निरफल कर्मो न होय ।	सगति ।	"	५
करीर सगति साधु की, ज्यौ गधीका बाम ।	सगति ।	"	४
करीर सर्गो साधु का,	उपदेस ।	१९६,	३१
करीर ससे जाय में,	सनीयन ।	३३६,	११
करीर ससे दूर कर,	सनीयन ।	"	१२
करीर साई मिलहिगे,	प्रिनती ।	४३७,	१३

कवीर माई मूझ को,	स्वाद ।	४११,	९
कवीर सांचा सूरमा,	सूरमा ।	२३७,	१११
कवीर सुंदरि यौ कहै,	विरह ।	१६३,	३२
कवीर सज्ज सरोर में,	सज्ज ।	२०२,	१
कवीर स्वामी कोय नहीं,	चानक ।	३०८,	१९
कवीर हृद के जोब मो,	बेहद ।	३३८,	१३
कवीर हम गुरु रस पिया,	प्रेम ।	१५४,	३७
कवीरे हम सब को कहै,	विचार ।	४२३,	१५
कवीर हमने घर किया,	करनी ।	३६४,	२४
कवीर हमरा कोई नहि,	साधु ।	७०,	१४३
कवीर हमरे नाम बल,	सुमिरन ।	११८,	३०
कवीर हरि जाना नहीं,	मान ।	३९८,	२५
कवीर हरि का डरपता,	लगनी ।	३६८,	२५
कवीर हरि के नाम में, बात चलावै और ।	सुमिरन ।	११८,	३२
कवीर हरि के नाम में, सुरति रहै करतार ।	सुमिरन ।	"	३१
कवीर हरिके मिलन की,	सुमिरन ।	११९,	३८
कवीर हरिके लुठते,	गुरुदेव ।	८,	४०
कवीर हरि रस जिन पिया अन्तरगत लो खाय ।	रस ।	२६२,	१
कवीर हरि रस जिन पिया, मांगे सोम कलाल ।	रस ।	"	४
कवीर हरिरस बसत है,	रस ।	"	३
कवीर हरिरस बरपिया,	निगुरा ।	४८,	१७
कवीर हरिरस भरि पिया,	रस ।	२६२,	२
कवीर हरि मों हेत कर,	काल ।	२९६,	३८
" हरि हरि सुमिरि ले,	सुमिरन ।	१२७,	११२

कबीर हसना दूर कर,	विरह ।	१९३,	३३
कबीर हीरा बनिजिया, महँगे मोल अपार ।	सूरमा ।	२२६,	७
कबीर हीरा, बनिजिया, हिरदे प्रगटी खानि ।	सतगुरु ।	२५,	६३
कबीर हृदय कठोर के,	निगुरा ।	४७,	१४

रु

कई बार नहि करि सकै,	साधु ।	५३,	६ ^१
कछु कहि नीच न छेड़िये,	प्रकृतिगुन ।	३८८,	८
कठिन कमान कबीर की,	सूरमा ।	२३२,	६१
कठिनाई कछु है नहा,	सूरमा ।	२३७,	११२
कडी कमान कबीर की, धरी रहै मैदान ।	सूरमा ।	२३२,	६२
कडी कमान कबीर को, न्यारे न्यारे तीर ।	सूरमा ।	"	६३
कडी कमान कबीर की, काचा टिकै न कोय ।	सूरमा ।	"	६४
कडी है धारा राम की,	सूरमा ।	"	६५
कथत कथत जुग थाकिया,	निजकर्ता ।	३७१,	२०
कथते हैं करते नहा,	कथनी ।	३६१,	१०
कथते हैं करते सही,	कथनी ।	"	११
कथते बरतै पचि मुये,	करनी ।	३६४,	१७
कथनी कपि कला फिर,	कथनी ।	३६१,	५
कथनी कथे अगाध की,	करनी ।	३६५,	३२
कथनी कथे तो क्या हुआ,	कथनी ।	३६०,	१
कथनी काची है गडे,	कथनी ।	"	२
कथनी कू धीजू नहीं,	कथनी ।	३६१,	७
कथनी के मूर घने,	कथनी ।	"	८
कथनी को तो भानि के,	कथनी ।	"	९
कथनी थोथी जगत में,	कथनी ।	"	६

कथनी ब्रदनी छाड दे,	कथनी ।	३६०,	४
कथनी मीठी स्वाड मी,	कथनी ।	,,	३
कथा करो कर्तार को, निसदिन साझ सकार ।	उपदेस ।	१९७,	४४
कथा करो कर्तार को, सुनो कथा कर्तार ।	"	"	४७
कथा कीरतन करन को,	"	"	४१
कथा कीरतन कलि प्रिय, नरवे को उपकार ।	"	"	४८
कथा कीरतन कलि प्रिये, भीसागर को नाव ।	"	१९६,	४०
कथा कीरतन छाडि के,	"	१९७,	४२
कथा कीरतन रात दिन,	"	"	४३
कथा कीरतन सुनन को,	"	"	४९
कल कृपा गुरु हृदया,	गुरु पारख ।	३४,	२८
कापट कुटिलता दूर्ध्वचन,	साधु ।	६६,	११८
कापट कुटिलता छाडि के,	"	"	११७
कापटी कदो न ऊधरे,	कापट ।	४०४,	१५
कापटी का गुरु चातुरी,	कापट ।	४०३,	११
कापटी के मन कापट बसे,	कापट ।	४०४,	१७
कापटी भिन्न न कोजिये,	कापट ।	४०४,	१६
कापास विनूठा कापडा,	कानक कामिनी ।	२९१,	९७
कफ काया चित चरुमका,	विपर्यय ।	२५७,	५२
कगहुँक मन गगन हि चढे,	मन ।	२७१,	६४
कगहुँक , मंदिर मालियो,	सन्तोष ।	४२८,	८
कनठ पत्र हैं साधु जन,	साधु ।	६७,	१२६
कर कानान मर साधि के,	सतगुरु ।	२५,	६६
कर गदन दुर्जन वचन,	सव्द ।	२०६,	४०

कर जोरै विनना करू,	विनता ।	४३७,	२४
जरगम सम दुर्जन उचन,	क्षमा ।	४२६,	५
करता की गति अगम है,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७७,	२९
करता था तो क्यों रहा,	उपदेस ।	१९९,	६७
करता दीसै कीरतन,	चानक ।	३०८,	१३
करना करनी सब कहै,	धरनी ।	३६३,	७
करना कर मो पूत हमारा,	करनी ।	३६५,	३३
करना का रजमा नहीं, करनी कथै अपार ।	करनी ।	३६३,	५
करनी का रजमा नहीं, करनी मेर समान ।	करनी ।	३६३,	८
करना गर्व न काजिये,	करनी ।	३६३,	८
करनी विन कथनी कथै, अज्ञानी दिनरात ।	करनी ।	३६२,	४
करना विन कथनी कथै, गुरुपद लही न नाय ।	करनी ।	३६२,	३
करना निचारी क्या करै,	दुख ।	४०६,	१०
कर्म कचोड़ आतमा,	कर्म ।	४०७,	१
कर्म हमारे काटि है,	भर्मविग्रस ।	३४५,	३८
काहु छाड बुल लान,	मतगुरु ।	२९,	९८
करिये तो करि जानिये,	भेष ।	८३,	४४
कर दूरि अज्ञानता,	गुरुद्वय ।	१५,	८४
करै बुराई सुख चाहै,	कर्म ।	४०८,	११
करै सुहाली लापसा,	प्रिभिचारिनि ।	२२५,	२०
करक पडा मैदान में,	माया ।	२८३,	५८
कर्म आपना परखि ले,	कर्म ।	४०९,	२२
कर्म करीमा लिखि रहा, अत्र कहु लिखा न होय । निश्चा०	निश्चा०	२१२,	२८
“ “ नर सिर भाग अभाग । निश्चा०	निश्चा०	२१२,	२९

कर्म फट जग फदिया,	मन्द ।	२०८,	५५
कलि का ब्राह्मन मसग्वरा,	पटित ।	३८२,	१८
कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धर खटाय ।	चानक ।	३०७,	७
“ “ मनसा रहै बधाय ।	चानक ।	३०७,	६
कलि के गुरुना लालची,	गुरु पारख ।	३२,	१३
कलियुग एकै नाम है,	साधु ।	७१,	१५८
कलियुग काल पठाइया,	नशा ।	४१७,	१
कलियुग केरे ब्राह्मना,	मांसाहार ।	४१३,	१०
कवि तो कोटिन कोटि हैं,	भेष ।	८६,	६८
कसत कसौटी जो टिकै,	कसौटी ।	३७४,	९
कस्तूरी नाभी वसे, नाभि कमल हरि नाम ।	व्यापक ।	३२६,	१३
“ “ मिरग हूँ है वन मोहि ।	व्यापक ।	३२६,	१२
कह अकास को फेर है,	साधु ।	५९,	५९
कहत सुनत जग जात है,	चिन्ताग्रनी ।	१८१,	००
कहत सुनत सत्र दिन गये,	मन ।	२७३,	८२
कहता हू कहि जात हू, कहा जो मान हमार ।	मासा०	४१६,	४१
“ “ कहू बजाये ढोल ।	सुमिरन ।	१३०,	३९
“ “ देता हू हेला ।	गुरु पारख ।	३८,	६७
“ “ मानै नहीं गमार ।	काम ।	३९०,	१५
“ “ सुनता है सत्र कोय ।	सुमिरन ।	१३२,	१५७
कहते को कहि जान दे,	उपदेस ।	१९५,	२८
कहना था गो कहि दिया, अब कछु कहा न जाय ।	परि०	१३७,	२१
“ “ “ अब कछु कहना नहि । ”		१४७,	१०४
कहने को चूम नहीं,	सन्द ।	२०९,	७३

कहने जसा बात नहीं,	मत ।	३२२,	४४
कहा करु में जलि गया,	कर्म ।	४०८,	८
कहा दिया हम आयके,	चिन्तामनी ।	१८०,	७८
कहा चुनाने मेटिया, चूना माटी छाय ।		१७८,	६१
, , , लखी भीत उत्तारि ।		"	६२
कहा बगाने नाहिर,	वपट ।	४०३,	१३
कहा बरनौ काति छनि,	बेहद ।	३३९,	२२
कहा भयो तन बाछुरे,	प्रेम ।	१५७,	६५
कहा भरासा देहका,	सुमिरन ।	१३०,	१३७
कहा बुद सायर मिला,	प्रश्नात्तर ।	४४०,	३
कहा स आया जीन यह,	"	४४३,	३६
कहे दरभारा गतरा	सुरमा ।	२३४,	७७
कहे पात वा झाट भा,	काल ।	२९५,	२८
कहे कनिर गुरु प्रेम बम,	सेवन ।	१०३,	३८
कहे कनिर चित चेतहु,	निजगर्नी ।	३७२,	३०
कहे कनिर तू दृष्टि ले,	सुमिरन ।	१२४,	६७
कहे कनिर धर्मदाम सौ,	चानक ।	३०९,	२६
कहे कनोर गुरुसा मिल,	गुरुदेव ।	१५,	८१
कहे कनोर तनि भरम का,	"	१३,	६२
कहे कनोर पुनारि क, चेते नाहा काय ।	चिन्तामनी ।	१८५,	१३१
, , , तोय बात लग्यि लेय ।	उपदेस ।	१९४,	१४
, , , (कोय) सत निवना होय ।	निवक ।	४२१,	५
कहे कनोरा देह त,	उपदेस ।	१९४,	१५

का

काग साधु दरसन कियो,	साधु ।	७७, २१२
कागद केरी नागरी, पानी केरी गग ।	मन ।	२७१, ६६
कागद , पाहन गरुया भार ।	भर्मविच्यस ।	३४४, १८
कागद लिख सो कागदा	आत्मारुभव ।	३१०, ७
कागा करव ढढोरिया,	गिरह ।	१६७, ७३
,, करक न चूथिरे,	,,	१६८, ७५
,, काका धन हरे,	सब्द ।	२०९, ७१
,, ते हमा भयो,	साधु ।	७८, २१५
काच कथीर अधीर नर, जतन करत है भग ।	क्षमा ।	४२६, ६
काचा सेती मति मिलै,	सगति ।	९४, ४९
काची काया मन अधिर,	काल ।	२९७, ४३
काची रती मति करो,	सजीवन ।	३३६, ६
काचै का क्या ताडये,	क्षमा ।	४२६, ७
काचै गुरु के मिलन से,	गुरु पारख ।	३५, ३९
काज वनागत कारटा,	विभिचारिन ।	२२५, २२
काजर केरी कोठरी, एसो यह ससार ।	टाखातन ।	१०४, ८
,, , काजर ह का कोट ।	,,	,, ९
,, , ममिके किये कपाट ।	भर्मविच्यस ।	३४३, १४
काजठ तजै न स्यामना,	प्रकृतिगुन ।	३८८, ६
काजी का वेटा मुआ,	मासाहार ।	४१४, २५
काना तुझे करीम का,	मासाहार ।	४१४, २४
काजी मुलना भरनिया,	मासाहार ।	४१४, २९
काठहु जम के फट,	सुमिरन ।	१२५, ८७

काटा कटा जो कर,	मासाहार ।	४१३,	१८
काटा कटा माछरी,	मन ।	२७३,	७२
काट नधन विपति में,	निनकर्ता ।	३७२,	२९
काठ हि घुन नो खाइया,	ग्रिह ।	१६६,	५८
कान लगी सुनहा कहें,	काल ।	२०४,	१३
कान हसिया मुन्म प्रक्रिया,	सूरमा ।	२३८,	१२०
कावा फिर कारी भया,	म य ।	३१४,	८
काम कथा सुनिये नहीं,	उपदेस ।	१९७,	४५
काम कहर असवार हं,	काम ।	३९०,	१६
काम काम सब काट रहे,	॥	३९०,	१२
काम क्रोध तस्ना तनै,	उपदेस ।	२०१,	८७
काम क्रोध मट लोभ की,	काम ।	३९०,	१४
॥ काव मूलक सदा, ये मूलक सग देहक (३) प्रश्ना० ।	८४७	७३	
॥ ॥ ॥ सील सरोवर न्हाइये (३) ॥	॥	७७	
॥ हरकत बल धटै,	नशा ।	४१७,	६
कामिनी कारी नागिनी,	कनक कामिनी ।	२८८,	२८
॥ सुंदर सर्पिनी,	॥	॥	२९
कामी अमा न भाई,	काम ।	३८०,	७
॥ नन्द न गुरु भनै,	॥	॥	२
॥ का गुरु कामिनी,	॥	॥	१
॥ कुत्ता तीस दिन,	॥	॥	३
॥ चर्म का केंचुली,	॥	॥	८
॥ तिर कावी तिरै, लोभा की गति होय ।	आनदप्र ।	३८७,	६
॥ ॥ ॥ ॥ ओमी तिरै अनत ।	त्रिभिचारिनि ।	२२५,	२ १

कामी तो निर्भय भया,
 ,, लज्जा ना करे,
 ,, सें कुत्ता भला,
 ,, क्रोधी लालची,
 ,, ,, ,,
 काय कमटल भरि लिया,
 कायन कागन काडिया,
 कायर कचरी . ब्रिठिके,
 कायर का काचा मना,
 कायर का घर फुसका,
 कायर काम न आई,
 कायर को कौतुक भला,
 कायर बहुत पमाई,
 कायर भया न छुटि हो,
 कायर भागा पीठ दे,
 कायर सेरी ताकि के,
 कायर हुआ न छुटि है,
 काया कजरी बन अहं,
 काया कफ चित चक्रमक,
 काया कसौ कमान च्यौ,
 काया खेत किसान मन,
 काया देखल मन घना,
 ,, मंजन क्या करे,
 ,, माहि समुद्र है,

काम ।	३८९,	६
,,	,,	५
,,	३९१	१८
,,	३८९,	४
भक्ति ।	११०,	३४
लगनी ।	३६७,	१८
चितावनी ।	१७५,	३८
सूरमा ।	२३८,	११८
,,	,,	११७
,,	२३५,	८८
,,	२३९,	१३४
,,	२३५,	८७
,,	,,	८९
,,	,,	८६ .
,,	,,	९१
,,	,,	९०
,,	२३४,	८५
मन ।	२७२,	७३
व्यापक ।	३२६,	९
मन ।	२७२,	७५
कर्म ।	४०७,	३
मन ।	२७२,	७४
चितावनी ।	१८१,	६२
जीवनमृतक ।	३३१,	६

चाया सिप मसार मे,	परिचय ।	१८४,	७४
„ मों कारज करे,	उपदेस ।	२०१,	८
काल करम तत्काल है,	उपदेस ।	१९३,	४
„ करै सो आज कर, आज करै सो अव्व । चिन्तामनी ।	१११७,	५३	
„ करै सो आज कर, सब हीं साज तुम साथ । „	„	५२	
„ कैसे कसनाय कर्म,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१४
„ काल तत्काल है,	उपदेस ।	१९३,	३
„ काल मव कोट कहै,	काल ।	३००,	७५
„ के माथे पान दे,	सतगुरु ।	२७,	७९
„ चिन्ताना है, मडा,	काल ।	२९२,	३
„ चक्र चक्की चले,	चिन्तामनी ।	१८४,	१२२
„ जीव को प्रासई,	काल ।	२९२,	१
„ जीव मानै नहीं,	उपदेस ।	१९९,	७०
„ पाय जग उपजो,	काल ।	३००,	७४
„ फिरै सिर ऊपरै, जीव हि नजरि न आय । सव्द ।	२०५,	२६	
„ फिरै सिर ऊपरै, हाथों धरी कमान ।	काल ।	३००,	७६
„ हमारे सग है,	काल ।	२९२,	२
काला मुख कर मानका,	मान ।	३९७,	१०
„ मुँह करि करट का,	मामाहार ।	४१५,	३०
„ मुँह करु करम का,	कर्म ।	४०७,	४
कासी काया एक है,	एकता ।	३२३,	४
काहू जुगति ना जानिया,	मोह ।	३९४,	११
„ को नहि निन्दिये, चाहे जैसा होय ।	निन्दा ।	३८५,	१६
„ को नहि निन्दिये, सबको कहिये सत ।	निन्दा ।	३८६,	२५

काहू को न संतापिये,	दासातन ।	१०६,	२१
काहे को कल्पत फिरे, काहे पावे दूख ।	विश्वास ।	२१३,	३२
,, को कल्पत फिरे, दुखी होत बेकाम ।	सहज ।	३१३,	६
क्रिये बिना मागे बिना,	विश्वास ।	२१३,	३७
किगतनियारें काम बिस,	पारख ।	३५४,	२४
कीड़ी जु चाली सासरे,	विपर्यय ।	२६०,	६०
कीया कल न होत है,	समर्थ ।	३०१,	७
कुल करनी कुल करम गति,	परिचय ।	१४१,	४६
कुटिल वचन मय ते बुरा,	सब्द ।	२०६,	३९
कुटिल वचन नहि बोलिये,	,,	२०६,	४१
कुटरत पाडे गरी सों	सतगुरु ।	२६,	७३
कुबुद्धि कमानो चडि रहै,	सब्द ।	२०६,	३८
कुबुद्धि को मझे नहीं,	भर्मविध्वंस ।	३४८,	६१
कुमति किर्मा का मिटि गई,	प्रश्नोत्तर ।	४४७,	७१
कुमति कांच चेला भरा,	गुरुदेव ।	४,	१२
कुमति चित का मिटि गई,	प्रश्नोत्तर ।	४४७,	७२
कुमति हती सो मिटि गई,	,,	,,	७०
कुल क्षेत्र सब मैदिनी,	मोह ।	३९४,	१०
कुल करनी के कारनै, दिगहि रहि गया राम ।	चि० ।	१८१,	८९
,, ,, ,, हसा गयो विगोय ।	,,	० ,,	८८
कुल करनी छूटे नहीं,	करनी ।	३६४,	१८
कुल खोये कुल ऊबरे,	चितावनी ।	१८१,	८७
कुल टूटे कार्या पडी,	संगति ।	९४,	५१
कुल मारग छोडा नहीं,	पंडित ।	३८३,	३४

कुसलता कोटिक मिले,
 कुसल कुसल जो पूछता,
 कुसल जो पूछो असल की,
 कूकर बहु बहु जरि मुआ,
 कूकस कूटै कन रिना,
 कूप पराया आपना,
 कूसगति लागे नहीं,
 केना जिन्या रस भवै,
 केता बहाया वहि गया,
 केते पडि गुनि पचि मुआ,
 केता कहू बुझाय के,
 केसन कहा बिगारिया,
 केसन कहि कहि कृकिये,
 केसू भैर न नैटहीं,
 के कुसल अनजान के,

* के खाना के सोनना, सतगुरु सब्द बिसारिया । (३)चि० । १७६, ४७
 " " हरिसा प्रातम बीसरा (३) चानक । ३०७, ४
 के तू लोरे मुकदमी,
 के निरहिनी को मीच दे,
 के मासे भर नाम है,
 के रती भर सुरति है,
 कंसा मा सामर्थ हो,
 कोइ एक ज्ञानी पारखी,
 कोइ कुरग चित जय मिले,

साधु । ७६, १९५,
 काल । २९४, १८
 " " २१
 विपर्यय । २५३, २६
 कयनी । ३६१, १२
 कनक कामिनी । २८६, ११
 सगति । ९६, ७०.
 साधु । ७७, २११
 कनक कामिनी । २९१, ५६
 सतगुरु । २९, ९७
 चिताननी । १८५, १३३
 भेष । ८१, २१
 सुमिरन । १२४, ७९
 कपट । ४०३, १२
 काल । २९४, २०
 " " १७६, ४७
 " " ३०७, ४
 भर्मनिघ्नस । ३४७, ५३
 बिरह । १६४, ४४
 प्रभात्तर । ४४५, ५४
 " ४४५, ४८
 करनी । ३६५, ३०
 पारख । ३५७, ५८
 पारख । ३५७, ५३

कोड मरि तिर तोय सू,
 बाइला भि ह्वे ऊनल,
 कोई अप्रै भाव ले,
 कोई न जम सों प्राचिया,
 कोटि करम वटि पलकमें, रचक अप्रै नाम ।
 कोटि करम कौ पलक में, या मन प्रियया स्वाद ।
 कोटि करम लागे रहें,
 कोटि कोटि तारथ करे,
 कोटि नाम ससार में,
 कोटि सयान पचि मुये,
 कोटि सगरे काम,
 कोटिन चदा ऊगहों,
 कोट ऊपर दौटना,
 कोन पडा न छुटि है,
 कोतुन देखा देह प्रिना,
 कोन कमे कसनाम को,
 कोन जगप्रै ब्रह्म का,
 कोन तुम्हारा जालि है,
 कोन देस कहाँ आइया,
 कोन देस ते आइया,
 कोन परन घर मचो,
 कोन परन धरती उसै,
 „ परन ले आइई,
 „ राम दसरथ घर डोले,

सरमा ।	२४१,	१४८
सगति ।	९३	४४
साधु ।	६७,	१२२
सुमिरन ।	११८,	२८
सुमिरन ।	१२१,	५७
मन ।	२७१,	६५
क्रोध ।	३९१,	२
साधु ।	६२,	८१
सुमिरन ।	११७,	१६
भेद ।	३१८,	०
उपदेस ।	१९६,	३५
गुरुदेव ।	१३,	६४
चित्ताननी ।	१८२,	१०३
मूला ।	२३४,	८३
परिचय ।	१३९,	३५
प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१३
प्रश्नोत्तर ।	४४५,	५०
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३४
सूक्ष्ममार्ग ।	३७६,	१४
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३७
प्रश्नोत्तर ।	४४२,	२२
प्रश्नोत्तर ।	„	२६
„	४४३,	२८
„	४४४,	४०

कौन राम दसरथ घर डोलै,
 ,, सरोवर पानी मिनु,
 कौन साधु का खेल है,
 ,, सुरति ले आवई,
 कौन सज्ज की नगरी,
 कौर माधु दरमन कियो,
 कचन को कछु ना लगे,
 कचन को तजयो सहल,
 कचन केनट गुरु भजन,
 कचन तनना सहज है,
 कचन दाया कन ने,
 कचन मेरु अरपही,
 ,, भी पारस पगमि,
 काकर पायर जोडि के,
 काच कथीर अमीर नर, ताहि न ऊपजी प्रेम ।
 कासै ऊपर चौतुरी,
 कुनर मुख से कन गिरा,
 कुमै प्राधा जल रह,
 कन्या नल अरु कारन,
 कृष्ण करीमा एक है,
 क्या करिये क्या जोडिये,
 क्या मुख ले विनती करु,
 क्यों खोवै नर तन प्रिया,
 क्यों छूटै जम जाल,

निजवर्ता ।	३७१,	२४
प्रश्नोत्तर ।	४४१,	११
प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४४
,,	,,	३८
प्रश्नोत्तर ।	४४१,	९
साधु ।	७७,	२१४
उपदेश ।	२००,	७४
निन्दा ।	३८६,	२६
साच ।	४३१,	१७
मान ।	३९६,	८
साधु ।	५६,	२७
निगुरा ।	४९,	२५
ममति ।	९५,	६३
भर्मविप्रस ।	३४४,	२०
कसीटी ।	३७४,	८
नेहद ।	३३९,	१७
दया ।	४३३,	१६
मन ।	२७४,	९२
आनदेव ।	३८७,	५
एकता ।	३२३,	३
चितावनी ।	१८९,	१७४
विनती ।	४३६,	२
चिन्तावनी ।	१९१,	१९२
सुमिरन ।	१२५,	८६

क्यों नृप नारी निन्दिये,
क्रिया करे अगुरि गिने,
क्रोध अग्नि घर घर बढी,

साधु । ६०, ६६
सुमिरन । १३१, १५०
क्रोध । ३९१, १

ख

खर कृकर की भीख जो,
खरी कसौटी तोलता,

भीख । ८८, १५
कसौटी । ३७४, ३

खरी कसौटी रामकी, काचा टिकै न कोय ।

, । ३७३, २

,, ,, ,, खोटा टिकै न कोय । जीनतमृतक ।

३३२, २२

खलक मिला खाली हुआ,

चिन्तामनी । - १८४, १२७

खसम उलटि बेठा भया,

निपर्यय । २५७, ५०

खसम कहानै भस्मन,

निगुरा । ५१, ४८

खद्ग मीठा चपरा,

स्वाद । ४१०, १

खद्ग मीठा देखिके,

,, ,, २

खाख लपेटे जो रहै,

उपदेश । २०१, ९०

खाटा मीठा खाय कर,

स्वाद । ४११, १३

खान खरचन बहु अन्तरा,

माया । २८१, ३६

खाय पकाय लुटाय के,

उपदेश । १९३, १०

खाय पकाय लुटाय ले,

,, ,, ९

खाला नाला हीम जल,

परिचय । १४७, १०७

खालिक बिन खाली नहीं,

व्यापक । ३३, ४७

खाला माधु न प्रिदा करू,

साधु । ५५, १९

खुली खेलो ससार में,

काल । २९९, ६३

खुश खाना है खोचडी,

मासाहार । ४१६, ४०

खेत न छाड़ै सूरमा,	सूरमा ।	२२९,	३५
खेत विगार्यो खलुबा,	भक्ति ।	११२,	४७
खेल जु मँडा खिलाडि सों,	प्रेम ।	१५७,	७१
खेळ मचा खेलाडि सों,	सतगुरु ।	२८,	९०
खेह भई तो क्या भया,	जीवितमृतक ।	३३४,	३४
खोजि पकरि विश्वास गहु,	विश्वास ।	२११,	१४
खोजी को डर बहुत है,	सूरमा ।	२३३,	७४
खोजी हुआ सय्य का,	सन्द ।	२०४,	१८
खोद खाद धरती सहे,	”	२०६,	४३
खेभा एक गयंद दो,	मान ।	३९७,	१२
खांड खिलौना एक है,	एकता ।	३२४,	१३
खांड खिलौने तुम कहो,	”	”	१४
खांडा तिसको बाहिये,	सूरमा ।	२१४,	८२
खैचूं तो अनि नहीं,	मन ।	२७०,	५७

ग

गगन गरजि बरयै अमो,	परिचय ।	१४२,	५९
गगन दमामा बाजिया, पडत निसानै चोट ।	सूरमा ।	२२७,	१२
” ” ” पडत निसानै घाय ।	”	”	१३
” ” ” हनहनिमा के कान ।	”	”	१४
गगन वुंद सायर मिला,	प्रश्नोत्तर ।	४४०,	४
गगन मंडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोर ।	परिचय ।	१४२,	६४
” ” ” झलकै सतका नूर ।	”	”	६०
” ” ” तहरो झलकै नूर ।	निगुरा ।	४७,	१३

गगन मडल के नीचे, तुरी तत्त इक गात्र परिचय ।	१४२,	६३
" " " विना कलम की आप ।	"	६२
" " " महल पडा इक चीन्हि ।	"	६१
गगन महल भाठा रही,	वेहद ।	३४१, ३३
गरजे गगन अमा चुने, तहा कबीरा वदगो(३)परिचय ।	१४३,	६६
" " " तहाँ कबीरा सतजन(३) "	१४२,	६५
गरभ जागेश्वर गुरु विना,	निगुरा ।	४६, ४
गला काटि कज्जा भरे,	मासाहार ।	४१५, ३३
गला काटि विसमिल करे,	"	३४
गला गुँसा को काटिये,	"	३५
गलों तुम्हारे नाम पर,	बिरह ।	१६७, ६९
गहरी प्रीति सुजान की,	प्रेम ।	१५८, ७८
गहे सब्द निज मूल,	सब्द ।	२०८, ६३
गागर ऊपर गागरी,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७५, ०
गाय भेंस घोड़ी गधी,	कलकामिनी ।	२९०, ४४
गाय रोय हसि खेलिके,	"	४३
गाया निन पाया नहीं,	विश्वास ।	२११, १७
गार अगारा कोष झल,	क्रोध ।	३९२, ६
गारी मोटा ज्ञान,	उपदेस ।	१९६, ३४
गारी हो सैं ऊपरै,	"	३६
गाननिया के मुख बस	पारख ।	३५४, २३
गानन ही में रोगना,	विश्वास ।	२११, १८
गाहक मिले तो कुछ कहू,	पारख ।	३५३, १८
गिहरी का दुखटा चुरा,	सुमिरन ।	१२४, ८१

गिरही-का चिन्ता घना,	भेष ।	८७,	७७
गिरही द्वारे जाय के,	भेष ।	८४,	४७
गिरही सेवै साधु को, भाव भक्ति आनंद ।	भेष ।	,,	५४
गिरही सेवै साधु का, साधू सुमरै नाम ।	भेष ।	,,	५३
गिरिये परमत मिश्र ते,	सगति ।	९३,	४२
गिरिवर धार्यो वृक्षनी,	निनमर्ता ।	३७०,	१५
गु अधियारी जानिये,	गुरु पारख ।	३६,	४३
गुन इन्द्रो महजे गये,	परिचय ।	१४६,	९२
गुन गाये गुनना कटे,	सुमिरन ।	१२४,	८४
गुनगता औ द्रव्य को,	प्रेम ।	१५६,	६४
गुरु आज्ञा ले आनई,	सेवक ।	१०३,	३७
गुरु आज्ञा ते जो रमै,	भेष ।	८५,	५८
गुरु आज्ञा मानै नहीं,	सेवक ।	१०१,	१०
गुरु मिया है देह का,	गुरु पारख ।	३३,	२८
गुरु को आज्ञा आनई,	गुरुदेव ।	४,	९
गुरु को महिमा को कहै,	गुरुदेव ।	७,	३१
गुरु की सूना आत्मा,	गुरुपारख ।	३५,	३८
गुरु कीन जानि के,	गुरुशिष्यहेरा ।	४५,	४९
गुरु कुम्हार सिष कुम है,	गुरुदेव ।	५,	१४
गुरु के सन्मुख जो रहे,	भेष ।	८५,	५९
गुरु को कीजै दंडनत,	गुरुदेव ।	३,	१
गुरु को चेला वीष दे,	माया ।	२८३,	६१
गुरु को दाप रती नहीं,	गुरु शिष्य हेरा ।	४३,	३५
गुरु को पूजै गुरु मुग्धो,	उपदेस ।	२०२,	९४
१७ गुरु का मानुष जो मिले,	गुरुदेव ।	५,	२०

गुरु को मानुष जानते,	गुरुदेव ।	५	२१
गुरु को सिर पर राखिये,	गुरुदेव ।	॥	१९
गुरु गोविंद करि जानिये,	गुरुदेव ।	३,	३
गुरु गोविंद दोउ एक है,	गुरुदेव ।	॥	५
गुरु गोविंद दोऊ खडे,	गुरुदेव ।	॥	४
गुरु जहाज हम पावना,	काल ।	२९९,	६२
गुरु जो बसै बनारसी,	गुरुदेव ।	५,	१७
गुरु तुम्हारा कहाँ बसै,	प्रश्नोत्तर ।	४४०,	१
गुरु तो ऐसा कीजिये, (सत्र)वस्तु व्यापक होय ।	गुरु०पा०	३५,	३६
॥ ॥ ॥ तत्व दिखावै सार । ॥	॥	॥	३७
गुरु तो ऐसा चाहिये, धिप सौ कलु न लेय ।	गुरु०शि०हे०	४५,	५०
गुरु दरिया सूभर भरा,	जीवनमृतक ।	३३१,	१०
गुरु दाज्ञा चेला जला,	विपर्यय ।	२५८,	५३
गुरु धोबी सिप कापडा, निकसै जोति अपार(४)गुरु०।	४,	१३	
॥ ॥ ॥ निकसै रंग अपार(४)प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१६	
गुरु नहीं चेला नहीं,	मध्य ।	३१५,	१८
गुरु नारायन रूप है,	गुरुदेव ।	६,	२४
गुरु पसु नर पसु नारि पसु,	विवेक ।	४२०,	४
गुरु पारस को अन्तरो,	गुरुदेव ।	४,	११
गुरु पारस गुरु पुरुष है,	॥	॥	१०
गुरु बिन अहिनि स नाम ले,	निगुरा ।	४६,	२
॥ ॥ माला फेरते,	॥	॥	३
॥ ॥ ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिलै न मेय ।	गुरु० ।	५,	२२
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ मोष । ॥	६,	२३	

गुरु चेचारा क्या करे, हिरदा मया कठोर ।	गुरुपारख ।	३८, ६४
" " " सद्ध न लागे अंग ।	"	" ६५
" भक्ता मम भक्त है,	गुरुदेव ।	७, ३०
" भक्ति अति कठिन है,	भक्ति ।	११०, ३३
" महिमा गावत सदा,	गुरुदेव ।	६, २५
" मारे गुरु झटकरे,	"	७, २९
" मिला नहि सिध मिला,	गुरुपारख ।	३१, २
" मुख गुरु आज्ञा चले,	सेवक ।	१०३, ३४
" " " चितवत रहे, जैसे भनी मुयंग ।	"	१०२, ३२
" " " " साह दिवान ।	"	१०३, ३३
" " बानी ऊचै,	गुरुदेव ।	७, ३२
" " सद्ध प्रतीत कर,	उपदेस ।	२०१, ८९
" मूर्ति आगे - खड़ी,	गुरुदेव ।	८, ३६
" " गति चंद्रमा,	"	" ३३
" मर्याद न भक्ति पन,	विभिचारिनि ।	२२३, २
" मुक्ताये जीव को,	गुरुदेव ।	६, २७
" लोभी सिध लालची,	गुरुपारख ।	३१, १
" समान दाता नहीं,	गुरुदेव ।	५, १५
" समर्थ सिर पर खडे,	दासातन ।	१०३, ३
" सरनागत छांडिके,	गुरुदेव ।	८, ३५
" सों प्रीति निवाहिये,	"	७, २८
" सों ज्ञान जु लाजिये,	"	४, ८
गुरु सौंज ले सीध का,	गुरुशिष्यहेरा ।	४४, ४०
गुरु हमारा गंगन में,	प्रश्नोत्तर ।	४४०, २

गुरु हानिर चहुँ दिसि खडै,
गुरु हँ पूरा सिप है मूरा,
गुरु है ऋड गोविंद ते,

॥ गुग्गुलु में मेद हँ,

॥ नाम है गम्य का,

॥ प्रतापै साधवों,

॥ विचारा क्या करै, वास न ईधन हाथ । गु शि ह ।

॥ भया नहि सिप भया,

॥ मिले सीतल भया,

॥ समाना सोप में,

गैरा आया गेरा ते,

गैरी ता गलियों फिरै,

गोता भारा सिधु में,

गाधन गन्धन मानिधन,

गोविंद के गुन गोमता,

गोसा ज्ञान कमान का,

गो को अधी मति कहो,

गो जो विष्ठा भक्षई,

गग जमुन के बीच में,

गगा जमुना सुरसती,

गाठि हाथ सो हाथ कर,

गाठी दाम न बाधई,

गूगा हुआ वापरा,

अथन माहीं अर्थ है,

परिचय । १४९, १२६

गुर पारख । ३८, ६६

गुरुदेव । ४, ६

गुरु पारख । ३०, १७

॥ ३५, ४२

॥ ३७, ५४

॥ ४४, ४६

॥ ४५, ४७

परिचय । १३९, ३२

गुरुदेव । ८, ३४

मध्य । ३१६, २४

॥ ३१६, २५

प्रेम । १५३, ३४

सतोष । ४२८, ०

सुमिरन । १०४, ८३

सतगुरु । १९, १६

पारख । ३५८, ६३

नशा । ४१७, ९

लगनी । ३६७, १६

बेहद । ३४१, ३४

उपदेस । १९४, १८

साधु । ६६, १०१

सतगुरु । २६, ७०

लगनी । ३६७, १५

घट का पट्टा मोलिकर,
 ,, बट्ट बट्ट न देखिये,
 ,, बिन बट्ट न देखिये,
 ,, में .. लीवट पाइया,
 ,, में .. जोति .. अनूप है,
 ,, में .. है सखे नहीं,
 ,, समुद्र लखि ना पडे,
 ,, हि नाम की आस करु,
 घटी' बडी, जाने .. नहीं,
 घटि जो बाजे .. राजदर,
 घटि ही .. की आधी घडी,
 घन घसिया जोई मिले,
 घर घर हम सब सौ कडा,
 घर .. जारे घर ऊबरे,
 घर परमेश्वर .. पाहुना,
 घर में घर दिखलाय दे,
 घर में रहे तो भक्ति करु,
 घर में माफत इस्तरी,
 घर रखवाला बाहिरा,
 घाट जगाती धर्मराय, गुरुमुख ले पहिचान ।
 ,, ,, स्रवका झारा लेय ।
 घाट हि पानी सब भरी,
 घायल ऊपर घाय ले,

गुरु पारख । ३८, - ६०,
 व्यापक । ३२७, २
 व्यापक । ३३०, ४८
 परिचय । १४४, ७५
 विश्वास । २११, १९
 भेद । ३१९, २०
 समर्थ । ३०२, १०
 सुमिरन । १२०, ४५
 विपर्यय । २५३, ३५
 काल । २९४, १९
 संगति । ९०, १०
 गुरुशिष्यहेरा । ४४, ३८
 बद्ध । २०९, ६५
 विपर्यय । ३४५, ५
 पतिव्रता । २२१, ४३
 गुरु पारख । ३६, ४८
 भेष । ८७, ७९
 निगुरा । ५१, ४७
 चितावनी । १७८, ६६
 काल । २९८, ६१
 काल । २९८, ५९
 सूक्ष्म मार्ग । ३७७, २५
 शील । ४३७, ८

घायल की गति और है,
घायल तो घूमत फिरे,

सूरमा । २३०, ४६
" " ४१

च

चकरी विछुरी रैन की,
चकी असाढ़ सुदरी,
चतुर त्रिवेकी धीर मत,
चतुराई क्या कीजिये,
चतुराई चूल्ह पडो,
चतुराई पोपट पडो,
चतुराई हरि ना मिले,
चलती चाकी देखि के,
चलते चलते पगु थके,
चलते चलते युग गया,
चलन चलन सब कोइ कहै,
चले गये सो ना मिले,
चलो चलो सत्र कोइ धरै,
चहुँदिस ठाढ़े सूरमा,
चहुँदिस पक्का कोट था,
चाकी चली गोपाल की,
चातक चित हि चुमि गया,
चातक सुत हि पडावई, आन नोर मति लेय । ,,
" " सुनो बात यह तात । ,,
चातुर की चिता धनी,

विरह । १६०, ३
पतिव्रता । २२१, ३८
सेवक । १०२, २८
उपदेस । १९९, ६२
कथनी । ३६२, १८
पंडित । ३८३, ३१
मेघ । ८३, ४०
काल । २९९, ६७
सूक्ष्ममार्ग । ३७७, २६
सतगुरु । २८, ८९
सूक्ष्ममार्ग । ३७६, २०
चितावनी । १८८, १६१
कनककामिनी । २८५, १
काल । २९७, ४६
काल । २९७, ४५
काल । २९९, ६६
पतिव्रता । २२८, ५२
" " ५०
" " ५१
उपदेस । २००, ७३

चार अठारह नौ पड़ि,
 चार ईट चौरासि कुवा,
 चार चरन नौ पंख है,
 चार चिन्ह हरि भक्ति के,
 चार भुजा के भजन में,
 चार वेद पंड्यो कौ,
 चारि सानि में भरमत्ता,
 चाल बकुल की चलत है,
 चाह गई चिन्ता मिटी,
 चिऊँटी चावल ले चली,
 चित कपटी सब सों मिले,
 चित चटकी लागी नहि,
 चित चेतन तानी करै,
 चित चोखा मन निरमला,
 चितमनि पाई चौहटे,
 चित चैन में गरफि रहा,
 चिडिया प्यासी समुँद गई,
 चौकर जमिया चुन का,
 चीर मध्य क्यों तंतु है,
 चूड़ी पटकू पलंग से,
 चेतन चौकी बैठि के,
 चेत सवरे वावरे,
 चोट सतावि विरह की,
 चोट सहै जो सेल की,

पंडित ।	३८२,	२१
भेद ।	३२१,	४३
विपर्यय ।	२५९,	५५
भक्ति ।	११२,	५३
निजकर्ता ।	३७२,	२८
पंडित ।	३८२,	२३
सतगुरु ।	२४,	५१
भेष ।	८०,	१४
संतोष ।	४२८,	४
भर्मविध्यंस ।	३४७,	५१
कपट ।	४०३,	६
चानका ।	३०९,	२७
सूरमा ।	२३०,	४७
सतगुरु ।	२७,	७५
परिचय ।	१४६,	९८
साधु ।	६९,	१४२
समरथ ।	३०५,	४४
विरह ।	१६६,	५९
व्यापका ।	३२८,	३६
विरह ।	१६९,	९२
सतगुरु ।	२६,	६७
चितावनी ।	१९१,	१९३
विरह ।	१६५,	५०
सूरमा ।	२४१,	१४६

चोर चुराई तुंगरी,	करनी ।	३६३,	१२
चोर भरोसे साहु के, जवलग साह न बांधई(३) विप. ।		२४९,	१९
“ “ “ पहिले बांधो साहुके(३) “ “		२४८,	१८
चोरवा भल हम चोन्हिया,	मन ।	२७२,	७८
चौके चिऊँटी चूल्ह घुन,	दया ।	४३३,	१३
चौडै बैठे जाय के,	आसातृत्ना ।	४००,	९
चौदा भुवन भाजि धै,	परिचय ।	१४८,	११६
चौपड मांही चोहटै,	सूरमा ।	२३३,	७२
चौसठ दीवा जोयके,	निगुरा ।	४६,	६
चंचल मन निहचल करै,	मन ।	२७४,	८९
चंचल मनुवा चेतरे,	मन ।	२७१,	६०
चंद सूर घर पवन लौ,	काल ।	२९९,	७०
चंद सूर वा घर नहि,	बेहद ।	३४०,	२८
चंदन काटा जड खनी,	पारख ।	३५५,	३२
चंदन गया विदेसै,	“	३५४,	३०
चंदन जैसे संत हैं,	संगति ।	९२,	३४
चंदन डर लहसुन करै,	“	“,	३५
चंदन डरपै सरपसौ,	दासासन ।	१०६,	२७
चंदन परसा बावना,	संगति ।	९२,	३२
चंदन भांगा गुन करै,	मन ।	२७५,	९८
चंदन रोया रात भरि,	पारख ।	३५४,	३१
चंदा सूरज चलत न दोसै,	प्रकृतिगुन ।	३८८,	९
चांद नहीं सूरज नहीं,	परिचय ।	१४४,	४०
चिन्ता ऐसी डाविनी,	संतोष ।	४२९,	१२

चि चित्त विसारिये,
चिन्ता छाडि अचिन्त रह,
चिन्ता ता सतनाम की,
चिन्ता मनि कर निचिन्त रह,
चिन्तामनि चित में प्रसे,
चुप्रक दाढ़ै सार कू,

मन । २७१, ६१
विश्राम । २११, ११
सुमिरन । १२९, १२७
सन्तोष । ४२९, ११
विश्वास । २११, १०
सारप्राहा । ३१०, ८

छ

छट मास नहि करि सक्,
छानन भोनन प्र त सों,
छानन भोनन हव है,
छाड़ै दिन छटै नहीं,
छाया माया रहित ह,
छिन हि चढे छिन ऊतरै,
छिमा खेत मल जानिये,
छिमा साधु का संग है,
छापा रंग सुरग रग,
छार रूप मतनाम है,
छुरा पराई आपना,
छाटी माटी कामिनी,

साधु । ५४, १४
साधु । १८, ५२
नदा । ४१७, ८
माया । २८४, ६९
बेली । ३१९, ४
प्रेम । १५२, २३
भक्ति । १०९, २७
प्रश्नात्तर । ४४४, ४५
गुरुपारख । ३६, ४९
सारप्राहा । ३१०, ६
कलक कामिना । २८६, १२
,, २८९, ३०

ज

जग जहदा में राचिया,
जग मौसागर माहि,
जग मूआ विषधर धर,

चितानना । १८, ७९
सतगुरु । ३०, १०४
मतगुरु । २७, ८१

जग सारा दरिद्र भया,
 जग हटगारा स्वाद टग,
 जग में चारों राम हैं,
 जग में डोढी कामिनी,
 जग में बहु परपच,
 जग में वैरी कोइ नहि,
 जग में भक्त कहावई,
 जग में युक्ति अनूप है,
 जग सौं आपा राखिके,
 जगत जनायो जिहि सकल,
 जगत माहि धोखा घना,
 जन कैबीर बदन करै,
 जनक विदेही गुरु किया,
 जनम मरन सैं रहित है,
 जनमै मरन विचारि के,
 जप तप तीरथ सब करै,
 जप तप दीखै योथरा,
 जप तप सजम साधना,
 जप माला छापा तिलक,
 जन का माई जनमिया,
 जत्र गुन को गाहक मिलै,
 जत्र घट मोह समाइया,
 जत्र जागे तत्र नाम जप,
 न तू आया जगत में,

सन्तोष ।	४२८,	६
माया ।	२८१,	३२
निजकर्ता ।	३७१,	२२
कनक कामिनी ।	२९१,	५४
सब्द ।	२०८,	६२
उपदेस ।	१९५,	२७
कनक कामिनी ।	२९०,	४५
सतगुरु ।	२८,	८४
संगति ।	९४,	५३
गुरुदेव ।	१३,	६६
क्रोध ।	३९१,	३
त्रिनती ।	४३८,	२५
निगुरा ।	४६,	५
निजकर्ता ।	३७०,	१३
चितावनी ।	१७९,	६८
भर्मविध्वंस ।	३४८,	६५
”	३४४,	२५
सुमिरन ।	१२७,	१०८
भेष ।	८३,	४१
त्रिनती ।	४३८,	२१
पारख ।	३५३,	१४
मोह ।	३९३,	४
सुमिरन ।	१३३,	१६१
करनी ।	३६५,	२६

नम दिड मिला दयाउ सो,	परिचय ।	१४५,	८७
मिअ मत लागा लोभ मो,	लोभ ।	३०२,	१
नम भ या तन गुरु नहि, नमोर नगराण्व में(३)परिचय ।	१४१,	४७	
,, भ या तन गुरु नहि, प्रेम भला अति मांखरी(३) प्रेम ।	१५४,	३९	
नम रग था तन ना रगा,	चितःपनी ।	१८७,	१५२
नमलग आस मरीर को,	जातमृतक ।	३३२,	२१
जमलग कथना हम कथा,	लगना ।	३६७,	१४
जमलग घड पर सास है, सूर कहारै कोय ।	मूरमा ।	२३१,	५३
,, ,, ,, मूरा कहिये नाहि ।	मूरमा ।	२३७,	११०
नमलग नाता नातिना,	भक्ति ।	१०९,	२६
नमलग पिय परिचय नहो,	परिचय ।	१४६,	९३
जमलग भक्ति मराम है,	भक्ति ।	११०,	३६
नमलग लग समुद्र में,	पारम ।	३५८,	६५
जमलगि आमा टह का,	भक्ति ।	११२,	५२
नमगि मन सें टरै,	प्रेम ।	१५६,	६०
अन हि नाम हिरदै धरा,	सुमिरन ।	११८,	२७
नम हा मारा मैचि क,	मतगुरु ।	२६,	६८
नम गरज नठ नाव न,	गुरुदेव ।	११,	५८
नम जोरा तो है नहो,	सनावन ।	३३७,	१३
जम दोग में दूत मन,	मतगुरु ।	२४,	५०
नमन जाय पुनारिया,	काल ।	२९९,	६४
नम आय नारा किया, पिय अपना पहिचान ।	काल ।	२९३,	१०
नम आय नारा किया, नैनन दीन्हा पीठ ।	काल ।	,,	११
नम बुना नोवन मसा,	काल ।	३९४,	१७

जरा भीच व्याप नहीं,
 नर यो प्यारा माछर,
 जड थड जाय निते निते,
 जड दाहा चांगर नग,
 जड पामान माछर
 जड में गन ना ना चुरं,
 जड में वसे कमोदिनी,
 जगे हमारा जीरना,
 नहर पराया आपना,
 नहें यह जियरा पगु धरे,
 जहें लग अमर हराम सत्र,
 जहों आपा तहाँ आपदा,
 जहा काम नहा नाम नहि,
 जहों चतुर की गम नहों,
 „ जराई सुदरी,
 „ जैसी मगनि करे,
 „ दया वलें धर्म है,
 „ न चिऊटी चटि सकै,
 „ न जाको गुन लहै,
 „ पुष्ट मत्त भाव है,
 „ प्रेम तह नैम नहों,
 „ बाज जामा करे,
 „ भक्ति तहें भेष नहि,
 „ लगि सत्र ससार है,

मजीवन ।	३३५,	१
भक्ति ।	११०,	२८
दाजता ।	४३४,	६
पिपर्यय ।	२४६,	१०
गुहदेव ।	१०,	५३
पिपर्यय ।	२५०,	२३
प्रेम ।	१५७,	६७
विरह ।	१७०,	०८
कनक कामिनी ।	२८६,	१०
कर्म ।	४०८,	१४
नशा ।	४१०,	२७
मद ।	३९५,	२
काम ।	३००,	१३
सूक्ष्ममार्ग ।	३७७,	२७
कनककामिनी ।	२९१, -	५०
मंगति ।	९५,	५९
दया ।	४३३,	१५
सूक्ष्ममार्ग ।	३७७,	२२
उपदेश ।	२००,	८०
बेहद ।	३३९,	२३
प्रेम ।	१५३,	३०
मन ।	२७३,	८१
भक्ति ।	११०,	३१
मोह ।	३९३,	५

जहा साक व्याप नहा,	बेहद ।	३३०,	१०
जा कारन जग दूँडिया,	व्यापक ।	३२६,	१५
॥ ॥ मैं जाय था, सो तो मिलिया आय । परिचय ।		१४४,	७६
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ पाया ठौर । ॥		॥	७७
॥ ॥ हम जाय थे,	॥	१४९,	१२७
जा कारन हम दूँटते,	भेद ।	३२०,	३३
॥ गुरु को तो गम नहीं,	गुरुपारख ।	३४,	२९
॥ ॥ ते भ्रम ना-मिटै,	॥	३३,	२५
॥ घट प्रीति न प्रेम रस,	सुमिरन ।	१२८,	४६
॥ ॥ प्रेम न संचरै,	प्रेम ।	१५३,	२९
॥ ॥ मैं संसे बसै,	साक्षीभूत ।	३२२,	३
॥ ॥ ॥ साई बसै,	॥	॥	१
॥ घर गुरु की भक्ति नहिं,	संगति ।	९०,	१३
॥ ॥ माधु न सेवही,	साधु ।	६०,	६२
जा तन में विरहा बसै,	विरह ।	१७१,	१०४
॥ दिन निरतम ना हता,	परिचय ।	१४४,	७८
॥ ॥ ते जिय जनमिया,	दुख ।	४०५,	१
॥ पल दरसन माधुका,	संगति ।	९०,	११
॥ वन सिंघ न संचरै, रहा कबीर ममाय(४)परि० ।		१४३,	७२
जा मरना सो जग डरै,	जीवतमृतक ।	३३२,	१०
जा सुख को मुनियर रटे,	साधु ।	६१,	७५
जाका गुरु है आंधरा,	गुरुपारख ।	३१,	३
॥ ॥ ॥ गोरही,	॥	३६,	४५
॥ ॥ ॥ लालचो,	॥	३२,	११

जाका, ताकं दाजिये,
 जाकी गाठी नाम है,
 " थापी माड है,
 " धोती अधर तपै,
 " पूजी सास है,
 " साचो सुरति "
 जाके आगे इक कहूं,
 जाके चित अनुराग है,
 जाके दिल में हरि वसै,
 " मन विश्वास है,
 " मुँह माया नहीं,
 " हिय साहिव नहीं,
 " सिर गुरु ज्ञान है,
 जाको आडा अन्तरा,
 " जितना निर्मान किया,
 " राखै साइया,
 जागन में सोचन करै,
 जागो लोगो मत सुबो,
 जागृत जागृत साच है,
 जाता है जिस जान दे,
 जाति जाति के पाहुने,—
 " न पूछो साधु की,
 " वरन कुल स्वयंकर,
 " हमारी आत्मा,

सूरमा ।	२३६,	१०१
सुमिरन ।	१२१,	५०
निजकर्ता ।	३७२,	२६
साधु ।	७५,	१९३
सुमिरन ।	१३०,	१३८
साच ।	४३०,	११
दुख ।	४०५,	४
प्रेम ।	१५९,	८९
विश्वास ।	२१२,	२२
"	२१०,	१
निजकर्ता ।	३७,	१०
गुरुपारम्ब ।	३२,	१४
गुरुदेव ।	१३,	६८
पारम्ब ।	३५७,	५७
कर्म ।	४०८,	१५
समय ।	३०६,	४७
सुमिरन ।	१३४,	१७५
चितावनी ।	१८९,	१७५
आत्मानुभव ।	३११,	१९
काल ।	२९९,	६५
व्यापक ।	३२५,	३
साधु ।	५९,	५७
भक्ति ।	११०,	३१
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	१५

जाने भक्त का नित, मरन,
जानिके अनजान हुआ,
जानि वृक्ष मांची तर्ज,
जानोता जव वृक्षिया,
जानोता, वृक्षा नहीं,
जाने की तो गम नहीं,
जाप मर अजपा मरै,
जाय झरोखे सोवता,
जाय पूछो उस घायलों,
जाय मरै सो जीव है,
जाय मिल्यों परिवार में,
जाया जाया सब कहें,
जारन हारा भी मुआ,
जारि जारि मिस्मी करे,
जाहि रोग उत्पन्न भया,
जाहु वैद घर आपने,
जितना अवगुन, मैं किया,
जिन म्याया सोई मुआ,
जिन गुरु की चोरी करी,
जिन गुरु जैसा जानिया,
जिन घर नीयत बाजनी,
जिन जेता प्रमु पाइया,

भक्ति ।	१११,	३७
भेद ।	३१९,	१६
संगति ।	९४,	४८
गुरुपारख ।	३१,	५
"	"	"
सूक्ष्ममार्ग ।	३७६,	२१
सुमिरन ।	१३१,	१५२
काल ।	३००,	७७
सूरमा ।	२३०,	७०
चितावनी ।	१९०,	१८२
सतगुरु ।	२७,	८०
काल ।	२९८,	५२
काल ।	२९५,	३१
काल ।	२९८,	५५
निजकर्ता ।	५७२,	३१
विरह ।	१६४,	३८
विरह ।	१७१,	१०६
कलक कामिनी ।	२८८,	२६
चितावनी ।	१७९,	६९
उपदेस ।	१९८,	६०
चितावनी ।	१८९,	१७३
परिचय ।	१५०,	१२९
" दूँदा तिन पाइया, जो वपुरा दूवन डरा (३) उपदेस ।	१९९,	६१
" दूँदा तिन पाइया, मैं वपुरा दूवन डरा (३) गु.शि.हं. ।	४१,	१९

जन नर साच पछानया,	सांच । ८३०,	१२
" पाया तिन सुगह गहा-	भेद । ३२१,	४१
" पावन भुँइ बहु फिरा, तिन पावन थिति पकडिया(३)जी.मृ.३३४,६८		
" " " पिया मिलन जब होइया(३)परि. । १३५,		३
" के नाम निसान है,	काल । २९८,	६०
" के नौबत बाजतो,	चितावनी । १७६,	३९
" को साई रंग दिया,	माया । २८२,	४८
जिनमें जितनी बुद्धि है,	उपदेस । १९९,	६९
जिस कारन मैं जाय था , ।	मूक्षमार्ग । ३७५,	११
„ नहीं कोई तिस हि तू,	समर्थ । ३०२,	१८
जिसका गुरु है लालची,	गुरुपारम्भ । ३२,	३२
जिसके कोई संग नहीं,	समर्थ । ३०३,	१९
जिसको रहना उत घरा,	चितावनी । १८२,	१००
जिहि जिवरी ते जग बंधा,	उपदेस । १९८,	१५९
„ बन सिध न संचै,	लगनी । ३६७,	१७
जिहि विरिया साहिव मिले,	साक्षोभूल । ३२२,	७
„ विधि सिपको मन बसै,	गुरुदेव । १४,	७८
„ सर घड़ा न बूडता,	विपर्यय । २४८,	१७
„ साई का सोच है,	विरह । १७०,	९९
„ सन्दे दृग्व ना लगे,	सद्ग । २०९,	७९
जिन्या कर्म कछोटी, जो तीनों बस होय ।	स्वाद । ४११,	१२
„ „ „ तीनों गृह में त्याग ।	„ „	११
जिन्या जिन बस में करी,	मद्ग । २०९,	७९
„ सकर जीभ दुध,	„	४५

जिम्या में अमृत प्रभे,	सम्भ । २०६, ४४
जीना मोटा ही भला,	सुमिरन । ११८, १६८
जीभ स्वाद के कृप में,	स्वाद । ४१०, ३
जीव अधम अति दुष्टि हं,	मतगुरु । २७, ७७
जाय कर्म में जलि गया,	कर्म । ४०७, ५
" जीव मय एक हैं,	मासाहार । ४१६, ४६
" जन्तु जलहर वसे,	निवेक । ४२१, ६
" दया चित राखि के,	उपदेस । १९३, १
" ब्रह्म व्योरा नहीं,	पक्ता । ३२५, १८
" मिलना जीवसा, अलख लग्यो नहि जाय । निरह ।	१६८, ८१
" " " पिय जो लिया मिलाय । "	१६८, ८२
" हनै हिमा कर, निगम सुनी अस पापते(३)मा० ।	४१३, १५
" " " पाप सचन जो देखिया(३)	१ १४
जीवन कोय समुझै नहीं,	उपदेस । १०८, ५७
" जीव कहाँ वसे,	प्रश्नोत्तर । ४४५, ५२
" " हिरद वसै,	" ४४५, ५३
" मिरन हो रही,	पतिव्रता । २२१, ४५
" " है रहै,	जीवनमृतक । ३३०, १
" में भरना भग,	" " २
जीवन जीवन रानमद	संगति । ९४, ५४
जूआ चोरी मुन्धिरा,	साधु । ७१, १५१
जूनन चाले नूरमा	मूर्खा । २३९, १३२
जुझैगे तन कहेंगे,	" २३१, १
जूझै ते नर झुलिया,	" २४१, १४०
" मागिया,	" २४०, १४४

जे मूआ हरि - हेत सं,	सूरमा ।	२४०,	१३५
जे राते सतनाम सों,	सुमिरन ।	१३१,	१४४
जेता घट तेना मता, घट नट और सुभाव ।	उपदेस ।	१९६,	३८
॥ ॥ बहु बानी बसु भेष ।	व्यापक ।	३२५,	१
जेता नारा रैन का,	सूरमा ।	२३१,	५६
॥ मीठा बोलया,	भेष ।	८०,	१६
जेती लहरि समुद्र की,	मन ।	२७०,	५५
जेहि खोजत ब्रह्मा यके,	सतगुरु ।	२७,	७८
॥ घट जान विजान,	अविहड ।	३४१,	४
जैसा हूँदत मैं फिरुं,	गुरुशिष्यहेरा ।	४१,	१५
॥ भोजन खाइये,	उपदेस ।	१९६,	३९
जैसा मीठा घृत पकै,	भेष ।	८४,	५६
जैसि तिलक उनहार है,	॥	७९,	९
जैसी करनी आपनी,	करनी ।	३६४,	२०
॥ ॥ जासुकी,	॥	३६३,	१३
॥ कथनी में कथी,	॥	३६५,	२७
॥ प्रीति कुटुम्ब की,	गुरुदेव ।	१०,	५४
॥ मुख ते नीकसे, तेसी चाले चाल ।	करनी ।	३६३,	१०
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ नाहि ।	॥	॥	९
॥ लकड़ी ढाक की,	व्यापक ।	३२६,	१०
॥ ली पहिले लगी,	लगनी ।	३६६,	४
॥ ॥ प्रथम हि लगे,	॥	॥	६
॥ सेवा सिप करै,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३,	३९
जमे तमकर बीज में,	व्यापक ।	३२८,	२०

जैसे फनिपति मत्र सुनी,	सुमिरन ।	१२१,	५१
.. माया मन रैन,	..	१२०,	४७
.. सती पिय संग जेर,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३,	३३
जैसे मूरज घृष मधि,	व्यापक ।	३२८,	२०
' रयाही अक मधि,	व्यापक ।	"	३१
जो आवै तो जाय नहि, जैसे वृद्ध जाय(४) मूकमार्ग ।		३७६,	१२
जो आवै तो जाय नहि. समुझि छेद मनमाहि(४) "		"	१३
" उगं. तो मय में,	नेग ।	३५९,	९
" उगे मो आयमें,	काग ।	२९५,	३२
" औनार निधय विषा,	निजकला ।	३७१,	१८
" कहु आवै सहन में,	सहन ।	३१३,	८
" कहु जिया मो तुम जिया,	सगरथ ।	३०१,	६
" कहु करे निचारि के,	विचार ।	४२३,	१८
" कहु होय कह कहु,	पारम ।	३५४,	२५
' कतहुँ के देमिये,	कलक कामिना ।	२८९,	४१
" कर्ना अन्तर वसे,	कर्ना ।	३६३,	११
" काटे तो टहटहा,	नेग ।	३६०,	१२
" कामिनी परदे रहै,	मिगुस ।	४७,	१०
" कोइ निन्दै माथु को,	निन्दा ।	३८५,	१४
" कोइ समुझै मन में, तामो कहिये वैन । उपदेस ।	उपदेस ।	१९८,	५८
" कोइ समुझै सैनमें, तामो कहिये धार्य । परिचय ।	परिचय ।	१३७,	२२
' कोइ सुमिरन अंग को, निमिवासर करे पाठ । सुमिरन ।	सुमिरन ।	१३४,	१७९
" कोइ सुमिरन अंग को, पाठ करे मन लाय । ..	"	"	१७८
" कोय करे मो स्वारथी,	परमारथ ।	२४३,	

जो कल्पे तो दूरि हे,	सहज ।	३१३,	७
" गाँव सो गावना,	पतिव्रता ।	२२१,	४२
" गुरु पूरा हाय	गुरुदेव ।	११,	७९
" छोट ता जाधरा,	भगति ।	०६,	६८
" जन निहो नाम क,	निह ।	१६८,	७८
" जन होइ है, नोहरि,	सुभिरन ।	११८,	२५
" नल बाढे नाव में,	उपदेस ।	२०१,	८६
" जाका सत गहं,	समरथ ।	३०५,	४२
" जाकी बाही लगो,	समरथ ।	३०६,	५१
" जाको नाटे,	मासाहार ।	४१६,	४७
" जाको गुन जानता,	प्रवृत्तिगुन ।	३८८,	१०
" जागत सो सपन में,	प्रेम ।	१५५,	४८
" जेसा उनमान का,	पारख ।	३५३,	१३
" तू पडा हे पदमें,	चिन्तावनी ।	१८९,	१६७
" तू पित्रका प्यारनी,	लगनी ।	३६७,	११
" तू ध्यामा प्रेम का,	प्रेम ।	१५३,	३२
" तू सेवक गुरुन का,	निन्दा ।	३८५,	१५
" तौको काटा बुने,	उपदेस ।	१९३,	५
" दिल दिल ही में रहे,	प्रेम ।	१५६,	५८
" दोसे सो निनसिहै,	सतगुरु ।	२६,	७२
" देखा सो तीन म,	भेद ।	३२१,	३४
" देखे सो कहें नहीं,	"	३१८,	१३
" निगुरा सुभिरन कै,	निगुरा ।	४६,	१
" पकरो सो चले नहीं, करपद को तुम कहत हो(३) भे.		१३१९,	१५
" " " कहैं कविर या साखिको (३)भेद ।		"	१४

जो बोले तो राम कहूँ,	सुमिरन ।	१२८,	१२०
,, भावों तो भय नहीं,	सार्धभृत ।	३२२,	४
,, मन लगा एक सौ, न्याय तमाचा, स्थाय (४) चानक ।		३०८,	२०
,, मन लागे एक सौ, घना तमाचा स्थाय (४) पति ।		२२०,	३१
,, मन समुझे ज्ञान में,	भेद ।	३२०,	२९
,, मन में तो त्रह में,	वैली ।	३६०,	१०
,, मैं मूल प्रियागिया,	समरथ ।	३०४,	३१
,, मानुष गृहि धर्म युत,	भेष ।	८४,	४९
,, मूआ हरि हत में,	मग्ना ।	२४०,	१३६
,, यह एक न जानिया,	पतिव्रता ।	२२०,	२७
,, यह एक जानिया,	,,	२७०,	२८
,, या घाटी लगही,	फलकफामिनी ।	२८६,	६
,, यह एक न जानिया,	भेद ।	३२१,	३५
,, विभूति साधुन तनी,	साधु ।	७०,	१४७
,, साचा निधाम है,	प्रियास ।	२१३,	३०
,, भिर मौपा साड को,	सुरमा ।	२३६,	१००
,, सत्तनाम समाय,	सतगुरु ।	२९,	१०२
,, है जाका भावना,	प्रेम ।	१५७,	६६
,, हारों तो सेव गुरु,	मूरमा ।	२३३,	७३
,, हसा मोता चुर्ग,	पारख ।	३५३,	१९
जोड़ गहे निज नाम को,	सुमिरन ।	१३४,	१७६
जोड़ मिले सो प्रीति में,	प्रेम ।	१५६,	५७
जोग से तो जौहर भट्टा,	सुरमा ।	२३२,	५९
जोगी जगम सेण्डा, सन्यासी दरवेस ।	प्रेम ।	१५३,	३१
,, ज्ञानी गुनी अपार ।	लोभ ।	३९२,	

जोगी हुआ झक लगी,
 ,, है जग जोतता,
 जोवन मित्रदारी तजी,
 जोर करी जिवह है,
 ,, किये ते जुन्म हं,
 जाह्न जठन जगत की,
 जोन चाल ममार की,
 ,, भार ऊपर रहै,
 ,, मिला सां गुर मिला,
 जगल देरी राख को,
 जत्र मत्र सन झूठ है,
 ज्यों आप त्यों ही कहै,
 ज्यों कोरी रेजा बुनै,
 ज्यों गुगा के सन को,
 ज्यों नल में मच्छी रहै,
 ज्यों ज्यों गुरु साभलें, लागे पन भागे नहों(३) भूरमा ।
 ज्यों गुरु गुन साभलों, साटी साटी झडि पडि (३) ,,
 ज्यों तिल मोहीं तेल है,
 ज्यों नेनों में पूतली,
 ,, पय मध्ये घीन है,
 ,, पथर में आगि है,
 ,, बधूरा वाय मध्य,
 ,, प्रतिका घट फैन जल,
 ,, मृतिमा घट मध्य में,

परिचय ।	१३५,	५
आसातृस्ना ।	४०१,	१३
काल ।	२९३,	१२
मासाहार ।	४१५,	३१
,,	,,	३२
कनककामिनी ।	२९०	४७
साधु ।	६६,	१२०
,,	६८,	१३४
मान ।	३०९,	३१
चिन्तामना ।	१८१,	९७
सब्द ।	२०७,	५०
प्रिचार ।	४२३,	१२
चिन्तामना ।	१४२,	१०२
आमानुभन ।	३१०,	४
साधु ।	७६,	२०२
भूरमा ।	२३३,	७१
,,	,,	७०
व्यापक ।	३२५,	५
,,	,,	४
साधु ।	५८,	४३
व्यापक ।	३३०,	५०
,,	३२८,	२७
,,	,,	२८
,,	३२७,	२६

ज्यों मेरा मन तुझ सों,
 ,, ही एकै महल में,

प्रेम । १५५, ४६
 व्यापक । ३२७, २४

स

झल बोंबे झल दाहिन,
 झारी फाँसी कृप में,
 झालि उठी झोली जला,
 झिरमिर झिरमिर बरषिया,
 झीनो माया जिन तना,
 झूठ बात नहि मोलिये,
 झूठा सप ससार है,
 ,, सुख को सुख कह,
 झूठे को झूठा मिले,
 झूठे गुरु के पक्ष को,

दुख । ४०५, ६
 आत्मानुभव । ३११, १५
 निपर्यय । २४६, ७
 निगुरा । ४८, १५
 माया । २८१, ३५
 साच । ४३१, १८
 चितानना । १८५, १३४
 बाल । २९३, ४
 साच । ४३१, १९
 गुरपारख । ३४, २६

२

टोला टीली दाहि क,
 टूका माँही टूक दे,
 टेक कर सो नागरा,
 टेक न कीने वानरे,

सद्ध । २०६, ३७
 साधु । ५६, २६
 निगुरा । ४९, ३१
 ,, ,, ३०

ड

डग डग पे जो डर करे,
 डर करनी डर परम गुरु,

दासातन । १०६, २५
 चिताननी । १८४, १२६

टाँठ जाँ दूँट मूँल को,
डाँठ भई है मूँल ते,
डुँवकी मारी समुंद में,
हुँगा औघट ना तरे,
छोरा लागी भय मिटा,

गुरुशिष्य० । ४२, २५
" " २६
जी०मृतक । ३३१, ८
सनगुरु । २९, ९४
विद्यास । २१२, २७

४

ढालें हूँले दिन गया,
ढाल दमामा गडगड़ी,
" " दुरगरी,
" " राजिया,
दिफली का नमना कहा,

काल । २९३, ७
साधु । ६८, १३०
चितायना । १७३, ४०
सती । २१४, २
कपट । ४०३, ८

५

तकन तयायत रहि गया,
तज काग की देह-
तत दरसा जो होय,
तन प्राया तन बीसरा,
तख्त तले की सो फूँडे,
तत्त समाना तत्त में,
तत्त तिलक का खानि है,
तत्त तिलक तिहुँ लोक में,
तत्त तिलक माथे दिया,
तत्त हि फल मन तिलक ह,
तन तुरग असवार मन,
तन थिर मन थिर नचन थिर,
तन दिखलाये आपना,

भर्मनि रस । ३४७, ५४
मुमिरन । १२५, ८८
सतगुरु । २९, १०३
परिचय । १३९, ३४
गुरु पारख । ३७, ५६
निर्णय । २६१, ६३
भेष । ७९, ४
भेष । " ३
भेष । ७९, ६
भेष । " ६
मन । २७३, ८०
सुमिरन । = १३१, १५१
ग्रेम । १५७, ६८

तन माहा, नो मन जरे,
 तन समुद्र, मन सरजीरा,
 तन सराय मन पाहण,
 तन मदक मन रतन हे,
 तन ना इन्द्रा मेल है,
 तन का वेरा कोद नहि,
 तन का मनन नीर है,
 तन की नाते मन की जाने,
 तन कृ मन मिथना नहा,
 तन को जोगी सत्र वर,
 तन में सात सन्द है,
 तन हि नाप निनको नहीं,
 तन मन जीवन जरि गया,
 तन मन नोमन जारि कर,
 तन मन जोगन नारिके,
 तन मन जीवन यो नला,
 तन मन ताको दीनिये,
 तन मन दिया जु आपना,
 तन मन दिया जु कथा हुआ,
 तन मन दिया तो भक्त किया,
 तन मन लज्जा ना रहे,
 तन मन सीम निठारै,
 तनही गुरु प्रिय नेन कही,
 तन मय माल न पाइये,

मन ।	२७१,	६२
जीवतमृत्तक ।	३३१,	१२
चिन्तामना ।	१८३,	१०९,
पाण्डव ।	३५३,	१२,
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३१,
मन ।	२७६,	११४
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३०,
समग्र ।	३०६,	५४
मन ।	२७६,	११४
भय ।	८२,	३७
साधु ।	६८,	१३५
साधु ।	७३,	१७२
गिरह ।	१६९,	८६
गिरह ।	,,	८८
गिरह ।	१६८,	८१
गिरह ।	१६५,	४९
गुरुदेव ।	१०,	५१
सनगुरु ।	२५,	५९
सतगुरु ।	,,	५८
गुरुदेव ।	१०,	५०
, काम ।	३९१,	२१
गुरुदेव ।	१४,	७५
गुरुदेव ।	१४,	७६
व्यापक ।	३९९,	३८,

तरुवर जड सँ काटिया,
 तरुवर तासु निलविया,
 तरुवर पात सों यों कहै,
 ताको लच्छन को कहै,
 ताजी छटा सहर ते,
 ताते सब्द निवेक पर,
 तारा मटल वैठि के,
 तिनका वगुह न निन्दिये,
 तिमिर गया रनि देखते,
 तिल के ओटै राम हँ,
 तिल भर मछली खाय के,
 तिल समान तो गाय है,
 तोखा सुरति कभीर की,
 तीजे चौथे नहि करै,
 तीन गुनन की आदरी,
 तीन गुनन की भक्ति में,
 तीन ताप में ताप है,
 तीन देव का सब कोई ध्यायै,
 तीन लोक उनमान में,
 तान लोक चोरी भई,
 तान लोक नी खड में,
 तीन लोक सब राम अपत,
 तीन गेन हैं देह में,
 तीन सनहो गहु मिले,

- सगति ।	९८,	७९
सजीवन ।	३३७,	१४
काल ।	२९५,	२६
आत्मानुभन ।	३१०,	६
काल ।	२९७,	५०
गुरुदेव ।	१४,	७३
चानक ।	३०७,	१०
निन्दा ।	३८५,	११
भक्ति ।	११२,	४८
व्यापक ।	३२७,	१८
मासाहार ।	४१३,	१७
प्रियय ।	२४५,	६
परिचय ।	१५०,	१३१
साधु ।	५४,	१०
प्रियय ।	२५०,	२४
निजकर्ता ।	३६९,	३
उपदेस ।	२००,	७८
निजकर्ता ।	३७१,	१७
साधु ।	६८,	१३६
मन ।	२७२,	७७
गुरुदेव ।	१३,	६३
निजकर्ता ।	३७१,	२१
सतगुरु ।	२८,	८७
गु शि. हे.	४१,	१४

तोर तुपक सौ जो लड़े, सो तो सूर न होय । सूरमा । २२८, २३	
तोर तुपक सौ जो लड़े, सो तो सूर नाहि । " २४	
तीरथ काटै घर वरै,	भर्मविघ्नस । ३४५, ३०
तीरथ चाले दुइ जना,	मर्मविघ्नस । ३४४, २७
तीरथ न्हाये एक फल,	साधु । ६१, ६८
तीरथ व्रत करि जग मुआ,	भर्मविघ्नस । ३४४, २६
तुम गुरु दोन दयाल हो,	विनती । ४३८, १८
तुम तो समरथ साइया,	समरथ । ३०३, २२
तुम मति जानो बाहुरे,	प्रेम । १५८, ७७
तुम्हें विसरि क्या वने,	समरथ । ३०४, २९
तुरक मसीने देहर हिन्दू,	भर्मविघ्नस । ३४४, २२
तूटै बरत अकास सो,	साधु । ६८, १३१
तू तू करता तू भया, तुझ में रहा समाय । सुमिरन । १२९, १३३	
" " " तुझमें रही न हूँय । सुमिरन । " १३०	
तू तू करु तो निकट है,	सेवक । १००, ८
तू मति जानै बाबरे,	चितावनो । १८३, ११६
तू मति जानै बीसरो,	विरह । १६७, ६७
तृप्ता मीचो ना बुझै,	आसातृप्ता । ४०२, २४
ते दिन गये अकार्यो,	संगति । ९१, १२
ते मन निरमल सत स्वरा,	गुरुदेव । १५, ८६
तेजपुंज का देहरा,	परिचय । १४७, १०६
तेरा तुझ में कछु नहीं,	विनती । ४३७, १६
तेरा बैरा कोइ नहीं,	कर्म । ४१०, २९
तेरा साई तुझ में,	व्यापक । ३२६, ११

तेरि ज्योति में मन धरा,	मन ।	२७६, २१६
तेरे अदर साच जो,	साच ।	४३०, १४
तेरे निन जोर जुनम है,	समरथ ।	३०२, १५
तेरे हिरदे राम है,	भर्मप्रियस ।	३४८, ५८
तेल तिली सों ऊपजै,	सगति ।	९९, ८८
तोटे में भक्ति कर,	भक्ति ।	११२, ४९
तोळ वरार घघची,	कसोटो ।	३७४, ६
तोहि पार जो प्रेम की,	सगति ।	९४, ९०
त्रिकुटो हि निजमूल है,	भेष ।	७९, ७
प्रिया कृतघ्नी पापिनी,	कनक कामिनी ।	२९२, ६३
त्यों हों एकै बल ते,	एकता ।	३२५, १७

थे

थलि जो चला मिरगला,	चिन्तायनी ।	१८२, ९९
थापन पाई थिर भया,	सतगुरु ।	२५, ६२
थिति पाई मन थिर भया,	मतगुरु ।	" ६५
थोडा सुमिरन बहुत सुख,	सुमिरन ।	१२७, १०९
थोड़े ही सों छात्रिया,	रस ।	२६३, ११

द

दया का लच्छन भक्ति है,	दया ।	४३३, १८
" दीन पर कीनिये, हम तो भये तमासगी(३) "		४३२, २
" दीन पर कीनिये, सारे के सग जीव हैं(३) "		" ३
" दीन पर कीनिये, दीनगी,	साधु ।	७२, १६७
" दीनता, सुमता सोळ वरार ।	भक्ति ।	११४, ६९

दया दया मन कोइ नहै	दया ।	४३३	१९
धर्म का मूल है,	'	४३४,	२२
„ भाव हिरदै नहीं	„	४३१,	१
„ सम हि पा कानिये,	„	४३३,	२०
दयाजन धरमक प्यना, माधू परम सुजान(४) साधु ।		६५,	११०
„ „ „ समर परम सुजान(४) सनक ।		१०२,	२७
दरद न लग जात का, चिन्तामना ।		१८९,	१७१
हरसन कोज माधु का, माधु ।		५३,	५
„ का तो माधु है, दानता ।		४५,	१४
हरिया मये लहर यौं, व्यापक ।		३२८,	३३
„ माहा सोप ह, परिचय ।		१४८,	११५
दम लागी दरियाय में, उठा अपर बल आग । त्रिपर्यय ।		२६०,	५९
„ „ नदिया मोइला होय ।		„	१८
दर्मा दिना स क्रोध का, नाथ ।		३९१,	४
दाग जु लागे नाथ का, मगति ।		९४,	५७
दाही मल मुंडाय के, भय ।		८१,	२०
दाना क ता धन धना, पतिमता ।		२७१,	४०
„ दाना चरि गये, दया ।		४३३,	१७
„ नदिया एक सम, करना ।		३६४,	२३
„ नरक सम नैकुटे, त्रिपर्यय ।		२५१,	२७
दाध कलापा मन दुर्गा, का पुत्र का बाधना(३) दया ।		४३२,	६
„ „ , जहँ जहँ भक्ति बबोरका(३)		„	७
दाया दिग में राखिये,		„	४
दाह मय, यौं प्रतरी,	व्यापक ।	३३७,	२५

दासक म पावक वसै,	निगुरा ।	४७,
दास के पावक करै,	”	४९,
” तो सब कोइ ”	सद्व ।	२०४,
दावै दासन होत है,	रस ।	२६४,
दास कविर काढी भली,	मध्य ।	३१४,
” कहावन कठिन है, जबलग दूजी आन । दा० ।		१०६,
” ” ” मैं दासन का दास । ”	”	”
” दुखी तो मैं दुखी,	”	१०५,
” ” हरि ”	”	”
दासातन हिरदै नहीं,	”	१०४,
” ” वसै,	”	१०५,
दासी केरा पूत जो,	निगुरा ।	५२,
दिल लागु जु दयाल सौ,	परिचय ।	१४९,
” हि पर जो दिल मिलै,	कपट ।	४०३,
” ही में दोदार है,	सतगुरु ।	१७,
दीठा है तो कस कहूं,	भेद ।	३१८,
दीन गरीबी दीन को,	दीनता ।	४३४,
” ” बंटगी, सब सों आदरै भाव । ”	”	”
” ” साधुन सों आधीन । दीनता ।		४३४,
दीन गँवायो दुनो संग,	चितावनी ।	१८३,
” लखै मुख सवन को,	दीनता ।	४३४,
दीन्ही खांड पट्टि कर,	माया ।	२८२,
दीप कुं झोला पवन है,	मद ।	३९५,
दीपक जोया ज्ञान का,	परिचय ।	१४३,
” झोला पवन का,	कलकामिनी ।	२९१,

दीपक दीन्हा तेल भरि,
 " पायक आनिया,
 " सुदर देखि कै,
 दुख खडन भय मैदना,
 " नहि था ससार में,
 " में सुमिरन सत्र करै,
 " छैन जाये नहीं
 " सुख एक समान है,
 " गिर ऊपर सहै,
 दया देऊ ता दोजम जाऊ,
 दनिया क धोमै मुआ,
 के मे बलु नहो,
 " बधन पडि गई,
 भाडा दस का,
 " सेवा दामता,
 दना कहै में दो रगा,
 दुविधा नाक मन यस,
 दुर्जन की करुणा बुरी,
 दुर्ल को न सताइये,
 दुख महल को दाहन,
 दूजा होय तो बोलिये,
 दूजे ऋषि मुनिर फेमे,
 दुर्ज दिन नहि करि मकै,
 दूध त्यागि रक्त हि गहे,

मतगुरु ।	२४,	५३
गिरह ।	१६९,	९०
काम ।	३९०,	१०
भक्ति ।	११४,	६५
दुख ।	१२८,	१२२
सुमिरन ।	२०७,	१९
कर्म ।	४०,	२४
साधु ।	८५,	१०४
दामातन ।	१०३,	२
मन्य ।	३१५,	१६
चिन्तामनी ।	१८०,	८६
चिन्तामनी ।	१८०,	८४
साधु ।	७०,	१४८
चिन्तामनी ।	१८०,	८३
	१८०,	८५
कर्म ।	४१०,	२८
भर्मिप्रियम ।	३४७,	४९
प्रकृतिगुन ।	३८८,	७
उपदेश ।	१९३,	६
प्रकृतिगुन ।	३८८,	५
आमानुभव ।	३१२,	२४
मोह ।	३९३,	८
साधु ।	५४,	९
असारमाही ।	३५१,	६

दूध दूध सग एक है,	भेष ।	८६,	७४
दूध फाटि घुन कर्हो गया,	प्रश्नात्तर ।	४४२,	२०
दूध फाटि घुन दूध मिग,	"	"	२१
दूर भया तो क्या भया सतगुरु मेला होय । मूरमा ।		२३७,	१०८
दूर भया तो क्या भया, सिर दे नियरा होय । "		"	१०७
दृष्टि मुष्टि जात्र नहीं,	साधु ।	७८,	२१८
देखा दग्वा पकड़िया,	भक्ति ।	१११,	४४
देगा देगा भक्ति का,	"	१११,	४३
देगा देखी सग कहै,	मुमिन ।	१३२,	१५५
दग्वा दग्वा गुर चढै,	मूरमा ।	२३६,	१०३
देगो करम बनार का,	परिचय ।	१४७,	१०८
देगन देगन दिन गया,	मिरह ।	१६६,	६२
देगन ही दह में पड़े,	वलकलामिनी ।	२८९,	४०
देगन का सग कोड भला,	चानक ।	३०७,	११
देगन सरिगी नात है,	निनमता ।	३७३,	४१
दगन ही की बात है,	एकता ।	३२४,	११
दनहारा राम है,	मतोष ।	४२८,	७
देग माहि देहली,	परिचय ।	१३९,	३७
देवि देव मान मरी,	प्रिभिचारिन ।	२२५,	२३
देवि देव ठाढ़े भये,	"	"	२४
देगो बडा न देगना,	गुरुदेव ।	१३,	६९
देम दिसतर में फिर,	गुरुशिष्यहरा ।	४४,	४२
देह गेह हो नायगी,	उपदेम ।	१०४,	१६
दह धर का गुन देखी,	"	१९४,	१३

का टट है,
 देह निरतर देहसा,
 देह मय नौ अग है,
 देही भौहि विदेह है,
 दोनम्य हमही जगेनिया,
 दोष बसन नहि करि सकै,
 दोष पराया देखि करि,
 दोड़ आय सो दोड़नी,
 दोड़ धूप छोड़ो समी,
 दोड़त दोड़न दोड़िया,
 दण्डन गोविंद गुर,
 दादम निर्यक बनावही,
 द्वार धनी के पडि रह,

ध

घड मे मांग उतारि के,
 धन धन पिप की सुरनिर्कु,
 धन धन साई त बडा,
 धन गहू न जोवन रहे,
 धन सो माता सुदरो,
 धनुक बान की चोट है,
 धरति गगन पवनै नदी,
 धरति ममानी अघर में,
 धरति हती नहि पग धर,
 धरती और अकास में,

दुग्ध ।	४०६,	१२
भर्मनिर्गम ।	३४८,	५९
व्यापक ।	३२८,	३४
नेहद ।	३४०,	२०
पतिवता ।	२२२,	५३
साधु ।	५४,	७
निन्दा ।	३८५,	१०
मलगुर ।	२७,	८३
भद ।	३२१,	३६
मन ।	२७०,	५६
गुरुदेव ।	३,	२
मेघ ।	८०,	११
सेवक ।	१०१,	१७

मूरमा ।	२३१,	४९
गुरुशिष्यदेरा ।	४४,	४५
समर्थ ।	३०२,	११
परमार्थ ।	२४३,	८
साधु ।	६२,	८४
मूरमा ।	२४०,	१४०
परिचय ।	१४४,	८१
निर्णय ।	२५५,	४५
परिचय ।	१४४,	८२
मय ।	३१५,	१०

धरती अगर जायगे,
 धरती अगर ना हता,
 धरती करते एक पग,
 धरती तो राटा भई,
 धरती फाट मघ मिलै,
 धरन अकासा थरहरै,
 धरि गिरियर करता किया,
 धरिया कू धीजू नहा,
 धर्म किये धन ना घट,
 धर्मराय दरबार में,
 धारा तो दोनों भली,
 धीर धन धरती नस,
 धीरज तो रोटी भई,
 धीरन बुधि तन जानिये,
 धीरा हू धमका सहै, ज्या अहरन सिर धान ।
 ,, ,, ज्यो अहरन का धान । मूरमा ।
 धीर धीरे रे मना, माला सोंच केनडा (३) धीरज ।

प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४६
पटित ।	३८१,	१२
काल ।	२९७,	४८
प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४२
मन ।	२७४,	९५
मूरमा ।	२३८,	१२३
भर्मपिद्यस ।	३४३,	१७
पतिव्रता ।	२१८,	१६
उपदेस ।	१९५,	२०
समरथ ।	३०५,	४०
भेष ।	८७,	८०
प्रश्नोत्तर ।	४४२,	२७
"	४४४,	४३
धीरज ।	४२५,	९
"	४२४,	३
मूरमा ।	२४०,	१३९
धीरज ।	४२४,	१

न

तगर वैत तत्र जानिये,
 नमन नमन बहु अन्तरा,
 नमन नैरा तो क्या हुआ,
 नर नारायन रूप हैं,
 नर नारायन होत हैं,
 नर नारी के मूल को,
 नर नारी सत्र नरक हैं,
 नर पशु गुरु पशु वेद पशु,
 नर मूरख ते खर भला,
 नरक स्वर्ग ते मैं रहा,
 नदिया जलों कोइला भई,
 नलिनो मायर घर किया,
 नहि कागद नहि लेखिनो,
 „ देनी „ देन है,
 „ सागर संसार „
 नहीं दीन नहि दीनता,
 „ हाट „ बाट था,
 ना कछु किया न करि सका, ना कछु करने जोग । सम० ।
 „ „ „ नहि करने जोग सरीर । „
 ना मूला ना मरि गया,
 „ मैं छाई छापी,
 नागिन के तो दीय फल,
 नाचै गावै पद कहै,

भर्षेयिन्वस ।	३४८,	५७
कापट ।	४०३,	१०
„	„	९
चितायनी ।	१९०,	१८४
चानक ।	३०९,	२८
आत्मानुभव ।	३१०,	५
सुमिरन ।	१२८,	१२१
विचार ।	४२४,	२२
मान ।	२९८,	२८
मध्य ।	३१४,	७
विपर्यय ।	२४७,	१३
„	२५३,	२९
पठिन ।	३८१,	११
बेहद ।	३४०,	२५
„	„	२७
दीनता ।	४३४,	७
परिचय ।	१४४,	८९
सम० ।	३०१,	८
„	„	५
चितायनी ।	१९०,	
परिचय ।	१५०,	१३२
कनककामिनी ।	२९१,	५३
चानक ।	३०७,	३

नाद नहीं था त्रिदु नहीं था, सद् कहा ते आया (४) प्र०।	४४६,	५८
“ ” ” ” सुनते आया(४) ”	”	५९
नाद त्रिदु ते अगम अगोचर,	निजकर्ता ।	३६९, २
नादी विदी नहु मिले,	गुरुपारख ।	३७, ५५
नाभि कमल ते उठत है,	प्रक्षोत्तर ।	४४०, ६
नाम अनन्त जो ब्रह्म का,	एकता ।	३२४; ८
“ अमल को छोड़िके,	नशा ।	४२०, ३१
“ करन नाना भये,	मूरमा ।	२४०; १३८
नाम कूल्हाडी कुमुधि वन,	”	२२७, ९
“ जपत कन्या भली,	सुमिरन ।	११६, ८
नाम जपत कुष्टी भला,	सुमिरन ।	११६, ७
नाम जपत दरिद्री भला,	”	११६; ९
“ जपै अनुराग	”	१३२, १५९
“ जो रती एक है,	”	११६; ६
“ धराया दास का,	दासातन ।	१०५, १३
“ धरावे ” ”	”	” १४
“ न जानै गँव का, पीछे लगा जाय ।	लगनी ।	३६८, २१
“ ” ” बिन जानै कहाँ ”	मूक्षमार्ग ।	३७६, १५
नाम न रटा तो क्या हुआ,	पतिव्रता ।	२१९; १७
नाम नाम सब कोइ कहै,	सुमिरन ।	११५, ३
नाम पियु का छोड़ि के,	सुमिरन ।	११६, ११
नाम मिना बेकाम है,	सुमिरन ।	११५, ४
नाम भजो मन वसि करो,	उपदेस ।	१९९, ६६
नाम रत अस्थिर भया,	सुमिरन ।	१३२, १५६

नाम रत्न धन पाय कर,	सुमिरन ।	११५,	१
नाम रत्न धन संत पहुँ,	सुमिरन ।	"	२
नाम रत्न सो पाइ हैं,	सुमिरन ।	'	५
नाम रसायन प्रेम रस,	ग्रम ।	१५५,	५०
नाम लिखा निन सत्र शिवा,	सुमिरन ।	११६,	१०
नाम साच गुरु साच है,	सुमिरन ।	१३३,	१६९
नाम हिरा धन पाव्या,	पारम ।	३५८,	६७
नारद सरिखा सीप द्व,	गुरुदेव ।	१६,	९०
नारि कहारै पीन की,	विभिचारिन ।	७२३,	६
नारि नमाने तीन गुन,	कनक कामिनी ।	२८७,	१४
नारि पराई आपना,	कनक कामिनी ।	२८६,	९
नारि पुरुष की इस्तरी,	कनक कामिनी ।	२८७,	२१
नारि पुरुष मत्र ही सुनो,	कनक कामिनी ।	२८८,	२५
नारी कहै कि नाहरी,	कनक कामिनी ।	२८७,	१६
नारा काली ऊनला,	कनक कामिनी ।	२९१,	५८
नारी का झाई पडत,	कनक कामिनी ।	२८६,	८
नारी बुडो नरक का,	कनक कामिनी ।	२८७,	२३
नारी केरे राचने,	कनक कामिनी ।	२८८,	२४
नारी ननरि न जोरिये,	कनक कामिनी ।	२८७,	२२
नारी नदिया मारखी, औ जो प्रगटे काल । क० का० ।		'	२०
नारा नदिया मारखा, वही अवरवल पूर । क० का० ।		'	१९
' नदी अथाह झल,		'	१५
नारी नरक न जानिये,	"	२९२,	६०
नाहीं जम अही,		२८७,	१८
" नाहीं नाहरी,	'		१७

नारी निरखि न देखिये,
 " मदन तलावडी,
 " सेती नेह,
 नान्हा काती चित दे,
 निगुने गोंय न आसिये,
 निगुरा ब्राह्मन नहि भला,
 निज आसन सन्तोष में,
 " मत सतगुरु पास,
 " मन तो नीचा किया,
 " " माना नाम सों,
 " सुख आत्म राम है,
 " स्वारथ के कारन,
 निशर झरे अनहद वज्र,
 निघटक बेठा नाम त्रिनु,
 निमल सत्रल जो जानिके,
 निरजानी सों कहिये कहा,
 निरवधन बधा रहै,
 निरमल गुरु के नाम सों,
 " छडी मल गहे,
 " भया तो क्या भया,
 निरतर वामी निरमला,
 निराकार तिजरूप है,
 निराळम को खोज में,
 निर्यच्छी को भक्ति है,

कनककामिनी ।	२८७,	१३
"	२९१;	५९
"	२८८,	२७
चितावनी ।	१८३,	१०८
सगति ।	९६,	७२
निगुरा ।	५२,	६०
सतोष ।	४२८,	५
सतगुरु ।	३०,	१०५
गुरुदेव ।	१०,	४९
"	"	४८
सुमिरन ।	१२८,	११९
स्वारथ ।	२४२,	२
सद्व ।	२०४,	१६
चितावनी ।	१७६,	४८
निजकला ।	३७०;	१२
आत्मानुभव ।	३१२,	२५
दासासन ।	१०४,	१०
मर्मनिघ्नस ।	३४५;	३१
असारगार्हा ।	३५१;	१०
जीवतमृतक ।	३३४,	३७
बेहद ।	३३९;	१५
साधु ।	५६,	२८
बेहद ।	३४१;	३६
भक्ति ।	११२,	४९

निर्वैरी निह कामता,	साधु ।	६५, १०७
निश्चय निधी मिलाय तत,	सतगुरु ।	२५, ६४
॥ काल गरासही,	काल ।	२९६, ३३
निस दिन एकै पटक हा,	सुमिरन ।	१३३, १६७
॥ ॥ दासै विरहिनी,	विरह ।	१६५, ४८
निसरा पै विसरा नहीं,	साधु ।	७०, १४६
निसि अधियारी कारनै,	निगुरा ।	४६, ७
निसर ह्वे रन में रहे,	मूरमा ।	२३०, ४४
निहकामी निरमल, दसा, नित चरनों की आस । दा० ।	दा० ।	१०६, २६
॥ ॥ पकड़े चारों सूट । साधु ।	साधु ।	७५, १८७
निहचल भल अरु दृढ मता,	॥	६५, १११
निहचिन्त ह्वे करि गुरु भने,	मन ।	२७१, ६८
नीचे नीचे सब निरे, निहि तिहि प्रहुत अधीन । टी० ।	टी० ।	४५, ११
॥ ॥ सत चरन लीलीन । दीनता ।	दीनता ।	॥ १०
नीर कर्नार अलेख मिलि,	परिचय ।	१४७, १०३
॥ भया तो क्या भया,	जीमनमृतन ।	३३४, ३६
॥ मध्य यौ बुद बुदा,	व्यापक ।	३२८, ३५
नीलकण्ठ काडा भखे,	साधु ।	६१, ७२
नम विहना देहरा,	परिचय ।	१३९, ३६
नेह निगोह ही नैन,	प्रेम ।	१५७, ७३
॥ निभावन कठिन है,	॥	१५८, ८३
नैन समान दैन में,	आत्मानुभव ।	३११, १४
॥ हमारे बागरे,	विरह ।	१६७, ६५
नैन तो बडि लाय्या	,	१६५, ५२

नैनो अतर आय तू, निसदिन निखू तोहि । प्रिरह ।	१६६;	६४
॥ ॥ ॥ नैन सापि तुहि लेय । पतिव्रता ।	२१८;	१२
॥ काजल देयके, कनकमामिनी ।	२८८;	३१
॥ को करि कोठडी, प्रेम ।	१५६;	५९
॥ माहीं मन प्रम, प्रश्नोत्तर ।	४४२;	१९
नौ मन मूत अरशिया, विचार ।	४२२;	११
॥ सत सान सुदरो, विभिचारिन ।	२२४;	१३
नौन गला पानी मिला, परिचय ।	१६७;	१८
निन्द निसानी मीचमी, सुमिरन ।	१२३;	७७
निन्दक एकहु मति मिलो, निन्दा ।	३८४;	१
॥ ते कृता भला, ॥ ॥	॥ ॥	२
॥ नो ह नाक त्रिनु, निमदिन निष्टा खाहि । ॥	॥ ॥	४
॥ ॥ ॥ सोहे नकटो भाहि । ॥	॥ ॥	३
निन्दक दूर न कोनिये, निन्दा ।	३८४;	६
॥ नियर राखिये, ॥ ॥	॥ ॥	५
॥ हमरा जनि मरो, ॥	३८५;	७
॥ न्हाइ गगन कुरपेत, ॥	३८६;	२२
निन्दा कीजे आपनी, ॥	॥	१८
॥ हमरो जो करै, ॥	॥	२४
न्हाये धोये क्या भया, भर्मनि प्रस ।	३४५;	२८

प

पच्छी उडानी गगन को, विपर्यय ।	२४७;	१४
पदा पर्माहा सुगसरी, पतिनता ।	२२२;	४७

पडत गुनन रोगी भये,	पडित ।	३८३,	२६'
पडते गुनते जनम गयो,	पडित ।	"	२९
पडना गुनना चातुरी,	उपदेस ।	१९९,	६४
पटा गुना सीखा सभी,	भर्मनि-पस ।	३४७,	५६
पडि पडि और समुझाऊ,	पडित ।	३८३,	३०
पडि पडि केपय्य भये, लिखि २ भये जो ईट ।	उप० ।	१४९,	६५
पडि पडि के समुझाऊ,	वरनी ।	३६२,	१६
पडि पडि तो पय्य भया, लिखिरभया जा चोरा प० ।		३८१;	५
पडो गुनी पाटका भये,	पडित ।	३८२,	२४
पडो गुनी त्राहल भये,	पडित ।	३८३,	२५
पडै गुनै सत्र वद का,	पडित ।	"	२७
पडै गुनै सीखि सुनै,	पडित ।	३८१,	६
पद पदानै कहु नहा,	पडित ।	३८२,	१९
पतिभरता ऐसी रहै,	पतिव्रता ।	२१८,	८
पतिभरता क एक तू,	पतिव्रता ।	"	१०
पतिभरता क एक है,	पतिव्रता ।	२१७,	१
पतिभरता को मुख धना,	पतिव्रता ।	'	२
पतिभरता तन जानिये,	पतिव्रता ।	२१८,	७
पतिभरता तो पिय भजे,	पतिव्रता ।	'	१४
पतिभरता पतिको भजे, और न आन सुहाय । "		२१७,	६
पतिभरता पति को नभै, पति भजि घरि निश्वास । "		"	५
पतिभरता मैगी भली, काली कुचर कुरख । "		२१७,	३
पतिभरता मैला भयी, गले काच की पोत ।	पतिव्रता ।	'	४
पतिभरता व्यभिचारिनी,	पतिव्रता ।	२१८,	९

पद गावै मन हरषि के,
 पद गावै लौलोन है,
 पद जोरै साखी कहै,
 पन छूटै छूटा फिरै,
 पपिहा को पन देखि कर;
 पपिहा तो पित्र पित्र करै,
 पपिहा पन को ना तजै,
 पप्पा सों परिचय नहों,
 परगट कहूं तो मारिया,
 परदे रहतो पदमिनी,
 पय पानी की प्रीतडी,
 परदेसों खोजन गया,
 परनारी का राचना,
 " के राचने,
 " पर सुंदरा,
 " पैनी छुरी, कन्हू छेडि न देखिये(३)
 " " ना वह पेट सचारिये(३)
 " " मति कोइ करो प्रसंग ।
 " राता रहे,
 परवत परवत में फिरा,
 परमारथ पाको रतन,
 परमेश्वर ते सत बड,
 परारव्य पहिले बना,
 पन नहों पानी नहों,

चानक ।	३०७;	१२
विश्वास ।	२११;	१६
कथनी ।	३६१;	१४
त्रिभिचारिनि ।	२२५;	२५
पतिव्रता ।	२२२;	४९
प्रेम ।	१५९;	८७
पतिव्रता ।	२२२;	४८
पारख ।	३५६;	४८
गुरुशिष्यहेरा ।	४३;	३२
चितामनी ।	१८६;	१४०
मन ।	२७१;	६३
पारख ।	३५७;	५५
कनककामिनी ।	२८९;	३६
"	"	३५
"	"	३८
"	"	३३
"	"	३४
"	२८८;	३२
"	२८९;	३७
साधु ।	६२;	७७
परमारथ ।	२४३;	१
साधु ।	६१;	७१
कर्म ।	४०८;	१६
परिचय ।	१४०;	३८

पसु को होतो पनहिया,	करनी ।	३६५;	२८
पसुचा सों पानी पयो,	निगुरा ।	४८;	१८
पहिले माका खसम भया,	निपर्येय ।	२५६;	४९
पहिले अगनि विरह की,	विरह ।	१७१;	१०५
॥ दाता मिष भया,	गुरुदेव ।	५;	१६
॥ पट पास बिना,	संगति ।	९५;	६४
॥ प्रेम न चानिया, चाखि न लीया स्वाद । प्रेम ।		१५३;	२७
॥ ॥ मुक्ति निरासी आय । ॥ ॥			२८
पहिले फटके छाज के,	भारग्राही ।	३४९,	३
॥ बुरा कलाप के,	गुरुदेव ।	१३,	६५
॥ नूटी पिरयरी,	भेष ।	८३,	३९
॥ यह मन काग था,	मन ।	२७०,	५८
॥ राखि न जानिया,	॥	२७६,	१०७
॥ सेर पर्चास का,	प्रकृतिगुन ।	३८७,	१
॥ मद्ध विछानिये,	पारस ।	३५२,	३
पहुँचेंगे तत्र कहेंगे, अत्र कलु कहा न जाय । मूढम० ।		३७७,	३०
॥ ॥ चाहों देस की सीच । ॥ ॥			२८
॥ तो ॥ मोलेंगे उम ठाय । ॥ ॥		३७९,	३९
पाकी को मन पानरे,	दया ।	४३३,	१२
॥ खेतों देखिके,	चिन्तामनी ।	१७८,	६४
॥ ते लाकी भला,	दया ।	४३३,	११
पास पास नहि करि सकै,	साधु ।	५४,	१२
पाँटे लगा जाय था.	सतगुरु ।	२४,	५२
पात जो तेहर सों कहे,	काळ ।	२९५;	२५

पात झरता या कह,
 पान झरता देखिके,
 पावर मुख ना बोलहा,
 पानी का सा बुदबुदा,
 पानी केरा पतला,
 पाना केरा बुदबुदा,
 पाना चारि तलाव का,
 पानी निरमल अति घना,
 पाना पिरयी के हते,
 पानी माहों परजला
 पाना मिले न आपसो,
 पाना म का माछली, चलि सो परत गई ।
 पाना मे का माछरा, क्यों ते पक्यों तीर ।
 पाना 'मय्य' लाऊ ज्यों,
 पाना हा त हिम भया,
 पाना हू ते पातला,
 पापी का दाजल नहा,
 पापी पुन्य न भावई,
 पाया कहै ते शरै,
 पाया ना सो गहि रहा,
 पायो पर पायो नहीं,
 पारख कोन साधु का,
 पारन सूर गै सुना,
 पारधिया नन लाव्या,

काल ।	२९५,	२७
काल ।	३००,	७३
भर्मनि-वस ।	३४८,	६०
चितामनी ।	१८१,	९१
प्रिचार ।	४२२,	४
चितामनी ।	१७६,	४५
चितामनी ।	१९१,	१८९
सगति ।	९६,	७१
नगा ।	४१७,	७
प्रिपर्यय ।	२४७,	१२
कथनी ।	३६२,	१३
प्रिपर्यय ।	२५७,	५१
चितामनी ।	१८६,	१४२
व्यापक ।	३२९,	४३
परिचय ।	१३८,	२८
प्रिपर्यय ।	२५६,	४७
प्रिपर्यय ।	२४४,	२
असारग्राही ।	३५१,	९
मय्य ।	३१५,	१३
परिचय ।	१७०,	३४
पारख ।	३५५,	३८
पारख ।	३५४,	२९
सूरमा ।	२३८,	१२४
चैली ।	३५९,	७

पारजन के तेन का,
 " बूडो मोतिया,
 " सुभर मरा,
 पागस रूपा नाम हे, लोहा रूपी जान ।
 पारम रूपा नाम हे, लोह रूप समार ।
 पागस लोहा परसते,
 पारा कचन काडि ले,
 पागेसी मू रटना,
 पाव पलक की सुधि नहीं,
 पाव पलक तो दूर है,
 पायक एक अनेक जा,
 पायक रूपा नाम हं,
 पायक रूपा माया,
 पासा पकडा प्रेम का,
 पाहन कगी पुतरा,
 पाहन का क्या पूनिये,
 पाहन पानि न पूनिये,
 पाहन पानो पूनि क,
 पाहन पूजे हरि मिले,
 पाहन ले देल चुना,
 पाहन हा का दहरा,
 प्रिय का मारग कठिन ह,
 प्रिय का मारग सुगम ह,
 प्रिय प्रिय निय तरसत हे,

परिचय ।	१४०,	४०
निगुरा ।	७२,	५६
व्यापक ।	३२२,	२
सुमिरन ।	१२२,	६१
"	'	६२
सतगुरु ।	२५,	६०
साग्राही ।	३५०,	७
पडित ।	३८२,	२०
चिन्तायना ।	१७७,	५४
चिन्तायनी ।	"	५५
व्यापक ।	३२९,	४५
प्रिह ।	१६९,	९३
व्यापक ।	३२६	८
प्रेम ।	१५७,	७०
भर्मविनय ।	३४२	१
भर्मविनयस ।	"	२
भर्मविनयस ।	"	४
भर्मविनयस ।	"	६
"	"	३
"	"	७
"	"	५
प्रेम ।	१५६,	६१
प्रेम ।	"	६२
प्रिह ।	१६८,	७७

'पिय सनमुख सेवा करै,
 पिया पिया रस जानिये,
 पिया पिया सब कोइ कहै,
 पिया पियाला प्रेम का,
 पिय परिचय तव जानिये,
 पोछै चाहै चावरी,
 पीपर सूना फल विन,
 पीपल पान शरंतिया,
 पीया चाहै प्रेम रस,
 पीर सवन को एक सी,
 पील अंदोरी सांझा,
 पुर पड़न काया पुरी,
 पुर पड़न सूत्रस वसै,
 पुरख जनम के भाग सैं,
 पुहुप बास ते पातला,
 " मध्य ज्यों बास है,
 पुहुपन केरी बास ज्यों,
 पूजा सेवा नेम व्रत,
 पूजे साहिब राम को,
 पूत पियारा बाप को,
 पून बानी वेद की,
 पूरव का रवि पश्चिमै,

पूरा सतगुरु ना मिला, निकसा था हरि मिलन को (३) गु० पा० ३३, २८
 " " मूँड मुँडावै मुक्ति कूं (३) " " २१

पतिव्रता ।	२२२;	५
प्रेम ।	१५४;	३
रस ।	२६४;	१
रस ।	२६३;	
परिचय ।	१३५;	
विश्वास ।	२१३;	३
चितावनी ।	१८३;	११
काल ।	२९५;	२
प्रेम ।	१५३;	३
मांसाहार ।	४१४;	२
विरह ।	१७०;	९
चितावनी ।	१८३;	११
माधु ।	६०;	६
संगति ।	९५,	५
विपर्यय ।	२५६;	४
व्यापक ।	३२५,	६
गुरुशिष्यहेरा ।	४१,	२
मर्मविध्वंस ।	३४४,	२
"	३४३,	१
माया ।	२८२,	४
माया ।	३८०,	४
कर्म ।	४०८,	१२
		२८
		२१

पूरा मतगुरु ना मिला, स्वांग जतीका पहिरिके(३) गु०पा०	३३,	१९
पूरा सतगुरु सेवना, अंतर प्रगटे आप ।	सतगुरु । २४,	५४
„ „ „ सरनै पायो नाम ।	„ २४,	५६
„ „ „ सेव तूं,	„ „	५५
„ सहजै गुन करै,	गुरुपारख । ३३,	२३
पूरे कां पूरा मिले,	निगुरा । ४७,	९
„ मतगुरु के बिना,	गुरुपारख । ३३,	१८
„ से परिचय मया, जमसों बाकी कटी गई(३) परि०	१४३,	७०
„ गो „ „ निरमल कोन्हो आतमा(३) „ ।	१२६,	२५
पृथिवी अपहु तेज नहीं,	सद्ग । २०८;	५७
पौथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ,	पंडित । ३८१,	७
पौ फाटी पगरा भया,	विश्राम । २११,	१३
पंख होत परचस पयो,	भर्मविच्यस । ३४६,	४४
पेन अममाना जव लिया,	सूरमा । २३२,	६०
पंडित और ममालचो,	पंडित । ३८०,	१
„ केरी पौथियाँ,	„ „	२
„ पढते वेद को,	„ ३८३,	२८
„ पढ़ि गुनि पचि मुये,	गुरुदेव । ११;	६०
„ पौथी बांधि के,	पंडित । ३८०;	३
„ बोडो पातरा,	„ „	४
„ मूल बिनासिया,	गन । २७३;	८३
„ सेली कहि रहा, कदा न मानै कोय ।	भेद । ३१९;	१८
„ „ „ भीतर बेधा नाहि । भ०वि० ।	३४७;	४८
पंथी उभा पंथ सिर,	काल । २९६;	४१

पाच तरंग का पूतरा, रज त्रिज की बुद । भर्मनिधिस ।	३४६,	४०
“ “ पूतला, मानुस धरिया नाम । चिताननी ।	१७८,	६३
“ “ गुन तीन के, परिचय ।	१४५,	८४
“ धातु का पिनरा, चिताननी ।	१८८,	१५९
‘ पचीमी मारिया, त्रिपर्यय ।	२४४,	३
पाच सहाई जीव क, मन ।	२७२,	७०
“ सात सुमता मरी, भेष ।	८५,	५७
“ सगि पिन पिन करे, सुमिरन ।	१२९,	१२८
पाचो इन्दी उठा मन, जीवतमृतक ।	३३५,	४७
“ वैरी जीव के, मन ।	२७१,	६९
“ में फला फिरे, भेष ।	८६,	७१
पाडर पिजर मन भैर, निध्यास ।	२११,	१५
पौय प्रदारथ पेलिया, पारख ।	३५५,	३३
पौन पुजाये चौठ के, मांसाहार ।	४१३,	११
पिजर प्रम प्रकासिया, अन्तर भया उजास । परिचय ।	१४०,	४२
‘ “ “ जागो जोति अनत । ‘	१३८,	२३
पिंड प्रान नहि तासु के, निजकर्ता ।	३७३,	३७
पूजा मेरी नाम है, सुमिरन ।	११८,	२९
पैडा भौहीं पडि रहा, जीवतमृतक ।	३३३,	२९
पैडे मोती मोखरा, पारख ।	३५६,	४९
प्रगट गुप्त की सधि में, मध्य ।	३१५,	१२
प्रगटे प्रेम त्रिवेक दल, त्रिवेक ।	४२०,	३
प्रथम फदे सय देवता, मोह ।	३९३,	७
प्रभुता को सय कौड भजं, मान ।	३९८,	३१

ध्यात काल के जाल म,	निवेक ।	४२१,	७
आन पिंड को तजि चला, छूटि गया जंजाल । सू०मा० ।	३७८:	३२	
॥ ॥ ॥ मुआ कहै मत्र कोय । ॥	,	३१	
प्रीत अटी है तुझ सों,	पनिवृत्ता ।	२१९,	२०
॥ करो सुख लेन को,	सगति ।	९६;	६७
॥ रीत सन' अर्थ की,	परमार्थ ।	२४३;	३
प्रीतम को पतियो लिखू,	भेद ।	३१९;	२२
॥ प्रीति बढाय के,	प्रेम ।	१५९;	८५
प्रीति जु तासो कीजिये,	प्रेम ।	१५८;	८०
॥ जु लागी घुल गई,	॥	१५५,	४७
॥ ताहि सों कीजिये,	॥	॥	४९
॥ पुरानि न होत है,	॥	१५८;	७६
॥ बहुत ससार में,	॥	१५६,	६३
प्रेम छिपाया ना छिपे,	प्रेम ।	१५२;	१७
॥ तो ऐसा कीजिये,	॥	॥	२१
॥ न बाढी ऊपजे,	॥	१५१;	६
॥ पिछौरी तानि के,	॥	१५८,	७५
॥ पियारे लाल सों,	॥	१५१,	११
॥ पियाला भरि पिया, जरा न किया जतन । रस ।	२६३;	१०	
॥ पियाला भरि पिया, राखि रहा गुरु ज्ञान । प्रेम ।	१५१;	८	
॥ पियाला सो पिये,	॥	॥	७
॥ पथ में पग धरै,	प्रेम ।	१५९;	९०
॥ पांसी पहिरि के,	॥	१५२;	१६
॥ प्रीति सो जो मिले,	॥	१५८,	८४

प्रेम प्रेम सब काइ कहै, आठ पहर भीना रहै(३) प्रेम	१५१,	९
„ , काइ कहै, जा मारग साहिब मिलै(३) „	„	१०
„ अनिन नहि करि सके,	„	१३
„ निमाता मैं सुना,	„	१२
„ निना जा भक्ति है,	भक्ति । ११०,	२९
„ निना नहि भेष कछु, नाहक करै सुनाद । प्रेम ।	१५२	१८
„ निना नहि भेष कछु, नाहक का सुनाद । „	„	१९
„ निना धीरज नहि,	१५१,	१४
„ भाग इका चाहिये,	१५२,	२०
„ भक्ति में रचि रहे,	„	१५
प्रेमी दूडत में फिर, मिष से अमृत होय (४) „	„	२२
„ दूडत में फिर, गुरु भक्ति दूढ होय(४)गु०शि०हे० ।	४१;	१८

फ

फट्टे हिप्पा फाट नहि,	विरह ।	१७०, १०१
फल कारन सेवा करे,	सेवक ।	१००, ९
फागुन आयत देखि के, बन रोता मन माहि । काल ।	२९५,	२४
फागुन आयत देखि के, मन झूरे वनराय । काल ।	३००;	७२
फाटे कानों बाधिनी,	कनक कामिनी ।	२९०, ४७
फाटे दीदै मैं फिर,	विरह ।	१७१, १०२
फारि पटारा धज करु,	विरह ।	१६७, ६८
फाली फूली गाढरी,	भेष ।	८६; ७०
फिकिर तो सब को खा गड,	धीरज ।	४२५, ११
फटा मन बदलाय दे,	साधु ।	७२, १६०

फूटी आगि त्रिवेक का,
फूले थे सो गिरि पड़े,
फेर पड़ा नहि अग में,

व

बनारी पातो खान हूँ,
बनार ज्ञानी जगत में,

बनवन कह्यो या काम कहूँ,
बनवन बले भोजल तरें,

बग ध्यानी ज्ञानी बने,

बगुला हम बनाय ले

बगुली नीर मिटारिया,

बचन बंद अनुभव जुगति,

बड़ा बड़ाई ना करै, छोटा बह इतराय ।

बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोलै बोल ।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जोरे बड मति नाहि । "

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड खजूर । मान ।

बड़ी बड़ाई ऊट की,

बड़ी विपति बड़ाई है,

बढही आमत पेखि के,

बनचारी बिनती करे,

बनजारे के बेल ज्यों, टाँडो उतर्यो आय ।

बनजारे के बेल ज्यों, भरमि फिर्यो चहुदेस । उपदेस ।

बरस बरस नहि करि सकै,

बरमि अमृत निपज हिरा,

बलिहारी गुरु आपकी,

त्रिवेक । ४२०, १

जीवनमृतक । ३३५, ४६

परिचय । १४८, १११

मासाहार । ४१३, १०

पारख । ३५७, ५५

कर्म । ४०९, १९

कर्म । ४०९, २१

मान । ३९०, ३३

पारख । ३५५, ३६

विपर्यय । २४९, २२

आत्मानुभव । ३१२, २६

मान । ३९९, ३२

मान । ३९७, १४

" १७

" १६

" १३

" १५

काल । ३९५, २३

बिनती । ४३६, ३

उपदेस । १९८, ५४

" ५६

साधु । ५४, १५

परिचय । १९६, ९९

गुरुदेस । ९, ४३

बलिहारी उस फूल की,
 वसुधा नन बहु भाति है,
 वस अपिण्डी पिण्ड में,
 वस्तु कहीं दृष्टै कहीं,
 बहता पानी निरमला,
 बहत का बहि नान दे,
 बहते को मति बहन दे,
 बहन बहता थल वरै,
 बहन बहता थिर करै,
 बहनां सैं बेटो भई,
 बहु सम्रह विषयान को,
 बहुत गई थोड़ी रही,
 " गुरु मै जगन मे,
 " नतन करि कीजिये,
 दान जो देत है,
 पुन दिनन का नोहती,
 पमारा जनि करा,
 पाप विहटा मिरगाठा,
 पाठरिया दूभर भई,
 पाठ चढती बेलरी,
 पाटी के विच भँवर या,
 पात बनाई जग रग्यो,
 पाद करै सो जानिये,
 " प्रभु दम जात है,

प्रेम ।	१५८,	८२
सारग्राही ।	३५०,	१०
भेड ।	३१९	१९
गुरुधारस ।	३८,	९८
साधु ।	६७	१०८
उपदेस ।	१९७,	५०
उपदेस ।	१९८,	७१
समरथ ।	३०१	३
समरथ ।	"	४
विषय ।	२१८	५४
भेष ।	८४,	५२
धारज ।	४२१	८
गुरुदेव ।	१४,	७१
लोभ ।	३९२	५
भगविष्णुस ।	३८१	३७
विह ।	१६०,	५
आसातृत्ना ।	४०१,	१४
मन ।	२७५,	१०३
समरथ ।	३०२,	१६
आसातृत्ना ।	४०१,	१७
चितागना ।	१८४,	११९
मन ।	२७५,	१००
गुमिरन ।	१३८,	१७२
पारख ।	३५६,	४३

बाद विवादां मति करे, करु नित अपना काम । उप० ।	२०१;	८३
,, विवादां मति करो, ,, ,, एक विचार । सुमि० ।	१३४;	१७२
,, विवादे विष घना, मौन गहो हरि सुमरिये(३) भेद ।	३१९,	१७
,, ,, ,, गहै सबकी सहै(३) क्षमा ।	४२६,	८
वान तीरछा भेदिया, सुरमा ।	२४२;	१५५
वाना पहिरै सिध का, मेघ ।	८२;	३५
वानो तो पानी भरे, किया चाकरी दूर(४) भाषा ।	३८०,	५
,, ,, ,, रहनी का घर दूर(४) करनी ।	३६३;	१४
बार बार क्या आखिये, पतिव्रता ।	२१९,	२६
,, ,, तोसों कहा, उपदेस ।	१९८,	५३
,, ,, नहि करि सकै, साधु ।	५४,	११
वारी वारी आपने, चितावनी ।	१८६,	१३८
वाल्का रूषी सांझा, समरथ ।	३०३,	२३
वाल्गना भोले गया, काल ।	२९८,	५२
वाहूँ जैसी करकरी, उपदेस ।	२०१,	८४
वास सुरति छे आवई, प्रश्नोत्तर ।	४४४,	३९
वासर गम नहि रैन गम, मध्य ।	३१४,	६
,, सुख नहि रैन सुख, ना सुख सपना माहि । वि० ।	१६०,	४
,, ,, ,, धूप न छोह । दुःख ।	४०६,	१४
बाहिर क्या दिलाइये, सुमिरन ।	१२४,	८२
,, घाय दिसै नहीं, भूरमा ।	२४१,	१५४
,, भीतर राम है, व्यापक ।	३३०,	४०
,, सुख दुख दिन को, वर्म ।	४०९,	२०
बिन धोवन का पंथ है, बिन चरती का देस । परिचय ।	१३७,	१७

विरह बड़ो चरो मयो,	विरह । १६१, १८
॥ मिया बैराग को,	॥ ॥ १७
विरहा जाया दरद सो,	॥ १६२, २४
॥ कहै कमीर को,	॥ १६३, ३१
॥ पीन पठाइया,	विरह । १६२, २४
॥ पूत छुहार का,	, ॥ २३
॥ विरहा मति कहो,	॥ ॥ २८
॥ बुरा जनि	' १७१, १०३
॥ मयो निछानना,	॥ १६३, ३०
॥ मोसो यह कह,	॥ ॥ २०
॥ सेता मति अद,	' १६२, २६
विरहो प्राणा विरह को,	विरह । १६२, २७
विरहिनी उठि उठि भुँड पड़े,	विरह । १६१, १२
विरहिना उभी पय मिर,	॥ १६०, ६
विरहिना जगता देखि के,	॥ १६१, १०
विरहिनी थी तो क्या रही,	' ॥ ११
॥ देय सदेसरा, सुनहु राम सुजान ।	' १६०, ८
विरहिना देय भदसरा, सुनो हमार पान ।	॥ ' ७
विरहिनी विरह जलाइया,	' ०
विरहिना मरि नायगा,	विरह । १७१, १०७
विरिया जानौ प्रल घटा, जीगें बुरा कमाय ।	वाग । २०४, १६
विरिया जाना प्रल घटा, कल पगति भये जीग/।	वाठ । ' १७
विष का मत नु मणिता,	दुस । ४०५, ५
विष्य यग जगग है,	भक्ति । ११२, ५०

त्रिपय त्याग वैराग रत,	भक्ति ।	११२,	५१
बुरा जो देखन में चग,	दौतना ।	४३५,	१२
बूझ सरीखी ज्ञान हं,	आमानुभव ।	३१२,	२७
बूझो करता अपना,	निनक्रान्ता ।	३७०;	११
बूटी बाटी पानि करि,	असारप्राही ।	३५१,	८
बूटा था पर ऊमरा,	गुरुदेव ।	११,	५६
बेकामा का सिरजि निर्गन,	निगुरा ।	५२,	५७
बेसा मारे फिर रहि,	भर्मनि नस ।	३४७,	५५
बेठा जाये क्या हुआ,	काल ।	२९७,	५१
बेठा बेटी इस्तरा,	माधु ।	५५,	२२
बेटी को भाटी ले गइ,	त्रिपर्यय ।	२५४;	४१
बेद कहै म कछ न जानू,	भाषा ।	३८०,	६
" हमारा भेद है,	भाषा ।	"	७
बेहद अगार्धी पीन हं,	बेहद ।	३३९;	१६
" बिचारो हट तजो,	बेहद ।	३३८,	१४
बेद मुआ रोगी मुआ,	जीनतमतक ।	३३१,	४
बेरागी त्रिखन भला, गिरा पडा फल खाय ।	भेष ।	८३;	४६
" " " गिरही चित्त उदार ।	भेष ।	८७,	७८
" हं घर तजा, अपना राधा खाय ।	दया ।	४३२,	०
" हं घर तजा, पग पहिरे पैनार ।	दया ।	४३३,	८
बैसदर जाडै मरै,	त्रिपर्यय ।	२५१,	२८
बोलत हो त्रिप माद हं,	भद ।	३२१;	३९
बोलता यह कह जसे,	प्रश्नोत्तर ।	४४६;	६०
" माय हि में बसे,	"	"	६१

बोली ठोली मसकरी,
 बोली हमरी पलटिया,
 बोले पुरुष कबीर में,
 " बोल विचारिके,
 बंदे तूं कर बंदगी,
 बंधा मि पानी निरमला,
 बंधे को बंधा मिला,
 बांका गढ़ बांका मता,
 बांकी तेग कबीर की,
 बांकी कूटे बाबरा,
 बुंद सिरी नर नारी की,
 " पड़ी जा पलक में,
 बालन केरी चेटिया,
 " गहदा जगत का,
 " गुरु है जगन का,
 " ते गहदा भला,
 " राजा बरन का,

भय ।	८५;	७२
विचार ।	४२३;	१४
समय ।	३०५;	४१
सब्द ।	२०७;	४८
उपदेश ।	१९८;	१२
साधु ।	६८;	१२९
गुरुपारम्प ।	३८;	६३
मूरमा ।	२३३;	६७
"	२३२,	६६
भेष ।	८०,	१८
काम ।	३९१;	१९
कर्म ।	४ ८;	१३
मंगनि ।	९४;	५५
पंडित ।	३८२;	१६
"	"	१५
"	"	१७
"	"	९
मांसाहार ।	४१२;	

भ

भग भोगी . भग उपजै,
 भजन भरोसे आप के,
 भजु ता वो है भजन को,
 भटक मुआ भेटी बिना,

काम ।	३९१,	२०
विद्याम ।	२१४;	४०
मध्य ।	३५५;	१४
भेद ।	३२०;	३२

भय विनु भाव न ऊपजै,	चितावनी ।	१८४;	१२४
” से भक्ति करै सबै,	”	”	१२५
भरम करम की जेनरी,	कर्म ।	४०७,	६
,, न भागे जीव का,	भेष ।	८२,	३६
मरा होय तो रीतई,	आत्मानुभव ।	३११,	१६
भलका हे गजवेल का,	सूरमा ।	२३९,	१३३
भला सुहेला ऊतरा,	लगनी ।	३६८,	२८
भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हान ।	गुरुदेन ।	९,	४५
” ” ” जाते पाया ज्ञान ।	”	”	४६
” ” पिय मुआ,	निरह ।	१६७,	७२
” ” भय षडी,	परिच्छेद ।	१४६,	९७
भली भई जो भय मिटा,	दासासन ।	१०५,	१९
” ” हरिजन मिले,	साधु ।	६२,	७९
” मली सब कोइ कहै, भली छिमाका रूप ।	क्षमा ।	४२६,	४
” ” रही छिमा छहराय ।	”	”	३
भक्त अरु भगवत एक हे,	मान ।	३९९,	३४
” आप भगवान हे,	भक्ति ।	११३,	५७
” उलटि पोछै फिरै,	”	११४,	६२
’ भरोसे राम के,	निश्वास ।	२१२,	२४
भक्तन की यह रीत हे,	भक्ति ।	११३,	६०
भक्ति कठिन अति दुरलभ,	”	१०७,	६
” गैद चौगान की,	”	१०९,	१९
” जु सीढी मुक्ति को चढे भक्त हरषाय ।	”	१०८,	१३
” दुनारा मोकला,	भक्ति ।	”	१७

भक्ति दुवारा सांझा,	भक्ति ।	१०८;	१६
॥ दुहिली गुरुन की,	"	"	१०
॥ दुहिली नामकी,	"	"	१२
॥ दुहिली राम की,	"	"	११
॥ द्राविड ऊपनी,	"	१०७;	१
॥ निसनी मुक्ति की, कुचल पड़े के खाय (३) "		११४;	६२
॥ निसनी मुक्ति की, जनम जनम पड़िताय (४) "		१०८;	१४
॥ पदारथ तब मिले,	भक्ति ।	"	९
॥ प्राण सों होन है;	"	१०७;	३
॥ बिगाडी कामिया,	काम ।	३००;	११
॥ बिना नहि निसनरै,	भक्ति ।	१०८;	१५
॥ बिना नै नाम विन,	भक्ति ।	१००;	२१
॥ बीज पलटै नहि,	"	१०७;	५
॥ ॥ विनसे नहि,	भक्ति ।	"	४
॥ ॥ है प्रेम का,	"	११४;	६६
॥ भजन हरि नाम ह,	सुभिरन ।	१३४;	१७४
॥ भाव भादी नदी,	भक्ति ।	१०७;	२
॥ भेष बहु अन्तरा,	भक्ति ।	"	७
॥ भक्ति बहु कठिन है,	"	११३;	६१
॥ भक्ति सब कोइ कहै भक्ति न आई काज । "		११३;	५५
॥ भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न जानै भेष । "		११४;	६३
॥ भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति भक्ति में फेर । "		"	६७
॥ महल बहु ऊंच है,	"	११३;	५८
॥ रूप भगवन का,	"	१०७;	८

भक्ति मरन हि ऊपर,	भक्ति ।	१०९,	२०५
,, साड जो भाव सों,	"	१०८,	१८
भाई वीर चटाउना,	चित्तानी ।	१८७,	१४९
भाग विना नहि पाइय,	भक्ति ।	११०,	३०
भागि कहा का जाइये,	सूरमा ।	२३५,	९२
भागे भग न हायगा, बहुत मूरतन सार ।	'	२३०,	३८
" ' मुडि चाल्यै धसि दर ।	"		३९
' ' मुँह मोड़े घर दूर ।	'	२२९,	३७
" भली न होयगौ,		२३५,	९३
भारा कह ता बहु डरूँ,	भेद ।	३१८,	१०
भाव विना नहि भक्ति जग,	भक्ति ।	११०,	३२
' भालका सुरति सर,	सूरमा ।	२३३,	७५
' मुआ ता मन दे,	उपदेस ।	२०२,	९१
भावै जाओ नादरी,	दया ।	४३२,	५
भीख तान परवार की	भीख ।	८८,	१२
भीतर तो भदा नहि,	आत्मानुभव ।	३१,	१३
" मनुष्य मानिया,	परिचय ।	१४९,	१२८
मुनगम वास न वेधई,	सगति ।	९२,	३१
मुक्ति मुक्ति भागों नहा,	सेवक ।	१०१,	२०
भूस गई भोजन मिले,	उपदेस ।	४००,	७५
भूखा भूखा क्या करै,	निश्वास ।	२१०,	५
भूप दुखी अनधूत दुखी,	दुख ।	४०६,	१३
भूला भसम रमाय क,	मेघ ।	८१,	२६
' भूला क्या फिरै,	व्यापक ।	३२६,	७

भूले ये ससार में,
 भूपन मयै चलन ज्यों,
 भेद ज्ञान तन लौ भलो,
 " " साधुन मया,
 भेदी जानै मरन गुन,
 ' लोया साध करि,
 भेरे चडिया शाही,
 " " सरप के,
 " दमि साधर तरी,
 भेष देवि मनि मूलिये,
 भै भारन सन ज्ञानिया,
 भोग मोक्ष मार्गो नहि,
 भारे भृंगे स्वसम का,
 भीमागर कौ ग्राम ते,
 " जल विष भरा,
 " ते यौ रहा.
 " भारा मया,
 भेदर भोख मयम कहा,
 भेरा बाडो परिहरा,
 भाग भग्न बल बुद्धि को,
 ' तमाग्य गाहका,
 " " दूतरा, वहै धरार इनको तन(३) '
 " " " " " ता जीव को(३) "
 " " " " " सो जीवरा (३) "

माया ।	२८२;	४१
व्यापक ।	३२८,	३२
भेद ।	३६७,	३
" "	" "	४
" "	" "	२
गुरुपाग्य ।	३८,	५९
" "	३६,	४४
निषेध ।	२६२;	६५
" "	२६१,	६२
भेष ।	८६,	६९
पारम ।	३५७,	५२
सेवक ।	१०१,	२६
पतिप्रता ।	२२१;	४१
गुरुदेव ।	१५,	८७
लगना ।	३६८,	२७
मर्मासन ।	३३५,	२
ममरथ ।	३०५;	३५
भोग ।	८८,	१४
निषेध ।	२४९,	२०
नशा ।	४१७,	४
" "	४१८;	१९
" "	" "	१७
" "	" "	१५
" "	" "	१६

भाग तमाखू छूतरा, कौन करेगा बदगो (३) नशा ।	४१७,	२
” ” ” योग यज्ञ जप तप किये (३) ”	४१८,	१४
भाग तमाखू फीम को, नशा ।	४१८,	१८
भाइ भनाई खेचरी, भेष ।	८६,	७३
भोंडी आवै वास मुग्ध, नशा ।	४१९,	२८

प

भकरतार सों नेहरा,	परिचय ।	१४७,	१००
मक्के मदीने में गया,	भर्मविघ्नस ।	३४८,	६२
मच्छी मल्लको गहत है,	असारग्राही ।	३५०,	२
मठरी दह छाडो नहीं,	चिताननी ।	१८६,	१४१
मठली लुरक पकडिया,	भर्मविघ्नस ।	३४५,	२९
” फिरि फिरि बाहुरी,	चिताननी ।	१८७,	१४६
मत बाडा में पडि गये,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७९,	४१
मतवाला नूतन फिरे,	रस ।	२६४,	१४
मता हमारा मन है,	सद्व ।	२०४,	२०
मथुरा कासा दारका,	सगनि ।	९१,	२५
मद अभिमान न कोजिये,	मद ।	३९५,	१०
” तो जहुनक भाति पा,	नशा ।	४१८,	११
मन्य अग लगा रहै,	मन्य ।	३१४६,	१
” गुफा नहीं सुरति हे,	भेष ।	८०,	१०
मन अपना समझाय ले,	मन ।	२७५,	१०२
मन उलटी दरिया मिला, तू पूरा रहिमान । जा०मृ० ।		३३४,	३९
” ” ” सो ” ”	लगनी ।	३६८,	२०

मन का मस्तक मूडि ले,	भय ।	८५,	६२
„ को घाली हू गड़े,	मन ।	२६८,	३७
„ की मनसा मिटी गई, अह गई सब छूट । जी०मृ० ।		३३१,	१६
„ की „ दुरमति सब भई दूर । भक्ति ।		१११,	३८
„ की सका मेदि करि,	कर्म ।	४१०,	२७
मन कृपार महमत था,	मन ।	२६७,	२९
„ के बहुतव रग हैं,	„	„	२६
मन के मते न चलिये, छाड़ि जाव की वानि ।	„	२६६,	१६
„ „ „ मन के मते अनेक ।	„	„	१५
„ के मारे बन गये,	„	„	१८
„ के हारे हार हैं,	„	२६७,	३०
मन का मास् पढकि के, दूटे पीछे फिर जुटे(३) „	„	„	२१
„ „ „ रिप की क्यारी बोयके(३) „	„	२६६,	२०
„ का मिरतक देखिके,	भर्मत्रिचम ।	३४५,	३२
„ गोरख मन गोविदा,	मन ।	२६७,	२३
मन चरतों तन भी चलै,	मन ।	२६८,	३८
„ चाले तो चलन दे,	„	२७६,	११०
„ जो गण तो जान दे,	„	२६८,	३४
„ जो सुमिर राम को,	सुमिरन ।	१२०,	१२९
„ जानै सब बात,	मन ।	२६९,	४२
„ तरफस तन तोपसी,	मूरमा ।	२४१,	१४०
„ ते माया ऊपनै,	माया ।	२८५,	७६
„ दाना मन छाल्चा,	मन ।	२६७,	२७
मन दीज मन पाइये,	मन ।	२६८,	२३

मन दीया कहूँ और ही,
 ,, नहि छोड़े विषय रस,
 ,, ,, मारा मन करी,
 ,, निरमल गुरु नाम मो,
 ,, पंखों विन पंख का,
 ,, पंछी तबलगि उड़ै,
 ,, पांचों के बस पडा,
 मन फाटे चित ऊचटै,
 ,, ,, वायक बुरे,
 ,, भले भाया तजो,
 ,, मथुरा दिल दारका,
 ,, मनसा को मारि करि,
 ,, ,, ,, ले,
 ,, ,, जब जायगी,
 ,, मानिक जय ऊचटै,
 मन मारी मैदा कसं,
 ,, माला तन मेखला,
 ,, ,, तन सुमिरनो,
 ,, मुरीद संसार है,
 ,, मूया माया मुद्दे,
 ,, मेवासी मारि करि,
 ,, ,, मंडिये,
 ,, मैदा तन ऊजला,
 मन मोटा मन पानरा,

संगति । ९२; ३८
 मन । २६८; ३१
 ,, ,, ३६
 ,, २६९; ४१
 ,, २७५, १०५
 ,, २६७; २८
 ,, २६६; १८
 मन । २७४; ९३
 ,, ,, ९५
 माया । २८४; ६८
 भर्मविध्यंस । ३४४; १९
 मन । २६९; ४०
 ,, ,, ४१
 ,, ,, ४६
 ,, २७४; ९६
 मन । २७६; ११२
 भेष । ८२; २९
 ,, ,, २८
 मन । २६६; १०
 चितायनो । १९०, १७०
 मन । २७७, १२१
 भेष । ८१; २२
 ,, ८६; ६७
 मन । २६७; २४

१) राजा नायक भया,	उपदस ।	१९८, ५०
२) रजन परदुख हरन,	माधु ।	६६, ११२
३) सत्र पर असत्रार ह,	मन ।	२७६, १०८
४) से मत मिगता नहीं,	॥	२६८, ३२
मन हि दिया निन सत्र दिया,	सतगुरु ।	२४, ५७
५) ही को परमोधिये,	मन ।	२६७, २२
६) ही में फला फिरै,	भर्मनिग्रस ।	३४५, ३०
मना मनोरथ छडि दे,	मन ।	२६८, ३६
मनुष्य कू क्यों वावरा,	मन ।	२७५, १०१
मनुष्य ता अन्तर बसा,	मन ।	२६८, ४०
गनुष्य तौ गाफिल भया,	सुमिरन ।	१३३, १७०
मनुष्य पक्षी भया, जहा तहा उडि नाय ।	मन ।	२७५, १०४
मनुष्य तो पक्षी भया, उडि के चला अयास ।	मन ।	२६७, २७
मनुष्य तो फला फिरै,	मन ।	२६८, ५५
मनुष्य भया दिसन्तरा,	सनीयन ।	३३६, ७
मनुष्य जम तोक दिया, भजिय को हरिनाम ।	चिन्तायनी ।	१८८, १६३
१ जम तोकु दिया, भजिये को गार्थिद ।	चिन्तायनी ।	॥ १६४
मनुष्य जनम हि पायक, जगन्मणि भया न राम		१८० १७२
मनुष्य जम हि पाय के, भया न स्युपति राय ।		१८९, १६६
ममता मरा क्या कर,	परिचय ।	१४५, ८८
मरती प्रिया दान द,	भर्मनिग्रस ।	३४५ ३६
मरती प्रिया पुन करे,	चिन्तायनी ।	१८७, १५०
मरते मरत नग सुआ, औसर सुमा न काया जा० म० ।		३३०, ३

मरते मरते जग मुआ, सुत वित दारा जोया चितावनी ।	१९०,
मरना भला विदेस का,	जीवतमृतक । ३३३,
मरुं पर मांगूं नहीं,	परमारथ । २४३,
मरुं मरुं सब कोड कहैं,	चितावनी । १९०,
मरेगे मरि जायंगे,	चितावनी । १७५,
मल मल खासा पहिरते,	चितावनी । १८१,
मल्यागिरि के पेड़ सों,	संगति । ८९,
महमंतां अविगत रता,	रस । २६४,
महमंता नहि भिन चरै,	रस । "
" मन मारि ले,	मन । २६९,
महलन मांहीं पोडते, छत्रपती की छारमें (३) चिता० ।	१८१,
" मांहीं पोडते, ते सपने दीसैं नहों (३) चितावनी ।	"
महन्त तों माया- गला,	चानक । ३०८,
मा मारै धी घर करै,	विपर्यय । २५३,
माइ मसानी सीढी सीतला,	विभिचारिन । २२५,
माई मुंइ उस गुरु की,	गुरुपारख । ३२,
माखी गहि कुयास को,	तिन्दा । ३८५,
" गुडमें गडि रही,	स्वाद । ४११,
" चंदन परिहैं,	संगति । ९५,
माटी कहै कुम्हार को,	चितावनी । १७९,
" केरा पूतला,	" १८९,
मात पिता सुत इस्तरौ,	साधु । ५४,
" माता का सिर मूडिये,	विपर्यय । २५९,

माया चार प्रकार की,	माया ।	२८५; ७२
„ जोगवै कौन गुन,	„	७४
„ छाया एकसी,	„	२८०; २४
„ छोरन सब कहै,	„	२८४; ६६
„ शोला मारिया,	„	२७९; १८
„ डोलै मोहती,	गुरुशिष्यहेरा ।	४१; १७
„ तजी तो क्या भया,	मान ।	३९६; ०
माया तरुवर त्रिविधि का,	माया ।	२८०; ३६
„ तो ठगनी भई,	„	२७
„ दासी साधु की, ऊमो देइ असीस ।	„	२६
„ संत की, साकुट की सिरताज ।	„	२८४; ६३
„ दीपक नर पंतग,	„	२७९; २०
„ दोय प्रकार की,	„	२७०; २१
„ बड़ है डाकिनी,	„	२८४; ७
„ मन की मोहिनी,	„	२८०; २९
माया मरि मन मारिया,	माया ।	२८०; २९
„ माथे सौगाँडा,	„	२८३; ५९
„ माया सब कहै,	„	२८४; ६९
„ मुई न मन मुआ,	„	२८०; २९
„ मेरे राम की,	„	२९
„ सम नहि मोहिनी	„	२८४; ६९
माया सेती मति मिलो,	माया ।	२७९; १९
„ संख पदम लौ,	„	२८५; ७

मिरतक को धीजों नहीं, मेरो मन वह बाज जी०मृ० ।	३३३,	२६
” ” ” ” ” वीर । मन ।	२७७,	११९
” तो तब जानिये, जीवनमृतक ।	३३५,	४४
मिलता सेती मिलि रह,	साधु ।	७६; २०४
मिलना जग में कठिन है,	प्रेम ।	१५६; ५६
मिलि गय नीर कबीर सों,	परिचय ।	१४७, १०२.
मोठा सब कोड खात है,	माया ।	२८१; ३८
मोठे बोल जु बोलिये,	भेष ।	८०, १७
मुख आप सोई कहै,	सद्ग ।	२०७; ४७
” में थूफन दे नहीं,	नशा ।	४१९; २९
मुख से नाम रटा करें,	प्रभिचारिन ।	२२३, ८
” से रहै सो मान्यो,	भेद ।	३२१, ३८
मुक्ष म इतनी शक्ति क्या,	प्रिनती ।	४३८, २०
” औगुन तुझहि गुन,	समरथ ।	३०४, २७
” गुन एकी नहीं,	” ”	३३
मुरगानी को देखि कर,	साधु ।	७०; १५०
मुरगा मुलना सों कहै,	मासाहार ।	४१४; २७
मुरदे को भी देत हैं,	प्रिश्वास ।	२१३; ३८
मुलना तुझै करीम का,	मासाहार ।	४१४; २३
मुसल्लिम मारै करद सों,	”	४१६; ४३
मुक्ता पैडा जत्र भया,	सजीवन ।	३३७, १६
” वाये दाहिने,	”	१५
मुफ्त दान जो देत हैं,	भर्मप्रिध्वस ।	३४६, ३८

मेरी मिटि मुक्ता भया,
 मेरे मन होरो जै,
 मेरे मन में पडि गई,
 ,, संसय कोय नहीं,
 मेरो चित्यौ हरि ना करै,
 मेवासा मोही किया,
 मो चित तिल नहि वीसहं,
 ,, ,, पलहु न ,,
 मो विरहिनी का पिय मुआ,
 मो में तो में सर्व में,
 मोटी माया सब तजे,
 मोती उपजे सीप में,
 ,, निपजे ,,
 ,, ,, सुन ,,
 ,, भांग्यो वेधतो,
 ,, हे विन सीप का,
 मोर तोर की जेवरी, गल बंधा संसार ।
 ,, ,, बल ,, ,,
 मोह कुटी में जलि मुआ,
 ,, नदी विकराल हे,
 ,, फंद सब फंदिया,
 ,, मगन संसार है,
 ,, सलिल को धार में,
 मोहर रुपैया पैसा,

परिचय ।	१३८;	२९
विरह ।	१७०;	१००
मन ।	२७४;	९६
सूरमा ।	२३१;	५२
विश्वास ।	२१३;	३४
भक्ति ।	१११;	३९
विरह ।	१७१;	१११
पतिव्रता ।	२१९,	२३
विरह ।	१६७,	७१
व्यापक ।	३२९,	४६
माया ।	२८१;	३४
.. ..	२८२;	४४
जीवतमृतक ।	३३१;	१३
परिचय ।	१४८;	११३
मन ।	२७५;	९९
गारख ।	३५३;	२०
चिन्तावनी ।	१८२;	१०७
..	१०६
कर्म ।	४०७;	२
मोह ।	३९४;	१५
.. ..	३९३;	१
..	२
..	३
साधु ।	५५;	२०

मोहि मरन को चात्र है, की तन का पुनका वरु(३)जो मृ	१३३२;	१८
॥ ॥ ॥ मति गुरु बूझे जातरी(३) ॥ ॥		१७
मौत विसारो वायरी,	चितायनी ।	१७८, ६७
मडि रहना मैदान में,	मय ।	३१५, १७
मदिन मोहो झलकती,	चितायनी ।	१८५, १३७
नागन को भल बोलनी,	उपदेग ।	२००, ७६
॥ गये सो मरि रहे,	भीख ।	८८, ४
॥ मरन समान है, तोहि दर्द में सीख । ॥		८७, ३
मांगन मरन समान है मति कोइ मांगो भीख । भीख ।		८७, १
॥ ॥ ॥ सीख दर्द में तोहि । ॥		॥ २
माय महल की गुरु कह	गुरुगारख ।	३७, ५७
मांस अहार मानना, परतच्छ राउस अग । मासाहार ।		४१२, १
॥ ॥ ॥ ॥ राउस जान । ॥		॥ २
॥ खाय ते डेड सन,		॥ ३
॥ गया पिनर रहा,	मिरह ।	१६८, ७४
॥ भवै मदिरा पिरी,	मासाहार ।	४१२, ६
॥ मछडिया खात है, त नर जडसे जाहिगे (३) ॥		॥ ५
॥ ॥ ॥ ॥ नरके ॥ ॥		॥ ४
॥ गाम सन एक ह आखि देखि नर खात है (३) ॥		॥ ७
॥ ॥ ॥ नारि नारि सब एक ॥ (३) ॥ का । २९२		६२
मड मुँडाया मुक्ति को,	स्वाद ।	४११; ६
॥ मुँडाये हरि मिले,	मेघ ।	८१, २४
॥ मुडावत दिन गया,		॥ २३

मैं अकेल वह दो जना,	काळ ।	२९३;	९
" अपराधी जतम का,	बिनती ।	४३७;	७
" अवला पिय पिय करूं,	पतिव्रता ।	२२०;	३३
" उपकारी ठेठ का,	गुरुपारख ।	३७;	५०
" कधि कहि कहि कहि गये,	उपदेस ।	१९९;	६८
" कबीर विचलूं नहीं,	सद्ग ।	२०९;	६६
" कलिका कोतवाल हूं,	"	२०५;	३३
" मोटा साईं खरा,	बिनती ।	४३६;	६
" जाना मैं और था,	परिचय ।	१४१;	४८
" जानूं पढ़ना भला,	पंडित ।	३८१;	१०
" " मन मरि गया,	जीवनमृतक ।	३३२;	१५
" " हरि दूर है, हरि हिरदे भरपूर ।	व्यापक ।	३२७;	१५
" " " " है " माहि ।	पारख ।	३५७;	५६
" " " " मैं मिलूं,	माया ।	२८१;	३:
" तुमको दृढत फिरूं,	विरह ।	१६८;	७९
" तोही पूछूं हे सखी,	सती ।	२१५;	१:
" मैं तोहि सो कब कब्या,	निगुरा ।	५१;	४:
" था तब हरि नाहि जय,	परिचय ।	१४७;	१०९
" दीवांजी नाम को,	विरह ।	१७१;	१०८
" भेवरा तोहि चरनिया,	चिंतावनी ।	१८३;	११८
" मतवाला नाम का,	नशा ।	४१८;	१:
" मरजीया समुंद का, दुबकी मारो एक । जीवतमृतक ।		३३१;	१
फैल सात पताल ।	"	"	३:

मैं मांगूँ यह मांगना,	सगति ।	९५, ६२
„ मेरा घर जालिया,	जीवतमृतक ।	३३४, ४२
„ मेरी तू जनि करै,	चिताननी ।	१८२, १०४
„ „ सत्र जायगो,	धीरज ।	४२५, ७
„ मैं बड़ी बलाय है,	चिताननी ।	१८२, १०५
„ रोवूँ भसार कू,	दुख ।	४०६, ७
„ लाग़ा उस एक सा,	परिचय ।	१४६, ९६
„ भौचो हित जानिके	सगति ।	९७, ७७
„ सैनक समरथ-का, कबहु न होय अकाज । पति० ।		२२, ३४
„ „ „ कोइ पुरखल भाग । „		„ ३५

य

यदपि हम कायर कुटिल,	समरथ ।	३०६, ८६
यह अन्तर चैन्यो नहीं, चूक्यो मोटी घात ।	चिता० ।	१८९, १७०
„ औसर - „ „ पसु ज्यों पाली देह । „		१७७, ४०
„ औषधि अगहि ल्याो,	सुमिरन ।	११७, १७
„ कलियुग आयो अनै,	साधु ।	७३, ११७
कृपार को भक्ष है,	मासाहार ।	४१२, ८
जग कोठी काठ की,	क्रोध ।	३९२, ५
जिन आया दूर ते,	काल ।	२९७, ४२
तत यह तत एक हं,	प्रेम ।	१५४, ८३
नेन काचा कुभ है निया फिरै था साथ ।	चिता० ।	१८०, ८०
„ „ चोट चहुँदिसि खाय । „		„ ८१
„ „ मोहि किया रहिरास । „		„ ८२

यह तन विष की बेलरी,	गुरुपारख ।	३७; ५३
„ तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि ।	प्रेम ।	१५७; १
„ „ „ मारग अगम अग्राध ।	„	२
„ „ „ ऊँचा अधिक इकंत ।	„	३
„ तो गति है अटपटी,	मन ।	२७४; ८८
यह नर गर्व भुलाइया,	चितावनी ।	१९२; १९६
„ पद है जो अगम का,	परिचय ।	१४८; ११९
„ विरिया तो फिर नहीं,	चितावनी ।	१८४; १२८
यह मन अटक्यो वावरो,	मन ।	२७६; १११
„ मन को विसमिष्ट करुं,	„	२६९; ४८
„ मन ताको दोजिये, सांचा सेवक होय ।	सेवक ।	१०१; २२
„ „ तो मिरगा भया,	मन ।	२६९; ४९
„ „ „ मैला भया,	„	२७०; ५१
„ मन याको धिर „	„	२७७; ११७
„ „ नीचा मूल ह,	„	२७०; ५४
„ „ फटकि पछोरिले,	„	२६९; ४७
यह मन फूला विषय बन,	चितावनी ।	१८५; १३०
„ „ ब्रीकारे पडा,	मन ।	२७०; ५२
„ „ मैवासी भया,	„	५१
„ मन साधू ले मिलो,	„	५३
यह „ हरि चरनै चला,	„	२७७ ११८
„ रन माँहीं पैठि कर;	सूरमा ।	२३७; १०९
„ रस महुँगा सो पियै,	प्रेम ।	१५५; ५६
„ सतगुरु उपदेस है,	सतगुरु ।	२०; १०६

यह सब झूठा बंदगी,
 " " लच्छन चित धरे,
 यहाँ बिसाहन करि चले,
 यहा प्रेम निरवाहिये,
 " बडाई सद्ध की,
 " " मत का,
 या तन का दिखला कर,
 " " जाऊ मसि कर, धूँवा जाय सुरग ।
 " " " " लिखू गुरु को नाँव ।
 या दुनिया दो रोन की,
 या " में आय के,
 या देखा वा देखिया,
 " मन गहि जो थिर रहे,
 " माया के कारनै,
 " " जग भरमिया,
 " मोती कलु और हे,
 यार बुलाये भाव मों,
 ये तीनों उलटे बुरे,

मासाहार ।	४१५,	३६
मेनका ।	१०२,	३१
उपदेस ।	१९४,	१९
प्रेम ।	१५३,	२६
सद्ध ।	२०४,	२४
साधु ।	६१,	७०
निरह ।	१६५,	५८
"	१६४,	४१
"	"	४२
उपदेश ।	१९५,	२३
"	१९३,	८
निर्णय ।	२५१,	४६
चिन्तामनो ।	१८३,	११५
माया ।	२८१,	४१
"	२८३,	५५
पञ्चिय ।	१४८,	११४
सूक्ष्ममार्ग ।	३७१,	१०
मती ।	२१७,	२७

२

रक्त वह रोहा बौ,
 रग बग टोपी सब कर्मा,
 रग रग बोली रामनी,
 रगत माम मत्र भवि गया,

मामा ।	२३३,	६८
"	२३८,	११६
सुमिरन ।	१२९,	१३२
निरह ।	१५८,	७६

रचनहार को चीन्हि ले,	विश्वास ।	२१०;	४
रज वीरज का कोठरी,	कनककामिनी ।	२९०,	५१
रति एक धूँया सत का,	साधु ।	७५,	१८८
रन चढ़ि सद्ध पुकारही,	मूरमा ।	२४१,	१४७
„ जग वाजा वाजिया,	„	२३७,	११४
„ रहै सूर भये,	„	२४०,	१४१
„ रोही अति ही हुआ,	„	२३४,	८०
„ हि धसा जो ऊवरा,	„	२३१,	५४
रनयाँ राम छिपाइया,	गिरह ।	१५७,	६६
रपट भैस पीपल चढ़ी,	निपर्यय ।	२६१;	६१
रति को तेज घटे नहीं,	साधु ।	६६;	११९
रस ठाडै छुही गहै, कोल्ह परगट येख । असारग्राही ।		३५१,	४
„ „ „ मो „ का दे काम ।	„	„	५
रहनी के मैदान में,	करनी ।	३६४,	१९
रहै निरला मांड तै,	निजकर्ता ।	३७२,	२७
रक्त छँडि पय का गहै, ऐसा साधु लच्छ(४) साधु ।		६७,	१२३
„ „ „ सारगिराही „ „ सारग्राही ।		३५०,	९
राई वाना बीसवों,	प्रेम ।	१५७,	७४
राखन हारा राम हे,	विश्वास ।	२१२,	२६
राखै वस्त एकादसी,	नशा ।	४१९,	२२
रान दुवार न जाइये, काटिक मिले जु हम । साधु ।		७२,	१६१
„ दुगार बाधिया,	चिन्तामना ।	१८३,	११३
„ „ रामनन,	चानन ।	३०७,	८

गन्ध पाट धन पाय कर,	जिनायनी ।	१९१; १९५
राजा का चोरी, कर,	गुरुदेव ।	१६; ९१
॥ राजा राज रंक,	सुमिरन ।	१२७; १०६
रान अंचेरा रैन में,	गुरुपारस ।	३२, ९
॥ गंगाई सोय करि,	चिनायनी ।	१७६; ४६
॥ जगधि रौंडिया,	विभिचारिनि ।	२२४; १०
राता माता नामका, पोया प्रेम अघाय ।	रस ।	२६३; १२
॥ ॥ ॥ मद्रका माता नहि ।	॥ ॥	१३
रता . राता मय कहै,	सेवक ।	१०२; २४
॥ रक्त न निकम,	॥ ॥	२५
रान्नु रानी विरहिनी,	विरह ।	१५९; १
राम कबोरा एक है, दूजा कन्द न होय ।	एकता ।	३२३; ५
॥ ॥ ॥ कहन सुनन को दोय ।	॥ ॥	६
॥ कक्षा जिन कहि लिया,	काल ।	२९४; १४
॥ कहै ते भिज मरि,	चितायनी ।	१८३; ११०
॥ कही तो मरि रहो,	जीवनमृतक ।	३३२; २३
राम किया मोह हुआ,	विश्वास ।	२१३; ३५
॥ फूल औतार है,	निजकता ।	३७०; ६
॥ ॥ जो जिन किया,	॥ ॥	७
॥ शरोक्ष वैठिके,	करनी ।	३६४; २१
॥ नाम को सुमिरता, उधरे पतित अनेक ।	सुमिरन ।	११७; २१
॥ ॥ ॥ हँसी कर भावै सीस ।	॥ ॥	२२
॥ ॥ गुन ॥ गायते,	॥ ॥	१२८; ११७

रामनाम जाना नहीं, ता मुख आन धरम ।	चिता० ।	१७९;	७२
॥ ॥ ॥ पाटा सकल बुद्धि ।	॥ ॥		७०
॥ ॥ ॥ हुआ बहुत अकाज ।	॥ ॥		७१
॥ ॥ ॥ मैला मना निसर ।	॥ ॥		७३
॥ ॥ ॥ वात निनूठी मूल ।	॥ ॥		७४
॥ ॥ ॥ चूके अक्की घात ।	॥ ॥		७५
॥ ॥ नहीं, जपा न अजपा जाप ।	चानक ।	३०८;	१५
॥ ॥ ॥ डागो मोटी खोर ।	सुमिरन ।	११७;	२३
रामनाम तिहुँ लोक में,	व्यापक ।	३२७;	२२
राम त्रियोगा त्रिकल तन,	विरह ।	१७०;	९६
॥ निसारी वापरा,	चितामनी ।	१८८;	१६२
॥ बुझाया मेजिया,	सगनि ।	९१,	२८
॥ भजो तो अत्र भजो,	चितामनी ।	१८४;	१२३
॥ मेरे तो हम मेरे,	सजीवन ।	३३६;	१०
॥ मिटन के फारने,	साधु ।	७१;	१५६
राम रत्न धन मोटरी,	पारख ।	३५२,	१०
राम रत्न अस्थिर भया,	सजीवन ।	३३६;	९
राम रसायन प्रेम रस,	पारख ।	३२२;	११
॥ रहिमा एक है,	एकता ।	३२३;	२
॥ राम जिन ऊचरा,	साक्षीभूत ।	३२२;	५
॥ ॥ तुम करत हो,	निजयन्ता ।	३७३;	३८
॥ ॥ रटियो को,	सगनि ।	९२;	२९
॥ ॥ मय कोड को, कछने माँहि विवेक ।	विवेक ।	४२१;	९
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ विचार ।	विचार ।		२

नाम हि छोटा नानि के,
" हि थोरा "

रितु वसत याचक भया,
रिद्धि सिद्धि मागू नहीं,
खुसा सुखा खाय के,
रे मन भाग्य हि भूल मत.

रेन तिमिर नासत भयो,
" पुँर वासर घटे,

" समानो भानु में,
रोडा भया तो क्या भया,

" है रह बाटना,
रोवत रोवत में फिर,

रफ कलक चुनता फिरे,
" जीव जोई सोई,

" तु धनको ना चहै,
रग तो कुरग हुआ,

आसातृत्ता । ४०२, २२

माया । २८१; ३९

उपदेस । २०१, ८५

सगति । ९०, १४

स्वाद । ४११, ७

कर्म । ४००; २६

सन्द । २०७, ४०

निपर्यय । २५१, ३०

सन्द । २०४, १७

जीवतप्रतक । ३३४, ३३

" ३३३, ३२

गिरह । १६६, ६३

पारख । ३५८, ६४

माया । २८५, ७७

" " ७८

" २८२, ४७

ल

लफाडी कहे लोहार मों,

" जल दूबे नहीं,

" जलि कुडला भई, कुडला जलि भइ राख । गिरह । १६९, १८९

" " भये, मोतन अनहू आगि । " १६४, ४७

लघुता में प्रभुता वसे,

लच्छ कोस जो गुर उमै,

चिनामनो । १८०, ७७

सगति । ९७, ७६

गिरह । १६९, १८९

" १६४, ४७

मान । ३९०; ३०

गुरदेव । ७, १८

लछमी कहे मैं नित नई,	दुख ।	४०७,	१८
लगा रहे सतनाम सों,	दासातन ।	१०६,	२३:
लगी लगन छूटे नहीं,	लगनी ।	३६७,	१०
लडने को सब हो चले,	मूरमा ।	२३१,	५०
लाखों में दिसै नहीं,	पारख ।	३५८,	६८
लागा भयका नामका,	सूरमा ।	२४२,	१५६
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय ।	लगनी ।	३६६,	७
“ “ “ “ नार्ही एक ।	“ “	“	८
“ “ “ “ सोइ सराह ।	“ “	“	९
“ “ “ “ रही लगार ।	सब्द ।	२०५,	३१
लालच लोभ न मोह मद,	सूरमा ।	२३४,	७९
लाली मेरे लाल की,	परिचय ।	१३५,	२
लिखना पढ़ना चातुरी,	पंडित ।	३८२,	२२
लिखा मिटै नहि करम का,	कर्म ।	४१०,	३१
लिखापढ़ी में सब पड़े,	भर्मविध्वंस ।	३४९,	६७
लिखा लिखी की है नहीं,	आत्मानुभव ।	३१०,	८
झूटि सकैं तो झूटि ले, नाम जु निरगुन को गहो(३)सुमि० ।		१२२,	६६
“ “ “ “ फिर पाछे पछिताहुगे(३) ”		“	६५
लेऊं तो महा प्रनिग्रह,	मध्य ।	३१५,	१५
लेना देना मोहरा,	चितावनी ।	१७५,	३५
लेना होय सो जितदले,	उपदेस ।	१९४,	१०
लेने को सतनाम है, तरने को आधीनता(३)सुमिरन ।		१२२,	६६
“ “ “ “ है दीनता (३) मान ।		३९९,	३५
ले पाऊं तो ले रहूं,	लगनी ।	३६६,	७

जग विचारा निन्दही,
 छाह गहि दूधे तन,
 लो गंगा तन जानिये,
 " २ तन डर किमा,
 " " लो लू,
 " " निर्भय भया,
 " " विष भागिया,
 लम्बा मारग दूर घर,
 जैन गग पानी मित्र,

निन्दा ।	३८६,	२१
असारग्राहा ।	३०१,	७
लगना ।	- ,	१
"		३
"		३
"	३२०	३२
गुरुदा ।	१६,	८८
सुगिन्न ।	१२०	१३
परिचय ।	१२७	९१

ब

रह तो मोता जानिये,
 " मारग बिन को गया,
 गरी हरि क नाम पर,
 विद्या मद औ गुन हु मद,
 विषय पियारे प्राति सा,
 विषय रामना उरझि कर,
 विष्टा का चीका दिया,
 निश्चासी हे गुरु भन,
 उद एक नला धक,
 वेद पुराना साधु गुरु,
 येमन भया तो क्या भया,
 ज्योम मय्य ज्यो घट मठ,

सद ।	२०७,	३२
मृन्ममार्ग ।	३७७,	३३
गमरय ।	३०७,	३०
नगा ।	४१८,	१२
जाग ।	४२७,	१०
चिन्तावर्ती ।	१८७,	१५७
मासाहार ।	४१३,	१३
विधास ।	२१३,	३१
माधु ।	-२,	८३
गुरुदेव ।	१४,	७७
निगुरा ।	५२,	-४
व्यापन ।	३५०,	४१

प

घट दरसन को प्रेम करि,
घड विकार या देह क,

सेवक । १०२, ३०
साधु । ६६, ११६

म

सकल जगत नाने नहा,

मतगुरु । २८, ८८

, , पसारा पवन का, कौन नाम उस पवन का (२) प्रश्नो० । ४४२, २४

, , , माह नाम उस , का (३) , , २५

, , मन एकत्र है, मासाहार । ४१३, १२

मगल्य स्वामी स कहो, चानक । ३०८, १८

मगा हमारा रामजा, चिताननी । १८८, १६०

सचु पाया सुख ऊपजा, सतगुरु । २९, ९५

मनन सनेही बहुत है, प्रेम । १५८, ८१

मज्जन सों सज्जन मिले, सगति । ९५, ६१

सत को दृढत मे फिरू, गुरुशिष्यहेरा । ४४, ४३

मतजुग प्रेता द्वापरा सद्य । २०८, ५६

मत जा तामा कीनिये, सती । , २१६, १७

मत भगति सत्र मों यडी, सगति । ९८, ८६

, , है मूष ज्यों, सारमाही । ३४९, २

मत हा में मत मांटिये, उपदेश । १९४, १२

मतगुरु अवम उवारना, भय । ८५, ६०

, अमृत मोइया, सतगुरु । २३, ४६

, आत्म दृष्टि है, , , ४३

, , ऐसा काजिये, यों भोगी मत हाय । गुरुपा० । ३४, ३३

सतगुरु ऐसा कीजिये, लोभ मोह भ्रम नहि । गु० पा० । ३६, ३४	
" " " जाका पूरन मन । " " ३५	
" कहि नो सिप करै, सेवक । १००, १३	
" का उपदेस, सुमिरन । १२५, ८५	
" का सारा नहा, गुरुपारख । ३४, ३१	
" किरपा फेरिया, सतगुरु । २३, ४४	
" की किरपा बिना, भक्ति । ११४, ६४	
" की दाया भई, सतगुरु । २२, ३९	
" की महिमा अनत, सतगुरु । १७, ५	
" का मानै नहीं " २३, ४५	
" के उपदेस का, २४, ४९	
" के परताप तें, " १७, २	
" के भुज दोय हैं, " २२, ३८	
" के सदेक किया, " २१; २८	
" केरा मानता, साधु । ७६, २०१	
" मोजो सत, सतगुरु । २९, १००	
" नो ऐसा मिला, सतगुरु । २३; ४८	
" तो सत भाग है, " २१; ३३	
" दाता नीम के, २०; २२	
" दोन दयाल हैं, सूक्ष्ममार्ग । ३७६; १६	
" ने तो गम कही, गुरुपारख । ३४; ३०	
" पारम का तिला, सतगुरु । २१; ३१	
" गड़े जहान हैं, " २०, २६	
" " दयाल हैं, भगवत । ३०५, ३६	

सतगुरु जुड़े मरार ह	सतगुरु ।	२०	२५
' सुनार है	"	२१,	२७
" अजें मिथ कर	ममर ।	१००,	१७
' पादल प्रेम क	सतगुरु ।	२२,	३५
" महत् प्रनाइया	'	२३,	४७
" गारा तानि कर,	"	१९,	१७
गान भरि, निरखि निरखि निज ठोर । "		१८	११
' वर कर धारी मूढ ।	'	"	१२
" " - , टटि गई सन जेव ।	"	१९,	१३
" " डाळा नौहि मरार ।	"	,	१४
" , रहा कलेजे भाठ ।	"	"	१५
" मारी प्रम वा,	,	१९,	१८
" मिला जु जानिये,	"	२३,	४२
' मिलि निरभय भया,	"	२१,	२९
' मिले जु सत्र मिले,	"	२३,	४१
" मिले तो क्या भया,	गुरुपारम्ब ।	३४,	३२
" मरा मूरमा, नेधा ममल मरार	सतगुरु ।	१८,	९
" , , तकि तकि मारे तार ।	"	"	१०
माहि नियानिया,	,	२१,	३०
" मत का मद्र है,	"	२०,	२०
" मम काडे नहा.	"	१८,	४
" मम को है मगा,	"	"	३
" मान न आनहा,	'	२१,	३२
" मोचा मूरमा. नख सिख मारा पूर ।	'	१७,	७

सतगुरु साँचा सूरमा, मद्र जु बाह्या एक ।	सतगुरु ।	१७,	८
" " से सूधा भया,	सतगुरु ।	२०;	२३
" " मद्र उथापही,	भक्ति ।	११५;	७२
" " उलंघि कर,	संचक ।	१००;	११
" " कमान करि,	सतगुरु ।	२०;	१९
" " प्रमान,	मद्र ।	२०८;	५८
" सद्र सब घट बरमे,	सतगुरु ।	२०;	२१
" हम मो भल कही,	"	२२;	४०
" " रीझि के, कयो एक परसंग ।	"	"	३४
" " " एक दिया. उपदेस ।	गु०शि०हे० ।	४६;	२०
सती जु डरपे अगनिते,	सूरमा ।	२२५;	०४
मतिया का सुख देखना,	सती ।	२१६;	२१
" सोई अस लिया,	"	"	३९
सती चमाके अगति में,	"	२१७;	२६
" जल को नीकसी, चिन धरि एक विवेक ।	"	२१४;	३
" " " विवका सुमिरि मनेह ।	"	"	४
" डिगै लो नोच घर,	"	२१५;	८
" न पोसै पीमना,	"	"	९
" पुकारै सर चढ़ी,	"	"	७
" विचारी मत किय़ा, काटौं सेज विछाय ।	"	२१४;	६
" " " ले अपना वे मेव ।	"	२१६;	२३
" भई है सत्त कं,	"	"	२२
" मूर नन पाइया,	"	२१४;	५
" " " साहिया,	"	२१६;	२४

सत्तनाम	कहुवा लगे,	भर्मविध्वंस ।	३४७;	५०
"	की लों लगी,	विश्वास ।	२१०;	२
"	के पठतै,	गुरुदेव ।	१०;	४७-
"	को छांडिकार, करै और की आस ।	वि०चा० ।	२२४;	१२
"	को छांडि कै, " आन को जाप ।	"	"	१६
"	" कै, राखै करवा चौथि ।	"	"	१७-
"	" " राति जगावन जाय ।	"	२२५;	१८
"	" " करै और को जाप ।	"	२२४;	१५
सत्तनाम	छांडी नहीं,	सतगुरु ।	२६;	७४
"	जाना नहीं, माना नहीं विचार ।	विचार ।	४२२;	८
"	तिरलोक में,	परिचय ।	१४९,	१२४
"	निज औषधि, कोटिक कटै विकार ।	सुमिरन ।	११७;	१७
"	" " सतगुरु दर्ह बताय ।	"	"	१९
"	" मूल है,	भर्मविध्वंस ।	३४९;	६८
"	" सोय,	सतगुरु ।	२९;	१०१
"	" विश्वास,	सुमिरन ।	११७,	२०
"	" सुमिरन करै,	उपदेस ।	२००;	७२
"	" सैं मन मिला,	विश्वास ।	२१०;	३
"	" है मोतिया,	निगुरा ।	४९;	२४
"	सत्त भक्ति तलवार है,	भक्ति ।	११३;	५८
"	" मील दाया सहित,	मेप ।	८४;	५१
"	सद कृपालु दस परिहरन,	मानु ।	६५;	१०३
"	" पानी पानाल का,	लगनी ।	३६८;	२४
"	सदा मोन जल में रहे,	साधु ।	७८;	२१९

सदा रहै सतौष में,	साधु ।	६५	१०५
सपने में पराई के,	सुमिरन ।	१२१,	५८
सत्र आये उस एक में,	पतिव्रता ।	२७०,	२९
„ आसन आसा तनै,	आसातृत्ना ।	४०१	१६
„ कह्यु गुरु के पास है, निसदिन चरनो लाग । गु० ।	१८,	७०	
„ „ „ रहै चरन में लाग । सवक ।	१००,	१०	
„ काहु का लीजिये,	एकता ।	३२४,	९
„ „ „	विचार ।	४२३,	१३
सत्र कोइ त्रिदिनी पीयरी,	विरह ।	१६८,	८३
„ „ सूर कहाई,	मूरमा ।	२३८,	११५
„ कोई मरि जात है,	चितायनी ।	१९०,	१७६
„ को नाम सुनायहु,	सुमिरन ।	१२१,	५२
„ „ पूजत में फिरा,	रूक्षममार्ग ।	३७६,	१९
„ „ सुख दे सद्ग का,	सद्ग ।	७०५,	३४
„ घट भीतर राम है,	चितायनी ।	१८८,	१५८
„ „ मेरा साइया,	साक्षाभूत ।	३२२,	२
„ जग तो भरमत फिरै,	सतगुरु ।	७८,	८६
„ „ भरमा यों फिरै,	„	२५,	६१
„ „ डरै काल सा,	वाल ।	२९९,	६९
„ „ मूना निद्र भरि,	,	१९३,	६
„ ते भयो मधूकरा,	विश्वास ।	२१२,	२१
„ घरनी प्रागट कम्,	गुरदेन ।	११,	५५
„ वन तो चदन नही,	साधु ।	६०,	१३७
„ „ तुलसा भई,	भर्मविश्रस ।	३४६,	३९

सब मंत्रन का बीज है,	सुमिरन ।	१३२; १६०
॥ रंग तांति रधाव तन,	विरह ।	१६५; ५३
॥ रंग पानी ते मया, सब रंग पानी सोय ।	माया ।	२८२; ४९
॥ " " " " " होय ।	"	" ५०
॥ से हिलिये सब से मिलिये,	उपदेश ।	२०१; ८२
॥ मो कहां पुकारिके,	भक्ति ।	१११; ४२
॥ हि रसायन हम करी,	सुमिरन ।	११८; २६
॥ हो तरु तर जाय के,	विरह ।	१७०; ९४
॥ हो भूमि बनारसी,	मध्य ।	३१७; २९
॥ ही मारो कल्यतरो,	सूरमा ।	२३४; ८१
सबल क्षमी निर्गव धनी,	क्षमा ।	४२६; ९
सने कहावै लस्कारी,	सूरमा ।	२४०; १४३
॥ खिलीने खांड के,	न्यापक ।	३२७; २३
॥ रसायन हम किया,	प्रेम ।	१५५; ५२
॥ हमारे एक है,	एकता ।	३२४; १२
सब्द उपदेश जु मैं कहूं,	सब्द ।	२०३; १०
॥ कहों ते उटत है,	प्रश्नोत्तर ।	४४०; ५
॥ " से आइया,	"	" ७
॥ कहै सो बीजिये,	सब्द ।	२०३; ५
॥ खोजि मन बसि करै,	"	" १२
॥ गहै सो मरद है,	"	२०९; ७४
॥ गुरु का सब्द है,	"	२०३; १३
॥ जु ऐसा बोलिये,	"	२०९; ३९
॥ दुगाया ना दुई,	"	२०३; ८

सब्द न को मुलाहिना,	सद्व ।	२०३,	२
॥ पाय सुरति राखहि,	॥	॥	९
॥ बराबर घन नहा,	॥	२०२,	४
॥ विचारी जो चळ,	नित्यमृतम ।	३१५,	४८
॥ निचारे पय चळ,	मष ।	८४,	५५
॥ ग्रन्थ ते आइया,	ग्रन्थोत्तर ।	४४१,	८
॥ भेद तय जानिय,	सद्व ।	२०३,	११
॥ सुरति का तार है,	मूमा ।	२३०,	१३१
॥ सुरति के अन्तरे,	निचकर्ता ।	३६९,	५
॥ सद् बहु अन्तरा, सार सद् चित देहु ।	सद्व ।	२०२	२
॥ ॥ ॥ सद् सार का सौर ।	॥	॥	३
॥ ॥ मय मोइ बहे,	॥	२०३,	१४
॥ महारे प्राणिय,	॥	२००,	६७
॥ हमार हम सद् क,	॥	२०३,	७
॥ हमारा आदि का,	॥	२०८,	६८
॥ मजे मारा खचि क,	सतगुरु ।	२०,	२४
समझा समझा एक ह, अन समझे मय एव ।	भेद ।	३१७,	६
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ मों मौन ।	॥	३१८,	७
॥ सोई जानिये,	॥	॥	८
समझाये समझ नहों,	चिन्ता ।	१९७,	१०७
समझे को सरी बनौ,	सद्व ।	३१७,	५
॥ गट कृ गृ ने,	साधु ।	७६,	२०
समझे का घर अंगे ह,	भेद ।	३२०,	३८

समझै का मत और है,	भेद ।	३२०;	३१
“ तो धरम रहे,	व्यापक ।	३२६;	१६
समदसौ तब जानिये,	भेद ।	३२०;	२८
“ सतगुरु किया, भरम भया सब दूर ।	“	३१९;	२३
“ “ “ “ किया “ “ “	“	३२०;	२४
“ “ “ दीया अविचल ज्ञान ।	“	“	२५
“ “ “ मेठा भरम विकार ।	“	“	२६
“ “ “ पाया मन विश्वास ।	“	“	२७
समरथ धोरी कंध दे,	समरथ ।	३०३;	२५
समुद्र लहरि जो धोरिया,	मन ।	२७३;	८७
समुँद पाटि लंका गयो,	निजकर्ता ।	३७०;	१४
सरगुन की सेवा करो,	बेहद ।	३४१;	३५
सरने राखों साइया,	साधु ।	७१,	१५७
सरप हि दूध पिलाइये,	गुरुशिष्यहेरा ।	४०;	१३
सब सौने की सुंदरी,	कनककामिनी ।	२९०;	४२
सबस सीस चढाइये,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३;	३४
सबर तरुवर संतजन,	साधु ।	५९;	५३
‘सरस’ सखा ऊजल धरन,	कपट ।	४०५;	२२
सछिल भक्त कहु ना तरै,	भक्ति ।	११४;	७०
ससा सिंध के धनुस का,	बेली ।	३५९;	५
सह कामी दीपक दसा,	काम ।	३९०;	९
“ कामी सुमिरन करे,	सुमिरन ।	१२७;	१०७
सहज जलना सतिया तना,	सती ।	२१६;	२०
“ ताजु आति के,	मन्द ।	२७७;	४६

साकट संग न बैठिये, अपनो अंग लगाय ।	निगुरा ।	४९;	३
॥ संग न बैठिये, कान कुचेर समान ।	निगुरा ।	॥	३
॥ हमरे कोऊ नहि,	निगुरा ।	५०;	३
साकुट हित हुं जाय के,	आनदेव ।	३८७;	
साकुट भले हि मरजिया,	निगुरा ।	५२;	५
साकुट साकुट कहाँ करो,	निगुरा ।	५२;	५
साखि सन्द बहुते मुना, मिटा न मनका दाग ।	संगति ।	९१;	२
साखि सन्द बहुतहि मुना, मिटा न मनका मोह ।	॥	९४;	५
साखी लाय बनाय के,	कायनी ।	३६२;	१
॥ सैन मही करो,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७८;	३
॥ सखी काव कहो,	प्रश्नोत्तर ।	४४६;	६
॥ ॥ जव कहो,	॥ - ॥	॥	६
मागर उमडा प्रेम का,	प्रेम ।	१५३;	२
॥ मैं मानिक वसे,	पारख ।	३५६;	५
सात गांठ कौपीन की,	संतोष ।	४२९;	१
॥ दीप नी गंड में, तीन लोक ब्रह्मंड ।	दुख ।	४०६;	१
॥ दीप नी गंड में, सब से फगुवा लीन ।	का० का० ।	२९२;	६
॥ समुंद की इका लहर,	मन ।	२७५;	१०
मातों सायर मैं फिरा	निन्दा ।	३८५;	
॥ मन्द जु बाजते,	चितावनी ।	१७८;	६
साथी हमरे चलि गये,	विपर्यय ।	२६२;	६
साध सता औ मूरमा, राखि रहै न ओट ।	सूरमा ।	२३०;	४
साध सती-औ सूरमा, इनका मता अगाध ।	सती ।	२१५;	१
इन पदतर कोइ नहि ।	॥	॥	१

गाव मता ओ मरमा कयहु न फेर गाठ ।	मन ।	२१२, १२
, , , जना ओ गनन्त ।	..	१३
मातु रुझान कठिन है, आग वी सुधि नहि ।	मातु ।	३, ५०
, , , या माड की धार ।		२१
, , , लम्बी पैर बनू ।	, ,	३, ०२
, चन्दा रा दोनिये,		२२, १८
, नदी नउ ग्रेम २५,	मातु ।	२८, ५५
, दया माहिर मिले,	, ,	२५, २३
, उरम को नाटये,	० ,	५२, १००
, पगिने मद्र में,	फारस ।	३५८, ६०
, उर शरमाभा, घन चो मर्ये जाय ।	मातु ।	२८, ४०
, , , नानक नितक अग ।	, ,	२०
, उड मसार न	, ,	२७, ३८
, गिरु मतनाम ५२,	, ,	३०
, गिरुमत सुमरी,	, ,	७४, १८५
, भया तो क्या हुआ,	भय ।	८०, १२
, मलातम ता कहे,	चिलारना ।	१९२, १००
, मित्रे यह सत्र २२	मातु ।	५७, ३२
, मिले मचु पाया,	, ,	७७, ११०
, , माहिर मिले, अन्तर रहा न रन्य ।	, ,	५८, ७२
, , , ये सुख कहा न जाय ।	, ,	७४, १८१
, मिले सुख उपर,	, ,	७२, १९२
मातु मती ओ नूरमा, ठंड न माटे धुँह ।	मातु ।	६४ ८५
, , , गन्ना रहे न आट ।		६२

साधु सती औ सिध को,	साधु	६४; ९७
साधु सब एक है,	"	९९
" " मुख से कहै,	"	७२; १७५
" " सब ही बड़े,	"	६४; १०१
" सिद्ध बड़ अन्तरा, जैसे आम बबूल ।	"	६३; ८९
" " बहु साधु मता परचंद ।	"	६१; ६९
भाष साद्विष समुँद,	"	५७; ३७
सेव जा घर नहि,	"	५७; ३६
संग अन्तर पड़े,	संगति ।	९१; २४
संगति गुरु भक्ति जु,	"	९८; ८०
" " " " रु,	"	८४
संतोषी सूरदा,	संतोष ।	४२८; ३
सिध का इक मता,	साधु ।	६४; ९८
हजारी कापडा,	"	६३; ८७
हमारी आत्मा, हम साधुन के देह ।	"	५७; ४०
" " " " के सौंस ।	"	४१
" " " " के जीव ।	"	४२
साधुन का कुतिया भली,	"	६०, ६७
" का छुपड़ी भली,	"	६३
" के मैं संग हूँ,	"	५८; ४७
" के सत संग ते,	संगति ।	९१; २७
साधु लाया पाहुना,	साधु ।	५६; ३२
आगत देखि बरि, हँसी हमारी देह ।	"	५६; ३०
आगत देखि के, चरनो लागो धाय ।	"	२९

साधू आवत देखि के, मन में करै मरोर ।	साधु ।	५६, ३१
॥ ऐसा चाहिये, आई देय चलाय ।	माया ।	२८३, ५२
॥ ॥ ॥ त्रैमा फौफल भग ।	साधु ।	७३, १७१
॥ ॥ ॥ जाके ज्ञान विवेक ।	॥	६५, १०२
॥ ॥ ॥ जहाँ रहै तहँ गेन ।	॥	७६, १९८
॥ ॥ ॥ जावा पूरन मन ।	॥	७७, २०७
साधू ऐसा चाहिये, नामें लछन यतीस ।	साधु ।	७७, २०९
॥ ॥ ॥ दुखे दखावै नाहि ।	॥	६३, ८५
॥ ॥ ॥ जेसे सूप सुभाय ।	साराही ।	३४९, १
॥ को लठि भेटिये,	साधु ।	५८, ४६
॥ के घर जाय के,	॥	७४, १८३
॥ खारा यौ तन,	॥	७४, १८०
॥ खोजा राम के,	।	६०, ६१
॥ चाले जु चालई,	॥	६३, ९३
॥ जन सत्र में रमै,	साधु ।	६३, ८६
॥ तो हीरा भया,	साधु ।	६४, १००
॥ दरसन महाफल,	साधु ।	७१, १९१
॥ भूखा भाग का,		१८, ४८
॥ मोरा जग कली	॥	६३, ८८
॥ मेरे सत्र नडे,	विवेक ।	४२१, १०
॥ सत्र ही मूरमा,	मूरमा ।	२३९, १२६
॥ सरजन मामरी,	साधु ।	७५, १८९
॥ सीप समुद्र के,	प्रेम ।	१५६, ५५
॥ सोडे जानिये,	साधु ।	६४, २४

साधू सोई सराहिये, कनक कामिनी त्याग ।	साधु ।	७३; १७०
॥ सोई सराहिये, पांचौ रामै चूर ।	साधु ।	७४; १८६
॥ संगति परिहरे	संगति ।	७७; ७४
॥ मन्द सुन्दरुना.	॥	७८
॥ मन्द ममुद्र है,	साधु ।	५७; ३४
साधु छुंदर दायक.	मंगति ।	९६; ६९
साधु विचारि क्या करे,	गुरुदेव ।	१६; ८९
साधर मांहा सर गया,	विपर्यय ।	२५२; ३३
सार बहै लोहा सरै,	सूमा ।	२३३; ६९
॥ मन्द निज जानि के,	मन्द ।	२०७; ५१
॥ मन्द जानि विना.	मन्द ।	५२
॥ ॥ को खोजिये,	॥	५३
॥ हि मन्द विचारिये,	॥	५४
सारा बहुत पुकारिया,	॥	२०५; ३०
॥ लस्कर हंदिआ,	निगुरा ।	४८; २२
॥ मूग बहु मिले,	गु० शि० हे० ।	४१; १६
सावधान औ मालना,	माधु ।	६५; १०६
साहिव का बाना सहो.	॥	७५; १९१
॥ को गति अगम है,	धीरज ।	४२५; १०
॥ के दरवार में, कमी काहु को नाहि ।	सेवक ।	१०१; १६
॥ के दरवार में, साँचै को सिरपाव ।	साँच ।	४३१; २०
॥ को भावे नहीं,	सेवक ।	१०१; ११
॥ जासों ना रुचै,	॥	१८
॥ तुम जनि वीसरो,	समर्थ ।	३०४; २८

सिध मासा चाना भया,
 , , नहुत किया,
 , , समार गनि,
 मोम नई भमार सा,
 माग सुने विचारि ले,
 सातठ कोमठ दीनना,
 ' नठ पानाठ का,
 " मद्र उचागिये,
 सीतलना तन जानिये
 सीतलना मँजोय ले,
 मोष जु तनग उतगता,
 ' नहा सायर नहीं,
 ' समुंदर में तसे,
 सील गहै काइ सावधान,
 ' मिलाये नाम को,
 हि समि प्रिक्त भये,
 ' क्षमा जय उपजे,
 सालन दद ज्ञान मत,
 " निरमल दसा,
 ' सन सौ वटा,
 " सुर ज्ञान मन,
 साप हरन गुरु पारधी,
 सास उतारै भुँड धरे,
 काटि पासग किया,

गुरपारग ।	३२,
"	३८,
भेष ।	८४,
लगना ।	३६८,
मद्र ।	२०४,
परिचय ।	१४०, १
भेष ।	८३,
मद्र ।	२०६,
सद्र ।	२०६,
मूरमा ।	२३२,
सतगुर ।	२८,
परिचय ।	१४३,
सतगुरु ।	२८
सील ।	४२७,
"	"
"	"
"	"
"	४२६,
साधु ।	६५,
सील ।	४२७,
"	"
सेनफ ।	१०२, ३
सतगुरु ।	२८, ८
प्रेम ।	१५१,
"	१५०,

सीस खिंचे साईं तखे,	मूमा । २३४, ७८
सुखदेव सरीखा फेरिया,	निगुरा । ४८, २३
सुख का सागर सोल है,	साठ । ४७७, ९
के माथे सिल परे,	सुमिरन । १२२, ६३
" के सगी स्वारथी,	परमाश्रय । २४३, ४
" को सागर म रचा,	भर्मिनिचम । ३४९, ६६
" दैव दुख को हरे,	साधु । ५९, ५६
" में सुमिरन ना किया,	सुमिरन । १२८ १२३
सुखत मोहों सब गले,	आत्मअनुभव । ३११, १८
सुखिया दृढत में किरू,	दुख । ४०५, ३
" सब ससार है,	निह । १६७, ७०
सुखि पाया सुख ऊपजा,	परिचय । १३९, ३३
सुनिये पार जु पाइया,	साधु । ५६, २४
" संतो साधु मिलि,	गुरुदेव । १५ ८२
सुपना में साईं मिठा,	लगनी । ३६९, २९
सुमिरन का सने रहा,	चिन्ताम्ना । १८७, १५३
" एसो कीनिये,	सुमिरन । १३३, १६२
" की सुधि यों करी, जैसे कामी काम । "	१२५, ९१
" " " कहेँ कबीर पुकारिके(३) "	" ९३
" " " ज्यों गागर पनिहारि । "	" ९२
" " " ज्यों सुरभि सुत मोहि । "	" ९४
" " " जैसे दाम कगाल । "	१२६, ९५
" " " जैसे नाद कुरग । "	" ९६
" " " ज्यों मूई में डोर । "	" ९७

सुमिरन तूं घट में करे,	सुमिरन ।	१२७; १०५
„ मन लागे नही,	„	१२६; १०२
„ मारग सहज का,	„	१२५; ८९
„ माँहि लगाय दे,	„	१२६; १०३;
„ सुरति लगाय के,	„	१०४
„ सैं सुख होत है,	„	१२५; ९०
„ मां मन लाइये, जैसे कोट भिरंग ।	„	१२६; ९८
„ „ „ दीप पतंग ।	„	९९
„ „ „ पानी मोन ।	„	१००
„ सों मन जब छो,	„	१०१
सुरज किरन रोकी रहैं,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७९; ३७
„ समाना चाँद में,	परिचय ।	१४०; ४१
सुरति उडानी गगन को,	„	१४३; ७१
„ बरो मम साइया,	विनती ।	४३७; ८
„ ढोंकली नेज लौ,	लगनी ।	३६८; १०
„ निरति दो तूबरी,	मध्य ।	३१५; ११
„ फसो संसार में,	सुमिरन ।	१३३; १६८
„ समानी नाम में,	पतिव्रता ।	२१९; १८
„ „ निरति में, अजपा माँहीं जाय ।	परिचय ।	१३९; ३०
„ „ निरति रहो निरधार ।	परिचय ।	१३९; ३१
„ सगावे नाम में,	सुमिरन ।	१२१; ५४
„ सुहागिन सोइ सहि,	सेवक ।	१०३; ३६
सुर नर थाके मुनिजना, तहाँ न कोई जाय ।	सू०मा० ।	३७४; २
„ „ थाके निस्तु महेस ।	„	

सुनर मुनिजन औलिया,	परिचय ।	१४५;	८५
“ मुनिजन देवता,	परिचय ।	१४५;	८६
“ मुनि सब को ठगे,	मन ।	२७४,	९१
“ रिधि मुनि सत्र फसे,	मोह ।	३९३;	९
सुरा पान अचयन करे, ताम्रं डंग कुडंग (४)	नशा ।	४१९;	२०
“ “ “ ताको करो न सग(४)	“	४१९;	२१
सुप्रभन डिव्यो पोत करि,	प्रवृत्तिगुन ।	३८७,	२
मूखन लागे केवडा,	चितामनो ।	१८७,	१४८
सूता साधु जगाडये,	निगुरा ।	५१,	४५
सूने मंदिर पैठलो,	निगुरा ।	५२	५५
सूम थैलि अरु स्थानभग,	लोभ ।	३९२;	७
“ सदा हो उजरी,	निपर्यय ।	२५०,	२६
सुर चै सग्राम को, नाना पतिन अनेक ।	सरमा ।	२३६,	९८
“ “ “ कृ, अरिदल मोहि धसाय ।	“	२३६;	९७
“ “ “ पीछे पात्र न देह ।	“	“	९८
“ “ “ पात्र न पीठा देह ।	“	“	९७
“ “ “ पाँधे तरुन चार ।	माधु ।	७८	२२०
“ चडा सग्राम को,	सरमा ।	२२९,	३०
“ न सेरी ताकडे,	“	“	३३
“ निसाना गाडिया,	“	२३८,	१२२
“ रई गुर दान से,	“	२४१,	१५२
“ सती का सहल है,	नायतमृतक ।	३३५	४०
“ “ स्वर्ग पार है,	मती ।	१६,	२२५
“ सनाह न पहिरै मरतो नहीं शराव ।	नृगमा ।	२२९	३२

सूर सिलाह न पहिरै, जव रन बाजा तूर ।	सूरमा ।	२२९, - ३१
सूरत मे मूरत वसै,	परिचय ।	१४८; ११०
सूरा कायर दुइ भला,	सूरमा ।	२३८; ११९
" के तो सिर नहीं,	पतिव्रता ।	२२१, ३९
" के मैदान में, कायर फंदा आय ।	सूरमा ।	२२८; १९
" " " मूरा सों सूरा मिलै(३)	"	" २०
" " " कायर भाजै पीठ दे(३)	"	" २१
" " " तीर तुपक बरछी बहै(३)	"	" २२
" थोडा जो गहै,	सूरमा ।	२४०; १४८
" जूझै गिरद सों,	"	२२७; १५
" सो बहुतक मिले,	"	२४१; १५३
" सो सँचै मते,	"	२२८; २८
" थोडा हो भला,	"	२२९; २९
" नाम धराय करि,	"	२२८; २६
" लडै कामंद है,	"	" २५
" सनमुख ब्राह्मता,	"	" २५
" सब हि निकसिया,	"	२३९; १२५
" सोस उनारिया,	"	२२७; १८
" सो सनमुख लडै,	"	२३९, १२५
" सोई जानिये, पाँच न पीछै पेख ।	"	२३६; १०२
" सोई सराहिये, लडै धनी के हेत ।	"	२२७. १५
" " " अंग न पहिरै लोह ।	"	२२७; १६
सूर सार संवाहिया,	"	२२९; ३४
सूनी ऊपर पर करै,	सूनीभागी ।	३७५; ८

रूप सुरति का मर्म है,
 उख सखी वाहिरा,
 तज विछावे सुंदरी,
 तेनै सुती रंग रम्हा,
 सर दुई को खाय करि,
 " पांच को खाय करि,
 सल जु जाहों मारिये,
 सेवक अपना करि लिया,
 " कुत्ता राम का,
 " मुझे कहानई,
 " फल मागे नहीं,
 " भाव सदा रहे,
 " सेवा में रहै, अन्त कहुं नहि जाय ।
 " " " सेवक कहिये सोय ।
 " " " सेव करै दिनरात ।
 सेवक स्वामी, एक मत,
 सेव साहिब राम को,
 सेस नाग के महस फन,
 सो गुरु निमदिन बंदिये,
 " दिन गया अकाज में,
 " मन सोनो सो विषय,
 " सर मो मन बस्या,
 " साहिब तन में बसै,
 " सो सरी हं तक्रं,

मूढमार्ग ।	३७८;	३३
मांसाहार ।	४१५;	३८
विभिचारिन ।	२२३;	६
परिचय ।	१४६;	९४
प्रकृतिगुन ।	३८८;	४
"	"	३
सूरमा ।	२३०;	४३
कलकलामिनी ।	२९०;	४६
सेवक ।	१००;	७
"	९१;	३
"	९१;	५
भेष ।	८४;	५०
सेवक ।	९१;	१
"	"	२
"	"	४
"	१००;	६
मर्मविध्वंस ।	३४३;	१३
चितावर्नी ।	१८६;	१३९
गुरुपारख ।	३१;	७
साधु ।	७२;	१६३
मन ।	२७३;	८४
विरह ।	१७१;	११०
व्यापक ।	३२६;	१४
मन ।	२७३;	८५

सोइ अक्षर सोई भनै,
 " सोइ नाच नचाइये,
 " सद्द निज सार है,
 सोई आसुं साजना,
 " साधु पतिव्रतजु,
 सोऊँ तो सपने मिलं,
 सोने रूपे धाद दई,
 सोया सो निष्फल गया,
 सोरा रति भर सुरति है,
 सो जोजन साजन वसै,
 " पापन को मूल है,
 " वरपौ भक्ति करै,
 सोदा कीजै राम सो,
 संख समुदा वीछुरा,
 संगत कीजै साधु को, कदी न निष्फल होय ।
 संगति अधम असाधु को,

विचार ।	४२३;	२०
गुरुदेव ।	१४;	७४
सद्द ।	२०४;	२१
विरह ।	१६६;	५६
साधु ।	७२;	१६६
लगनी ।	३६७;	१२
फसीटी ।	३७४;	५
सुमिरन ।	१२३;	७८
प्रश्नोत्तर ।	४४५;	४९
प्रेम ।	१५४;	४२
माया ।	२८२;	५१
विभिचारिन ।	२२४;	१४
विश्वास ।	२१२;	२५
दुख ।	४०६;	९
साधु ।	७२;	१६२
संगति ।	९३;	४५

सन्त मता गजराज का,	साधु ।	७६, १९९
मन्त मिले जनि वीहुरो,	साधु ।	६२; ८०
“ तत्र हरि मिले, कहिये आदि रु अत । ”		७१; १५५
“ मिले तत्र हरि मिले, यू सुख मिले न कोय । ”		७२; १६४
“ मिले सुख ऊपने,	”	७१, १५३
“ समागम परम सुख,	”	” १५२
“ सुरसुरी गगनल,	सगति ।	९८, ८१
“ सुहागी सुरमा-	भक्ति ।	११५, ७१
सत सेवा गुरु बदगी,	साधु ।	७८, २२१
सन्त सन्त सब कोइ कहै,	,	७३; १७८
मंत संतोषी सर्वदा,	सद्व ।	२०५; २८
“ होन है हेत के,	माधु ।	७८, २१७
मंतन के मन भय रहै,	”	७३ १७३
सतो सरपम दे मिले,	कसोटो ।	३७३, १
सनों खाई रहत है,	माया ।	२८३, ५०
संतोष हि सहिदान है,	सतोष ।	४२८, १
सगति तो हरि मिलन है,	दुख ।	४०७; १७
“ देखि न हरपिये,	”	४०६ १६
मंपुट माहि समाइया-	निजकता ।	३७०; ८
मंसारी सायट मला,	मेघ ।	८३, ४५
“ सैं प्रीनडी,	स्वारय ।	२४२; ६
संसैं करों न भैं टरौ,	परिचय ।	१३७; १६
“ -काल मगीर में, त्रिषम काल है दूर ।	काल ।	२९८; ५४
“ “ “ नारि करे सब दूर । ”	”	” ५८

संसे खाया मकल जग,	काल ।	२९८; ५७
॥ नहि साधू मिले,	पारख ।	३५४; २८
संस्कृत हि पंडित कहे,	भाषा ।	३७९; २
॥ हि संसार में,	भाषा ।	३७९; ३
॥ है कूप जल,	॥	॥ १
माँड़े सुमिर मति डोल कर,	सुमिरन ।	१२८; १२
माँड़े इतना दोजिये,	विश्वास ।	२१०; १
॥ केरा बहुत गुन, ओगुन कोई नहि ।	समर्थ ।	३०२; ११
साँड़े केरे बहुत गुन, लिखे जु हिरदे माहि ।	समर्थ ।	३०६; ४८
॥ को सुमिरन करे,	सुमिरन ।	१२९; १२६
॥ तेरा तुझ हि में,	व्यापक ।	३३०; ५१
॥ दीया सहज में,	विश्वास ।	२१२; २०
॥ मेरा एक तू दूजा, साँड़े क्या कहें (३)	पतिव्रता ।	२१९; २१
॥ मेरा एक तू, दूजा, साँड़े जो कहें (३)	॥	॥ २२
॥ मेरा बानिया,	समर्थ ।	३०२; १३
॥ मेरा सावधान,	विनती ।	४३७; १११
॥ मैं तुझ चाहि,	समर्थ ।	३०२; १२
॥ मोर सुलच्छना,	पतिव्रता ।	२१९; १९
॥ यों मति जानियो,	सुमिरन ।	१२९; १२५
॥ सेति न पाइये,	सूरमा ।	२३१; ५५
॥ सेवन जरि, गई,	विरह ।	१६४; ४३
॥ सौ, सांचा रशे,	सांच ।	४३०; १०
सांवर हूते मवल है,	माया ।	२८१; ४०
सांच बड़, तो मारि है,	सांच ।	४३०; ६

सौच गह्वे तो मारि है,	सौच । ४३०, ५
॥ बरानर तप नहीं,	॥ ४३१, २७
॥ बिना सुमिरन नहा,	॥ ४२९, २
॥ पुने गुर सच कहै,	॥ ४३०, ८
॥ सन्द को गायरी,	प्रश्नोत्तर । ४४१, १०
॥ सन्द माली करै,	भक्ति । ११५, ७३
॥ सन्द हिरदै गहा,	सांच । ४२९, १
॥ हुआ ता क्या हुआ,	॥ ४३०, ९
माच को साचा मिले,	॥ " ७
॥ कोई न पतानई, पाच टका की धापटा (३) "	४२९, ३
॥ " " गली गनी गारस फिरै (३) '	" ४
॥ कोई न मानई,	मय । ३१६, २७
साचै गुरु क पक्षमें,	गुरुपारस । ३४, २७
माच पडो दिन डल गया,	विपर्यय । २४४, १
साह मयै प्रवत दो,	उपदेस । २०२, ९३
माम माम का नाम ले,	सुमिरन । १३०, १३५
सास मुफ्त मा नानिये,	' १३०, १३६
सिधन क लहडा नहा,	साधु । ६०, १३८
सुन्दरि ता साई भजै,	पतिव्रता । २२१, ३७
सुन्दरी ते मन्त्री मनी,	कलकामिनी । २९०, ५०
सुन मन्त्र में घर बिया,	परिचय । १४३, ६९
' सराग गीन मन, नार निरनन देव । '	१४५, ८०
' ' ' नार नीर सत्र दय । '	' ९०,
सुन सिखा चटि घर बिया,	सुमिरन । १२०, ८५

स्नेह प्रेम गुरुचरण मों,
 त्याम सब्ज विधि पच जे,
 स्वामी के सहमी पडी,
 " सेनक से कहे,
 " सेनक होय के,
 " होना सेत का,
 " होना सोहरा,
 " ह सग्रह करै,
 स्वारय का मन को सगा,
 " कु स्वारय मिले,
 ' सूफा छाकडो,
 स्वास सुरति के मध्य ही,
 स्वाग पहिरि सोहरा भया,
 स्वामी सब ससार है,
 स्वर्ग मृत्यु पाताल में,
 धम ही ते सत्र कह्यु ग्रनं,
 धम ही त सत्र होत है,
 सोता तो घर ही नहीं,
 थोता प्रका कीन घर,

गुरुदेव ।	१४,	७७
आत्मानुमन ।	३१०,	९
चानक ।	३०८,	१६
चितामनी ।	१९२,	२००
गु०शि०हे० ।	४४;	४४
चानक ।	३०८;	१४
दासातन ।	१०५,	१५
उपदेस ।	१९५;	२२
स्वारय ।	२४२,	१
"	"	३
परमारथ ।	२४३,	७
साक्षीभूत ।	३२३,	९
भेष ।	८१;	२५
साधु ।	६९;	१३९
दुख ।	४०६;	१५
करनी ।	३६५,	२९
करनी ।	"	३१
करनी ।	३६४;	१६
प्रभोत्तर ।	४४६,	५६

६

दृष्टि मारि हीरा लहा,
 हलो मो सत्र सुन लडे,
 हफियारों म लोह ज्यों,

पारम्व ।	३५४,	२७
सूक्ष्ममार्ग ।	३७८,	३६
व्यापक ।	३२९,	४२

हृद जोड़ा बेहद गया,	। बेहद ।	३३७,	१
हृद छाड़ी बेहद गया, अबरन किया मिलान ।	"	"	३
हृद लाठी बेहद गया, सुन्न किया अस्थान ।	"	"	४
हृद छाड़ी बेहद गया, रहा निरतर होय ।	"	३३८,	५
हृद छाड़ी बेहद गया, तासा राम हजूर ।	"	"	६
॥ बेहद दोऊ तजो,	बेहद ।	३३७,	२
॥ बधा बेहद रमै,	बेहद ।	३३८,	८
॥ माहों हृदका घना,	बेहद ।	"	११
॥ में पीव न पाइये,	बेहद ।	"	७
॥ में बैठा कथत है,	बेहद ।	"	९
॥ में रहै सो मानग,	बेहद ।	"	१०
हृदिया सैती हृद रहो	बेहद ।	"	१२
रुनिया सोई हज्ज सी,	मासाहार ।	४१३,	१६
हम करता सत्र सृष्टि के,	निजमतों ।	३७२;	३४
॥ कु स्वामी मति कहो, हम हैं गरीब अधारा परिचय		१४८;	११७
॥ कु स्वामी मति कहो, बाग है बलियार । परिचय ।		"	११८
॥ घर जारा अपना,	गु०नि०ह० ।	४०,	११
॥ जाना तुम मगन हो,	भेष ।	८३,	४२
॥ जाने ये खाहिगे,	काल ।	२९७,	४४
॥ जाये तेमो मुआ,	त्रियर्यय ।	२६२;	६६
॥ तुम्हरो सुमिरन करै,	प्रेम ।	१५५;	४४
॥ तौ जोगी मन हि के,	भेष ।	८३;	३८
॥ देखन जग जात है,	गु०शि०ह० ।	४०;	१२
॥ मा पाहन पूजते,	भर्मवि० ।	३४३,	१५

हम वासी वा देस के, जहा पुरुष की आन । परिचय ।	१३५;	
„ वासी वा देस के, जहां बारह मास बसंत । „	„	
„ वासी वा देस के, गगन धरन दोउ नाहि । „	१३६;	
„ वासी वा देस के, जहां ब्रह्म का कूप । „	„	
„ वासी वा देस के, आदि पुरुष का खेल । „	„	१०
हम वासी वा देस के, बारह मास विलास । परिचय ।	१३६;	११
„ „ „ जाति वरन कुल नाहि । „	„	१२
„ „ „ रूप वरन कुल „	१३७;	१३
„ „ „ पिंड ब्रह्मंड कह्यु „	„	१४
„ „ „ गाज रहा ब्रह्मंड । „	„	१५
हय वर गय वर सघन घन, छत्रपती की नारि । साधु ।	६०;	६५
„ „ „ „ छत्र धुजा पहराय । सुमिरन ।	१२२;	६०
हरप सोक वा घर नहीं, -	बेहद ।	३४०; २४
हरा होय मूर्ख सही,	निजकर्ता ।	३६९; ४
हरि का गुन अति कठिन है,	मूर्खा ।	२३७; १०५
हरि का बना अरूप सब,	एकता ।	३२४; १०
„ किरपा तब जानिये,	गुरुदेव ।	१३; ६७
„ गुन गावै हरापि के,	पंडित ।	३८३; ३२
„ घोड़ा ब्रह्मा कड़ी,	विपर्यय ।	२५२; ३४
हरि जन आपत देखिके,	निगुरा ।	५२; ५८
„ „ ऐमा चाहिये,	विवेक ।	४२१; ८
„ „ को लता मली,	निगुरा ।	५२, ५०
„ „ को लँचा नवै,	मान ।	३९७; १८
„ „ को सोई नही,	नशा ।	४१९; २३

ते जन केवल होत हैं,
 " गाँठि न बांधहीं,
 " तो हारा भला,
 " मिले तो हरि मिले,
 " सेतो रूठना,
 रि जन मोई जानिये,
 " हरि तो एक है,
 रि दरबारी साधु है,
 " दरिया सूभर भरा,
 " मरि है तो हमहूँ मरि है,
 " मोनियन की माल है,
 " रस पीया जानिये,
 " रस मेंगा जन पिये,
 " " " पीजिये,
 इरि रुठै गति एक है,
 " सुमिरन साची कथा,
 " सेतो हरिजन बडे,
 " सेवा जुग चार है,
 " सौं तू मनि हेत करु,
 " होरा क्यों पाइये,
 " " जन जौहरी,
 " " मन जौहरी,
 " " सन मेहटा,
 हरिया जाने रुखड़ा,

मंगति ।	९९;	८९
विश्राम ।	२१०;	८
उपदेस ।	१९६;	३७
साधु ।	७१;	१५४
मंगति ।	९३;	४१
मद ।	२०६;	३६
मद ।	३९५;	४
साधु ।	५९;	५८
"	६७;	१२७
चितावनी ।	१९०;	१८३
पारस ।	३५२;	९
रस ।	२६३;	६
"	"	५
"	"	७
"	"	४१
गुरुदेव ।	९;	४१
चानक ।	३०७;	९
साधु ।	७६;	१९६
गुरुदेव ।	१५;	८५
साधु ।	६०;	६०
जीवनमृतक ।	३३१;	९
पारस ।	३५२;	६
"	"	७
"	"	८
"	"	८
निगुरा ।	४८;	१६

हंसा तो महारान का,	पारख ।	३५५;
„ देस सुदेस का,	„	३५३;
„ पय को काडि ले,	सारग्राही ।	३४९;
„ बगुला एक सा,	पारख ।	३५४;
हंसै न बोलै उनमुनी,	सतगुरु ।	२६;
हौंसी खेल हराम है,	साधु ।	६८;
„ खेलां पिय मिले,	विरह ।	१६६,
हिन्दू कहें तो मैं नहीं,	मध्य ।	३१६,
„ के दाया नहीं,	मांसाहार ।	४१६,
हिन्दू तुलका के बीच में, मेरा नाम कबीर ।	मध्य ।	३१६,
„ „ „ „ सद्ध कहें निरवान ।	„	„
„ ध्यावै देहरा,	„	„
„ मूआ राम कहि,	„	„
हूं जो विरह को लाफडी,	विरह ।	१६४,
हौं साधुन के सँग रहूं,	साधु ।	७३,

२५५

क्ष

क्षमा क्रोध को क्षय करै,
क्षमा बडन को चाहिये.

ज्ञान नीच का वर्म है,
 ज्ञान दाप परकास करि,
 ज्ञान व्यान मन धनुष गहि,
 ज्ञान प्रकासा गुरु मिला,
 ज्ञान भक्ति प्रेम सुख,
 ज्ञान समागम प्रेम सुख,
 ज्ञान संपूरन ना भिदा,
 " " ना विधा,
 जानी अभिमाना नहीं,
 " का ज्ञाना मिले,
 " नन हें चोहरी,
 " जुक्ति सुनाव्या,
 जानी ता निरभय भया,
 जानी व्यानी सयमा,
 जानी नमि गुरुमुख नमै,
 " भूले ज्ञान करि,
 " मूल गंगाइया,
 ज्ञाना गुनहु मदेस,
 जानी होय सा मानही,
 जानी जाता नहु मिले

पारख ।	३७७,	६०
सुमिरन ।	१२७,	४८
साधु ।	७२,	१९७
गुरुदेव ।	८,	६७
आमानुभव ।	३१०,	१०
गुरुदेव ।	८,	३८
भक्ति ।	११२,	४६
भय ।	८२,	३४
सत्य ।	१०२,	२९
संगति ।	९५,	६०
पारख ।	३५३,	१६
आमानुभव ।	३१०,	११
"	३१२,	२८
सीर ।	४७७,	७
कपट ।	४०५,	७३
आमानुभव ।	३१०,	१७
"	३१२,	२०
सद्ध ।	२०८,	५०
चिनायनी ।	१९२,	१९८
पडित ।	४८३,	३३

- | | | |
|----|--|---|
| २० | श्रीमान् महंत श्री रामदासजी माहेंव, कवीरकुशीर-ओरछा, सी पी. १ | १ |
| २१ | श्रीमान् महंत श्री भारीदासजी माहेंव, सरसपुर-अहमदाबाद | १ |
| २२ | साधु श्री रूपदासजी माहेंव, " " " " " " | १ |
| २३ | श्रीयुक्त अमरचंद पोस्टल पेन्शनर, बुजवाडा-पंजाब | १ |
| २४ | डा. शांजाल रामजी परमार हेडमास्तर, रोड ग्रामगामा-काठि | १ |
| २५ | पा. माधवलाल रंगदास, लांघणज-गुजरात | १ |
| २६ | मोदी प्रभुदासजी रामजीभाईक चि. भगवानदास ओजवाडा | १ |
| २७ | श्रीमान् साधु श्री चेतनदासजी गुरु श्री गोपालदा. सा. तवडी गु. | १ |
| २८ | श्रीयुक्त भगत गंगा राम लंजमभाइ, तवडी-गुजरात | १ |
| २९ | वर्या जेमंगभाइ ईश्वरभाइ. कवीर पंथी, अविधा-गुजरात | १ |
| ३० | धनजीभाइ जीनाभाइ, दोहद-गुजरात | १ |
| ३१ | मंगनलाल मोतीराम, सुरत-गुजरात | १ |
| ३२ | पुरुषोत्तम मोठामाइ, पटेल पेन्शनर मास्तर कोथमडी-गुजरात | १ |
| ३३ | भगत वायरभाइ गवामाइ कवीर पंथी, तवडी-गुजरात | १ |
| ३४ | मीर्वा जगजीवनदास नरोत्तमदास, बटसाइ-गुजरात | १ |
| ३५ | श्रीमान् महंत श्री भगवानदास गुरु भवानदासजी, बडीदा-गुजरात | १ |
| ३६ | साधु श्री जेठोदास हरिदासजी, भूज-कच्छ | १ |
| ३७ | श्रीयुक्त भगत छीताभाइ वावल्याभाइ, जुनारांजुवाडिया-गुजरात | १ |
| ३८ | गोवरभाइ कालादास, अहमदाबाद-गुजरात | १ |
| ३९ | मोठामाइ मोतीभाइ, " " " " | १ |
| ४० | इच्छाभाइ लकाभाइ, " " " " | १ |
| ४१ | भगत जीर्जाभाइ जोडतभाइ, हेलंबी-गुजरात | १ |
| ४२ | आतमदास ठेकेदार, लखन-गालियरस्टेट | १ |
| ४३ | दयालजीभाइ मोगरजीभाइ पटेल, अमरिका | १ |